सूरसागर सार

सटीक

सूरसागर सार

सटीक

[सूरसागर के लगभग ८३१ अत्यन्त उत्कृष्ट पदों का संकलन]

सम्पादक
डॉ० धीरेन्द्र वर्मा

साहित्य भवन [प्रा०] लिमिटेड
के पी. कक्कड़ रोड, इलाहाबाद-२११००३

पंचम संस्करण : १९८६ मूल्य : ३०-००

साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, ९३, के० पी० कक्कड़ रोड, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित
तथा स्टार प्रिण्टर्स, २८७, दरियाबाद, इलाहाबाद द्वारा मुद्रित ।

वक्तव्य

सूरदास हिन्दी साहित्य के सूर्य माने जाते हैं, किन्तु इस महाकवि की प्रसिद्ध कृति 'सूरसागर' का पठन-पाठन रसास्वादन उतना नही हो पा रहा है जितना होना चाहिए। इसके अनेक कारण हैं। एक तो यह ग्रन्थ बहुत बड़ा है। दूसरे इसमें अनेक स्तरों की सामग्री मिश्रित रूप में पाई जाती है। तीसरे इसका कोई अच्छा संस्करण कुछ वर्ष पूर्व तक उपलब्ध नही था। अब सभा का सुन्दर संस्करण दो खडो मे प्राप्य है, किन्तु उसका मूल्य १२५) है, जो साधारण पाठक अथवा विद्यार्थी की पहुँच के बाहर है।

उपर्युक्त कठिनाइयों के कारण 'सूरसागर' के अनेक संकलन प्रकाशित हुए थे, किन्तु ये प्राय: वेङ्कटेश्वर प्रेस के संस्करण के आधार पर तैयार किए गए थे, अत: वे बहुत संतोषजनक नही थे। इसके अतिरिक्त इन संकलनों मे पदचयन पर जितना ध्यान दिया जाना चाहिए था उतना नही दिया गया था। 'सूरसुषमा' मे ये दोष नही है, किन्तु यह केवल सवा-सौ पदों का संग्रह है जो 'सूरसागर' का ठीक परिचय कराने के लिए अपर्याप्त है। अत: 'सूरसागर' के एक अच्छे प्रतिनिधि संग्रह की आवश्यकता बनी ही रही। 'सूरसागर सार' के द्वारा इस आवश्यकता की पूर्ति का यत्न किया गया है।

प्रस्तुत संग्रह में 'सूरसागर' के लगभग ५००० पदो में से ८३१ अत्यन्त उत्कृष्ट पदों का चयन है। संग्रह का आधार सभा का संस्करण है। विनय तथा भक्ति के पदों के उपरान्त कृष्णचरित सम्बन्धी पदो को निम्नलिखित छह शीर्षको में विभक्त किया गया है :—१. गोकुल लीला, २. वृन्दावन लीला, ३. राधा-कृष्ण, ४. मथुरा गमन, ५. उद्धव-संदेश और ६. द्वारिका चरित। एक प्रकार से कृष्ण-जन्म से लेकर राधा-कृष्ण के अन्तिम मिलन तक का सम्पूर्ण कृष्णचरित क्रमबद्ध रूप में इस चयन मे मिल सकेगा। प्रत्येक शीर्षक के अन्तर्गत अनेक उप-शीर्षको मे पद-समूह विभाजित किया गया है। ये उप-शीर्षक भी कथाक्रम के अनुसार है। परिशिष्ट (क) में रामचरित सम्बन्धी कुछ पद भी दे दिए गए है।

इस संकलन के सम्बन्ध मे यह दावा तो नही किया जा सकता कि इसमें सूरसागर के समस्त उत्कृष्ट पद आ गए हैं, किन्तु इतना निश्चित है कि जो पद इसमें है वे अत्यन्त सुन्दर पदो मे से है। केवल कुछ साधारण पद कही-कही कथा की शृंखला जोड़ने के लिए रखने पड़े हैं। जो हो, प्रस्तुत चयन मे संग्रहकर्त्ता के ३५ वर्षों के 'सूरसागर' के पठन-पाठन और मनन का अनुभव सन्निहित है, तो भी रुचि-विभिन्नता के लिए बराबर स्थान रहेगा। 'सूरसागर' के लोकप्रिय न हो सकने का कारण यह

भी रहा कि इसे भागवत् का रूपान्तर माना जाता रहा और इस रूप में यह ग्रन्थ अत्यन्त शिथिल और असम्बद्ध दिखाई पड़ता है। 'सूरसागर' का कृष्ण-लीला सम्बन्धी रूप, जो वास्तविक 'सूरसागर' है, द्वादशस्कंधी रूपरेखा में छिप जाता है। यही कारण है कि प्रस्तुत संग्रह मे कृष्ण-चरित को ही प्रमुख स्थान दिया गया है। 'सूरसागर' की यह परम्परा अत्यन्त प्राचीन है इतना निश्चित है।

महाकवि सूरदास की जीवनी तथा कृति की आलोचना से सम्बद्ध प्रचुर साहित्य उपलब्ध है, किन्तु सूर की काव्यकला का सच्चा मूल्यांकन अभी नही हुआ है। इसमे सन्देह नही कि ऐसे सहज कलात्मक रूप में इतनी रसानुभूति कही भी अन्यत्र नही मिलती। सहृदय पाठकगण स्वयं रसास्वादन करके इस मत के तथ्य की परीक्षा कर सकते हैं। 'सूरसागर' वास्तव में 'रससागर' है। आशा है कि प्रस्तुत चयन के द्वारा सूरदास की कृति का अधिक परिचय हिन्दी के पाठक तथा विद्यार्थी दोनो ही को सुलभ हो सकेगा। इसके फलस्वरूप वे जो आनन्द प्राप्त करेंगे उसी में मै अपने परिश्रम की सफलता समझूंगा।

मूल 'सूरसागर सार' के द्वितीय संस्करण के प्रारम्भ में 'महाकवि' सूरदास तथा उनकी रचनाएँ शीर्षक संक्षिप्त कवि-परिचय बढाया गया था तथा अन्त में दो उपयोगी परिशिष्ट दिए गए थे। परिशिष्ट (ख) मे आई हुई प्रमुख अतर्कथाएँ संक्षेप मे दी गई थी। अन्त मे संकलित पदो की एक पदानुक्रमणी बढ़ा दी गई थी।

इन दोनों परिशिष्टो के तैयार करने का सम्पूर्ण श्रेय मेरे प्रिय सहयोगी डॉ० व्रजेश्वर वर्मा को है। श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी ने पदानुक्रमणी तैयार करने का कष्ट उठाया था, इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ।

प्रस्तुत विशेष संस्करण में समस्त पदो का अनुवाद दिया गया है। इस प्रकार का प्रयास लगभग पहली बार हुआ है। 'रामचरितमानस' के सैकडो सटीक संस्करण उपलब्ध हैं जिनके कारण उस ग्रंथ के समझने में पाठको को बहुत सहायता मिलती है। 'सूरसागर सटीक' न मिलने के कारण उसके अनेक स्थलो को विद्यार्थी, अध्यापक तथा सूर-प्रेमी समझ नही पाते है। इस पद संग्रह में इस प्रकार की कठिनाई पाठक को नही मिलेगी।

इसका प्रारम्भिक अनुवाद मैंने हिन्दी विभाग के रिसर्चस्कालर श्री विद्याकान्त तिवारी को रखकर करवाया था। उन्होने पूर्ण परिश्रम के साथ इसे पूरा किया। इसके उपरान्त मैंने एक-एक अध्याय अपने पुराने शिष्य-सहयोगियो को दिए कि वे अनुवाद को मूल से मिलाकर ध्यान से देख ले। इसमे मुझे पं० उमाशंकर शुक्ल, श्रीगणेश प्रसाद, डॉ० रघुवंश, डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी, डॉ० राजेन्द्र कुमार तथा डॉ० योगेन्द्र प्रताप सिंह का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ। अन्त मे मैंने सम्पूर्ण अनुवाद स्वयं देखा और अपने दृष्टिकोण से यत्र-तत्र परिवर्तन किये। जो हो अनुवाद का अंतिम उत्तरदायित्व मुझ पर है। इतना परिश्रम करने पर भी अनेक स्थल अस्पष्ट

रह गए हों आश्चर्य नहीं। कुछ स्थलों के अनुवाद के सम्बन्ध में मतभेद हो सकता है यह स्वाभाविक है। इन त्रुटियों के दूर करने के सम्बन्ध में सुझावों का मै स्वागत करूँगा।

संग्रह के प्रकाशक साहित्य भवन (प्रा०) लिमिटेड को मैंने सलाह दी है कि मूल 'सूरसागर सार' का संस्करण भी छपवाये। यह सटीक संस्करण अतिरिक्त विशेष संस्करण के रूप में प्रकाशित करें।

परिशिष्टों में परिशिष्ट (ग)—'शब्दार्थ' को सटीक संस्करण में अनावश्यक समझ कर छोड़ दिया गया है। शेष दो परिशिष्ट, अर्थात् परिशिष्ट (क)– रामचरित' तथा परिशिष्ट (ख)—'अंतर्कथाएँ' रहने दिए गए हैं। संग्रह के अन्त में मूल 'सूरसागर-सार' के समस्त पदों की अनुक्रमणी भी दी गई है।

प्रयाग
दीपावली, सं० २०२९ वि०।

— धीरेन्द्र वर्मा

पंचम संस्करण

स्वर्गीय डॉ० धीरेन्द्र वर्मा द्वारा सम्पादित सूरसागर सार (सटीक) का यह पंचम संस्करण मुद्रित हो रहा है। इसके तृतीय संस्करण में टीकागत् अशुद्धियों और मुद्रण-जन्य अनेक दोषों को पं० उमाशंकर शुक्ल के आदेश से डॉ० किशोरी लाल, श्री रामकिशोर ने दूर कर दिया था, किन्तु खेद है कि ग्रन्थ के चतुर्थ संस्करण के प्रकाशित होते-होते शुक्ल जी का निधन हो गया। अतः चतुर्थ संस्करण उनके दिवंगत हो जाने के उपरान्त प्रकाशित हुआ, फिर भी शुक्ल जी की शैली के अनुसार व सभी रह जाने वाली त्रुटियों को इस संस्करण मे यथाशक्य दूर करने की पूर्ण चेष्टा की गई है। अब आशा है कि सूरकाव्य के सभी पाठकों के लिए यह अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी एवं लाभप्रद सिद्ध होगा।

—प्रकाशक

महाकवि सूरदास और उनकी रचनाएँ

महाकवि सूरदास (लगभग १४७९-१५८२ ई०) के पूर्वार्ध जीवन के विस्तार श्री हरिराय जी ने 'चौरासी वार्ता' की 'भाव प्रकाश' नाम की अपनी टीका में दिए हैं। इन्हे हम कवि की मृत्यु के लगभग सौ वर्ष बाद की अनुश्रुति कह सकते हैं। 'भाव प्रकाश' के अनुसार सूरदास का जन्म दिल्ली के निकट सोही नाम के गांव में एक निर्धन सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वे जन्म से ही सूर थे किन्तु सगुन बताने की अद्भुत शक्ति रखते थे। पद-रचना तथा संगीत की प्रतिभा भी इनमे लडकपन से ही थी। परिवार के लोगों से कुछ मतभेद हो जाने के कारण ये घर छोड़कर एक निकट के गांव मे रहने चले गए थे। अट्ठारह वर्ष की वय मे इन्हें पूर्ण विरक्ति हो गई और ये मथुरा-आगरा के बीच गऊघाट पर आकर रहने लगे। 'भाव प्रकाश' में सूरदास जी के सम्बन्ध में अनेक चमत्कारपूर्ण घटनाओं का भी उल्लेख है।

सूरदास की उत्तरार्ध जीवनी के विस्तार गोकुलनाथ के नाम से प्रसिद्ध 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' मे दिए हुए हैं। इसका संकलन भी कदाचित् श्री हरिराय जी ने किया था। सूरदास विरक्त स्वामी के रूप मे गऊघाट पर रहते थे और उनके अनेक सेवक बन गए थे। पद-रचना और संगीत सम्बन्धी उनकी ख्याति अब दूर-दूर तक फैल चुकी थी। किन्तु उनकी भगवत-भक्ति का दृष्टिकोण दास्य भाव का था। गऊघाट पर ही इनकी महाप्रभु वल्लभाचार्य से भेंट हुई और उनकी वात्सल्य तथा सख्य भाव की भक्ति-भावना से वे इतने प्रभावित हुए कि पुष्टिमार्ग मे दीक्षित हो गये। इसके उपरांत सूरदास गऊघाट छोड़कर गोवर्द्धन आकर रहने लगे और गोवर्द्धन में प्रायः नाथ जी के मन्दिर मे और कभी-कभी गोकुल मे श्री नवनीत प्रियाजू के समक्ष पद बना कर कीर्तन करते थे। उनका शेष समस्त जीवन इसी प्रकार भगवान् की सेवा में कटा। सूरदास जी की मृत्यु बड़ी आयु मे श्रीकृष्ण की रासभूमि परासोली में महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुत्र तथा उत्तराधिकारी श्री विट्ठलनाथ जी के समक्ष हुई थी। इसका आंखो देखा सा वर्णन 'चौरासी वार्ता' मे सुरक्षित है।

'साहित्यलहरी' के प्रसिद्ध पद के आधार पर कुछ आलोचक सूरदास को ब्रह्म भट्ट और महाकवि चन्द्र का वंशज मानते थे। थे सात भाई थे, नेत्रहीन थे और भगवान् ने इनकी एक बार रक्षा की थी, तब से ये भगवद्भजन मे ही अपना सारा समय लगाने लगे थे। गुसाईं विट्ठलनाथ ने इनको वल्लभ-सम्प्रदाय के आठ सर्वश्रेष्ठ कवियों मे स्थान दिया था। सूरसागर के पदो में कवि ने अपने अथवा अपने वंश के सम्बन्ध मे कोई भी महत्वपूर्ण बात नही कही है। इस प्रकार के साधारण उल्लेख अवश्य अनेक स्थलो पर आए है कि वे नेत्रहीन थे, अत्यन्त दीन-हीन थे, और भगवान्

को ही अपना एक मात्र सहारा मानते थे। वास्तविकता यह है कि महाकवि की प्रारम्भिक जीवनी के प्रामाणिक विस्तार उपलब्ध नही है। उत्तरार्ध जीवनी से सम्बद्ध चौरासी वार्ता के उल्लेखों को प्रामाणिक माना जा सकता है। किन्तु ये जीवनी सम्बन्धी कोई विस्तार नही देते थे।

महाकवि सूरदास की रचनाओ मे सबसे प्रमुख और प्रसिद्ध रचना 'सूरसागर' है। अन्य समस्त रचनाएँ अत्यन्त गौण हैं। 'सूरसारावली' ११०७ पदों का खंडकाव्य सा है, जिसमें भागवत् की कथा को ही संक्षिप्त वर्णनात्मक रूप मे दिया गया है। इसमे कोई काव्य सम्बन्धी सौन्दर्य भी नही है। 'साहित्य लहरी' ११८ कूट पदों का संग्रह है, जिसमे किसी अलंकार, नायिका या भाव का उल्लेख करके कूट शैली मे उनके उदाहरण दिये गये है। अधिकांश आलोचक इन दोनों ग्रंथों को सूरकृत मानते हैं, यद्यपि कुछ विद्वान् इस सम्बन्ध मे सदिग्ध भी हैं। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट मे सूरदास के नाम से लगभग १०, १२ अन्य ग्रन्थों के नाम मिलते हैं, जैसे व्याहलो, पदसंग्रह, दशमस्कंध, टीका, नागलीला, भागवत, सूर-पचीसी, गोवर्द्धनलीला, सूरसागर सार, रामजन्म, एकादशी माहात्म्य आदि; जिनमें कुछ प्रकाशित भी हो चुके हैं। इन ग्रंथों मे कुछ तो कदाचित् महाकवि सूरदास की रचनाएँ नही हैं और सूरसागर मे ही विशेष कथाओ अथवा लीलाओ से सम्बद्ध पदो के संग्रह मात्र हैं। इस प्रकार महाकवि की एकमात्र प्रामाणिक और महत्वपूर्ण रचना सूरसागर ही रह जाती है।

सूरदास की हस्तलिखित पोथियों की दो परम्पराएँ मिलती है। एक मे श्रीकृष्ण के केवल व्रजचरित सम्बन्धी पदों का लीला-क्रम के अनुसार संकलन है। सूरसागर की यह परम्परा कदाचित् अधिक प्राचीन है। नवल किशोर प्रेस का सूरसागर इसी परम्परा की पोथियो के आधार पर प्रकाशित किया गया था। सूरसागर की दूसरी परम्परा मे पदो तथा खंडकाव्यो के रूप प्राप्त महाकवि की लगभग समस्त रचनाओं को एकत्रित तथा श्रीमद्भागवत के द्वादशस्कधी क्रम के अनुसार क्रमबद्ध किया गया था। यह परम्परा वेंकटेश्वर प्रेस तथा नागरी प्रचारिणी सभा के संस्करणों से मिलती है। सूरसागर की इस परम्परा मे भी श्रीकृष्ण के व्रजलीला सम्बन्धी पद ही प्रधान हैं। भागवत् के अन्य स्कधो से सम्बन्धित सामग्री अत्यन्त संक्षिप्त है तथा काव्य-स्तर की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है द्वादशस्कंधी सूरसागर की निम्नलिखित विषय-सूची से यह स्थिति स्पष्ट हो जायेगी :—

स्कंध	विषय	पद संख्या
१. व्यास अवतार (१),	विनयपद (२२३)	३४३
२. चौवीस अवतारो की सूची		३८
३. सनकादि, (२) वाराह, (३) तथा कपिलदेव, (४) अवतार		१३

४ दत्तात्रेय, (५) यज्ञपुरुष, (६) हरि अथवा ध्रुववरदेन, (७) तथा पृथु (८) अवतार	१३
५ ऋषभदेव (९)	४
६. अजामिल उद्धार अवतार (१०)	८
७. नृसिंह (११), नारद (१२)	८
८. गजमोचन (१३), कूर्म (१४), धन्वन्तरि (१५) वामन (१६), तथा मत्स्य (१७), अवतार	१७
९. राम (१८), परशुराम (१९)	१७४
१०. कृष्ण अवतार (२०) पूर्वार्ध : ब्रजचरित	४१६०
उत्तरार्ध : द्वारिका चरित	१४९
११. नारायण (२१), हंस (२२)	४
१२. बुद्ध (२३), कल्कि (२४)	५
	४९३६

ऊपर चौवीस अवतारों की सूची में दस मुख्य अवतार मोटे टाइप में दिये गए हैं। इस प्रकार सूरसागर की इस परम्परा के लगभग ५००० पदों मे ४००० से अधिक पद श्रीकृष्ण की ब्रजलीलाओं से सम्बद्ध है, तथा शेष १००० पदों में श्रीकृष्ण का द्वारिका चरित, विनय पद, राम अवतार सम्बन्धी पद तथा २२ अवतारो का अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन है। यहाँ इस बात का उल्लेख कर देना भी अनुचित न होगा कि सूरदास ने लगभग सवा लाख पद लिखे थे, इस किंवदंती का कोई भी प्रामाणिक आधार नही है। कवि की पद-रचना पांच छह हजार पदो के बीच ही रही होगी, जो लगभग प्राप्त है। वास्तव मे यह संख्या भी कम नही है।

जैसा ऊपर की सूची से स्पष्ट है, द्वादशस्कंधी परम्परा के सूरसागर में दशम स्कंध के पदसमूह के बाद अधिक संख्या मे प्रथम स्कंध के विनयपद तथा नवम-स्कंध के राम-अवतार सम्बन्धी पद पाए जाते है। विनयपदों मे दास्य भक्ति तथा दैन्य भावना प्रधान है। बहुत संभव है कि इस पद समूह में कवि की कुछ प्रारम्भिक रचनाएँ हो, जब वे गऊघाट पर रहते थे और महाप्रभु वल्लभाचार्य के सम्पर्क में नही आए थे, तथा कुछ की प्रौढ शैली को देखकर ऐसा मालूम होता है कि वे कवि की वृद्धावस्था की रचनाएँ होनी चाहिए। रामावतार का विस्तृत वर्णन होना स्वाभाविक है क्योंकि कृष्णावतार के अतिरिक्त भगवान् के अवतारों में यह मुख्य है। सूरदास ने द्वारिकावासी श्रीकृष्ण का चरित भी बहुत संक्षेप मे ही दिया है। आकार तथा स्तर दोनों ही दृष्टि-कोणो से यह स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण की ब्रजलीलाओ के गान में ही कवि की वास्तविक अभिरुचि थी।

इसमें संदेह नही कि सूरसागर मे वर्णित श्रीकृष्ण की लीलाओं का मूलाधार

श्रीमद्भागवत दशम स्कंध पूर्वार्ध है, किन्तु इस आधार के कारण सूरसागर को श्रीमद्भागवत का उल्था अथवा स्वतन्त्र अनुवाद मानना भारी भूल होगी। महाकवि ने अपनी असाधारण प्रतिभा के द्वारा परिचित लीलाओं के वर्णनो मे अनेक मौलिक कल्पनाओं का समावेश किया है, इसके अतिरिक्त अनेक नई लीलाओ तथा चरित्रों को भी बढाया है जो भागवत मे नही मिलते। उदाहरण के लिए श्रीमद्भागवत में राधा के नाम तक का उल्लेख नही है, जब कि सूरसागर मे राधा-कृष्ण प्रेम का प्रारम्भ, विकास तथा परिणति का बहुत ही सजीव, आकर्षक और महत्त्वपूर्ण चित्रण है। इसी प्रकार 'भ्रमर गीत' अथवा 'उद्धव गोपी' संवाद वाले अश में श्रीमद्भागवत मे उद्धव श्रीकृष्ण का सदेश गोपियो को सुनाते है और वे उसे शिरोधार्य कर लेती हैं। सूरसागर का भ्रमर-गीत सगुण-निर्गुण वादो और कर्म, ज्ञान तथा भक्ति मार्गों के सिद्धांतो के शास्त्रार्थ के साथ-साथ प्रौढ ध्वनि काव्य का एक अत्यन्त उत्कृष्ट उदाहरण है।

रस की दृष्टि से सूरसागर मे प्रधान रूप मे केवल शृङ्गार रस के संयोग और वियोग पक्षो का चित्रण है, किन्तु इस रस की जिस बारीकी और गहराई मे कवि की पैठ है वह उसकी असाधारण प्रतिभा का परिचायक है। मुख्य रस के चित्रण के साथ-साथ अनुभावो तथा व्यभिचारी अथवा संचारी भावो के भी सैकडो सजीव उदाहरण सूरसागर में बिखरे पडे है। सब मिलाकर कवि की रचना का क्षेत्र प्रत्येक दृष्टि से सीमित कहा जा सकता है—श्रीकृष्ण की व्रज-लीला, शृङ्गार रस तथा पदशैली, किन्तु इस सीमित क्षेत्र मे महाकवि के समकक्ष क्या निकट भी तो कोई अन्य कवि नही पहुँच सका है।

सूरसागर की भाषा व्रजभाषा है, यद्यपि एक संग्रह ग्रंथ होने के कारण उसमें इस भाषा के अनेक स्तर मिलते हैं। किन्तु सूरसागर के मुख्य भाग की भाषा-शैली अत्यन्त प्रौढ तथा साहित्यिक है। सूरदास जी के लगभग एक शताब्दी पहले से व्रज-भाषा मे साहित्य रचना होने लगी थी, किन्तु व्रजभाषा को साहित्यिक भाषा के उच्च सिहासन पर आसीन करने का श्रेय इस महाकवि को ही प्राप्त है।

वल्लभ-सम्प्रदाय में सूरसागर एक महत्त्वपूर्ण धार्मिक ग्रंथ माना जाता है। किन्तु कवि की रचना में संकुचित साम्प्रदायिकता का पूर्ण अभाव है। वल्लभ-सम्प्रदाय के शुद्धाद्वैतवाद दर्शन के विस्तार भी 'सूरसागर' मे नही मिलते। धर्म अथवा दर्शन के कुछ मूल सिद्धान्तों को कवि ने अवश्य माना है, जैसे श्रीकृष्ण को साक्षात् परब्रह्म अथवा उनका अवतार मानना, राधा को परब्रह्म की शक्ति के रूप मे समझना, गोपियो को आत्मा का प्रतीक मानना, श्रीकृष्ण अथवा परब्रह्म की प्राप्ति के उपायों में प्रेमभक्ति के मार्ग को सर्वश्रेष्ठ समझना इत्यादि। किन्तु इन मूल सिद्धान्तो की अभिव्यक्ति कवि ने उत्कृष्टतम काव्य के रूप मे की है। यही कारण है कि भावुक कृष्णभक्तों तथा सहृदय काव्य-रसिको, दोनो ही की पूर्ण तुष्टि करने मे महाकवि की यह असाधारण कृति समान रूप से पूर्णतया सफल हुई है।

विषय-सूची

विनय तथा भक्ति १७

मंगलाचरण १७, सगुणोपासना १७, भक्त-वत्सलता १८, अविद्या माया २२, गुरु महिमा २३, नाम महिमा २४, विनती २५, भगवदाश्रय २८, भावी ३१, वैराग्य ३३, मन प्रबोध ३६, चित्तबुद्धि-संवाद ४१, हरिविमुख-निन्दा ४२, सत्संग महिमा ४३, स्थितप्रज्ञ ४३, आत्मज्ञान ४४।

गोकुल-लीला ४७

कृष्ण जन्म ४७, शैशवचरित ५०, बालगोपाल ५५, माखन-चोरी ६५।

वृन्दावन-लीला ८०

वृन्दावन प्रस्थान ८०, गोदोहन ८०, गो-चारण ८०, काली दमन ८७, मुरली ६४, कमरी १००, चीर-हरन १०१, गोवर्द्धन धारण १०४, रासलीला ११०, पनघट लीला १२०, दमन लीला १२३, गोपिका अनुराग १३३, रूप वर्णन १३६, नेत्र अनुराग १४१।

राधा-कृष्ण १४६

प्रथम मिलन १४६, गारुड़ी कृष्ण १५०, सम्बन्ध रहस्य १५३, राधा सखी संवाद १४६, माता की सीख १६०, कृष्ण दर्शन १६१, राधा का अनुराग १६४, उपहास १७१, सहसा भेट १७२, व्याज मिलन १७६, भ्रम १८१, एकनिष्ठा १८२, लघुमान लीला १८४, कृष्ण-गोपिका १८८, मानलीला १६३, खंडिता प्रकरण १६६, मध्यम मान १६८, बड़ी मान-लीला २०३, वसंतोत्सव २०७।

मथुरा गमन २११

अक्रूर व्रज आगमन २११, मथुरा प्रयाण २१४, मथुरा प्रवेश तथा कंस वध २१६, नन्द का व्रज प्रत्यागमन २२५, गोपी-वचन तथा व्रजदशा २३०, गोपी विरह २३६।

उद्धव संदेश २६०

उद्धव को व्रज भेजना २६०, तीन पाती तथा संदेश २६५, उद्धव व्रज आगमन २६६, उद्धव का गोपियों को पाती देना २७४, भ्रमरगीत २७८,

उद्धव-गोपी संवाद २७६, उद्धव हृदय-परिवर्तन तथा गोपी संदेश ३१६, पूर्ण परिवर्तन तथा यशोदा संदेश ३२५, उद्धव मथुरा प्रत्यागमन तथा कृष्ण-उद्धव संवाद ३२७, श्रीकृष्ण वचन ३३६ ।

द्वारिका चरित ३३८

द्वारिका प्रयाण ३३८, रुक्मिणी परिणय ३३८, बलभद्र ब्रज यात्रा ३४२, सुदामा चरित ३४४, ब्रजनारी पथिक संवाद ३४६, रुक्मिणी-कृष्ण संवाद ३५४, कुरुक्षेत्र मे कृष्ण-ब्रजवासी भेट ३५५, राधाकृष्ण मिलन ३५६ ।

परिशिष्ट

(क) राम चरित ३६४

(ख) अंतर्कथाएँ ३७४

पदानुक्रमणी ३८१

सूरसागर सार

सटीक

विनय तथा भक्ति

मंगलाचरण

चरन-कमल बंदौं हरि-राइ ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अँधे कों सब कछु दरसाइ ।
बहिरौ सुनै, गूँग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराइ ।
सूरदास स्वामी करुनामय, बार-बार बंदौं तिहिं पाइ ।।१।।

अर्थ—मैं भगवान् के कमलवत् चरणों की वन्दना करता हूँ, जिनकी कृपा से लँगड़ा पर्वत लाँघ जाता है [तथा] अन्धे को सब कुछ दिखाई पड़ने लगता है, बहरा सुनने लगता है, गूँगा बोलने लगता है तथा अत्यन्त निर्धन भी छत्रधर (सम्राट्) बन जाता है। सूरदास कहते है कि ऐसे कृपालु स्वामी के उन चरणों की मैं बार-बार वन्दना करता हूँ ।।१।।

सगुणोपासना

अबिगत-गति कछु कहत न आवै ।
ज्यौं गूँगै मीठे फल कौ रस अतरगत ही भावै ।
परम स्वाद सबही सु निरंतर अमित तोष उपजावै ।
मन-बानी कौं अगम-अगोचर, सो जाने जो पावै ।
रूप-रेख-गुन-जाति जुगति-बिनु निरालंब कित धावै ।
सब विधि अगम बिचारहिं तातैं सूर सगुन-पद गावै ।।२।।

अर्थ—[भगवान् के] अव्यक्त (निर्गुणस्वरूप) की कुछ रीति कही नही जा सकती। जैसे गूँगे को मीठे फल का स्वाद मन-ही-मन अच्छा लगता है, वैसे ही निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति का आनन्द भी अत्यन्त उच्चकोटि का है तथा निरन्तर असीम सन्तोष प्रदान करने वाला है। [निर्गुण ब्रह्म] मन वाणी के द्वारा दुर्बोध एव अग्राह्य है तथा इन्द्रियातीत है, जो उसे प्राप्त कर लेता है वही उसे जान पाता है (उससे उत्पन्न आनन्द तथा ज्ञान की अनुभूति मनुष्य अभिव्यक्त नही कर सकता।) [निर्गुण ब्रह्म] रूप, आकार, गुण, जाति तथा तर्क से रहित (अव्यपदेश्य) है। इस प्रकार निरवलम्ब होकर [मन निर्गुण ब्रह्म के ध्यान मे] कहाँ दौड़े ? अतः (निर्गुण ब्रह्म को) विचार की दृष्टि से सब प्रकार से पहुँच के बाहर (अगम) जानकर सूर अपने पदो मे (ब्रह्म के) सगुण रूप का गायन कर रहा है ।।२।।

भक्तवत्सलता

बासुदेव की बड़ी बड़ाई।
जगत पिता, जगदीस, जगत-गुरु, निज भक्तनि की सहत ढिठाई।
भृगु को चरन राखि उर ऊपर, बोले बचन सकल-सुखदाई।
सिव-बिरंचि मारन कौं धाए, यह गति काहू देव न पाई।
बिनु-बदले उपकार करत हैं, स्वारथ बिना करत मित्राई।
रावन अरि कौ अनुज बिभीषन, ताकौं मिले भरत की नाई।
बकी कपट करि मारन आई, सो हरि जू बैकुंठ पठाई।
बिनु दीन्हें ही देत सूर प्रभु, ऐसे हैं जदुनाथ गुसाईं ॥३॥

अर्थ—वासुदेव (श्रीकृष्ण) की महत्ता अवर्णनीय है। वे सम्पूर्ण संसार के पिता, स्वामी तथा गुरु है और अपने भक्तो की धृष्टता सहन कर लेते हैं। भृगु के चरणों [के आघात] को अपने हृदय पर सहन कर उन्होने सबको आनन्दित करने वाले वचनों का प्रयोग किया। [इस प्रकार की सहनशीलता के अभाव मे] शिव और ब्रह्मा [अपना अपमान करने वाले भृगु को] मारने दौडे। इस प्रकार की गति कोई भी देवता नही प्राप्त कर सका। [जैसी विष्णु भगवान् ने दिखलाई] प्रतिफल की इच्छा के बिना वे उपकार करते है। [तथा] स्वार्थ रहित सौहार्द्र का भाव रखते है। [उनकी इस उदारता का एक अन्य प्रमाण यह है कि] शत्रु रावण के छोटे भाई विभीषण से वे भरत की भाँति [अर्थात् भाई के समान निश्छल रूप से] मिले। बकी कपट [रूप धारण] करके भगवान् को मारने आयी थी, उसे उन्होने [कृपा करके] स्वर्ग भेज दिया। सूर के प्रभु भक्तो से बिना कुछ प्राप्त किये ही [बहुत कुछ] दे डालते है। यदुवंशियों मे श्रेष्ठ (श्रीकृष्ण) इस प्रकार के [उदार तथा महान्] स्वामी हैं ॥३॥

प्रभु कौ देखौ एक सुभाइ।
अति-गंभीर-उदार-उदधि हरि, जान-सिरोमनि राइ।
तिनका सौं अपने जनकौ गुन मानत मेरु-समान।
सकुचि गनत अपराध-समुद्रहिं बूँद-तुल्य भगवान।
बदन-प्रसन्न कमल सनमुख ह्वै देखत हौं हरि जैसें।
बिमुख भए अकृपा न निमिषहूँ, फिरि चितयौं तो तैसें।
भक्त-बिरह कातर करुनामय, डोलत पाछैं लागे।
सूरदास ऐसे स्वामी कौं देहिं पीठि सो अभागे ॥४॥

अर्थ—प्रभु (भगवान् श्रीकृष्ण) का एक स्वभाव [विशेष रूप मे] दिखाई पडता है। भगवान् सागर की भाँति गंभीर तथा उदार है। ज्ञानियों मे सर्वश्रेष्ठो के राजा है। अपने भक्त के तृणवत् (अल्प) गुणो को वे सुमेरु पर्वत के समान (महान्) हैं तथा समुद्र तुल्य [बडे-बडे] अपराधो को बूंद के समान छोटा मानते है। [भक्त के] भगवान्

के समक्ष (शरण में) जाने पर जिस प्रकार वे कमल की भाँति प्रसन्नमुख दिखाई पड़ते है, (भक्त के) विमुख हो जाने पर भी वे [वैसे ही प्रसन्नमुख तथा कृपालु रहते हैं और] उसके ऊपर एक क्षण के लिये भी क्रोध नही करते। भक्त जब फिर उनकी ओर झुकता है तो वे पूर्ववत् ही [कृपालु] हो जाते हैं। भक्त के विरह में व्याकुल भगवान् उसके पीछे लगे घूमते रहते है। सूरदास कहते हैं कि ऐसे कृपालु स्वामी से मुख मोड़ने वाले बड़े ही अभागे है ॥४॥

राम भक्तवत्सल निज बानौं।
जाति, गोत, कुल नाम, गनत नहिँ, रंक होइ कै रानौं।
सिब-ब्रह्मादिक कौन जाति प्रभु, हौं अजान नहिँ जानौं।
हमता जहाँ तहाँ प्रचु नाहीं, सो हमता क्यौं मानौं?
प्रगट खंभ तैं दए दिखाई, जद्यपि कुल कौ दानौ।
रघुकुल राघव कृष्न सदा ही, गोकुल कीन्हौं थानौ।
बरनि न जाइ भक्त की महिमा, बारंबार बखानौं।
ध्रुव रजपूत, बिदुर दासी-सुत कौन कौन अरगानौ।
जुग जुग बिरद यहै चलि आयौ, भक्तनि हाथ बिकानौ।
राजसूय मैं चरन पखारे स्याम लिए कर पानौ।
रसना एक, अनेक स्याम-गुन, कहँ लगि करौं बखानौ।
सूरदास-प्रभु की महिमा अति, साखी बेद पुरानौ ॥५॥

अर्थ—भक्तवत्सलता ही भगवान् का निजी स्वरूप, बिरद (बाना) है। [भक्त के प्रति वात्सल्य भाव रखने मे] वे जाति, गोत्र, कुल तथा नाम (आदि) की गणना (भेद) नही करते, न इस बात का कि वह रक है या राजा। हे प्रभु, शिव ब्रह्मा आदि की कौन जाति है—मैं अज्ञानी कुछ नही जानता। अहंकार की भावना जहाँ होती है वहाँ प्रभु [का सान्निध्य] प्राप्त नही हो सकता, तो ऐसे अहंकार की भावना को हम प्रश्रय क्यो दे? यद्यपि [प्रह्लाद] दैत्यवंश मे उत्पन्न हुआ था [तथापि उसकी रक्षा के लिये] स्तम्भ से प्रकट हुये। [भगवान्] [रघुवश मे रामचन्द्रजी के रूप मे प्रकट हुए तथा] श्रीकृष्ण के रूप मे गोकुल को [उन्होने] अपना स्थान बनाया। भक्त की महिमा का [आसानी से] वर्णन नही हो सकता [इस कारण मैं] बार-बार उनका बखान कर रहा हूँ। ध्रुव राजपुत्र थे किन्तु विदुर दासी पुत्र थे तथा और भी किसका किसका भेद करूँ (तफ़सील दूँ) [जिनके उद्धार मे भगवान् ने भेद-भाव नही रखा] युगो से भगवान् का यह गुण या सुयश (बिरद) प्रसिद्ध है कि वे भक्तो के हाथ बिक चुके है। [महाराज युधिष्ठिर के] राजसूय में भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने हाथ मे जल लेकर [अपनी महत्ता का विचार न करके राजाओ के] चरण धोये। जिह्वा एक है किन्तु श्याम के गुण अनेक हैं उनका बखान कहाँ तक करूँ? सूरदास के प्रभु की महिमा असीम है, वेद तथा पुराण इसके साक्षी (समर्थक) है ॥५॥

काहू के कुल तनन विचारत ।
अविगत की गति कहि न परति है, व्याध अजामिल तारत ।
कौन जाति अरु पाँति बिदुर की, ताही कैं पग धारत ।
भोजन करत माँगि घर उनकैं, राज मान-मद टारत ।
ऐसे जनम-करम के ओछे, ओछिन हूँ व्यौहारत ।
यहै सुभाव सूर के प्रभु कौ, भक्त-बछल प्रन पारत ।।६।।

अर्थ—भगवान् [भक्तो का उद्धार करने मे] किसी के कुल की ओर ध्यान नही देते । [उन] अविज्ञेय की लीला कही नही जाती (अकथनीय है) वे व्याध और अजामिल [जैसे अधम पापियो] को भी तारते हैं । विदुर की जाति तथा श्रेणी कौन बड़ी ऊँची थी, किन्तु उनके यहाँ (भगवान्) पधारे । उनके घर उन्होंने मांग कर भोजन किया [और] (दुर्योधन के) राजमद पूर्ण सम्मान को अस्वीकार किया । इस प्रकार जो जन्म तथा कर्म से हीन, (ओछे) हैं, उन छोटों (ओछनि) के साथ ही वे सम्बन्ध रखते हैं । सूर के प्रभु का यही स्वभाव है । [इस प्रकार] वे अपनी भक्त-वत्सलता के दृढ़ निश्चय (प्रण) का पालन करते है ।।६।।

सरन गए को को न उबारचौ ।
जब जब भीर परी सतति कौं, चक्र सुदरसन तहाँ सँभारचौ ।
भयौ प्रसाद जु अबरीष कौं, दुरवासा कौ क्रोध निवारचौ ।
ग्वालनि हेत धरचौ गोवर्धन, प्रकट इद्र कौ गर्व प्रहारचौ ।
कृपा करी प्रहलाद भक्त पर, खंभ फारि हिरनाकुस मारचौ ।
नरहरि रूप धरचौ करुनाकर, छिनक माहिं उर नखनि बिदारचौ ।
ग्राह ग्रसत गज कौं जल बूड़त, नाम लेत वाकौ दुख टारचौ ।
सूर स्याम बिनु और करै को, रग भूमि मैं कस पछारचौ ।।७।।

अर्थ—भगवान् ने [अपनी] शरण में आये हुए किसका-किसका उद्धार नही किया ? जब-जब सन्तो [भक्तो] पर विपत्ति पड़ी भगवान् ने तत्क्षण सुदर्शन चक्र सँभाला । भगवान् अंबरीष पर प्रसन्न हुए तथा दुर्वासा के क्रोध का निवारण किया । ग्वालों के (हित के लिए गोवर्धन) [पर्वत] को धारण किया तथा प्रकट रूप मे (निस्संकोच) इन्द्र के गर्व को नष्ट किया । भक्त प्रह्लाद पर कृपा करते हुए (भगवान् ने) खम्बे को फाडकर हिरण्यकश्यप का सहार किया । कृपालु स्वामी ने नृसिह रूप धारण कर क्षणमात्र मे ही उसके हृदय को नखो से विदीर्ण कर डाला । ग्राह द्वारा ग्रस्त गजराज के [भगवान् का] नाम लेते ही भगवान् ने उसके कष्टो का निवारण किया । [उन्होने] रगभूमि (समारोह के स्थान) मे कस को मार डाला । (पछारयो) । सूर के श्याम के बिना ऐसे कार्य और कौन कर सकता है ? ।।७।।

स्याम गरीबनि हूँ के ग्राहक ।
दीनानाथ हमारे ठाकुर, साँचे प्रीति-निबाहक ।

कहा बिदुर की जाति-पाँति, कुल, प्रेम-प्रीति के लाहक ।
कह पाँडव कैं घर ठकुराई ? अरजुन के रथ-बाहक ।
कहा सुदामा कैं धन हौ ? तौ सत्य-प्रीति के चाहक ।
सूरदास सठ, तातैं हरि भजि आरत के दुख-दाहक ।।८।।

अर्थ—श्याम (श्रीकृष्ण) निर्धनों के ही चाहने वाले हैं। हमारे प्रभु दीन-हीनों के स्वामी तथा सच्चे प्रेम का निर्वाह करने वाले हैं। बिदुर की जाति, श्रेणी, तथा कुल किस गिनती के थे किन्तु भगवान् ने उन्हे ग्रहण किया, [क्योंकि वे] प्रेम तथा भक्ति को [ही] ग्रहण करने वाले (लाहक) है। पाण्डवो के पास स्वामित्व कहाँ था ? किन्तु वे अर्जुन के रथ के सारथी बने। सुदामा के पास धन कहाँ था (हौतौ) ? [जिससे वे भगवान् मे मित्रता स्थापित कर पाते] किन्तु भगवान् तो सच्चे प्रेम के ही चाहने वाले है। सूरदास कहते हैं कि इस बात को समझते हुए इस कारण (तातैं) हे शठ [मन] तुम भगवान् का भजन करो, [क्योंकि] वे आर्तों के दु ख को दूर करने वाले है ।।८।।

जैसें तुम गज कौ पाउँ छुड़ायौ ।
अपने जन कौं दुखित जानि कै पाउँ पियादे धायौ ।
जहँ जहँ गाढ़ परी भक्तनि कौं तहँ तहँ आपु जनायौ ।
भक्ति हेत प्रहलाद उबार्‌यौ, द्रौपदि-चीर बढ़ायौ ।
प्रीति जानि हरि गए बिदुर कैं, नामदेव-घर छायौ ।
सूरदास द्विज दीन सुदामा, तिहिं दारिद्र नसायौ ।।९।।

अर्थ—[हे प्रभु,] जैसे तुमने गज के पैर को [ग्राह्य से] छुडाया, [तथा उस अवसर पर] अपने भक्त को दु.खी जान कर पैदल ही दौड पड़े, [वैसे ही] जहाँ-जहाँ भक्तो पर विपत्ति पड़ी वहाँ-वहाँ आप प्रकट हुए। भक्ति के ही कारण [भगवान् ने] प्रह्लाद की रक्षा की तथा द्रौपदी का चीर बढाया। [अपने प्रति निश्छल] प्रेम को जान कर ही भगवान् विदुर के घर गये तथा उन्होने नामदेव का घर छाया। सूरदास कहते हैं सुदामा निर्धन ब्राह्मण था, उसका भी दारिद्र्य उन्होने विनष्ट किया ।।९।।

जापर दीनानाथ ढरै ।
सोइ कुलीन, बड़ौ सुँदर सोइ, जिहिं पर कृपा करै ।
कौन बिभीषन रंक-निसाचर, हरि हँसि छत्र धरै ।
राजा कौन बड़ौ रावन तैं, गर्बहिं-गर्ब गरै ।
रकव कौन सुदामाहूँ तैं, आप समान करै ।
अधम कौन है अजामील तैं, जम तहँ जात डरै ।
कौन बिरक्त अधिक नारद तैं, निसि-दिन भ्रमत फिरै ।
जोगी कौन बड़ौ संकर तैं, ताकौं काम छरै ।

अधिक कुरूप कौन कुबिजा तैं, हरि पति पाइ तरै ।
अधिक सुरूप कौन सीता तैं, जनम वियोग भरै ।
यह गति-मति जानै नहिं कोऊ, किहिँ रस रसिक ढरै ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, फिरि फिरि जठर जरै ।।१०।।

अर्थ—जिस पर दीनानाथ द्रवित होते हैं तथा कृपा करते हैं वही [वास्तव मे] अच्छे कुलवाला तथा बडे सुन्दररूप वाला है। विभीषण कौन [बडा सुन्दर तथा कुलीन] था, निर्धन राक्षस मात्र ही तो था, किन्तु भगवान् ने प्रसन्न होकर उसके सिर पर छत्र रखा (उसे सम्राट् बना दिया)। रावण से बडा राजा कौन था किन्तु वह गर्व ही गर्व मे गल गया। सुदामा से अधिक निर्धन कौन हो सकता है जिसे उन्होने अपने समान [ऐश्वर्य सम्पन्न] बना दिया। अजामिल से अधिक अधम कौन हो सकता है किन्तु [भगवान् की कृपा से] यमदूत उसके पास जाने से डरने लगे। नारद से अधिक विरक्त कौन हो सकता है किन्तु वे रात-दिन भ्रमण-शील रहते हैं। शंकर से बडा योगी कौन है किंतु उन्हे भी काम ने छला (वे कामासक्त हो गये) कुब्जा से अधिक कुरूपा कौन (हो सकती) है किन्तु वह भगवान् जैसे पति को प्राप्त करके तर गयी। सीता से अधिक रूपवती कौन है किन्तु उन्हे वियोग मे जीवन बिताना पडा। भगवान् की वह प्रवृत्ति तथा स्वभाव (गति-मति) कोई नही जानता कि किस रस में वे रसिक ढल जायेगे। (अर्थात् भक्त की किस विशेषता पर वे रीझ जाते है) सूरदास जी कहते है कि भगवान् के भजन के बिना बार-बार जठराग्नि [पेट की ज्वाला] मे जलना पड़ता है। (गर्भ-वास की सांसत मे पड़ना होता है, अर्थात् जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा नही मिलता) ।।१०।।

अविद्या माया

विनती सुनौ दीन की चित्त दै, कैसें तुव गुन गावै ?
माया नटी लकुटी कर लीन्हें, कोटिक नाच नचावै ।
दर-दर लोभ लागि लिए डोलति, नाना स्वाँग बनावै ।
तुम सौं कपट करावति प्रभु जू, मेरी बुधि भरमावै ।
मन अभिलाष-तरंगनि करि करि, मिथ्या निसा जगावै ।
सोवत सपने मैं ज्यौं संपति, त्यौं दिखाइ बौरावै ।
महा मोहिनी मोहि आतमा, अपमारगहि लगावै ।
ज्यौं दूती पर-बधू भोरि कै, ले पर-पुरुष दिखावै ।
मेरे तो तुम पति, तुमहीं गति, तुम समान को पावै ?
सूरदास प्रभु तुम्हरी कृपा बिनु, को मो दुख बिसरावै ।।११।।

अर्थ—हे प्रभु, आप [मुझ] दीन [भक्त] की विनय ध्यान से सुनें [कठिनाई यह है कि] मैं आपका गुणगान कैसे करूँ ? [क्योकि] नटी माया [लोभ रूपी] लकुटी हाथ मे लेकर मुझ [कपि] को करोडों प्रकार से नाच नचाती रहती है। मुझ लोभ-ग्रस्त को द्वार-द्वार फिराती है और [मुझ से] नाना प्रकार के तमाशे (स्वांग)

कराती है, हे प्रभु यह आपके साथ कपट [पूर्ण व्यवहार] करने के लिये प्रेरित करती है, तथा मेरी बुद्धि को भ्रमित कर देती है। मन मे अनेक [प्रकार की] अभिलाषा रूपी तरंगें उत्पन्न करके भ्रम रूपी रात्रि में जगाती है सोते समय स्वप्न मे प्राप्त सम्पत्ति की भाँति [अनेक प्रकार की सम्पत्तियों का] प्रलोभन देकर मुझे बावला (अर्थात् विवेकहीन) बना देती है। [मोह (अज्ञान) मे डालने की अत्यन्त प्रबल शक्ति वाली यह] महा मोहिनी [माया] [जीव रूपी] आत्मा को मोहित कर अनेक कुमार्गों की ओर (उसी प्रकार) प्रवृत्त करती है जिस प्रकार दूती दूसरे की वधू को भुलावा देकर पर पुरुष से मिलाती है। सूरदास कहते हैं कि हे प्रभु, आप ही मेरे पति हैं, आप ही मेरे प्राप्य (आत्म-निवेदन के पात्र हैं)। आपके समान मैं और किसे प्राप्त कर सकता हूँ? [जिसको निवेदन करूँ] आपकी कृपा के विना कौन मेरे इस दु ख को (संकट को) दूर कर सकता है? तात्पर्य यह है कि आप की कृपा से ही मैं उपर्युक्त माया-जनित सकट से मुक्त होकर आपके प्रति वास्तविक आत्म-समर्पण करके सच्चे भक्ति-भाव से आपका गुणगान करने का अधिकारी बन सकता हूँ ॥११॥

हरि, तेरौ भजन कियौ न जाइ।
कह करौं, तेरी प्रबल माया देति मन भरमाइ।
जवै आवौं, साधु-संगति कछुक मन ठहराइ।
ज्यौं गयंद अन्हाइ सरिता, बहुरि वहै सुभाइ।
वेष धरि धरि हरयौ पर-धन, साधु-साधु कहाइ।
जैसे नटवा लोभ-कारन करत स्वाँग बनाइ।
करौं जतन, न भजौं, तुमकौं, कछुक मन उपजाइ।
सूर प्रभु की सबल माया, देति मोहि भुलाइ ॥१२॥

अर्थ—हे भगवान्, तुम्हारा भजन किया ही नही जाता। क्या करूँ? तुम्हारी प्रबल माया मन को भ्रमित कर देती है। जब मैं सत्संग मे आता हूँ तो मन कुछ स्थिर होता है। किन्तु उसका फिर वही [चचलता वाला पहला] स्वभाव हो जाता है, जैसे गजेन्द्र नदी मे स्नान करता है [किन्तु फिर] अपने अंगों पर सूँड़ से धूल डालने का पुराना स्वभाव ग्रहण कर लेता है। साधु-सन्तो के वेश धारण कर-करके तथा सन्त कहला-कहला कर मैं दूसरों का धन [उसी प्रकार] लूटता रहा जिस प्रकार नट [केवल] धन-प्राप्ति के लिए (लोभ-कारन) सजकर [अनेक प्रकार के] स्वांग रचता है (अभिनय करता है)। मै [तुम्हारे भजन के लिए] तत्पर तो होता हूँ, किन्तु तुम्हारा भजन कर नही पाता, [वैसा करने की चेष्टा करते हुए] मन में [सांसारिक मोह के] कुछ और ही भाव उत्पन्न हो जाते है। सूरदास कहते है कि प्रभु की माया [बड़ी] वलवती है, मुझे भुलावे में डाल देती है ॥१२॥

गुरु महिमा

गुरु बिनु ऐसी कौन करै?
माला-तिलक मनोहर बाना, लै सिर छत्र धरै।

भवसागर तैं बूड़त राखै, दीपक हाथ धरै।
सूर स्याम गुरु ऐसौ समरथ, छिन मैं ले उधरै ।।१३।।

अर्थ—गुरु के विना ऐसी [कृपा] कौन कर सकता है ? [वे] माला और तिलक से युक्त मनोहर रूप धारण कर शिर पर छत्र धारण करते है। संसार-सागर मे डूबने से बचाने के लिए [वे] (ज्ञान रूपी) दीपक [शिष्य के] हाथ मे देते हैं। सूरदास कहते हैं कि हे श्रीकृष्ण, गुरु इतने समर्थ हैं कि एक क्षण मे ही सहारा देकर [इस संसार-सागर से] उबार लेते है ।।१३।।

नाम महिमा

हमारे निर्धन के धन राम।
चोर न लेत, घटत, नहि कबहूँ, आवत गाढ़ैं काम।
जल नहिं बूड़त, अगिनि न दाहत, है ऐसौ हरि नाम।
बैकुँठनाम सकल सुख-दाता, सूरदास-सुख-ग्राम ।।१४।।

अर्थ—निर्धनों के धन राम ही हमारे धन हैं। [यह धन ऐसा है कि] इसे चोर नही ले सकते, यह कभी घट नही सकता तथा कठिन परिस्थितियों में काम आता है। वह जल में नही डूबता, आग में नही जलता। भगवान् का नाम ऐसा [धन] है। वैकुण्ठधाम के स्वामी [विष्णु भगवान्] सब सुखो के देने वाले तथा सूरदास के सुखो के भण्डार हैं ।।१४।।

बड़ी है राम नाम की ओट।
सरन गऐं प्रभु काढ़ि देत नहिं करत कृपा कैं कोट।
बैठत सबै सभा हरि जू की, कौन बड़ौ को छोट ?
सूरदास पारस के परसैं मिटति लोह की खोट ।।१५।।

अर्थ—राम नाम की आड़ (शरण) बहुत बड़ी है। शरण मे जाने से भगवान् भगा नही देते वरन् [शरणागत की] कृपा रूपी गढ़ मे सुरक्षा करते है। भगवान् की सभा में सभी [समान रूप से] बैठते (आश्रय पाते) हैं [वहाँ के लिए] कौन बड़ा, कौन छोटा ? सूरदास कहते हैं कि पारस के स्पर्श से लोहे का दोष (कुधातुत्व) मिट जाता है, [वह सोना बन जाता है]; अर्थात् राम नाम में मन लगाने या भगवच्छरणागति से बडा-से-बड़ा पापी भी साधु या भक्त बन जाता है ।।१५।।

जो सुख होत गुपालहिं गाऐं।
सो सुख होत न जप-तप कीन्हैं, कोटिक तीरथ न्हाऐं।
दिऐं लेत नहिं चारि पदारथ, चरन-कमल चित लाऐं।
तीनि लोक तृन-सम करि लेखत, नँद-नँदन उर आऐं।
बंसीबट, वृन्दावन, जमुना, तजि बैकुँठ न जावै।
सूरदास हरि कौ सुमिरन करि, बहुरि न भव-जल आवै ।।१६।।

अर्थ—जैसा सुख गोपाल (श्रीकृष्ण) के गुण गाने से [प्राप्त] होता है, वैसा सुख जप, तपस्या तथा करोड़ों तीर्थों में स्नान करने से भी नही [प्राप्त] होता। भगवान् के कमलवत् चरणों में मन लग जाने पर चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) को कोई देने से भी नही लेता। नन्द-नन्दन श्रीकृष्ण के हृदय में निवास करने लगने पर भक्त तीनों लोकों [की अखण्ड सम्पत्ति] को तृणवत् समझने लगता है। वंशी-वट (वह बरगद का पेड़ जिसके नीचे श्री कृष्ण वंशी बजाते थे), वृन्दावन तथा यमुना को छोड़ कर वह विष्णु-लोक भी नही जाना चाहता। सूरदास कहते है कि भगवान् का स्मरण करते रहने पर फिर [इस] संसार सागर मे नही आना पड़ता (जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा मिल जाता है) ॥१६॥

बिनती

बंदौं चरन-सरोज तिहारे।
सुंदर स्याम कमल-दल-लोचन, ललित त्रिभंगी प्रान पियारे।
जे पद-पदुम सदा सिव के धन, सिंधु-सुता उर तैं नहिं टारे।
जे पद-पदुम तात-रिस-त्रासत, मन-बच-क्रम प्रहलाद सँभारे।
जे पद-पदुम-परस-जल-पावन, सुरसरि-दरस कटत अघ भारे।
जे पद-पदुम-परस-रिषि-पतिनी बलि, नृग, ब्याध, पतित बहु तारे।
जे पद-पदुम रमत बृन्दावन, अहि-सिर धरि, अगनित रिपु मारे।
जे पद-पदुम परसि ब्रज-भामिनि, सरबस दै, सुत-सदन बिसारे।
जे पद-पदुम रमत पांडव-दल, दूत भए, सब काज सँवारे।
सूरदास तेई पद-पंकज, त्रिविधि-ताप-दुख-हरन हमारे ॥१७॥

अर्थ—हे कमल के दलों के समान नेत्रों वाले श्याम सुन्दर [बंशी-वादन के समय] रमणीय त्रिभंगी (गरदन, कमर और दाहिने पांव मे तीन जगह बल वाली) मुद्रा वाले प्राण-प्यारे आपके कमलवत् चरणो की वन्दना करता हूँ। जो कमलवत् चरण शिव की शाश्वत सम्पत्ति है तथा जिन चरणों को लक्ष्मी जी अपने हृदय से नही हटाती जिन कमलवत् चरणो ने पिता के क्रोध से मन वचन कर्म से संत्रस्त प्रह्लाद की रक्षा की। जिन कमलवत् चरणो के स्पर्श से पवित्र जल वाली गङ्गा जी के दर्शन [मात्र] से बड़े-बड़े पाप कट जाते हैं। जिन कमलवत् चरणों के स्पर्श ने [गौतम] ऋषी की पत्नी (अहिल्या), बलि, नृग, व्याध आदि बहुत से पतितों को तार दिया। जिन कमलवत् चरणों से [भगवान् ने] वृन्दावन में विचरण किया और जिन चरणो को कालिय नाग के शिर पर रखकर असंख्य शत्रुओं का विनाश किया। जिन कमलवत् चरणों का स्पर्श कर व्रजांगनाओं ने [भगवान् को अपना] सर्वस्व देकर अपने परिजन तथा घर को भुला दिया, [तथा] जिन चरण कमलो से घूमते हुए [भगवान् ने] पाण्डवों के दूत बन कर [उनके] सभी कार्य सम्पन्न किये। सूरदास कहते हैं कि भगवान् के ऐसे जो चरण-कमल हैं वे हमारे त्रिविध (दैहिक, दैविक और भौतिक) तापो तथा दुखों का हरण करने वाले हैं ॥१७॥

अब कैं राखि लेहु भगवान ।
हौं अनाथ वैठ्यो द्रुम-डरिया, पारधि साधे वान !
ताकैं डर मैं भाज्यौ चाहत, ऊपर ढुक्यौ सचान।
दुहूँ भाँति दुख भयो आनि यह, कौन उबारै प्रान?
सुमिरत ही अहि डस्यौ पारधी, कर छूट्यौ संधान।
सूरदास सर लग्यों सचानहिं, जय जय कृपानिधान ॥१८॥

अर्थ—घोर संकट मे पड़ा हुआ पक्षी प्रार्थना करता है कि हे भगवान् इस वार (इस संकट से) वचा लीजिये। मैं अनाथ वृक्ष की शाखा पर वैठा हूँ, वधिक ने मेरे ऊपर वाण का सन्धान किया है। उसके भय से मै भागना चाहता हूँ [किन्तु] ऊपर वाज [मेरे लिए] ताक लगाए हुए है। दोनो ओर से यह [प्राणो का] संकट आ पड़ा है, कौन [इससे] प्राणो की रक्षा करे? [इस प्रकार भगवान् का] स्मरण करते ही व्याध को सांप ने डस लिया और [पक्षी को मारने के लिए चढ़ा वाण छूट गया] [और] सूरदास कहते हैं कि [वह] वाण वाज को जा लगा। ऐसे कृपालु [भगवान्] की जय हो, जय हो ॥१८॥

आछौ गात अकार गार्यौ ।
करी न प्रीति कमल-लोचन सौं, जनम जुवा ज्यौं हार्यौ ।
निसि-दिन विषय-विलासनि बिलसत, फूटि गईं तब चार्यौ।
अब लाग्यौ पछितान पाइ दुख, दीन, दई कौ मार्यौ।
कामी, कृपन, कुचील, कुदरसन, को न कृपा करि तार्यौ।
तातैं कहत दयाल देव-मनि, काहैं सूर विसार्यौ ॥१९॥

अर्थ—[मैंने यह] सुन्दर [मानव] शरीर व्यर्थ मे ही नष्ट कर दिया। कमल नेत्र [भगवान् श्रीकृष्ण] से प्रेम नही किया [तथा इस दुर्लभ मानव] जीवन को जुए [के दाँव] की भाँति हार गया (जीवन व्यर्थ मे ही समाप्त कर दिया) रात-दिन [सासारिक] विषय-सुखो की आसक्ति मे लीन रहा। उस समय [मेरी] चारो आँखे फूट गई थी (मेरी वाहरी दोनो आँखे तो फूटी है ही, विषयान्ध होने के कारण भीतरी-ज्ञान की-दोनों आँखे भी फूटी थी)। [परिणाम-स्वरूप] अव दीन-हीन बन कर भाग्य (दई) का मारा हुआ दुःखी होकर पश्चात्ताप करने लगा हूँ। कामासक्त कृपण मैले-कुचैले वस्त्रो वाले (गये-बीते) तथा अपवित्र दर्शन वाले [पापियो] मे भगवान् ने कृपा करके किसे नही (संसार सागर से) तारा? इसीलिये हे दयालु, देव-देव [भगवन्] आप से फरियाद करता हूँ कि [इस] सूर को क्यों भुला दिया? (मुझे भी कृपा करके तारिये) ॥१९॥

तुम विनु भूलोइ भूलौ डोलत ।
लालच लागि कोटि देवन के, फिरत कपाटनि खोलत ।
जव लगि सरबस दीजै उनकौं, तवहीं लगि यह प्रीति ।

फल माँगत फिरि जात मुकर ह्वै, यह देवन की रीति।
एकनि कौं जिय-बलि दै पूजे, पूजत नैंकु न तूठे।
तब पहिचानि-सबनि कौं छाँड़े नख-सिख लौं सब झूठे।
कंचन मनि तजि काँचहिँ सैंतत, या माया के लीन्हे।
चारि पदारथ हूँ को दाता, सु तौ विसर्जन कीन्है।
तुम कृतज्ञ, करुनामय, केसव, अखिल लोक के नायक।
सूरदास हम दृढ़ करि पकरे, अब ये चरन सहायक ।।२०।।

अर्थ—हे प्रभु, प्राणी जब तक आपकी शरण में नही आता [तुम बिनु] वह निरंतर भ्रम मे पड़ा हुआ [विभिन्न योनियों मे या इधर-उधर] भटकता रहता है, लोभ-वश करोडों देवताओ के दरवाजे खटखटाता फिरता है। जब तक उन्हें (देवताओ को) सर्वस्व देते रहे तभी तक उनका प्रेम रहता है किन्तु फल की याचना करने पर वे मुकर जाते हैं (देने को तैयार नही होते) यही देवताओं का नियम है (अर्थात् वे लेना जानते है, देना नही)। कुछ देवताओं की जीवों की बलि देकर पूजा की गई, किन्तु पूजा करने से वे बिल्कुल सन्तुष्ट नही हुए। इस प्रकार सभी देवों को पहचान कर मैंने छोड़ दिया [समझ लिया कि] वे नख से शिख तक झूठे है। इस माया के वश मे होकर मैं [भगवान् रूप] स्वर्ण तथा मणि का त्याग करके [देव-रूप] काँच को समेटता रहा, चारों पदार्थों (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) के दाता भगवान् का परित्याग कर दिया। हे केशव, आप कृतज्ञ (भक्तो का उपकार मानने वाले या मनसा, वाचा, कर्मणा की हुई बातो के जानने वाले) कृपालु तथा सम्पूर्ण लोक के स्वामी हैं। सूरदास कहते हैं कि हमने भगवान् के चरणों को दृढ़तापूर्वक पकड़ा है, अब ये ही मेरे सहारे (सहायक) हैं ।।२०।।

आजु हौं एक-एक करि टरिहौं।
कै तुमहीं, कै हमहीं माधौ, अपने भरोसैं लरिहौं।
हौं तो पतित सात पीढ़िनि कौ, पतितै ह्वै निस्तरिहौं।
अब हौं उघरि नच्यौ चाहत हौं, बिरद बिन करिहौं।
कत अपनी परतीति नसावत, मैं पायौ हरि हीरा।
सूर पतित तबहीं उठिहै प्रभु, जब हँसि दैहो बीरा ।।२१।।

अर्थ—[हे प्रभु] आज मैं यह निपटारा करके ही मानूंगा कि [हम दोनों मे] किसकी जीत होती है। मैं अपने [पातित्य के] भरोसे मुकाबिला करूंगा, [और] हे माधव या तो मैं ही [पतित] रह जाऊँगा, या तुम ही [पतित-पावन] रह जाओगे। मैं तो सात पीढ़ियों का (खानदानी) पतित हूँ [और] पतित रहकर ही [आप द्वारा भव-सागर से] उद्धार पाऊँगा (निस्तरि हौं) अब मैं निरावरण होकर (निर्लज्ज होकर) नाचना चाहता हूँ, [जिससे] तुम्हे विरुद्ध, अर्थात् पतित-पावनता की कीर्ति, से विहीन, कर दूंगा। हे हरि, [मेरा उद्धार न करके भक्त-समाज में व्याप्त] अपना विश्वास क्यों नष्ट कर रहे

हो ? मैंने तो [तुम्हारी पतित-पावनता मे वज्रवत् सुदृढ, न टूटने वाला, विश्वास रूपी] हीरा पा लिया है। हे प्रभु, यह पतित सूर तभी उठेगा जब आप हँसकर उसे बीडा देगे अर्थात् प्रसन्न होकर उसे अपनी सेवा मे ले लेगे ।।२१।।

प्रभु, हौं सब पतितनि कौ टीकौ ।
और पतित सब दिवस चारि के, हौं तौ जनमत ही कौ ।
बधिक अजामिल, गनिका, तारी और पूतना ही कौ।
मोहिं छाँड़ि तुम और उधारे, मिटै सूल क्यौं जी कौ ।
कोउ न समरथ अघ करिबे कौं, खैंचि कहत हौं लीकौ।
मरियत लाज सूर पतितनि मे, मौहूं तैं को नीकौ ।।२२।।

अर्थ—हे प्रभु मैं सब पापियो से बढकर हूँ। और सभी चार दिन (थोडे दिनो) के ही पापी है [किन्तु] मै तो जन्म भर का पापी हूँ। आपने बधिक अजामिल, गणिका को और पूतना को भी तारा। मुझे छोड कर आपने जो अन्य पापियो का उद्धार किया मेरे हृदय की यह कसक कैसे मिटे ? मैं लकीर खीच कर कह रहा हूँ कि [मेरे बराबर] पाप करने की सामर्थ्य किसी मे नही है। सूरदास कहते है कि मैं इस लज्जा के मारे मरा जा रहा हूँ कि क्या पापियो मे कोई मुझसे भी बढकर है (जो पातित्य के आधार पर मुझसे पहले तारे जाने का अधिकारी हो गया) ? ।।२२।।

अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल ।
काम-क्रोध कौ पहिरि चोलना, कठ विषय की माल।
महामोह के नूपुर बाजत, निंदा-सब्द-रसाल।
भ्रम-भोयौ मन भयौ पखावज, चलत असंगत चाल।
तृष्ना नाद करति घट भीतर, नाना विधि दै ताल।
माया को कटि फेटा बाँध्यौ, लोभ-तिलक दियौ भाल।
कोटिक कला काछि दिखराई, जल-थल सुधि नहिं काल।
सूरदास की सबै अविद्या, दूरि करौ नँदलाल ।।२३।।

अर्थ—हे गोपाल [माया के वश मे होकर] मैं बहुत नाच चुका। [नृत्य के साज के रूप मे] मैंने काम तथा क्रोध का जामा तथा कठ मे विषय वासनाओ की माला पहन रखी है। [मेरी इस गति से] महामोह के नूपुर बजते है, [जिससे] निन्दा का रसीला शब्द निकलता है (जो माया से भ्रमित होने के कारण आनन्दप्रद जान पडते है)। भ्रम रूपी भोयन (आटा जो पखावज पर ध्वनि मे ठनक उत्पन्न करने के लिए लगाया जाता है) से युक्त मन रूपी पखावज (मृदंग) से शरीर के अन्दर तृष्णा रूपी नाद उत्पन्न होता है, जिसके विविध प्रकार के तालो पर बेमेल (विसंगत) गति से नाचता रहा हूँ। मैंने कमर मे माया रूपी फेट बाँध लिया है तथा मस्तक पर लोभ का तिलक दे रखा है। [इस प्रकार माया के वशीभूत होकर] मैंने जल तथा स्थल मे स्मरणातीत काल से करोड़ो

[प्राणियों के] रूप धारण कर (बहुरूपिये के समान कितनी) कलाएँ दिखाई है। हे नन्दलाल, [इस कौशल-प्रदर्शन पर प्रसन्न होकर पुरस्कार स्वरूप] सूरदास की सारी अविद्या को दूर कर दीजिए अर्थात् उसे माया-मुक्त कर दीजिये ॥२३॥

हमारे प्रभु, औगुन चित न धरौ।
समदरसी है नाम तुम्हारौ, सोई पार करौ।
इक लोहा पूजा मैं राखत, इक घर बधिक परौ।
सो दुबिधा पारस नहिं जानत, कंचन करत खरौ।
एक नदिया इक नार कहावत, मैलौ नीर भरौ।
जब मिल गए तब एक बरन ह्वै, गङ्गा नाम परौ।
तन माया, ज्यौ ब्रह्म कहावत, सूर सु मिल बिगरौ।
कै इनकौ निरधार कीजियै, कै प्रन जात टरौ ॥२४॥

अर्थ—हे प्रभु, हमारे दोषो पर आप ध्यान न दे। आपका नाम समदर्शी है, इसलिए [अपनी इस विशेषता का ध्यान रखते हुए हमे भवसागर से] पार कर दीजिए। (जिस प्रकार) एक लोहा पूजा [गृह] मे रखा जाता है [तथा] दूसरा वधिक के घर मे पड़ा रहता है [जिससे वह पशु-वध करता है] किन्तु पारस उनमें भेद-भाव नही रखता, उन्हे शुद्ध सोना (समान रूप से) बना देता है। [अच्छे जल से भरी] एक नदी तथा मैले जल से भरा एक नाला दोनो मिल कर [गंगा जी मे] एकाकार [एकरग के] हो जाते है तो उनका नाम [अभिन्न रूप से] गगा पड़ जाता है। सूरदास कहते हैं कि शरीर माया तथा जीव ब्रह्म कहा जाता है, वह [उससे] मिल कर [उसके बाहरी दोष से] बिगड़ गया है। हे प्रभु, उपर्युक्त न्याय के अनुसार या इनका [शरीर और जीव का] न्याय कीजिए [और इन्हे शुद्ध कीजिए] या नही तो [आपका समदर्शिता तथा पतित पावनता का] प्रण टला जाता ॥२४॥

भगवदाश्रय

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसें उड़ि जहाज को पच्छी, फिर जहाज पर आवै।
कमल-नैन कौं छाँड़ि महातम, और देव कौं ध्यावै।
परम गंग कौं छाँड़ि पियासौ, दुरमति कूप खनावै।
जिहिं मधुकर अंबुज-रस चाख्यौ, क्यौं करील-फल भावै।
सूरदास-प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै ॥२५॥

अर्थ—मेरा मन (भगवान् को छोडकर) अन्यत्र कहाँ सुख प्राप्त करे? जैसे [बीच समुद्र मे फँसे हुए] जहाज पर से उडाया हुआ कौआ (अन्यत्र आश्रय न प्राप्त कर सकने के कारण) उड़कर पुन: उसी जहाज पर वापस आ जाता है वैसे ही कमल-नेत्र भगवान् श्रीकृष्ण का माहात्म्य छोड़कर अन्य देवताओं का ध्यान कौन करे?

परम पवित्र गंगा का परित्याग करके दुर्बुधि प्यासा ही (प्यास बुझाने के लिए) कुआँ खोदने जा सकता है। जिस भौरे ने कमल के मकरंद का स्वाद पा लिया है उसे करील के (कसैले) फल क्यो अच्छे लगेगे ? सूरदास कहते हैं कि प्रभु, कामधेनु का त्याग करके बकरी कौन दुहावेगा ? अर्थात् सुलभ तथा आनन्द-प्रद हरि-भक्ति को छोडकर कष्टकर तथा अवाछित अन्य देवों की भक्ति के चक्कर मे पडने से बढकर कोई मूर्खता नही हो सकती ॥२५॥

हमैं नँदनंदन मोल लिए।
जम के फंद काटि मुकराए, अभय अजाद किये।
भाल तिलक, स्रवननि तुलसीदल, मेटे अंक बिये।
मूँड़चौ मूँड़, कंठ बनमाला, मुद्रा-चक्र दिये।
सब कोउ कहत गुलाम स्याम कौ, सुनत सिरात हिये।
सूरदास कौं और बड़ौ सुख, जूठनि खाइ जिये ॥२६॥

अर्थ—हम नन्द पुत्र (नन्द को आनन्दित करने वाले) श्रीकृष्ण के क्रीत दास है। यम के बन्धनो को काटकर उन्होने मुझे निर्भय तथा स्वतन्त्र कर दिया है [जैसे कोई उदार हृदय धनी किसी दास-व्यवसायी लुटेरे से उसके बन्धन मे पडे हुए व्यक्ति को मोल लेकर अपने यहाँ सुखी रूप मे रखता है]। [उन्होने यमराज रूपी दास-व्यवसायी द्वारा अकित चिन्हो को मिटाकर मुझे अपने दास के चिन्ह के रूप मे] भाल पर तिलक, कानो पर तुलसी-दल, और कंठ मे वनमाल धारण कराया, [मेरा] सिर मुंडवा दिया [तथा भुजा आदि पर] चक्र की छाप अकित करवा दी। [मुझे] सब श्याम [सुन्दर] का दास कहने लगे [जिसे] सुनकर हृदय शीतल होने लगा। सूरदास को एक और बड़ा सुख यह प्राप्त हुआ कि [आपकी] जूठन खाकर जीने लगा ॥२६॥

राखौ पति गिरिवर गिरि-धारी।
अब तौ नाथ, रह्यौ कछु नाहिन, उघरत माथ अनाथ पुकारी।
बैठी सभा सकल भूपनि की, भीषम-द्रौन-करन व्रतधारी।
कहि न सकत कोउ बात बदन पर, इन पतितनि मो आपति बिचारी।
पांडु-कुमार पवन से डोलत, भीम गदा कर तैं महि डारी।
रही न पैज प्रबल पारथ की, जब तैं धरम-सुत धरनी हारी।
अब तौ नाथ न मेरौ कोई, बिनु श्रीनाथ-मुकुंद-मुरारी।
सूरदास अवसर के चूकैं फिरि पछितैहौ देखि उघारी ॥२७॥

अर्थ—(कौरव-सभा मे दुःशासन द्वारा निरावरण की जाती हुई द्रौपदी) अनाथ होकर पुकारने लगी है। गिरिधर (श्रीकृष्ण), मेरी लाज रख लीजिये। हे नाथ, अब और कोई सहारा नही रह गया है। सभी राजाओ की सभा बैठी है, जिसमे भीष्म, द्रोण कर्ण जैसे [न्याय के] व्रतधारी उपस्थित है [किन्तु इनमे] कोई [अन्यायी

दुर्योधन के] मुँह पर [उचित] बात नही कह पा रहा है। इन (दुर्योधनादि) पापियों ने मुझे निर्लज्ज करने का विचार कर लिया है। पाण्डु पुत्र (पांडव) हवा की तरह कांप रहे है, भीम ने [अपनी] गदा हाथ से छोड़कर पृथ्वी पर डाल दी है। जब से धर्म-पुत्र (युधिष्ठिर) (मुझ) पत्नी को [जुए मे] हार गये है, पराक्रमी पार्थ की संकल्प शक्ति भी नही रह गई। हे नाथ, अब [आप] लक्ष्मी पति मुकुन्द मुरारी के बिना मेरा कोई (सहायक) नही है—[आपके बिना मैं सर्वथा अनाथ (असहाय) हूँ, अर्थात् अब मुझे केवल आपका भरोसा है] सूरदास कहते हैं कि हे नाथ अवसर के निकल जाने पर, मुझे निर्वसना हुई देख लेने पर तो आप पछताते भर रह जायेगे ॥२७॥

भावी

करी गोपाल की सब होइ।
जो अपनी पुरुषारथ मानत, अति झूठौ है सोइ।
साधन, मंत्र, जंत्र, उद्यम, बल, ये सब डारौ धोइ।
जो कछु लिखि राखी नँदनंदन, मेटि सकै नहिँ कोइ।
दुख-सुख, लाभ-अलाभ समुझि तुम, कतहिँ मरतहौ रोइ।
सूरदास स्वामी करुनामय, स्याम-चरन मन पोइ ॥२८॥

अर्थ—गोपाल (श्रीकृष्ण) का ही किया हुआ सब कुछ होता है। जो अपना पुरुषार्थ मानता है (अपने पौरुष मे विश्वास करता है) वह बड़ा झूठा (मिथ्या गर्व वाला) है। युक्ति, मन्त्र, यन्त्र, परिश्रम तथा शक्ति इन सबको (जो भरोसा तुम्हारे मन मे है उसे,) धो डालो। जो कुछ भगवान् ने (भाग्य में) लिख रखा है उसे कोई नही मिटा सकता। दु.ख-सुख, लाभ हानि का विचार करके तुम क्यों रो-रो कर मर रहे हो ? सूरदास कहते हैं कि भगवान् कृपालु हैं, उन्ही श्याम के चरणो मे अपना मन पिरो दो, लगा दो ॥२८॥

होत सो जो रघुनाथ ठटै।
पचि-पचि रहैँ सिद्ध, साधक, मुनि, तऊ न बढ़ै-घटै।
जोगी जोग धरत मन अपनैँ सिर पर राखि जटै।
ध्यान धरत महादेवऽरु ब्रह्मा, तिनहूँ पै न छटै।
जती, सती, तापस आराधैँ, चारौँ बेद रटै।
सूरदास भगवन्त-भजन बिनु, करम-फाँस न कटै ॥२९॥

अर्थ—भगवान् जो कुछ निर्धारित करते है। वही होता है। अनेक सिद्ध साधक तथा मुनि प्रयास करते-करते थक जाते हैं, किन्तु कुछ भी [उसमें] घटा-बढ़ा नही पाते। योगी सिर पर जटा रखाकर मानसिक योग धारण करते है और शंकर तथा ब्रह्मा भी ध्यान मे लीन होते है किन्तु उनसे भी उसमे क्षीणता नही आती। सूरदास कहते है कि भगवद्भजन के बिना संन्यासियो, निष्ठावान् महात्माओ की आराधना तथा चारो वेदो के पाठ से भी कर्म-बन्धन नही कटता, शिथिल नही होता ॥२९॥

भावी काहूँ सौं न टरै ।
कहँ वह राहु, कहाँ वै रवि ससि, आनि संजोग परे ।
मुनि वसिष्ट पडित अति ज्ञानी, रचि-पचि लगन धरे।
तात-मरन, सिय हरन, राम वन-वपु धरि बिपति भरे।
रावन जीति कोटि तैंतीसौ, त्रिभुवन राज करै ।
मृत्युहिं बाँधि कूप मैं राखै, भावी-वस सो मरै ।
अरजुन के हरि हुते सारथी, सोऊ वन निकरै।
द्रुपद-सुता कौ राजसभा, दुस्सासन चीर हरै।
हरीचंद सो को जगदाता, सो घर नीच भरै।
जौ गृह छाँड़ि देस वहु धावै, तऊ वह सग फिरै।
भावी कैं वस तीन लोक हैं, सुर नर देह धरै।
सूरदास प्रभु रची सु ह्वै है, को करि सोच मरै।।३०।।

अर्थ—भावी किसी से नही टाली जा सकती । कहां वह राहु है तथा कहां वे सूर्य तथा चद्रमा (किन्तु सूर्य-ग्रहण तथा चद्र-ग्रहण के रूप मे) उनका संयोग आ ही पड़ता है । वशिष्ठ मुनि अत्यन्त ज्ञानी पडित थे और उन्होने खूब सोच समझ कर [राम जानकी के विवाह का] लग्न निर्धारित किया, किन्तु पिता (दशरथ) की मृत्यु हुई तथा सीता-हरण आदि के रूप मे राम को वन मे वनवासी वेश धारण करके कष्ट उठाना पडा । रावण तैंतीस करोड़ [देवताओ] को जीत कर तीनो लोको पर राज्य करता था । [और उसने] मृत्यु को बन्दी बना कर कुंए में [डाल] रखा था; किन्तु भावी-वश उसे [मनुष्य के हाथो] मरना पड़ा । भगवान् [स्वयं] अर्जुन के सारथि थे किन्तु (पांडवो को) वनवास करना पडा, और द्रौपदी का [उनकी पत्नी] दुश्शासन ने [भरी] राजसभा मे चीर-हरण किया । हरिश्चन्द्र के समान ससार में कौन दानी होगा किन्तु उन्हे भी नीच के घर भृत्य बनना पडा । यद्यपि मनुष्य घर छोड़कर अनेक देशो मे दौड़ता है [भ्रमण करता है] तथापि भावी उसके साथ-साथ ही जाती है । भावी के वश मे तीनो लोक [के प्राणी] हैं, चाहे देव-योनि-धारी हो या नर-योनि-धारी । सूरदास कहते हैं कि प्रभु ने जैसी व्यवस्था कर रखी है वैसा ही होगा [इसलिये भवितव्य के विषय मे] चिन्ता करके कौन मरे ? ।।३०।।

तातैं सेइयै श्री जदुराइ ।
सपति बिपति, बिपति तैं संपति, देह कौ यहै सुभाइ ।
तरुवर फूले, फरै, पतझरै, अपने कालहिं पाइ ।
सरवर नीर भरै, भरि उमड़ै, सूखै खेह उड़ाइ ।
दुतिया चद बढ़त ही बाढै, घटत-घटत घटि जाइ ।
सूरदास सपदा-आपदा, जिनि कोऊ पतिआई ।।३१।।

अर्थ—यदुराज श्रीकृष्ण ही इसलिए सेव्य हैं, क्योकि उत्कर्ष तथा सुख की स्थिति से अपकर्ष तथा दुःख की स्थिति को प्राप्त होना और अपकर्ष तथा दु:ख से उत्कर्ष तथा सुख की स्थिति को प्राप्त होते रहना शरीर धारियों का स्वभाव है। [जैसे हम देखते हैं कि] वृक्ष काल पाकर [समयानुसार] फूलता है, फलता है, (उसके) पत्ते झड़ते हैं। जलाशय पानी से भरता है, भर जाने पर उमड़ता है फिर सूख जाता है और उसमें धूल उड़ने लगती है। द्वितीया का चन्द्रमा बढते-बढ़ते पूर्ण चन्द्र बन जाता है और [फिर] घटते-घटते समाप्त हो जाता है। [इसलिए] सूरदास कहते हैं कि उन्नति, अवनति, सुख-दुःख पर किसी को विश्वास नही करना चाहिए, तात्पर्य यह है कि परिवर्तन-शील संसार की सभी स्थितियाँ अस्थायी, विनश्वर हैं; अविनश्वर स्थायी तत्व तो एकमात्र भगवान् हैं, अतएव उनकी प्राप्ति ही हमारा ध्येय होना चाहिए ॥३१॥

वैराग्य

किते दिन हरि-सुमिरन बिनु खोए।
पर-निंदा रसना के रस करि, केतिक जनम बिगोए।
तेल लगाइ कियौ रुचि-मर्दन, बस्तर मलि-मलि धोए।
तिलक बनाइ चले स्वामी ह्वै, विषयिनि के मुख जोए।
काल बली तैं सब जग कॉप्यौ, ब्रह्मादिक हूँ रोए।
सूर अधम की कहौ कौन गति, उदर भरे, परि सोए ॥३२॥

अर्थ—मैंने अनगिनत दिन भगवान् को स्मरण किये बिना खो दिये। दूसरों की निन्दा को ही जिह्वा का स्वाद मानकर कितने ही जन्मो को व्यर्थ में गँवा दिया। तेल लगाकर शौक से मालिश किया और वस्त्रो को रगड़-रगड़ कर धोया किया [किन्तु] मन को स्वच्छ (पवित्र) नही किया। तिलक लगाकर स्वामी की तरह चलता रहा तथा विषयी व्यक्तियों का मुखापेक्षी वना रहा। बलशाली काल [के भय] से तो सारा संसार काँपता है। [उसकी भयंकरता देखकर] ब्रह्मा आदि को रोना पड़ता है, तो फिर उसके आगे अधम सूर का क्या बस, जो पेट भरने पर पड़कर सो जाना भर जानता है ॥३२॥

नर तैं जनम पाइ कह कीनौ ?
उदर भरयौ कूकर लौं, प्रभु कौ नाम न लीनौ।
श्री भागवत सुनी नहिँ श्रवननि, गुरु गोबिंद नहिँ चीनौ।
भाव-भक्ति कछु हृदय न उपजी, मन विषया मैं दीनौ।
झूठौ सुख अपनौ करि जान्यो, परस प्रिया कैं भीनौ।
अघ कौ मेरु बढ़ाइ अधम तू, अत भयौ बलहीनौ।
लख चौरासी जोनि भरमि कै, फिर वाहीं मन दीनौ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, ज्यौं अंजलि-जल छीनौ ॥३३॥

अर्थ—मनुष्य का [सुन्दर] जन्म पाकर तुमने क्या किया ? श्वान और शूकर की भाँति उदरपूर्ति मे ही लगे रहे और [एक क्षण भी] प्रभु का नाम नही लिया। श्रीमद्भागवत [पुराण] की कथा कानो से नही सुनी तथा [मानव-जन्म के लक्ष्य की प्राप्ति कराने वाले] गुरु एवं ईश्वर की पहचान नही की। तुम्हारे हृदय मे भाव-भक्ति (ऐसी भक्ति जिसमे जीवन का स्वरूप बदल जाता है, और सगुण भक्त भगवान् के सेवक, सखा, स्नेही, माता-पिता या कांता के रूप मे ही आचरण करता है) नही उत्पन्न हुई, [और तुमने अपना] मन विषयो मे लगाया। तुमने झूठे सुखो को अपना समझा और प्रियतमा के आलिंगन मे मस्त रहे। हे पापी, तू अपने पापो को सुमेरु के समान बढाते हुए तुम अन्त मे [उनके सामने] बलहीन हो गये। चौरासी लाख योनियो में भ्रमते रहने [और उनके कष्ट भोगते रहने] पर भी तुमने इस भ्रमण मे पडे रहने मे ही अपना मन लगाया (उससे छुटकारे के लिए उद्योग-शील नही हुए)। सूरदास कहते हैं कि भगवद्भजन के बिना तुम्हारा जीवन अंजलि-गत जल के समान (प्रतिक्षण) घटता जा रहा है ॥३३॥

इत-उत देखत जनम गयौ।
या झूठी माया कैं कारन, दुहुँ दृग अंध भयौ।
जनम-कष्ट तैं मातु दुखित भई, अति दुख प्रान सह्यौ।
वै त्रिभुवनपति बिसरि गए तोहिँ, सुमिरत क्यों न रह्यौ।
श्रीभागवत सुन्यौ नहिँ कबहूँ, बीचहिँ भटकि मर्‌यौ।
सूरदास कहै, सब जग बूड़्यौ, जुग-जुग भक्त तर्‌यौ ॥३४॥

अर्थ—[सुख की आशा मे इधर-उधर ताकते-ताकते [मेरा] सारा जन्म [व्यर्थ मे ही] बीत चला। इस झूठी माया के कारण ही मैं दोनो नेत्रो का अन्धा हो गया। मेरे जन्म के कष्ट से माँ को दु खी होना पडा तथा प्राणों को अत्यन्त कष्ट सहना पडा। [हे मन, झूठी माया मे पडकर] तीनो लोको के स्वामी को तुमने भुला दिया, उनका स्मरण क्यो नही करते रहे ? तुमने (श्रीमद्भागवत) की कथा कभी नही सुनी तथा बीच मे (सांसारिक भुलावों मे) ही भटक कर मरते रहे। सूरदास कहते हैं कि सारा संसार (संसार का प्राणि-समूह) डूबता रहा है, केवल [भगवान् के] भक्त प्रत्येक युग मे तरते रहे हैं (इस संसार-सागर से पार होते रहे है) ॥३४॥

सबै दिन गए विषय के हेतु।
तीनौं पन ऐसौं ही खोए, केस भए सिर सेत।
आँखिनि अंध, स्रवन नहिँ सुनियत, थाके चरन समेत।
गगा-जल तजि पियत कूप-जल, हरि तजि पूजत प्रेत।
मन-वच-क्रम जौ भजे स्याम कौं, चारि पदारथ देत।
ऐसौ प्रभू छाँड़ि क्यों भटकै, अजहूँ चेति अचेत।
राम नाम बिनु क्यों छूटौगे, चद गहैं ज्यौं केत।
सूरदास कछु खरच न लागत, राम नाम मुख लेत ॥३५॥

अर्थ—[जीवन के] सारे दिन विषय वासनाओं के चक्कर में ही बीत गये। [बीती हुई] तीनों अवस्थाएं (बाल्य, कौमार तथा यौवन) मैंने व्यर्थ मे ही खो दी [और अब वार्द्धक्य आ गया] शिर के केश श्वेत हो गये। आंखों से अन्धा हो गया, कानो से सुनाई नही पडता, तथा चरणों सहित सभी अंग शिथिल हो गये। [माया द्वारा वशीभूत मन] गंगा का पवित्र जल छोड़कर कुएँ का पानी पीता है, भगवान् का परित्याग कर प्रेत-पूजा करता है। जो मन, वाणी और कर्म से श्याम का भजन करता है [उसे वे] चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) प्रदान करते हैं। ऐसे प्रभु का त्याग करके हे अचेत [मन] क्यो भटक रहे हो ? अब भी चेत जाओ। राम-नाम का स्मरण किये बिना तुम (आवागमन से) मुक्त नही हो सकते। (तुम उसी प्रकार काल के ग्रास हो) जैसे चन्द्रमा केतु-ग्रस्त होता है। सूरदास कहते हैं कि राम का नाम मुँह से लेने में कुछ खर्च भी तो नही लगता [फिर तुम राम नाम क्यों नही लेते ?] ॥३५॥

द्वै मैं एकौ तौ न भई।

ना हरि भज्यौ, न गृह सुख पायौ, बृथा विहाइ गई।
ठानी हुती और कछु मन मैं, औरै आनि ठई।
अविगत-गति कछु समुझि परत नहिँ, जौ कछु करत दई।
सुत सनेहि-तिय सकल कुटुँब मिलि, निसि-दिन होत खई।
पद-नख-चंद चकोर विमुख मन, खात अँगार मई।
विपय-विकार-दवानल उपजी मोह-बयारि लई।
भ्रमत-भ्रमत बहुतै दुख पायौ, अजहुँ न टेँव गई।
होत कहा अबकै पछिताएँ, बहुत बेर बितई।
सूरदास सेये न कृपानिधि, जो सुख सकल मई ॥३६॥

अर्थ—जीवन के दो लाभ कहे जाते है, एक सांसारिक दूसरा पारमार्थिक [इन] दोनो मे एक की भी तो प्राप्ति नही हुई [मैंने] न तो भगवान् का भजन किया और न गृहस्थाश्रम का ही सुख प्राप्त किया, सम्पूर्ण आयु व्यर्थ मे ही बीत गयी। मन मे निश्चय किया था कुछ और किन्तु हो कुछ और ही गया। जो कुछ होता है, उसे देव(विधाता) ही करता है। किन्तु [उस] अविनाशी का अविज्ञात विधान कुछ समझ में नही आता। पुत्र, प्रेम करने वाली पत्नी आदि सम्पूर्ण परिवार में लगकर (आसक्त होकर) रात-दिन क्षय को प्राप्त होता रहता हूँ। [भगवान् के] पद-नख रूपी चन्द्रमा से विमुख मन रूपी चकोर अंगार-मयी (अंगारो के समान दाह-मयी) विषय-वासना जनित पीड़ाएँ भोगता है (जैसे चन्द्रमा के अदर्शन पर चकोर अंगारे खाता है)। विषय-वासना और [मानसिक] विकारों की दावाग्नि उत्पन्न हुई जिसे मोह रूपी वायु ने और भी प्रज्वलित कर दिया। [उसके फलस्वरूप अनेक योनियो मे] भ्रमण करते-करते अनेक कष्ट सहे किन्तु आज भी वह पुराना ढर्रा, दूर नहीं हुआ। अब पश्चात्ताप करने से क्या लाभ (क्योकि) बहुत देर हो गयी। सूरदास कहते हैं कि [खेद है कि] कृपा-निधि

भगवान् मेरे द्वारा सेवित नही हुए (उनकी) सेवा (आराधना मुझसे न हो सकी), जो सभी सुखो से भरी हुई निधि है। विशेष—पद के अन्त में 'मई' (मयी) शब्द निधि के मेल मे स्त्रीलिंग में है ॥३६॥

अब मैं जानी, देह बुढ़ानी।
सीस, पाउँ, कर कह्यौ न मानत, तन की दशा सिरानी।
आन कहत, आनै कहि आवत, नैन-नाक वहै पानी।
मिटि गइ चमक-दमक अँग-अँग की, मति अरु दृष्टि हिरानी।
नाहिँ रहि कछु सुधि तन-मन की, भई जु बात बिरानी।
सूरदास अब होत विगूचनि, भजि लै सारँगपानी ॥३७॥

अर्थ—अब मैं जान गया कि शरीर वृद्ध हो गया। फिर, पैर, हाथ अब कहना नही मानते (न चाहने पर भी हिलते-कांपते रहते है) शरीर की (स्वाभाविक, स्वस्थ] दशा बीत गयी। कहते कुछ और हैं, मुख से शब्द कुछ और ही निकलते है। आंख और नाक से (अनावश्यक) पानी बहता रहता है। विभिन्न अगो की चमक तथा आभा समाप्त हो गयी। स्मरण-शक्ति तथा [नेत्रों की दृष्टि] खो गयी। शरीर तथा मन का कुछ भी ध्यान न रहा, सभी बाते बदल गईं। सूरदास कहते हैं कि अब दुर्दशा (छीछालेदर) होने लगी, इसलिए [ऐसी दशा मे जब सांसारिक जीवन मे रस नही रहा] भगवान् (सारंग-पानी) का भजन ही कर ले ॥३७॥

मन प्रबोध

सब तजि भजिऐ नन्द कुमार।
और भजे तैं काम सरै नहिँ, मिटै न सब जंभार।
जिहिँ जिहिँ जोनि जन्म धार्‌यो, बहु जोर्‌यो अघ कौ भार।
जिहिँ काटन कौं समरथ हरि कौं तीछन नाम-कुठार।
बेद, पुरान, भागवत, गीता, सब कौ यह मत सार।
भव समुद्र हरि-पद-नौका बिनु, कोउ न उतारै पार।
यह जिय जानि, इहीं छिन भजि, दिन बीते जात असार।
सूर पाइ यह समौ लाहु लहि, दुर्लभ फिरि संसार ॥३८॥

अर्थ—[हे मन,] सब कुछ छोड़कर नन्दकुमार का भजन करना चाहिए। अन्य किसी का भजन करने से कार्य सिद्ध नही होता और न इस सांसारिक (जन्म-मरण के) बखेडे से ही छुटकारा मिलता है। जिस-जिस योनि मे जन्म लिया वहाँ [तुमने] बहुत अधिक पाप का भार एकत्र किया। उसे काटने मे हरि नाम रूपी तीक्ष्ण कुल्हाडी ही समर्थ है, वेद, पुराण, श्रीमद्भागवत तथा गीता सभी ग्रन्थों के मतों का यही तत्व है कि इस संसार रूपी सागर से भगवान् के चरण रूपी नौका के अतिरिक्त कोई पार नही उतार सकता। ऐसा मन में समझ कर इसी क्षण (भगवान् का) भजन [आरम्भ] करो [नही तो] दिन व्यर्थ मे ही बीतते जा रहे है। सूरदास कहते है कि

[मनुष्य-जन्म का] यह सुअवसर जो संसार मे फिर दुष्प्राप्य है, प्राप्त करके इसकी (भगवद्-भजन-रूपी) सार्थकता (लाभ) प्राप्त कर लो ।।३८।।

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं ।
ता दिन तेरे तन-तरुवर कै, सबै पात झरि जैहैं ।
या देही कौ गरब न करिये, स्यार-काग-गिध खैहैं ।
तीननि में तन कृमि, कै बिष्टा कै ह्वै खाक उड़ैहैं ।
कहँ वह नीर, कहाँ वह सोभा, कहँ रँग-रूप दिखैहैं ।
जिन लोगनि सौं नेह करत है, तेई देखि घिनैहैं ।
घर के कहत सबारे काढ़ौ, भूत होइ घर खैहैं ।
जिन पुत्रनिहिं वहुत प्रतिपाल्यौ, देवी-देव मनैहैं ।
तेई लै खोपरी बाँस दे, सीस फोरि बिखरैहैं ।
अजहूँ मूढ़ करौ सतसंगति, सतानि मैं कछु पैहैं ।
नर-बपु धारि नाहिं जन हरि कौं, जम की मार सो खैहैं ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु बृथा सु जनम गँवैहैं ।।३९।।

अर्थ—हे मन, जिस दिन प्राण रूपी पक्षी उड़ जायेगा उस दिन तुम्हारे शरीर रूपी वृक्ष के सारे पत्ते झड़ जायेंगे (सम्पूर्ण कायिक सौन्दर्य समाप्त हो जायेगा) । इस शरीर पर गर्व मत करो; [प्राण छूटने पर] इसे स्यार, कौवे, गिद्ध आदि खायेंगे । शरीर का तीन मे से एक परिणाम होगा, या तो [गाडे जाने पर सडकर यह] कीड़ों में परिणत होगा, या [स्यार, गिद्ध आदि द्वारा खाया जाकर] मल बन जायेगा, या [जलाया जाकर] खाक बन कर उड़ जायेगा । शरीर की वह आभा, वह सौन्दर्य, वह रंग-रूप तब कहाँ दिखाई पडेगा ? जिन लोगों से तुम स्नेह करते हो वे ही देख कर घृणा करने लगेंगे । घर के लोग कहने लगेंगे कि शीघ्र ही [इसे बाहर] निकालो, नही तो भूत बन कर पकड़ कर खाने लगेगा । जिन पुत्रो का बड़ा प्रतिपालन किया और [उनकी कुशलता के लिए] अनेक देवी देवताओ की मनौती मानी, वे ही तुम्हारी खोपड़ी पर बाँसो से प्रहारकरके उसे तोड कर बिखरा देंगे । हे मूढ, अब भी सत्संगति करो, संतो में तुम्हेकुछ[अवश्य] प्राप्त होगा । मनुष्य का शरीर धारण करके जो भगवान् का भक्त (जन) नही होता उसे यमराज (काल) का दण्ड सहना पड़ेगा । सूरदास कहते हैं कि भगवान् के भजन के बिना मनुष्य का जन्म व्यर्थ ही नष्ट हो जायेगा ।।३९।।

तिहारौ कृष्न कहत कह जात ?
बिछुरै मिलन बहुरि कब ह्वैहै, ज्यौं तरवर के पात ।
सीत-वात-कफ कंठ बिरौधै, रसना टूटै बात ।
प्रान लए जम जात, मूढ़-मति देखत जननी-तात ।
छन इक माहिं कोटि जुग बीतत, नर की केतिक बात ।
यह जग-प्रीति सुवा-सेमर ज्यौं, चाखन ही उड़ि जात ।

जमकैं फंद पर्‌यौ नहिं जब लगि, चरननि किन लपटात ।
कहत सूर बिरथा यह देही, एतौ कत इतरात ॥४०॥

अर्थ—कृष्ण कहने मे तुम्हारा क्या जाता है ? [इस संसार में] बिछुड जाने पर वृक्ष के [टूटे हुए] पत्ते की भाँति फिर मिलन कब होगा ? शीत-वात तथा कफ (के प्रकोप) से कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है [और] जिह्वा से शब्द फूटने बन्द हो जाते हैं। हे मूर्ख [माता-पिता के] देखते-देखते यमराज प्राणो का हरण करके चल देते हैं। [विधाता के] एक ही क्षण मे [मर्त्यलोक के] करोडो युग बीत जाते है, मानव जीवन किस गिनती मे है ? यह सांसारिक प्रेम [आकर्षक लाल-लाल फूलो को देख कर] सुए द्वारा सेये गये सेमर के टेंढे के समान [अन्तःसार-शून्य] है, जो चखना आरम्भ करते (चोच मारते) ही [रूई के रूप मे] उड़ जाता है। इसलिए, जब तक यमराज के बन्धन मे नही पड़ते तब तक [भगवान् श्रीकृष्ण के] चरणो से क्यों नही लिपट जाते। सूरदास कहते है कि [भगवद्भक्ति के बिना] यह शरीर व्यर्थ है, इस पर इतना क्यो इतराते हो ? ॥४०॥

मन, तोसों किती कही समुझाइ ।
नँदनंदन के चरन कमल भजि तजि पाखँड-चतुराइ ।
सुख-सपति, दारा-सुत, हय गय, छूट सबै समुदाइ ।
छनभंगुर यह सबै स्याम बिनु, अंत नाहिँ सँग जाइ ।
जनमत-मरत बहुत जुग बीते, अजहुँ लाज न आइ ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, जैहै जनम गँवाइ ॥४१॥

अर्थ—हे मन, मैंने तुमसे कितना समझा कर कहा कि पाखण्ड और चतुराई (धूर्तता) छोडकर श्रीकृष्ण के चरण कमलो को भजो। सुख सम्पत्ति, स्त्री-पुत्र, घोड़ा-हाथी [आदि भोज्य पदार्थों] का सम्पूर्ण समूह यही छूट जाता है। यह सब क्षण-भगुर (नाशवान्) है, भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति के अतिरिक्त कुछ भी अन्त मे (मरने पर) साथ नही जाता। जन्म लेते और मरते अपरिमित समय बीत गया किन्तु तुम्हें आज भी लज्जा नही आती। सूरदास कहते हैं कि भगवान् के भजन के बिना यह जन्म व्यर्थ मे नष्ट हो जावेगा ॥४१॥

धोखैं ही धोखैं डहकायौ ।
समुझि न परी, विषय-रस गीध्यौ, हरि-हीरा घर माँझ गँवायौ ।
ज्यौं कुरंग जल देखि अवनि कौ, प्यास न गई चहूँ दिसि धायौ ।
जनम-जनम बहु करम किए हैं, तिनमैं आपुन आपु बँधायौ ।
ज्यौं सुक सेमर सेव आस लगि, निसि-बासर हठि चित्त लगायो ।
रीति पर्‌यौ जबै फल चाख्यौ, उड़ि गयौ तूल, ताँवरौ आयौ ।
ज्यौं कपि डोर बाँधि बाजीगर, कन-कन कौं चौहहैं नचायौ ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, काल-व्याल पै आप डसायौ ॥४२॥

अर्थ—[हे मन तुम,] धोखे में पडे-पडे ठगे गये। [इस ठगी को] तुम समझ नही पाये, विषय वासना के [क्षणिक] सुख मे फँसे रहे। भगवान् रूपी हीरा तुम्हारे घर मे ही वर्तमान है किन्तु तुम [उसे प्रत्यक्ष न करके] उससे वंचित रहे। जिस प्रकार मृग [सूखी] भूमि पर सूर्य किरणो की लहरों को (जिनमें जल का सर्वथा अभाव होता है) जल समझ कर चारों दिशाओ मे दौडता फिरता है किन्तु उसकी प्यास नही बुझती, उसी प्रकार जन्म-जन्मान्तर से [तुमने सुख के लिए] न जाने कितने कर्म किये हैं और उनके बन्धन मे अपने को स्वयं फँसा लिया है। जिस प्रकार शुक [लुभावने फूलो को देख कर बडे अच्छे फल पाने की] आशा से सेमल के पेड को रात-दिन मन लगा कर निष्ठापूर्वक सेता रहा किन्तु जब उसने उसके फल को चखा (उस पर चोंच मारी) तो उसमे से रूई उड़ने लगी और उसके मनोरथ झूठे पड गये और उसे चक्कर आने लगा। तथा जिस प्रकार बाजीगर बन्दर को डोरी मे बाँध कर दाने-दाने के लिए चौराहो पर नचाता है [उसी प्रकार] सूरदास कहते हैं कि [हे मन,] भगवान् के भजन के बिना [सुख की आशा मे पडकर] काल-रूपी सर्प से अपने को खुद डँसवाते रहे (जन्म-मृत्यु के चक्कर मे पड़े रहे)। विशेष—मान्यता है कि सर्पदंश से मृत व्यक्ति को मोक्ष प्राप्त नही होता ॥४२॥

भक्ति कब करिहौ, जनम सिरानौ।
बालापन खेलतहीँ खोयौ, तरुनाई गरबानौ।
बहुत प्रपंच किए माया के, तऊ न अधम अघानौ।
जतन जतन करि माया जोरी, लै गयौ रंक न रानौ।
सुत-वित-वनिता-प्रीति लगाई, झूठे भरम भुलानौ।
लोभ-मोह तैँ चेत्यौ नाहीँ, सुपनैँ ज्यौँ डहकानौ।
बिरध भएँ कफ कंठ बिरौध्यौ, सिर धुनि-धुनि पछितानौ।
सूरदास भगवंत-भजन-बिनु, जम कैँ हाथ बिकानौ ॥४३॥

अर्थ—[हे मन,] जीवन बीत चला, [अब] भक्ति कब करोगे? बचपन खेलने में ही खो दिया, युवावस्था मे गर्व से भर गये। हे अधम, माया के अनेक प्रपंच करने पर भी तुम्हारी तृप्ति नही हुई। अनेक उपायो से ऐश्वर्य जोड़ा, जिसे राजा से लेकर रंक तक कोई [अपने साथ] नही ले जा सका। पुत्र, धन, स्त्री आदि की आसक्ति मे पडे रहे और उनके सुख की झूठी आशा के भुलावे मे आ गये। लोभ-मोह [की अज्ञान-मयी रात्रि] मे [सोते हुए] तुम स्वप्न के से झूठ व्यवहारो में पड़कर ठगे गये, सावधान होकर जग न सके (लोभ-मोह की ठगी से मुक्त होकर अपने शुद्ध आनन्दमय चेतना स्वरूप को प्राप्त न कर सके) अब वृद्ध होने पर जब कफ ने कण्ठ अवरुद्ध कर दिया, सिर पीट-पीट कर पछताने लगे। सूरदास कहते हैं कि खेद है, भगवद्भजन के बिना तुम यम (काल) के हाथ बिक गये (जन्म-मरण के चक्कर मे पड़े रहे) ॥४३॥

तजौ मन, हरि बिमुखनि कौ संग।
जिनकैं संग कुमति उपजति है, परत भजन में भंग।
कहा होत पय पान कराऐं, विष नहिँ तजत भुजंग।
कागहिँ कहा कपूर चुगाऐं, स्वान न्हवाऐं गग।
खर कौं कहा अरगजा लेपन, मरकट भूषन अंग।
गज कौं कहा सरित अन्हवाऐं, बहुरि धरे वह ढंग।
पाहन पतित बान नहिँ बेधत, रीतौ करत निषंग।
सूरदास कारी कामरि पै, चढ़त न दूजो रंग।।४४।।

अर्थ—हे मन, असन्तो (दुष्टो) का साथ छोड़ दो। उनके साथ [रहने से] दुर्बुद्धि उत्पन्न होती है तथा भगवान् के भजन मे बाधा पड़ती है। [तुम्हारा यह सोचना कि उन्हे अपने भजन-भाव, सदुपदेश आदि द्वारा प्रभावित कर सकोगे। निष्फल है।] साँप को दूध पिलाने से क्या लाभ? इससे वह अपना विष नही छोड़ता। कौवे को कपूर चुगाने तथा कुत्ते को गंगा मे नहलाने से क्या [लाभ] होता है? (वे पुनः अभक्ष्य-भक्षण करते हैं)। गधे को सुगन्धित लेप करने तथा बन्दर के अंगो मे आभूषण पहनाने से क्या होता है? हाथी को नदी में नहलाने से क्या होता है, वह पुनः अपना वही (अपने शरीर पर धूल डालने का) ढग अपनाता है। पतित रूपी पत्थर सदुपदेश रूपी वाणों से विद्ध (प्रभावित) नही हो सकता उसे विद्ध करने की चेष्टा मे व्यर्थ ही तरकश खाली होता है (वाणो की बरबादी होती है)। सूरदास कहते है कि काले कम्बल पर दूसरा रङ्ग नही चढ़ता। [इसी प्रकार दुष्ट स्वभाव वाले मनुष्यो पर भी अच्छी बातो का प्रभाव नही पडता, अतः उनका परित्याग कर देना चाहिये] ।।४४।।

रे मन मूरख जनम गँवायौ।
करि अभियान विषय-रस गीध्यौ, स्याम-सरन नहिँ आयौ।
यह संसार सुवा-सेमर ज्यौं, सुन्दर देखि लुभायौ।
चाखन लाग्यौ रुई गई उड़ि, हाथ कछू नहिँ आयौ।
कहा होत अब के पछिताऐं, पहिलें पाप कमायौ।
कहत सूर भगवंत-भजन बिनु, सिर धुनि-धुनि पछतायौ।।४५।।

अर्थ—रे मूर्ख मन, तुमने व्यर्थ ही यह जन्म गँवा दिया। अहंकार करके विषय वासना में लीन हो गये और श्याम (श्रीकृष्ण) की शरण मे नही आये। यह [सार-शून्य] संसार सुए द्वारा सेवित सेमल के समान है, [जिसके] सुन्दर फूलों को देखकर वह लुब्ध (आकर्षित) हुआ। किन्तु वह जब उसके फल का आस्वादन करने लगा तो रुई उडने लगी, और कुछ भी उसके हाथ नही लगा। अब पश्चात्ताप करने से क्या लाभ है? अब तक तुम पाप ही कमाते रहे। सूरदास कहते है कि भगवान् के भजन के बिना अब सिर पीट-पीट कर [व्यर्थ] पश्चाताप करना ही रह गया।।४५।।

चित्-बुद्धि-संवाद

चकई री, चलि चरन-सरोवर, जहाँ न प्रेम वियोग ।
जहँ भ्रम-निसा होति नहिँ कबहूँ, सोइ सागर सुख जोग ।
जहाँ सनक-सिव हंस मीन मुनि, नख रवि-प्रभा प्रकास ।
प्रफुलित कमल, निमिष नहिँ ससि-डर, गुजत निगम सुवास ।
जिहिँ सर सुभग-मुक्ति-मुक्ताफल, सुकृत-अमृत-रस पीजै ।
सो सर छाँड़ि कुबुद्धि विहंगम, इहाँ कहा रहि कीजै ।
लक्षमी सहित होति नित क्रीड़ा, सोभित सूरजदास ।
अब न सुहात विषय-रस छीलर, वा समुद्र की आस ।।४६।।

अर्थ—हे बुद्धि रूपी चक्रवी, भगवान् के चरण रूपी सरोवर को चलो जहाँ प्रेम मे विदोग (का दुःख) नही सहना पड़ता । जहाँ पर मिथ्या ज्ञान [भ्रम] रूपी रात्रि कभी नही होती वही अपार जल-राशि (सागर) के सुख के [लिए] योग्य [स्थान] है, जहाँ सनकादि तथा शिव रूपी हंस, मुनि रूपी मीन [सदा विहार करते हैं] और भगवान् के नख रूपी सूर्य-बिंब का सदा प्रकाश रहता है (कभी रात नही होती, एक क्षण [के लिए भी तुम्हे विरह का सन्ताप देने वाली] चन्द्रमा-युक्त रात्रि का भय नही रहता, [सदा] कमल खिलते है, और उनकी सुगन्ध से मत्त निगम वेद रूपी भ्रमर गुन्जार करते हैं (वेद ध्वनि होती रहती है), जिस सरोवर मे सुन्दर मुक्ति रूपी मोती प्राप्त होता है, और [इस सरोवर तक जाने के श्रम के] पारितोपिक रूप अमृतरस का पान करो । हे दुर्बुद्धि रूपी पक्षी ऐसे सरोवर का परित्याग कर यहाँ रह कर क्या कर रहे हो ? सूरदास कहते है कि [उस सरोवर मे] भगवान् के दास शोभा पाते, और लक्ष्मी सहित भगवान् की नित्य लीला में मग्न रहते हैं । अब मुझे उस [अगाध अपार] जलाशय की आशा मे यह विषय वासनाओ वाली छिछली तलैया नही सुहाती ।।४६।।

सुवा, चलि तो वन कौ रस पीजै ।
जा बन राम-नाम अम्रित-रस, स्रवन पात्र भरि लीजै ।
को तेरौ पुत्र, पिता तू काकौ, घरनी, घर को तेरौ ?
काग सृगाल-स्वान कौ भोजन, तू कहै मेरौ मेरौ !
बन बारानसि मुक्ति क्षेत्र है, चलि तोकौ दिखराऊँ ।
सूरदास साधुनि की संगति, बड़े भाग्य जो पाऊँ ।।४७।।

अर्थ—हे शुक, चल कर उस [सत्संग रूपी] वन के रस का पान करो, जिस वन मे राम-नाम रूपी अमृतोपम रस प्राप्त होता है, उसे अपने कर्णरूपी पात्र मे भर लो । [इस नश्वर जगत मे] कौन तुम्हारा पुत्र है, तुम किसके पिता हो, कौन तुम्हारी गृहिणी है तथा कौन तुम्हारा घर है ? [ये सभी सम्बन्धी] कौवे, स्यार तथा कुत्ते के आहार हैं, [किन्तु] तुम कहते हो यह मेरा है, वह मेरा है । [यह सत्संग रूपी] वन

वाराणसी [के समान] मुक्ति दायी क्षेत्र है, चलो तुम्हें [इसे] दिखला दूँ। सूरदास कहते हैं कि सन्तों की संगति ही यह [मुक्ति दायी वन-वाराणसी है], इसे पा जाऊँ तो मेरे धन्य भाग्य ! ।।४७।।

हरिविमुख-निन्दा

अचंभौ इन लोगनि कौ आवै ।
छाँड़ि स्याम-नाम-अम्रित फल, माया-विष-फल भावै ।
निंदत मूढ़ मलय चंदन कौं, राख अंग लपटावै ।
मानसरोवर छाँड़ि हंस तट काग-सरोवर न्हावै ।
पग तर जरत न जानै मूरख, घर तजि घूर बुझावै ।
चौरासी लख जोनि स्वाँग धरि, भ्रमि-भ्रम जमहि हँसावै ।
मृगतृष्ना आचार-जगत जल, ता सँग मन ललचावै ।
कहतु जु सूरदास संतनि मिलि हरि जस काहे न गावै ।।४८।।

अर्थ—इन [असन्त (माया-ग्रस्त)] लोगो को देखकर आश्चर्य होता है। ये नाम रूपी अमरता प्रदान करने वाले फल का परित्याग करके माया रूपी विष फल को पसन्द करते हैं। ये मूर्ख (हरिविमुख) मलय चन्दन की निन्दा करते हैं और शरीर मे भस्म रमाते हैं। [इनका मन रूपी] हंस मानसरोवर के तट का परित्याग करके कौवो के तालाब में स्नान करता है। ये मूर्ख अपने पैरों के नीचे की जलन को नही जानते घर मे लगी हुई आग को छोड़कर घूरे की आग बुझाते हैं। [भाव यह है कि हृदयस्थ लोभ-मोहादि रूपी ताप को नही बुझाते वरन् वाह्य अगो को जो ताप के वास्तविक स्थल नही हैं स्नानादि द्वारा सीचते हैं] चौरासी लाख योनियों मे विभिन्न पशु-पक्षियो के रूप धारण कर भ्रमते हुए यमराज (काल) की हँसी के पात्र बनते हैं। सांसारिक वाह्याचार समष्टि मृग-तृष्णा के जल के समान [भ्रम-मय तथा धोखा देने वाली] है, किन्तु इसी से ये [मूर्ख हरि विमुख] अपने मन मे तृप्ति पाने का लोभ करते हैं। सूरदास कहते है कि वे सन्तो के साथ मिलकर भगवान् का यशोगान [न जाने] क्यो नही करते ।।४८।।

भजन विनु कूकर-सूकर जैसौ ।
जैसें घर विलाव के मूसा, रहत विषय-वस वैसौ ।
वन-वगुली अरु गीध-गीधिनी, आइ जनम लियो तैसौ ।
उनहूँ कें गृह, सुत, दारा हैं, उन्हैं भेद कहु कैसौ ।
जीव मारि के उदर भरत हैं, तिनकौ लेखौ ऐसौ ।
सूरदास भगवत-भजन विनु, मनौ ऊँट-वृष-भैंसौ ।।४९।।

अर्थ—[भगवान् के] भजन के विना मनुष्य कुत्ते और सूअर के समान [निकृष्ट और अपवित्र] है। जैसे चूहा विलाव वाले घर मे [खाद्य पदार्थों के लोभ मे पड़कर]

रहता है [और बिलाव का शिकार बनता है] वैसे ही [भजन-विहीन मनुष्य] विषयों के वशीभूत हो [काल का शिकार बन कर] रहता है। बगला-बगली, गृद्ध-गृद्धपत्नी [जैसे अपवित्र प्राणियो] की भाँति ही ऐसे स्त्री-पुरुषों ने [इस पृथ्वी पर] जन्म लिया है। [इनके समान] उनके भी तो घर, पुत्र और पत्नी हैं फिर बतलाइए, उनमे और इनमे क्या अन्तर है ? [जो लोग] जीव-हत्या करके अपना पेट भरते हैं, उनके विषय में इसी प्रकार की बात कही जा सकती है। सूरदास कहते हैं कि भगवान् के भजन के बिना मनुष्य ऊँट, बैल और भैंसे के समान [भार-वाही मात्र] है ॥४९॥

सत्संग-महिमा

जा दिन संत पाहुने आवत।
तीरथ कोटि सनान करैं फल जैसौ दरसन पावत।
नयौ नेह दिन-दिन प्रति उनकैं चरन-कमल चित-लावत।
मन-बच कर्म और नहिं जानत, सुमिरत औ सुमिरावत।
मिथ्याबाद-उपाधि-रहित ह्वैं, बिमल-बिमल जस गावत।
बंधन कर्म जे पहिले, सोऊ काटि बहावत।
संगति रहैं साधु की अनुदिन, भव-दुख दूरि नसावत।
सूरदास संगति करि तिनकी, जे हरि-सुरति कहावत ॥५०॥

अर्थ—जिस दिन [किसी सद्गृहस्थ के यहाँ] सन्त अतिथि [के रूप मे] आते हैं, उस दिन [उसे] करोड़ों तीर्थस्थानों जैसा फल [पुण्य] उनके दर्शन से प्राप्त हो जाता है। उनके चरणो में चित्त लगाने से [भगवान् के प्रति] नित-नूतन प्रेम उत्पन्न होता है। वे मन, वाणी तथा कर्म से और कुछ नही जानते, [भगवान् का] स्मरण [स्वय] करते हैं और [दूसरों से] कराते हैं। झूठे वाद-विवाद और झगड़ों से अलग रहकर वे भगवान् का पवित्रयश का गान करते हैं [जन्म-जन्मान्तर के] कर्मों का जो कठिन बन्धन पहले से चला आ रहा है उसे भी वे समाप्त कर देते है। नित्य प्रति सत्संगति में रहने से जन्म-मरण का कष्ट दूर हो जाता है [तथा समूल] विनष्ट हो जाता है। सूरदास कहते हैं कि उन्ही [सन्तों] का साथ करो जो भगवान् का स्मरण कराते हैं ॥५०॥

स्थितप्रज्ञ

हरि-रस तौंऽब जाइ कहुँ लहियै।
गऐं सोच आऐं नहिँ आनँद, ऐसौ मारग गहियै।
कोमल बचन, दीनता सब सौं, सदा अनँदित रहियै।
बाद बिवाद, हर्ष-आतुरता, इतौ द्वंद जिय सहियै।
ऐसी जो आवै या मन मैं, तौ सुख कहँ लौं कहियै।
अष्ट सिद्धि, नवनिधि, सूरज प्रभु, पहुँचै जो कछु चहियै ॥५१॥

अर्थ—अब तो (संसार तथा उसके सुखों का का मिथ्यात्व स्पष्ट हो जाने पर) कहीं जाकर भगवान् के भजन का आनन्द प्राप्त करना चाहिए। ऐसा मार्ग (जीवन-क्रम) ग्रहण करना चाहिए जिसमे [किसी वस्तु के नष्ट हो] जाने (हानि) पर चिन्ता न हो तथा (कोई वस्तु) आने (लाभ) पर आनन्द न हो, सभी के साथ मधुरवाणी तथा दैन्य भाव युक्त व्यवहार के साथ निरन्तर आनन्दपूर्ण जीवन हो [और] वाद-विवाद, हर्ष-व्याकुलता आदि द्वन्द्वो [के उद्वेगो) को मन मे सह लिया जाय। ऐसी भावना यदि मन मे घर कर ले तो उस सुख का वर्णन कहाँ तक शक्य है ? सूरदास कहते हैं कि [ऐसी स्थिति को पहुँच जाने पर] जो कुछ चाहिये—आठो सिद्धियाँ, नवो निधियाँ, आदि—सब कुछ प्राप्त हो जाता है ।।५१।।

जौ लौं मन-कामना न छूटै।
तौ कहा जोग-जज्ञ-व्रत कीन्हैं बिन कन तुस कौं कूटै।
कहा सनान कियैं तीरथ के, अंग भस्म जट जूटै।
कहा पुरान जु पढ़ैं अठारह, ऊर्ध्व धूम के घूटै।
जग शोभा की सफल बड़ाई इनतैं कछू न खूटै।
करनी और, कहैं कछु औरै, मन दसहूँ दिसि टूटै।
काम, क्रोध, मद, लोभ शत्रु हैं, जो इतननि सौं छूटै।
सूरदास तबहीं तम नासै ज्ञान-अगिनि-झर फूटै ।।५२।।

अर्थ—जब तक मनोकामनाएँ क्षीण नही पडती या दूर नहीं हो जाती तब तक योग साधन, यज्ञ तथा व्रत करने से क्या होता है ? [यह सब उसी प्रकार निरर्थक है जैसे] बिना दाने की भूसी का कूटना। [तब तक] तीर्थों मे स्नान करने, अंग मे भस्म रमाने तथा जटा जूट धारण करने से क्या लाभ ? पुराणो के अध्ययन तथा उल्टा लटकते हुए नीचे जलती आग का धुआँ पीने से क्या लाभ? इन सब से प्राप्त यश सांसारिक दिखावा संसार की समस्त शोभा मात्र है, [इनसे मनोकामनाओ मे] कुछ भी कमी नही आती। [इस प्रकार के जीवन मे] करणी और कथनी का भेद दूर नही होता और मन दसो दिशाओ मे दौड़ता हुआ [विषयो पर] झपटता रहता है। काम, क्रोध, मद और लोभ [बडे प्रबल] शत्रु हैं, मनुष्य जब इनसे छुटकारा पा लेता है तभी अज्ञानता का अन्धकार नष्ट होता है और ज्ञान रूपी अग्नि की ज्वाला प्रस्फुटित होती है ।।५२।।

आत्मज्ञान

अपुनपौ आपुन ही बिसरयौ।
जैसैं स्वान काँच-मंदिर मैं, भ्रमि-भ्रमि भूकि परयौ।
ज्यौं सौरभ मृग-नाभि बसत है, द्रुम तृन सूँघि फिरयौ।
ज्यौं सपने मैं रंक भूप भयौ, तसकर अरि पकरयौ।
ज्यौं केहरि प्रतिबिंब देखि कै, आपुन कूप परयौ।
जैसैं गज लखि फटिकसिला मैं, दसननि जाइ अरयौ।

मर्कट मूठि छाँड़ि नहीं दीनी, घर-घर-द्वार फिरचौ ।
सूरदास नलिनी को सुवटा, कहि कौनैं पकरचौ ।।५३।।

अर्थ—[हमारा आनन्दमय] आत्म-स्वरूप स्वयं हमारे द्वारा भुला दिया गया है जैसे शीश महल का कुत्ता शीशे मे [अपनी ही परछाइयाँ देख] भ्रमित हो होकर बार-बार भूक पड़ता है (भूकि पर्यौ) या भूँकता हुआ मरता है (भूमि पर्यौ), अर्थात् परेशान होता है । जैसे कस्तूरी (सौरभ) मृग की नाभि में रहती है किन्तु वह [बाहर] पौधों और घासो को सूंघता [हुआ उसे ढूंढता] फिरता है । जैसे स्वप्न मे राजा अपने को दरिद्र हुआ, अथवा डाकू या शत्रु द्वारा वन्दी बनाया गया मानता है । [और दुःखी होता है] । जैसे सिंह [कुएँ में] अपना प्रतिविम्ब देखकर [मूर्खता-वश उसमे] कूद पड़ा । जैसे हाथी बिल्लौर पत्थर (स्फटिक शिला) मे [अपना प्रतिबिम्ब देख] जाकर [उससे] दाँतो से भिड़ गया । [जैसे] वन्दर ने [सँकरे मुँह वाले बर्तन में चनों से भर कर लोभ-वश] अपनी मुट्ठी नही छोड़ी और [इस प्रकार फँसकर] घर-घर के दरवाजे पर फिरता रहा । सूरदास कहते हैं कि नलिका पर बैठे हुए शुक को भला किसने पकड़ रखा है । (अपने बैठने के भार से नलिका के झुक जाने से सिर नीचा पैर ऊपर हो जाने पर भ्रम वह शुक स्वयं को को आबद्ध समझकर बहेलिये के आने पर उड़ नही जाता, और पकड़ा जाता है) ।।५३।।

अपुनपौ आपुन ही मैं पायौ ।
सब्दहि सब्द भयौ उजियारी, सतगुरु भेद बतायौ ।
ज्यौं कुरंग-नाभी कस्तूरी, ढूँढ़त फिरत भुलायौ ।
फिरि चितयौ जब चेतन ह्वै करि, अपनैं ही तन छायौ ।
राज-कुमारि कंठ-मनि-भूषन भ्रम भयौ कहूँ गँवायौ ।
दियौ बताइ और सखियनि तब, तनु कौ ताप नसायौ ।
अपने माहिं नारि कौं भ्रम भयौ बालक कहूँ हिरायौ ।
जागि लख्यौ, ज्यौं कौ त्यौं ही है ना कहुँ गयौ न आयौ ।
सूरदास समुझे को यह गति, मनहीं मन मुसुकायौ ।
कहि न जाइ या सुख की महिमा, ज्यौं गूँगैं गुर खायौ ।।५४।।

अर्थ—[अपना विस्मृत] आत्म-स्वरूप अपने [शरीर के] भीतर ही [फिर] उपलब्ध हुआ । जब सद्गुरु ने मर्म वताया तो [उनके] शब्द (उपदेश नामोपदेश) से अनाहत नाद प्रकट हुआ, जो अन्तर्ज्योति (आत्म-प्रकाश) मे परिवर्तित हो गया । जैसे मृग की नाभि मे ही कस्तूरी होती है किन्तु वह [उसके बाहर होने के] भ्रम मे पड़कर [उसे चारों तरफ] ढूंढता फिरता है, किन्तु जब पुनः चेत कर विचार करता है तो [जान जाता है कि वह] अपने ही शरीर मे छिपी हुई (आच्छादित) है । राजकुमारी के कण्ठ में ही मणि-जटित आभूषण वर्तमान था किन्तु उसे भ्रम हुआ कि कही खो गया, परन्तु जब

उसे अन्य सहेलियों ने बताया तब उसके शरीर (मन) का कष्ट नष्ट हुआ। स्वप्न में किसी स्त्री को भ्रम हो गया कि बच्चा कहीं खो गया है, किन्तु उसने जगकर देखा कि वह [पार्श्व मे] ज्यों का त्यों ही वर्तमान है, न कहीं गया है न कहीं से आया है। सूरदास जी कहते हैं कि [आत्म स्वरूप के] ज्ञान की ऐसी ही दशा है कि उसमें ज्ञानी मन ही मन मुसकरा कर रह जाता है। इस सुख की महिमा वर्णनातीत है, जैसे गूंगे द्वारा गुड के स्वाद की अभिव्यक्ति अशक्य होती है ॥५४॥

———

गोकुल लीला

कृष्ण जन्म

आनंदै आनंद बढ़्यो अति।
देवनि दिवि दुंदभी बजाई, सुनि मथुरा प्रगटे जादवपति।
विद्याधर-किन्नर कलोल मन उपजावत मिलि कंठ अमित गति।
गावत गुन गंधर्व पुलकि तन नाचतिँ सब सुर-नारि रसिक अति।
बरषत सुमन सुदेस सूर सुर, जय-जयकार करत, मानत रति।
सिव-विरंचि-इन्द्रादि अमर मुनि, फूले सुख न समात मुदित मति ।।१।।

अर्थ—मथुरा मे यदुपति श्री कृष्ण का प्रकट होना सुनकर देवताओं ने स्वर्ग में दुन्दुभिनाद किया और (चारो ओर) अत्यधिक आनन्द ही आनन्द बढ गया। विद्याधर तथा किन्नर लोग विनोदपूर्ण मन से (कलोलमन) परस्पर मिलकर (समवेत रूप में) स्व-कठों मे (संगीत की) अमित गति (स्वर लहरियाँ) उत्पन्न करते हैं। गन्धर्व पुलकित होकर (भगवान् का) गुणगान करते हैं तथा अत्यधिक रसिक सभी देवांगनाये नृत्य कर रही हैं। सूरदास जी कहते हैं कि देवता पुष्पवृष्टि करते हैं, (भगवान् कृष्ण की) जय-जयकार करते है तथा (उनके प्रति) प्रेम-भाव प्रदर्शित करते हैं। शिव, ब्रह्मा तथा इन्द्र आदि देवता तथा ऋषि प्रसन्नमन होकर सुख से फूले नही समाते ।।१।।

देवकी मन मन चकित भई।
देखहु आइ पुत्र-मुख काहे न, ऐसी कहुँ देखी न दई।
सिर पर मुकुट, पीत उपरैना, भृगु-पद-उर भुज चारि धरे।
पूरब कथा सुनाइ कही हरि, तुम माँग्यौ इहिँ भेष करे।
छोरे निगड़, सोआए पहरू, द्वारे कौ कपाट उघर्‌यौ।
तुरत मोहिँ गोकुल पहुँचावहु, यह कहिके सिसु वेष धर्‌यौ।
तब बसुदेव उठे यह सुनतहिँ, हरषवंत नँद-भवन गए।
बालक धरि, लै सुरदेवी कौं, आइ सूर मधुपुरी ठए ।।२।।

अर्थ—देवकी मन ही मन चकित हो गयी। (उन्होने वसुदेव से कहा कि) आकर पुत्र का मुँह क्यों नही देखते, हे भगवान् ! ऐसा (विचित्र रूप) मैंने कही नही देखा। (इनके) शिर पर मुकुट (सुशोभित) है तथा इन्हो पीला उत्तरीय, हृदय पर भृगु के पद (चिह्न) तथा चार भुजाये धारण की है। भगवान् ने पूर्व कथा सुनाकर कहा कि "तुमने

मुझे इसी वेष में माँगा था। (मैंने तुम्हारे) वन्धनों (बेड़ियो) को तोड दिया। पहरेदारों को सुला दिया तथा (कारावास के) किवाड़ों को खोल दिया है। तुरन्त मुझे गोकुल पहुँचा दो" ऐसा कहकर भगवान् ने शिशु रूप धारण कर लिया। यह सुनते ही वासुदेव हर्षित होकर उठे और नन्द के घर गये। सूरदास कहते हैं कि बालक (श्री कृष्ण) को (वहाँ रखकर सुरदेवी (नन्द कन्या) को लेकर मथुरा आ गये ॥२॥

गोकुल प्रगट भए हरि आइ।
अमर-उधारन, असुर-सँहारन अंतरजामी त्रिभुवन राइ।
माथैं धरि बसुदेव जु ल्याए, नद-महर-घर गए पहुँचाइ।
जागी महरि, पुत्र-मुख देख्यौ, पुलकि अंग उर मैं न समाइ।
गदगद कठ, वोल नहिं आवै, हरषवंत ह्वै नंद वुलाइ।
आवहु कत, देव परसन भये, पुत्र भयौ, मुख देखौ धाइ।
दौरि नद गए, सुत-मुख देख्यौ, सो सुख मोपे बरनि न जाई।
सूरदास पहिलैं ही माँग्यौ, दूध पियावन जसुमति माइ ॥३॥

अर्थ भगवान् श्रीकृष्ण गोकुल मे आकर प्रकट हुये। देवताओ का उद्धार करने वाले, असुरो का संहार करने वाले, अतर्यामी तथा त्रिभुवन पति (श्री कृष्ण) को वसुदेव मस्तक (सिर) पर रखकर लाये और बाबा नन्द के घर पहुँचा दिया। महरि (नन्दरानी) जागी, पुत्र का मुँह देखा शरीर पुलकित हो उठा और प्रसन्नता उनके हृदय मे नही समाती थी। (प्रसन्नता से) कण्ठ गद्गद् हो गया था, (मुँह से) शब्द नही निकल रहे थे हर्षित होकर उन्होने नन्द को बुलाया। पतिदेव आइये, देवता प्रसन्न हुए, पुत्र हुआ, दौड़कर आइए और उसका मुँह देखिये। नन्द दौड़कर गये और पुत्र का मुँह देखा, उस सुख का वर्णन मुझसे वर्णित नही किया जाता। सूरदासजी कहते है कि (कृष्ण भगवान् को पुत्र के रूप मे) यशोदा ने पहले ही मांग लिया था, अब वे उन्हे दूध पिला रही हैं ॥३॥

हौं इक नई बात सुनि आई।
महरि जसोदा ढोटा जायौ, घर-घर होति बधाई।
द्वारैं भीर गोपि-गोपिनि की, महिमा बरनि न जाई।
अति आनन्द होत गोकुल मैं, रतन भूमि सब छाई।
नाचत वृद्ध, तरुन अरु बालक, गोरस-कीच मचाई।
सूरदास स्वामी सुख-सागर, सुन्दर स्याम कन्हाई ॥४॥

अर्थ – (हे सखि) मैं एक नई बात सुन आयी हूँ। माँ यशोदा ने पुत्र जन्म दिया है तथा हर घर मे बधाइयाँ हो रही हैं। द्वार पर उपस्थित ग्वालो और गोपियो की भीड़ की महिमा का वर्णन नही किया जा सकता। गोकुल मे अत्यधिक आनन्द उत्पन्न हो रहा है तथा भूमि अब रत्नो से ढँक गई है। वृद्ध, तरुण और बालक नृत्य कर रहे हैं तथा गोरस (दूध, दही आदि) से (गोकुल मे) कीचड़ उत्पन्न कर दी है।

सूरदास कहते हैं कि (सम्पूर्ण जगत के) स्वामी सुन्दर श्याम कृष्ण, सुख के सागर हैं ।।४।।

आजु नन्द के द्वारैं भीर ।
इक आवत, एक जात बिदा ह्वै, इक ठाढ़े मन्दिर कैं तीर ।
कोउ केसरि कौ तिलक बनावति, कोउ पहिरति कंचुकी सरीर ।
एकनि कौं गौ-दान समर्पत, एकनि कौं पहिरावत चीर ।
एकनि कौं भूपन पाटंवर, एकनि कौं जु देत नग हीर ।
एकनि कौं पुहुपनि की माला, एकनि कौं चन्दन घसि नीर ।
एकनि मथैं दूध-रोचना, एकनि कौं बोधति दै धीर ।
सूरदास धनि स्याम सनेही, धन्य जसोदा पुन्य-सरीर ।।५।।

अर्थ—आज नन्द के दरवाजे पर भीड़ लगी है । एक आता है, एक विदा होकर जाता है और एक मन्दिर के पास खडा रहता है । कोई केशर का तिलक रचाती है और कोई अपने अंगो पर कंचुकी (चोली) धारणा करती है । (माँ यशोदा) किसी को गोदान कर रही हैं किसी को साडी (वस्त्र) पहना रही हैं, किसी को अभूपण और रेशमी-वस्त्र तथा किसी को नग-हीरा आदि रत्न, दे रही है । किसी को पुष्पो की माला, किसी को जल मे घिस कर चदन लगा रही है । माता यशोदा किसी के मस्तक पर दूब और गोरोचन डालती हैं । और किसी को धैर्य देकर सम्बोधित कर रही है । सूरदास कहते है कि श्याम के स्नेही और पुण्यशरीर धारण करने वाली माँ यशोदा धन्य है ।।५।।

सोभा सिंधु न अन्त रही री ।
नंद-भवन भरि पूरि उमँगि चलि, ब्रज की बीथिनि फिरति वही री ।
देखी जाइ आजु गोकुल मैं, घर-घर बेंचति फिरति दही री ।
कहँ लगि कहौं बनाइ बहुत विधि, कहत न मुख सहसहुँ निबही री ।
जसुमति-उदर-अगाध-उदधि तैं उपजी ऐसी सबनि कही री ।
सूरश्याम प्रभु इंद्र-नीलमनि, ब्रज-बनिता उर लाइ गही री ।।६।।

अर्थ – एक गोपी दूसरी गोपी से कहती है कि हे सखि, श्रीकृष्ण के जन्मोत्सव से उत्पन्न शोभा के सागर का कोई अन्त नही रहा । नन्द के भवन को तृप्त करके उमंग मे आकर वह (शोभा) ब्रज की गलियो मे वह रही है । आज मैंने घर-घर जाकर दही बेचते समय (गोकुल मे इस अपूर्व शोभा) को देखा । मैं उसका (शोभा का) वर्णन किस प्रकार अनेक प्रकार से करूँ । हजारो मुखो से भी प्रशंसा करने पर उसका (उस शोभा के वर्णन का) निर्वाह नही किया जा सकता । ऐसा सभी ने कहा कि (वह शोभा) यशोदा के उदररूपी अगाध समुद्र से उत्पन्न हुयी है । सूरदास कहते है कि इन्द्रनीलमणि के समान भगवान् को ब्रजांगनाओ ने हृदय से लगा कर पकड़ रखा है ।।६।।

शैशव चरित्र

जसोदा हरि पालनै झुलावै ।
हलरावै, दुलराइ मल्हावै, जोइ-सोइ कछू गावै ।
मेरे लाल कौं आउ निदँरिया, काहैं न आनि सुवावै ।
तू काहैं नहिं वेगहिं आवै, तोकों कान्ह वुलावै ।
कवहुँक पलक हरि मूँदि लेत हैं, कवहुँ अधर फरकावै ।
सोवत जानि मौन ह्वै रहि, करि करि सैन वतावै ।
इहिं अन्तर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरैं गावै ।
जो सुख सूर अमर-मुनि दुरलभ, सो नँद भामिनि पावै ।।७।।

अर्थ—यशोदा भगवान् (कृष्ण) को पालने मे झुला रही हैं। वे उन्हे हिलाती हैं, दुलराती हुई मल्हारती हैं तथा जैसा-तैसा कुछ गाती हैं, यशोदा गाती हुई कहती हैं कि नीद मेरे लाल के पास आओ, क्यो नही (यहाँ) आकर (इन्हे) सुलाती है। तू जल्दी क्यो नही आती, तुझे कृष्ण वुला रहे हैं। कभी भगवान् (कृष्ण) पलके वन्द कर लेते है, कभी होठ फडफड़ाने लगते हैं। उन्हे सोता हुआ समझकर (माँ यशोदा) मौन होकर इशारे से वताती है। इसी वीच भगवान् व्याकुल हो उठे और यशोदा जी पुनः मधुर गीत गाने लगती है। सूरदास जी कहते हैं कि जो सुख देवताओं और मुनियो को भी दुर्लभ है उसे नन्द-पत्नी (यशोदा) प्राप्त कर रही है ।।७।।

कपट करि व्रजहिं पूतना आई ।
अति सुरूप, विप अस्तन लाए, राजा कंस पठाई ।
मुख चूमति अरु नैन निहारति, राखति कंठ लगाई ।
भाग वड़े तुम्हरे नन्दरानी, जिहिं के कुँवर कन्हाई ।
कर गहि छीर पियावति अपनी, जानत केसवराई ।
वाहर ह्वै कै असुर पुकारी, अव वलि लेहु छुड़ाई ।
गइ मुरछाइ, परी धरनी पर, मनौ भुवंगम खाई ।
सूरदास प्रभु तुम्हरी लीला, भक्तनि गाइ सुनाई ।।८।।

अर्थ—पूतना कपट रूप धारण करके व्रज मे आयी। राजा कंस द्वारा भेजी गयी वह वहुत रूपवती तथा विषाक्त स्तनों युक्त होकर आयी थी। वह भगवान् कृष्ण के मुख का चुम्वन लेती, उनके नेत्रों को देखती और उन्हें गले से लगा लेती। (कृष्ण के प्रति इस प्रकार झूठा प्रेम दिखाकर वह वोली नन्दरानी तुम्हारे भाग्य प्रवल है—जिसके कृष्ण जैसा कुमार है। वह उन्हे अपने हाथ मे लेकर अपना दूध पिलाने लगी। श्रीकृष्ण सव कुछ जानते थे)। वाहर होकर राक्षसी ने पुकारा कि हे वलि (दैत्यराज) अव मुझे छुडा लो। अथवा (हे कृष्ण मैं तुम्हारी वलिहारी हूँ मुझे छोड़ दो) वह मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पडी मानो उसे सांप ने काट लिया हो। सूरदास जी कहते हैं हे भगवान् आपकी लीला को भक्तो ने गाकर सुनाया ।।८।।

काग-रूप इक दनुज धर्‌यौ।
नृप-आयसु लै धरि माथे पर, हरषवंत उर गरब भर्‌यौ।
कितिक बात प्रभु तुम आयसु तेँ, वह जानौ मो जात मर्‌यौ।
इतनी कहि गोकुल उड़ आयौ, आइ नन्द-घर-छाज रह्यौ।
पलना पर पौढे हरि देखे, तुरत आइ नैननिहिँ अर्‌यौ।
कंठ चाँपि बहु वार फिरायो, गहि फटक्यो, नृप पास पर्‌यौ।
तुरत कंस पूछन तिहिँ लाग्यौ, क्यों आयौ नहिँ काज कर्‌यौ।
वातैँ जाम वोलि तव आयौ, सुनहु कंस, तव आइ सर्‌यौ।
धरि अवतार महाबल कोऊ, एकहिं कर मेरौ गर्व हर्‌यौ।
सूरदास प्रभु कंस-निकदन, भक्त—हेत अवतार धर्‌यौ॥९॥

अर्थ—एक दैत्य ने कौवे का रूप धारण किया। राजा कस की आज्ञा शिरोधार्य कर, गर्वयुक्त तथा हर्षित होकर वह कस से बोला—यह कौन-सी (बड़ी) बात है। आपकी आज्ञा से मेरे वहाँ जाते ही आप उसे (कृष्ण को) मरा हुआ ही समझे। इतना कहकर वह गोकुल मे उड आया और आकर नन्द के घर पर बैठ गया। पालने पर श्री कृष्ण को लेटा हुआ देखकर तुरन्त आकर वह उनकी आँखो पर अड़ गया। (कृष्ण ने उसका) गला पकड कर कई वार घुमाया और पकड़ कर पटक दिया तथा वह राजा कस के पास जा गिरा। कंस तुरन्त उससे पूछने लगा, 'क्यों चले आये क्या कार्य नही किया !' पहर भर बीतने पर वह बोल पाया 'कंस सुनो, (तुम्हारी) आयु पूरी हो गयी। किसी महाबली ने अवतार ले कर एक ही हाथ से मेरे गर्व का हरण कर लिया। सूरदास जी कहते है कंस को समाप्त करने वाले भगवान् ने भक्तो (की रक्षा) के लिए अवतार धारण किया॥९॥

कर पग गहि, अगुठा मुख मेलत।
प्रभु पौढे पालनैँ अकेले, हरषि-हरषि अपनैँ रङ्ग खेलत।
सिव सोचत, विधि वुद्धि विचारत, वट वाढ्यौ सागर-जल झेलत।
बिडरि चले घन प्रलय जानि कै, दिगपति दिग दतीनि सकेलत।
मुनि मन भीत भए, भुव कंपित सेष सकुचि सहसौ फन पेलत।
उन व्रज-वासिनि बात न जानी, समुझे सूर सकट पग ठेलत॥१०॥

अर्थ—(भगवान् श्री कृष्ण) हाथ से पकड कर पैर का अँगूठा मुख मे डालते है। भगवान् पलने मे अकेले लेटे हुये हर्षित होकर अपनी ही धुन मे खेलते है। (उनकी इस शोभा को देख कर) शिव जी कहते है तथा ब्रह्मा बुद्धिपूर्वक विचार करने लगे। (प्रलय काल सन्निकट होने के कारण) वट वृक्ष बडा हो गया। (वढते हुए) सागर के जल (मे डूवने के कष्ट) को झेल रहा है। (यह परिस्थिति देखकर) वादल प्रलय काल (सन्निकट) जानकर तितर-बितर होने लगे और दिग्पाल दिग्गजों को इकट्ठा करने लगे ! मुनि लोग मन मे भयभीत हुये, धरती कांप उठी और शेषनाग संकुचित होकर

अपने सहस्र फनो को (पृथ्वी का भार सहने के लिए) लगा देते हैं। सूरदास कहते हैं कि (इतना होने पर भी) वे व्रजनिवासी बात नही समझ सके। उन्होंने मात्र यही जाना कि भगवान् पैर से छकडा ठेल रहे हैं ॥१०॥

महरि मुदित उलटाइ कै मुख चूमन लागी।
चिरजीवौ मेरौ लाडिलौ, मैं भई सभागी।
एक पाख त्रय-मास कौ मेरौ भयौ कन्हाई।
पटकि रान उलटौ पर्‌यौ, मैं करैं वधाई।
नन्द-घरनि आनन्द भरी, वोलीं व्रजनारी।
यह-सुख सुनि आईं सबै, सूरज वलिहारी ॥११॥

अर्थ—यशोदा (महरि) प्रसन्न होकर (कृष्ण को ऊपर) उलट कर उनका मुख चूमने लगी (और कहा कि) मेरे प्रिय तुम चिरंजीव हो मैं भाग्यवती हुई। मेरे कृष्ण साढे तीन मास के हुये। ये अब जांघ पटक कर उलट पडते है। मैं बधाई देती हूँ। नन्द की पत्नी (यशोदा) ने आनन्दित होकर यह बात व्रजांगनाओ से भी बता दी यह सुखमय समाचार सुनकर सभी (उन्हे देखने) आयी। सूरदास (भी उनकी इस शोभा पर) बलिहारी हैं ॥११॥

जसुमति मन अभिलाप करै।
कब मेरौ लाल घुटुरुवनि रेंगै, कव धरनी पग द्वैक धरै।
कव द्वै दाँत दूध के देखौं, कब तोतरैं मुख वचन झरै।
कब नदहि वावा कहि बोलै, कव जननी कहि मोहिं ररै।
कब मेरौ अँचरा गहि मोहन, जोइ-सोइ कहि मोसौं झगरै।
कब धौं तनक-तनक कछु खैहै, अपने कर सौं मुखहिं भरै।
कव हँसि बात कहैगो मोसौं, जा छबि तैं दुख दूरि हरै।
स्याम अकेले आँगन छाँड़े, आपु गई कछु काज घरै।
इहिं अतर अँधवाह उठ्यो इक, गरजत गगन सहित घहरै।
सूरदास-व्रज-लोग सुनत धुनि, जो जहँ-तहँ सव अतिहिं डरै ॥१२॥

अर्थ—यशोदा जी अपने मन मे (अनेक) अभिलाषाये करती हैं। कब मेरे लाल घुटनो के बल चलेगे, कब पृथ्वी पर दो-एक कदम रखेगे। कब (मैं) दूध के दो दांत देखूंगी, कब इनके मुख से तोतले स्वर निकलेगे। कब नन्द को बाबा कह कर पुकारेगे, कब माँ कहकर मुझे बार-बार रटेगे। मोहन कब मेरा आंचल पकड़ कर इधर-उधर कुछ कह कर मुझसे हठ करेगे। कब तक [ये थोड़ा-थोडा कुछ खाने लगेगे और अपने हाथ से (अपना) मुख भरेगे] अपने आप खाने लगेगे। कब कृष्ण हँस कर मुझसे बात करेगे जिसकी शोभा से मेरे दु.ख दूर हो जायेगे। श्याम को अकेले आँगन मे छोड कर कुछ कार्यवश वे घर मे गयी। इसी बीच एक अन्धड़ गर्जन करता हुआ तथा

आकाश सहित घहराता हुआ उठा । सूरदास कहते है कि ब्रज के लोग उस ध्वनि को सुनकर यथास्थिति अत्यन्त भयभीत हुये ॥१२॥

सुत मुख देखि जसोदा फूली ।
हरषति देखि दूधि की दँतियाँ, प्रेममगन तन की सुधि भूली ।
वाहिर तैं तव नंद वुलाए, देखौ धौं सुन्दर सुखदाई ।
तनक-तनक सी दूध दँतुलिया, देखौ, नैन सफल करौ आई ।
आनँद सहित महर तव आए, मुख चितवत दोउ नैन अघाई ।
सूर स्याम किलकत द्विज देख्यौ, मनौ कमल पर बिज्जु जमाई ॥१३॥

अर्थ—पुत्र के मुँह को देखकर यशोदा (हर्ष से) प्रफुल्लित हो उठी । कृष्ण के दूध के दांत देखकर, हर्षित हो (श्री कृष्ण के) प्रेम मे निमग्न होकर शरीर की सुध-बुध भूल गयी । उन्होने तब बाहर से नन्द को बुलाया और कहा कि सुन्दर सुखदायक (श्री कृष्ण) को देखो । छोटे-छोटे से दूध के दांतो को देखिये और अपने नेत्रो को सफल कीजिये । तब प्रसन्न होकर नन्द आये तथा (पुत्र के) मुख को देखकर उनके नेत्र तृप्त हो गए । सूरदास कहते है कि यदुराज नन्द ने किलकारी मारते हुए कृष्ण को देखा तो ऐसा लगा कि जैसे कमल पर विजली उग आयी हो ॥१३॥

हरि किलकत जसुमति की कनियाँ ।
मुख मैं तीनि लोक दिखराए, चकित भई नँद-रनियाँ ।
घर-घर हाथ दिखावति डोलति, वाँधति गरैं बघनियाँ ।
सूर स्याम की अद्‌भुत लीला नहिँ जानत मुनिजनियाँ ॥१४॥

अर्थ—भगवान् कृष्ण यशोदा की गोद में किलक रहे हैं । उन्होने (अपने मुँह) में तीनों लोको को दिखाया जिससे नन्दरानी (अत्यन्त) चकित हो गईं । वे घर-घर जा कर हाथ दिखाती डोलती है और गले मे (कृष्ण के) (बघनख तावीज) बाँधती है । सूरदास कहते हैं कि श्याम की अद्‌भुत लीला का ज्ञान मुनिजनों को भी नही है ॥१४॥

कान्ह कुँवर की करहु पासनी, कछु दिन घटि षट मास गए ।
नंद महर यह सुनि पुलकित जिय, हरि अनप्रासन जोग भए ।
विप्र वुलाई नाम लै वूझ्यौ, रासि सोधि एक सुदिन धरयौ ।
आछौ दिन सुनि महरि जसोदा, सखिनि वोलि सुभ गान करयौ ।
जुवति महरि कौं गारी गावति, और महर कौ नाम लिए ।
ब्रज-घर-घर आनंद वढ्‌यौ अति, प्रेम पुलक न समात हिए ।
जाकौं नेति-नेति स्रुति गावत, ध्यावत सुर मुनि ध्यान धरे ।
सूरदास तिहिँ कौं ब्रज-वनिता, झकझोरतिँ उर अंक भरे ॥१५॥

अर्थ—(यशोदा ने नन्द से कहा) कुमार कृष्ण का अन्नप्राशन संस्कार कीजिये क्योकि छः मास बीतने मे कुछ ही दिन शेष हैं। यह सुनकर कि कृष्ण अन्नप्राशन के योग्य हो गये, बाबा नन्द अपने मन मे बहुत प्रसन्न हुये। उन्होने ब्राह्मण को बुलाकर कृष्ण का नाम और राशि शोध करके शुभ दिन का निश्चय किया। इस शुभ दिन को सुनकर माँ यशोदा ने सखियो को बुलाकर सुन्दर गान सुनाया। युवतियाँ बाबा नन्द और यशोदा का नाम ले कर गाली (गीत) गा रही हैं। व्रज के प्रत्येक घर मे आनन्द की अत्यन्त वृद्धि हुई। प्रेम से उत्पन्न प्रसन्नता हृदय मे नही समाती। [सूरदास कहते है कि] श्रुतियाँ जिसका गुणगान 'नेति-नेति' कहकर गाती है, देव और ऋषि जिसका ध्यान धारण करते हैं उसी (ब्रह्म) को व्रज वनिताये गोद में लेकर हृदय से लगाकर झकझोर रही हैं ॥१५॥

लाल हौं बारी तेरे मुख पर।

कुटिल अलक, मोहनि-मन बिहँसनि भृकुटी बिकट ललित नैननि पर।
दमकति दूध-दँतुलिया बिहँसत, मनु सीपज घर कियौ बारिज पर।
लघु-लघु लट सिर घुघरवारी, लटकन लटकि रह्यो माथैं पर।
यह उपमा कापै कहि आवै, कछुक कहौं सकुचति हौं जिय पर।
नव-तन-चंद्र रेख-मधि राजत, सुरगुरु-सुक्र-उदोत परसपर।
लोचन लोल कपोल ललित अति, नासा कौ मुकता रदछद पर।
सूर कहा न्यौछावर करिये अपने लाल ललित लरखर पर ॥१६॥

अर्थ—हे लाल मैं तुम्हारे मुख (की शोभा) पर निछावर हूँ। घुंघराली लटे, नेत्रो पर टेढी भौंहे और मुस्कान मन को मोहित करने वाली हैं। हँसते समय दूध के दाँत इस प्रकार चमकते है मानो कमल पर मोती ने स्थान बना लिया हो। सिर पर की छोटी-छोटी घुंघराली लटे माथे पर लटक रही है। इस उपमा को कौन कह सकता है। कुछ कहने पर कवि के मन मे संकोच होता है। (ऐसा प्रतीत होता है जैसे) द्वितीया के चन्द्रमा की रेखा के बीच बृहस्पति और शुक्र की पारस्परिक आभा का प्रकाश (सुशोभित) हो। (कृष्ण के) नेत्र चंचल है, कपोल सुन्दर हैं तथा नाक का मोती होठो पर (झलक रहा) है। सूरदास कहते हैं कि अपने लाल (कृष्ण) की लड़-खडाहट (डगमगा कर गिरने की क्रिया) पर क्या न्यौछावर करूँ ॥१६॥

उमगीं व्रजनारि सुभग, कान्ह बरष गाँठि उमंग, चहतिँ बरष बरषनि।
गावहिँ मगल सुगान, नीके सुर नीके तान, आनँद अति हरषनि।
कंचन मनि-जटित-थार, रोचन, दधि, फूल-डार, मिलिबे की तरसनि।
प्रभु बरष-गाँठि जोरति, वा छवि पर तृन तोरति, सूर अरस परसनि ॥१७॥

अर्थ कृष्ण की वर्ष गाँठ पर सौभाग्य वाली व्रज की गोपियाँ उल्लसित होकर अपने उल्लास की वरषा करना चाहती है। वे मगलमय सुन्दर गीत अत्यन्त आनंदित होकर सुरीले स्वरो मे गा रही है। वे (गोपियाँ) सोने के मणि जटित थाल मे दधि,

रोली, फूल रख कर कृष्ण से मिलने (कृष्ण को तिलक करने) के लिए आतुर है। सूर कहते है कि प्रभु (कृष्ण) की वर्ष गाँठ जोड़ी जा रही है (लम्बाई नापने वाले धागे मे गाँठ लगाई जा रही है)। सब मिल भेंट कर कृष्ण की सुन्दरता पर तृन तोड़ रहे है। (नजर लगने से बचा रहे हैं) ॥१७॥

सोभित कर नवनीत लिये।
घुटुरुनि चलत रेनु तन मंडित, मुख दधि लेप किये।
चारु कपोल, लोल लोचन, गोरोचन-तिलक दिये।
लट-लटकनि मनु मत्त मधुप-गन मादक मधुहिँ पिए।
कठुला-कंठ, बज्र केहरि-नख, राजत रुचिर हिए।
धन्य सूर एकौ पल इहिँ सुख, का सत कल्प जिए ॥१८॥

अर्थ – (भगवान् कृष्ण) हाथ मे माखन लिये हुये सुशोभित हो रहे हैं। धूल धूसरित शरीर तथा मुख मे दधि लपेट कर वे घुटनो के बल चल रहे है। उनके कपोल सुन्दर हैं, नेत्र चचल हैं तथा वे गोरोचन का तिलक दिये हैं। उनके लटो की लटकन ऐसी प्रतीत होती है मानो उन्मत्त भ्रमरो का समूह मादक मधु का पान कर (के झूम) रहा हो। उनके कण्ठ मे कठुला और हृदय पर सिंह का वज्र नाखून (अथवा सिंह नख और मणि) सुशोभित हो रहा है (रहे हो)। सूरदास कहते है कि इस सुख मे एक पल का जीवन भी धन्य है। सैकड़ों कल्प (जीवन) जीने से क्या लाभ ? ॥१८॥

किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत।
मनिमय कनक नंद कैं आँगन, बिब पकरिबै, धावत।
कबहु निरखि हरी आपु छाँह कौं, कर सौं पकरन चाहत।
किलकि हँसत राजत द्वै दतियाँ, पुनि-पुनि तिहिं अवगाहत।
कनक-भूमि पर कर-पग-छाया, यह उपमा इक राजति।
करि-करि प्रतिपद प्रतिमनि बसुधा, कमल बैठकी साजति।
बाल-दसा-सुख निरखि जसोदा, पुनि-पुनि नन्द बुलावत।
अँचरा तर लै ढाँकि, सूर के प्रभु कौं दूध पियावति ॥१९॥

अर्थ – कृष्ण किलकारी करते हुये घुटनो के बल आ रहे हैं। नन्द के मणियुक्त स्वर्णिम आँगन मे वे परछाईं पकड़ने के लिये दौड रहे हैं। कभी कृष्ण अपनी छाया को देखकर उसे हाथ से पकडना चाहते है। किलक कर हँसने से उनके दूध के दो दाँत सुशोभित होते है कृष्ण उस (स्थिति) को बार-बार देखते हैं। (आँगन की) स्वर्ण-भूमि पर उनके हाथ और चरणो की छाया देखकर यही उपमा सुशोभित होती है मानो पृथ्वी प्रत्येक चरण एवं हाथ को प्रतिमा बना कर उनके लिए कमलासन सजा रही है। (कृष्ण के हाथ तथा चरण प्रतिमा हैं उनकी परछायीं कमलासन है)। (कृष्ण के इस)

बाल्यावस्था के सुख को देखकर यशोदा बार-बार नन्द को बुलाती हैं। यशोदा 'सूर' के स्वामी को आँचल से ढक कर दूध पिलाती है। ॥१९॥

सिखवति चलन जसोदा मैया।
अरबराइ कर पानि गहावत, डगमगाइ धरनी धरै पैया।
कबहुँक सुदर वदन विलोकति, उर आनद भरि लेत बलैया।
कबहुँक कुल देवता मनावति, चिरजीवहु मेरौ कुँवर कन्हैया।
कबहुँक बल कौं टेरि बुलावति, इहिं आँगन खेलौ दोउ भैया।
सूरदास स्वामी की लीला, अति प्रताप विलसत नँदरैया ॥२०॥

अर्थ—माँ यशोदा (श्री कृष्ण को) चलना सिखाती हैं। कृष्ण लडखडाते है तो (अपना) हाथ उनके हाथ में पकडा देती हैं; वे डगमगा कर पृथ्वी पर पैर रखते हैं। (माँ यशोदा) कभी उनके सुन्दर मुख को देखती हैं और अत्यन्त प्रसन्न हृदय से उनकी बलैया लेती हैं। कभी अपने कुल के देवताओं की मनौती मानती है कि मेरे कुमार कृष्ण चिरजीव हो। कभी बलराम को जोर से पुकारती हैं (और कहती हैं) कि इसी आँगन मे दोनों भाई खेलो। सूरदास कहते हैं कि स्वामी की लीला के प्रताप से राजा नन्द उल्लसित हो रहे हैं ॥२०॥

चलत देखि जसुमति सुख पावै।
ठुमकि-ठुमकि पग धरनी रेंगत, जननी देखि दिखावै।
देहरि लौं चलि जात, बहुरि फिरि-फिरि इतहीं कौं आवै।
गिरि-गिरि परत, बनत नहिं नाँघत सुर-मुनि सोच करावै।
कोटि ब्रह्मड करत छिन भीतर, हरत विलंब न लावै।
ताकौं लिए नंद की रानी, नाना खेल खिलावै।
तब जसुमति कर टेकि स्याम कौ, क्रम-क्रम करि उतरावै।
सूरदास प्रभु देखि-देखि, सुर-नर-मुनि-बुद्धि भुलावै ॥२१॥

अर्थ—कृष्ण को चलता हुआ देख कर माँ (अत्यन्त) सुख प्राप्त करती हैं। वे ठुमुक-ठुमुक कर पृथ्वी पर चलते है और माँ को देखकर (अपना चलना) दिखाते हैं। वे घर की देहली तक चले जाते हैं और फिर यही वापस आ जाते हैं। वे बार-बार गिर पडते हैं। उनसे देहली लाँघते नही बनता इसलिये देवताओ और मुनियो के हृदय मे सोच उत्पन्न करवा देते है (कि भगवान् इतने अशक्त हैं कि देहली नही लाँघ सकते फिर असुरों का विनाश किस प्रकार करेगे ?) जो भगवान् करोडो ब्रह्माण्डो का निर्माण एक क्षण के भीतर करता है तथा उसका हरण करने मे भी देर नही करता उसको नन्दरानी गोद मे लेकर अनेक प्रकार के खेल खिलाती हैं। तब यशोदा श्याम का हाथ पकड़ कर क्रम से एक-एक सीढी उतारती है। सूरदास कहते है कि प्रभु को (इस रूप मे) देख-देख कर देवता, मनुष्य और ऋषि गण अपना विवेक भूल जाते हैं ॥२१॥

नंद जु के बारे कान्ह, छाँड़ि दे मथनियाँ।
बार-बार कहति मातु जसुमति नँदरनियाँ।
नैँकु रहौ माखन देउँ मेरे प्रान-धनियाँ।
आरि जनि करौ, बलि बलि जाउँ हौँ निधनियाँ।
जाकौ ध्यान धरैँ सबै, सुर-नर-मुनि जनियाँ।
ताकौ नँदरानी मुख चूमै लिए कनियाँ।
सेष सहस आनन गुन गावत नहिँ बनियाँ।
सूर स्याम देखि सबै भूलीँ गोप-धनियाँ ॥२२॥

अर्थ—हे नन्द जी के छोटे कृष्ण, मथानी छोड दीजिए। बार-बार नन्दरानी, माँ यशोदा कहती हैं कि थोडा ठहरो, मेरे प्राणधन, मैं तुम्हे मक्खन दूँगी। हे मेरी असीम सम्पत्ति, हठ मत करो, मैं तुम्हारे ऊपर बलिहारी हूँ। जिसका ध्यान सुर-नर-मुनि जन धारण करते हैं उनको कन्धे पर लेकर नन्दरानी यशोदा उनका मुख चूमती हैं। शेषनाग को हजारो मुखों से उनका गुणगान करते नही बनता। सूरदास कहते है कि उन्हे देखकर गोपवधुएँ सब कुछ भूल गयी ॥२२॥

कहन लागे मोहन मैया-मैया।
नंद महर सौँ बाबा बाबा, अरु हलधर सोँ भैया।
ऊँचे चढ़ि चढ़ि कहति जसोदा, लै लै नाम कन्हैया।
दूरि खेलन जनि जाहु लला रे, मारैगी काहु की गैया।
गोपी ग्वाल करत कौतूहल, घर-घर बजति बधैया।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौँ, चरननि की बलि जैया ॥२३॥

अर्थ—श्री कृष्ण (यशोदा को) माँ-माँ कहने लगे। नन्द को बाबा और बलराम को भैया (कहने लगे)। (कृष्ण को बाहर खेलने के लिए जाता हुआ देखकर) माँ यशोदा ऊपर चढकर कृष्ण का नाम लेकर कहती है कि हे लाल, दूर खेलने मत जाओ, किसी की गाय मार देगी। गोपियाँ और ग्वाले परस्पर कौतूहल करते है, घर-घर में बधाइयाँ बज रही है। सूरदास कहते हैं कि हे प्रभु, तुम्हारे दर्शन के लिए मैं तुम्हारे चरणो पर निछावर हूँ ॥२३॥

गोपालराइ दधि माँगत अरु रोटी।
माखन सहित देहि मेरी मैया, सुपक सुकोमल, मोटी।
कत हौ आरि करत मेरे मोहन तुम आँगन मैँ लोटी।
जो चाहौ सो लेहु तुरतहीँ, छाँड़ौ यह मति खोटी।
करि मनुहारि कलेऊ दीन्हौ, मुख चुपरयौ अरु चोटी।
सूरदास कौ ठाकुर ठाढ़ौ, हाथ लकुटिया छोटी ॥२४॥

अर्थ—गोपाल श्री कृष्ण दही और रोटी माँगते हैं। मेरी माँ मुझे सुन्दर पकी हुई पुष्टिकर मोटी रोटी मक्खन के साथ दो। (माँ यशोदा कहती है कि) हे मेरे मोहन

तुम आँगन मे लोट कर हठ क्यो कर रहे हो जो कुछ चाहते हो उसे तुरन्त ही लो और यह खोटी बुद्धि छोड दो। (माँ यशोदा ने) कृष्ण को मनाकर उन्हें कलेवा दिया, मुख में उवटन लगाया और चोटी सँवारी। (अब) सूरदास के स्वामी हाथ मे छोटी सी लाठी लेकर खड़े हैं ॥२४॥

बरनौं वाल-वेप मुरारि।
थकित जित-तित अमर-मुनि-गन, नंद-लाल निहारि।
केस सिर विन वपन के चहुँ दिसा छिटके झारि।
सीस पर धरि जटा, मनु सिसु रूप कियौ त्रिपुरारि।
तिलक ललित ललाट केसरबिंदु सोभाकारि।
रोष-अरुन तृतीय लोचन, रह्यौ जनु रिपु जारि।
कंठ कठुला नील मनि, अंभोज-माल सँवारि।
गरल ग्रीव, कपाल उर इहिँ भाइ भए मदनारि।
कुटिल हरि-नख हिऐं हरि के हरषि निरखति नारि।
ईस झनु रजनीस राख्यौ भाल तैं जु उतारि।
सदन-रज तन स्याम सोभित, सुभग इहिँ अनुहारि।
मनहुँ अंग-बिभूति-राजित सभु सो मधुहारि।
त्रिदस-पति-पति असन कौं अति जननि सौं करै आरि।
सूरदास विरंचि जाकौं जपत निज मुख चारि॥२५॥

अर्थ—मैं मुरारी (श्री कृष्ण) के वाल रूप का वर्णन कर रहा हूँ। नन्दलाल (श्री कृष्ण) को देखकर देवर्षि समूह यत्र-तत्र थकित हो गया है। विना मुण्डन किये हुए सिर के सभी वाल चारो ओर विखरे हुए हैं ऐसा प्रतीत होता है मानो शकर जी ने सिर पर जटा धारण कर शिशु-रूप बनाया हो। सुन्दर मस्तक पर शोभा उत्पन्न करने वाली केशर की बिन्दी लगी है वह ऐसी प्रतीत होती है जैसे शत्रु (कामदेव) को जलाने के लिए क्रोधारुण तृतीय नेत्र हो। कण्ठ मे नीलमणि का कण्ठा तथा (सुन्दर) कमलों की संवारी हुयी माला (की शोभा) ऐसी प्रतीत होती है जैसे शकर के कण्ठ मे विप तथा हृदय पर कपाल माला सुशोभित हो रही हो। स्त्रियाँ कृष्ण के हृदय पर सिह का टेढ़ा नाखून हर्षित होकर देखती हैं ऐसा लगता है जैसे शंकर जी ने चन्द्रमा को मस्तक से (हृदय पर) उत्तार लिया हो। घर की धूल से भगवान् का शरीर इस प्रकार सुशोभित हो रहा है जैसे श्मशान की भस्म लगाये शंकर जी सुशोभित हों। सूरदास कहते है ब्रह्मा अपने चारो मुखो से जिनको जपते रहते हैं वही देवराज इन्द्र के स्वामी (श्री कृष्ण) भोजन के लिए हठ कर रहे हैं ॥२५॥

मैया, कवहिँ वढैगी चोटी?
किती वार मोहिं दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी।
तू जो कहति वल की वेनी ज्यौं, ह्वै है लाँवी-मोटी।

काढ़त-गुहत न्हवावत जैहै नागिनि सी भुइँ लोटी।
काचौ दूध पियावति पचि-पचि, देति न माखन-रोटी।
सूरज चिरजीवौ दोउ भैया, हरि-हलधर की जोटी ॥२६॥

अर्थ— (कृष्ण यशोदा से शिकायत करते हैं) माँ (मेरी) चोटी कब बड़ी होगी ? मुझे कितना समय दूध पीते हो गया और यह आज भी छोटी ही है। तुम तो कहती हो कि यह बलराम की वेणी की भाँति लम्बी और मोटी होगी। काढ़ते, गुहते तथा स्नान करते समय नागिन की तरह पृथ्वी पर लोटने लगेगी। तुम बार-बार मुझे कच्चा दूध पिलाती हो तथा मक्खन और रोटी नही देती हो। सूरदास कहते है कि कृष्ण और बलराम दोनो भाइयो की जोड़ी चिरंजीवी हो ॥२६॥

हरि अपनैं आँगन कछु गावत।
तनक-तनक चरननि सौं नाचत, मनहिं मनहिं रिझावत।
बाँह उठाइ काजरी-धौरी, गैयनि टेरि बुलावत।
कबहुँक बाबा नंद पुकारत, कबहुँक घर मैं आवत।
माखन तनक आपनैं कर लै, तनक बदन मैं नावत।
कबहुँक चितै प्रतिबिंब खंभ मैं, लौनी लिए खवावत।
दुरि देखति जसुमति यह लीला, हरष आनंद बढ़ावत।
सूर स्याम के बाल चरित, नित नितही देखत भावत ॥२७॥

अर्थ—कृष्ण अपने आँगन मे कुछ गा रहे हैं। छोटे-छोटे चरणो से वह नाचते हैं तथा मन-ही-मन प्रसन्न होते हैं। बाँह उठाकर कजरी (काले रंग की) और धौरी (सफेद रंग की) नाम की गायों को जोर से बुलाते हैं। कभी नन्द बाबा को पुकारते है और कभी घर मे आते हैं। (कभी) अपने छोटे-छोटे हाथो मे मक्खन लेकर अपने छोटे मुँह में डालते हैं। कभी खम्भे मे अपनी परछाईं देखकर नवनीत लेकर उसे खिलाते हैं। यशोदा छिपकर उनकी यह लीला देखती है जो कि हर्ष और आनन्दवर्द्धक है। सूरदास कहते हैं कि श्री कृष्ण का बालचरित्र प्रतिदिन ही देखने मे अच्छा लगता है ॥२७॥

जसुमति जबहि कह्यौ अन्हवावन, रोइ गए हरि लोटत री।
तेल उबटनौ लै आगैं धरि, लालहिं चोटत पोटत री।
मैं बलि जाऊँ न्हाउ जनि मोहन, कत रोवत बिनु काजैं री।
पाछे धरि राख्यौ छपाइ कै, उबटन-तेल-समाजैं री।
महरि बहुत बिनती करि राखति, मानत नहीं कन्हैया री।
सूर स्याम अतिहीं बिरुझाने, सुर-मुनि अंत न पैया री ॥२८॥

अर्थ—यशोदा ने जब कृष्ण को नहलाने की बात कही तो वे रोते हुए (पृथ्वी पर) लोट गये। तेल और उबटन आगे रखकर (माँ यशोदा) लाल श्री कृष्ण को लाड-प्यार करती है। मोहन मैं बलिहारी हूँ तुम मत नहाओ, व्यर्थ में ही क्यों रो रहे हो।

(यह कह कर माँ यशोदा ने) उबटन और तेल का सामान पीछे रख दिया। माँ यशोदा अनेक प्रकार से विनती करती है, किन्तु कृष्ण नही मानते। सूरदास कहते हैं कि श्री कृष्ण (स्नान करने के बिलकुल) विरुद्ध हो गये तथा उनका अन्त सुर और मुनि भी नही पा सके ॥२८॥

ठाढ़ी अजिर जसोदा अपनैं, हरिहिं लिए चंदा दिखरावत।
रोवत कत बलि जाऊँ तुम्हारी, देखौं धौ भरि नैन जुड़ावत।
चितै रहै तव आपुन ससि-तन अपने कर लै-लै जु बतावत।
मीठौ लगत किधौं यह खाटौ, देखन अति सुन्दर मन भावत।
मनहीं मन हरि बुद्धि करत हैं, माता सौं कहि ताहिं मँगावत।
लागी भूख, चंद मैं खैहौं; देहि देहि रिस करि बिरुझावत।
जसुमति कहति कहा मैं कीनौं रोवत मोहन अति दुख पावत।
सूर स्याम कौं जसुमति बोधति, गगन चिरैया उड़त दिखावत ॥२९॥

अर्थ—यशोदा अपने आँगन मे खडी होकर भगवान् को (गोद मे) लेकर चन्द्रमा दिखाती हैं। (और उनसे कहती हैं कि) क्यो रो रहे हो मै तुम्हारी बलिहारी हूँ तुम्हे देखकर मेरे नेत्र शीतल (तृप्त) हो जाते है। तब श्री कृष्ण स्वयं चन्द्रमा की ओर देखकर हाथ (से इशारा) बनाकर कहते है कि यह मीठा हो अथवा खट्टा, देखने मे अत्यन्त सुन्दर तथा मन को मोहित करने वाला है। मन-ही-मन (भगवान् श्री कृष्ण) बाल-बुद्धि (का स्वाग) रचते है और माँ (यशोदा) से कहकर उस (चन्द्रमा) को (पृथ्वी पर) मँगाते है। मुझे भूख लगी है मैं चंद्रमा खाऊँगा इस प्रकार (कृत्रिम) क्रोध करके (माँ यशोदा को) उलझन मे डाल देते हैं। यशोदा कहती हैं कि यह मैंने क्या किया कृष्ण रोते हुए बहुत दुख पा रहे है। सूरदास कहते हैं कि (इस प्रकार हठ मे पडे हुए) श्याम को यशोदा समझाती हैं और आकाश मे उडती चिडियाँ उन्हे दिखला रही हैं ॥२९॥

सुनि सुत, एक कथा कहौं प्यारी।
कमल-नैन मन आनँद उपज्यौ, चतुर सिरोमनि देत हुँकारी।
दसरथ नृपति हुतौ रघुबंसी, ताकै प्रगट भए सुत चारी।
तिनमैं मुख्य राम जो कहियत, जनक सुता ताकी बर नारी।
तात-बचनलगि राज तज्योतिन, अनुज घरनिसँग गए बनचारी।
धावत कनक मृगा के पाछै, राजिव लोचन परम उदारी।
रावन हरन-सिया कौ कीन्हौ, सुनि नँद-नंदन नींद निँवारी।
चाप चाप कहि उठे सूर प्रभु, लछिमन देहु, जननि भ्रम भारी ॥३०॥

अर्थ—(माँ यशोदा कृष्ण से कहती है कि) हे पुत्र मैं एक अच्छी कहानी कह रही हूँ। कमलनेत्र (श्री कृष्ण) के मन मे (अत्यन्त) आनन्द प्राप्त हुआ और चतुर शिरोमणि (श्रीकृष्ण) हुँकारी (कथा सुनते समय हाँ, हाँ की उक्ति) देते हैं। रघुवश मे दशरथ नाम के एक राजा हुये उनके चार पुत्र उत्पन्न हुये। उनमे मुख्य जिन्हे राम

कहा जाता था उनकी श्रेष्ठ पत्नी जानकी जी थी। वे पिता की आज्ञा मानकर भाई (लक्ष्मण) और पत्नी सहित वन चले गये। कमलनेत्र वाले परम उदार रामचन्द्र जी स्वर्ण मृग के पीछे दौड़ते है इसी समय रावण ने सीता का हरण कर लिया। यह (कहानी) सुन कर नन्द सुत (कृष्ण) की नींद दूर हो गयी। सूरदास कहते हैं भगवान् कृष्ण चौंक कर यह कहने लगे कि 'लक्ष्मण धनुष दो, धनुष दो।' माँ को (कृष्ण की यह बात सुनकर) बहुत भ्रम हुआ ॥३०॥

जागौ, जागौ हो गोपाल।
नाहिँ इतौ सोइयत सुनि सुत, प्रात परम सुचि काल।
फिरि-फिरि जात निरखि मुख छिन छिन, सब गोपनि के बाल।
बिन बिकसे कल कमल-कोष तैँ मनु मधुपनि की माल।
जो तुम मोहिँ न पत्याहु सूर प्रभु, सुन्दर स्याम तमाल।
तौ तुमहीँ देखौ आपुन तजि निद्रा नैन बिसाल ॥३१॥

अर्थ—(माँ यशोदा कृष्ण को जगाते हुए कहती है) हे गोपाल जागिये। हे पुत्र सुनो इस प्रातःकालीन अत्यन्त पवित्र समय मे नही सोना चाहिये। सभी बाल-गोपाल एक-एक क्षण पर तुम्हारा मुख देखकर (उसी प्रकार) वापस चले जाते है, जैसे कमल की कली के पराग कोष को खिला हुआ न पाकर भ्रमरो की पंक्तियाँ (निराश लौट जाती हैं)। सुन्दर तमाल वृक्ष की भाँति श्याम वर्ण वाले सूर के प्रभु यदि मेरा विश्वास न हो तो नीद छोड़कर अपने विशाल नेत्रो से तुम स्वय देखो ॥३१॥

कमल-नैन हरि करौ कलेवा।
माखन-रोटी, सद्य जम्यौ दधि, भाँति-भाँति के मेवा।
खारिक, दाख, चिरौंजी, किसमिस, उज्वल गरी बदाम।
सफरी, सेव, छुहारे, पिस्ता, जे तरबूजा नाम।
अरु मेवा बहु भाँति-भाँति हैँ षटरस के मिष्ठान्न।
सूरदास प्रभु करत कलेवा, रीझे स्याम सुजान ॥३२॥

अर्थ—कमलनेत्र, भगवान् श्री कृष्ण प्रात.कालीन अल्पाहार कीजिये। मक्खन और रोटी, तुरन्त जमा हुआ दही, अनेक प्रकार के मेवे, छुहारा, द्राक्षा, चिरौंजी किशमिस, श्वेत गरी (नारियल), बादाम, अमरूद, सेब, छुहारा, पेश्ता, तरबूज और अन्य प्रकार के बहुत से मेवे छः रसों से युक्त मिष्ठानो को पाकर सर्वज्ञ भगवान् कलेवा करते हैं और मन-ही-मन प्रसन्न होते है ॥३२॥

मैया मोहिँ दाउ बहुत खिझायौ।
मोसौँ कहत मोल कौ लीन्हौ, तू जसुमति कब जायौ।
कहा करौँ इहि रिस के मारैँ खेलन हौँ नहिँ जात।

पुनि-पुनि कहत कौन है माता, को है तेरौ तात।
गोरे नंद जसोदा गोरी तू कत स्यामल गात।
चुटकी दै-दै ग्वाल नचावत, हँसत सबै मुसुकात।
तू मोहीं कौं मारन सीखी, दाउहिं कबहूँ न खीझै।
मोहन मुख रिस की ये बातैं, जसुमति सुनि-सुनि रीझै।
सुनहु कान्ह, बलभद्र चबाई, जनमत ही को धूत।
सूर स्याम मोहि गोधन की सौं, हौं माता तू पूत ।।३३।।

अर्थ—(कृष्ण माँ से बलराम की शिकायत करते हुए कहते है) माँ मुझे बलराम ने बहुत चिढ़ाया। मुझसे कहते हैं कि तुम मोल लिए गये हो, तुम्हे यशोदा ने कब जन्म दिया। क्या करूँ इसी क्रोध के कारण मैं खेलने नही जाता। (बलराम) बार-बार कहते है कि तुम्हारी माँ कौन है और तुम्हारे पिता कौन है। नन्द गोरे हैं, यशोदा (भी) गोरी हैं तुम्ही क्यो सावले शरीर वाले हो ? सभी ग्वाले चुटकी बजाकर हँसते है और बलराम उन्हे (यही) सिखा देते है। तुम हमेशा मुझे ही मारना जानती हो भैया पर कभी क्रोध नही करती। श्री कृष्ण के मुख से ये क्रोधपूर्ण बाते सुनकर यशोदा (मन-ही-मन) प्रसन्न होती है और (कृष्ण से)कहती है कृष्ण, सुनो, बलराम चुगली करने वाला और जन्म से ही धूर्त है। सूरदास कहते है कि (माँ यशोदा ने कहा कि) मुझे गोधन (गायो की सम्पत्ति) की शपथ है मैं (तुम्हारी) माँ हूँ और तुम (मेरे) पुत्र हो ।।३३।।

खेलन दूरि जात कत कान्हा।
आजु सुन्यौ मैं हाऊ आयौ, तुम नहिं जानत नान्हा।
इक लरिका अबहीं भजि आयौ, रोवत नहिं देख्यौ ताहि।
कान तोरि वह लेत सबनि के, लरिका जानत जाहि।
चलौ न, बेगि सबारै जैये, भाजि आपनैं धाम।
सूर स्याम यह बात सुनतहीं बोलि लिए बलराम ।।३४।।

अर्थ—हे कृष्ण, दूर खेलने क्यो जा रहे हो ? मैंने आज सुना है कि 'हौवा' आया है तुम छोटे हो (इसलिए) नही जानते। एक लड़का अभी भागता हुआ आया है, मैंने उसे रोता हुआ देखा। जिसे लड़का समझता है वह (हौवा) सबके कान तोड लेता है चलो न, आज सवेरे ही (शीघ्र ही) अपने घर भाग चले। सूरदास जी कहते हैं कि श्याम ने यह बात सुनते ही बलराम को (अपने साथ) बुला लिया ।।३४।।

खेलत मैं को काको गुसैयाँ।
हरि हारे जीते सुदामा, बरबस हीं कत करत रिसैयाँ।
जाति पाँति हमतैं बड़ नाहीं, नाहीं बसत तुम्हारी छैयाँ।
अति अधिकार जनावत यातै, जातैं अधिक तुम्हारे गैयाँ।
रूठहि करै तासौं को खेलै, रहे बैठि जहँ-तहँ ग्वैयाँ।
सूरदास प्रभु खेल्यौइ चाहत, दाउँ दियौ करि नद-दुहैयाँ ।।३५।।

अर्थ—खेलने में कौन किसका स्वामी होता है। भगवान् कृष्ण हार गये और श्रीदामा जीत गये, (इस पर श्रीकृष्ण हार नही मानते और क्रोध करते है। श्रीदामा भी रुष्ट हो-हो कर कहते हैं कि) बलपूर्वक क्रोध क्यों करते हो जाति-पांति मे भी तो हमसे बड़े नही हो न तो हम तुम्हारी छाया मे ही रहते हैं। क्या तुम्हारे पास कुछ अधिक गाएँ है इसीलिए अधिक अधिकार दिखा रहे हो। जो खेल मे रूठता है उसके साथ कौन खेले ? (ऐसा कहकर) सभी साथी जहाँ-तहाँ बैठ गये। सूरदास कहते हैं कि भगवान् खेलना चाहते थे इसलिए नन्द की दुहाई देकर दाँव दिया (पारी दी) ।।३५।।

हरि कौं टेरति है नँदरानी।
बहुत अबार भई कहँ खेलत रहे, मेरे सारँग पानी ?
सुनतहिं टेर, दौरि तहँ आए, कब के निकसे लाल।
जेंवत जहीं नंद तुम्हरै बिनु, बेगि चलौ, गोपाल।
स्यामहिं ल्याई महरि जसोदा, तुरतहिं पाइँ पखारे।
सूरदास प्रभु संग नंद कैं, बैठे हैं, दोउ बारे ।।३६।।

अर्थ—नन्दरानी (यशोदा) भगवान् कृष्ण को पुकारती है। मेरे सारंगपाणि, बहुत देर हुयी कहाँ खेल रहे हो ? माता की पुकार सुनकर (कृष्ण) वहाँ दौडकर आ गये। (यशोदा ने कहा) हे लाल कब से निकले हो ? तुम्हारे बिना नन्द भोजन नही कर रहे हैं। हे गोपाल शीघ्र चलो। श्याम को लाकर मां यशोदा ने तुरन्त ही उनका पैर धोया। सूरदास कहते है कि नन्द के साथ (उनके) दोनो बालक (बलराम और कृष्ण) बैठे है ।।३६।।

जेंवत कान्ह नद इकठौरे।
कछुक खात लपटात दोऊ कर, बालकेलि अति भोरे।
बरा कौर मेलत मुख भीतर, मिरिच दसन टकटौरे।
तीछन लगी नैन भरि आए, रोवत बाहर दौरे।
फूँकति बदन रोहिनी ठाढ़ी, लिए लगाइ अँकोरे।
सूर स्याम कौं मधुर कौर दै, कीन्हे तात निहोरे ।।३७।।

अर्थ--कृष्ण और नन्द एक ही स्थान पर भोजन कर रहे है। अत्यन्त भोले, शीघ्र ही कृष्ण कुछ खाते हैं, और दोनो हाथो मे लपेट लेते हैं। बरो का कौर उन्होने मुख मे डाला (और उसमे पड़ी हुई) मिर्च को दाँतो ने टटोल लिया। मिर्च तेज लगी उनकी आँखे डबडबा आईं और वे रोते हुये बाहर दौड पड़े। रोहिणी उन्हे गोद मे उठाकर खड़ी होकर उनका मुँह फूंकती है। सूरदास कहते है कि पिता ने (नन्द ने) मीठा ग्रास देकर उनको अनुकूल किया ।।३७।।

मोहन काहें न उगिलौ माटी।
बार-बार अनरुचि उपजावति, महरि हाथ लिए साँटी।
महतारी सौं मानत नाहीं, कपट-चतुरई ठाटी।

वदन उघारि दिखायौ अपनौ, नाटक की परिपाटी ।
बड़ी बार भई लोचन उघरे, भरम-जवनिका फाटी ।
सूर निरखि नँदरानि भ्रमित भई, कहति न मीठी-खाटी ।।३८।।

अर्थ—(माँ यशोदा कृष्ण को मिट्टी खाने से रोकती हैं) हे मोहन, तुम मिट्टी क्यो नही उगलते ? माँ हाथ मे छडी लेकर मिट्टी खाने मे अरुचि उत्पन्न करती है किन्तु वे माँ का कहना मानते ही नही और उन्होने अपनी कपटपूर्ण चतुरता को प्रदर्शित किया । अभिनय करते हुए उन्होने अपने मुँह को खोलकर दिखाया । (इस आश्चर्य को देखकर) माँ यशोदा के नेत्र वहुत देर बाद खुले और भ्रम की यवनिका फट गई । सूरदास कहते हैं कि कृष्ण के मुख को देखकर नन्दरानी भ्रमित हो गयी और उनके मुँह से मीठा-खट्टा (किसी प्रकार) का शब्द नही निकल सका ।।३८।।

नंद करत पूजा, हरि देखत ।
घट बजाइ देव अन्हवायौ, जल चंदन लै भेटत ।
पट अतर दै भोग लगायौ, आरति करी वनाई ।
कहत कान्ह, बावा तुम अरप्यौ, देव नहीं कछु खाई ।
चितै रहे तब नंद महरि-मुख, सुनहु कान्ह की बात ।
सूर स्याम देवनि कर जोरहु, कुसल रहै जिहिं गात ।।३९।।

अर्थ—भगवान् (कृष्ण) नन्द को पूजा करते हुये देखते है । नन्द ने घण्टा बजाकर देवताओ को स्नान कराया तथा जल और चन्दन लेकर भेट स्वरूप समर्पित किया । वस्त्र की आड़ मे उनका भोग लगाया और सजाकर आरती की । कृष्ण ने कहा बाबा तुमने तो अर्पण कर दिया किन्तु भगवान् कुछ नही खाते । तब नन्द यशोदा के मुख की ओर देखने लगे और कहा कि कृष्ण की बात तो सुनो ! सूरदास कहते है (बाबा नन्द ने कहा) कि हे श्याम देवताओ को हाथ जोड़ो जिससे तुम्हारा शरीर कुशल पूर्वक रहे ।।३९।।

कहत नंद, जसुमति सों बात ।
कहा जानिए कह तैं देख्यौं, मेरैं कान्ह रिसात ।
पाँच वरष को मेरौ कन्हैया, अचरज तेरी बात ।
बिनहीं काज साँटि ले धावति, ता पाछै बिललात ।
कुसल रहैं बलराम स्याम दोउ, खेलत-खात-अन्हात ।
सूर स्याम कौं कहा लगावति, बालक कोमल गात ।।४०।।

अर्थ—नन्द यशोदा से बाते करते है कि तुमने मेरे कृष्ण को क्रोध करते हुए कहाँ से जाना और कहाँ से देखा । पाँच वर्ष का मेरा कृष्ण है और तुम्हारी बाते आश्चर्यजनक है । बिना किसी कार्य के ही बडबडाती हुई छडी लेकर उसके पीछे दौड़ती हो । बलराम और श्याम दोनो खेलते खाते नहाते कुशल-पूर्वक रहे । सूरदास

जी कहते है (नन्द ने यशोदा से कहा) कि कोमल अंग वाले श्रीकृष्ण को दोष क्यों लगाती हो ? ॥४०॥

माखन-चोरी

मैया री, मोहिँ माखन भावै ।
जो मेवा पकवान कहति तू, मोहिँ नहीं रुचि आवै ।
ब्रज-जुवती इक पाछै ठाढ़ी, सुनत श्याम की बात ।
मन-मन कहति कबहु अपनैँ घर, देखौँ माखन खात ।
पेठे जाइ मथनियाँ कैँ ढिग, मैं तब रहौँ छपानी ।
सूरदास प्रभु अंतरजामीँ ग्वालिनि मन की जानी ॥४१॥

अर्थ—हे माँ, मुझे मक्खन ही अच्छा लगता है । यदि तू मेवा पकवान (आदि खाने के लिए) कहती हो तो मुझे नहीं रुचता । एक ब्रजांगना पीछे खड़ी होकर कृष्ण की बात सुन रही है और अपने मन में ही कहती है कि मैं कभी इन्हे अपने घर माखन खाते हुए देखती (तो कितना अच्छा होता !) मैं तब छिपकर बैठ गयी और कृष्ण मथानी के पास जाकर बैठ गये । सूरदास जी कहते हैं कि भगवान् अन्तर्यामी हैं उन्होने गोपी के मन की बात को जान लिया ॥४१॥

गए स्याम तिहिँ ग्वालिनि कैँ घर ।
देख्यौ द्वार नहीँ कोउ, इत-उत चितैँ चले तब भीतर ।
हरि आवत गोपी जब जान्यौ, आपुन रही छपाइ ।
सूनेँ सदन मथनियाँ कैँ ढिग, बैठि रहै अरगाइ ।
माखन भरी कमोरी देखत लै-लैं लागे खान ।
चितै रहे मनि-खंभ-छाँह तन, तासौँ करत सयान ।
प्रथम आजु मैँ चोरी आयौ, भलौ बन्यौ है संग ।
आपु खात प्रतिबिंब खवावत, गिरत कहत, का रंग ?
जौ चाहौ सब देउँ कमोरी, अति मीठो कत डारत ।
तुमहि देति मैँ अति सुख पायौ,तुम जिय कहा बिचारत ।
सुनि-सुनि वात स्याम के मुख की उमँगि उठी ब्रजनारी ।
सूरदास प्रभु निरखि ग्वालि मुख तब भजि चले मुरारी ॥४२॥

अर्थ—श्याम उस गोपी के घर गये और उन्होने देखा कि दरवाजे पर कोई इधर-उधर है तो नही । यह देख कर घर के भीतर घुस गये । गोपी ने जब भगवान् को आते हुये जाना तो स्वयं भी छिप रही । सूने घर मे कृष्ण मथानी के पास चुप साध कर बैठ गये । उन्होंने मक्खन से भरा हुआ मटका देखा और उसे ले-लेकर खाने लगे । मणि के खम्भे में अपनी परछाईं देखी और उससे चतुरतापूर्वक बाते करने लगे । आज मैं पहली बार चोरी करने आया अच्छा साथ मिला । कृष्ण स्वयं खाते हैं

और अपनी परछायी को खिलाते हैं। जब मक्खन गिर जाता है तो कहते हैं, "क्या बात है ? यदि चाहो (मन में कहते है) तो पूरा मटका ही दे दूँ। बहुत मीठा है, क्यों गिराते हो ? तुम्हे देते हुये मुझे बहुत सुख हो रहा है, तुम अपने मन मे क्या सोच रहे हो ?" श्याम के मुख के इन बातो को सुनकर ब्रजांगना उमंग से भर उठी। सूरदास कहते हैं कि गोपी के मुख को देखकर मुरारि प्रभु श्रीकृष्ण भाग चले ॥४२॥

प्रथम करी हरि माखन-चोरी।
ग्वालिनि मन इच्छा करि पूरन, आपु भजे ब्रज खोरी।
मन मैं यहै विचार करत हरि, ब्रज घर-घर सब जाऊँ।
गोकुल जनम लियौ सुख-कारन, सबकैं माखन खाऊँ।
बाल-रूप जसुमति मोहिं जानै, गोपिनि मिलि सुख भोग।
सूरदास प्रभु कहत प्रेम सौं, ये मेरे ब्रज-लोग ॥४३॥

अर्थ—पहली बार भगवान् ने चोरी की। गोपी के मन की इच्छा पूरी करके वे ब्रज की गलियो मे भागे। भगवान् अपने मन में यही विचार करते हैं कि मैं ब्रज के सभी घरो मे जाऊँ तथा गोकुल मे जन्म लेने के सुख के फलस्वरूप सबका मक्खन खाऊँ। यशोदा मुझे बाल-रूप मे ही जाने और गोपियो मे मिलकर सुख का भोग करूँ। सूरदास कहते हैं कि भगवान् प्रेम से कहते हैं कि सभी ब्रजवासी अपने लोग है ॥४३॥

गोपालहिं माखन खान दै।
सुनि री सखी, मौन ह्वै रहिए, बदन दही लपटान दै।
गहि बहियाँ हौं लैके जैहैं, नैननि तपति बुझान दै।
याकौ जाइ चौगुनौ लैहौं मोहिं जसुमति लौं जान दै।
तू जानति हरि कछु न जानत, सुनत मनोहर कान दै।
सूर स्याम ग्वालिनि बस कीन्हो, राखतिं तन मन प्रान दै ॥४४॥

अर्थ—(हे सखि) गोपाल श्रीकृष्ण को मक्खन खाने दो। हे सखी, सुनो मौन रहो, मुँह मे दही लिपटा रहने दो। मै बाँह पकड कर (यशोदा के पास) ले जाऊँगी (अभी) नेत्रो की जलन शान्त होने दो। मैं जाकर इसका (माखन का) चौगुना लूंगी मुझे यशोदा (के पास) तक जाने तो दो। तुम समझती हो कि कृष्ण कुछ नही जानते वे मन को हरने वाले कान लगाकर सुन रहे हैं। सूरदास कहते है कि श्याम ने गोपियो को अपने वश मे कर लिया है और वे तन मन और प्राण देकर (भी) उनकी रक्षा करती हैं ॥४४॥

जमुदा कहँ लैं कीजै कानि।
दिन प्रति कैसे सही परति है, दूध-दही की हानि।
अपने या बालक की करनी, जौ तुम देखौ आनि।

गोरस खाइ, खवावै लरिकनि, भाजत भाजन भानि।
मैं अपने मंदिर के कोनै राख्यौ माखन छानि।
सोई जाइ तिहारैं ढोटा, लीन्हौ है पहिचानि।
बूझि ग्वालि निज गृह मैं आयौ, नैंकुन संका मानि।
सूर स्याम यह उत्तर बनायौ, चोंटी काढ़त पानि ॥४५॥

अर्थ—हे यशोदा कहाँ तक संकोच किया जाय। प्रतिदिन दूध और दही की यह हानि कैसे सही जाय। अपने इस बालक का कर्त्तव्य तुम आकर तो देखो। गोरस खाता है, लड़को को खिलाता है और बर्तन तोड़ कर भाग जाता है। मैंने अपने घर के कोने में मक्खन छिपाकर रखा था, उस स्थान को तुम्हारे लडके ने जाकर पहचान लिया है। जब गोपी ने उनसे (दूसरे के घर मे आने का कारण) पूछा (तो उन्होंने) बिना किसी शंका के कहा कि मैं अपने घर मे आया हूँ। सूरदास कहते है कि (जब गोपियों ने यह पूछा कि मटके मे हाथ क्यो डाला तो) श्रीकृष्ण ने यह उत्तर बना लिया कि मैं हाथ से चीटियाँ निकाल रहा हूँ ॥४५॥

आपु गए हरुऐं सुनैं घर।
सखा सबै बाहिर ही छाँड़े, देख्यौ दधि-माखन हरि भीतर।
तुरत मथ्यौ दधि-माखन पायौ, लै-लै खात, धरत अधरनि पर।
सैन देइ सब सखा बुलाए, तिनहिं देत भरि-भरि अपनैं कर।
छिटकी रहीं दधि-बूँदि हृदय पर, इत-उत चितवत्त करि मन मैं डर।
उठत ओट लै लखत सबनि कौं, पुनि लै खात लेत ग्वालनि बर।
अंतर भई ग्वालि वह देखति मगन भई, अति उर आनँद भरि।
सूर स्याम मुख निरखि थकित भई, कहत न बनै, रही मन दै हरि ॥४६॥

अर्थ—श्रीकृष्ण धीरे से सूने घर में प्रवेश कर गये। भगवान् ने सभी साथियों को बाहर छोड दिया और घर के भीतर जाकर दही और मक्खन देखा। तुरन्त का मथा हुआ (ताजा) दही और मक्खन पाया तो उसे लेकर खाने लगे और होठों पर रखने लगे। कृष्ण ने संकेत दे कर अपने सभी साथियो को बुला लिया और उन्हे अपने हाथ से भर-भर कर देने लगे। दही की बूंदें हृदय पर छिटक गयी हैं इसीलिये कृष्ण इधर-उधर देखकर मन मे बहुत भयभीत होते है। वे उठकर ओट लेकर चारो ओर सबको देख लेते हैं तथा फिर (दही आदि) लेकर खाने लगते हैं। पुनः ग्वालो से भी बलात् (माखन) लेते है। गोपी को यह देखते हुए कुछ समय बीता और वह हृदय मे आनन्दित होकर मग्न हो गयी। सूरदास कहते हैं कि गोपी श्याम के मुख को देख कर स्तब्ध हो गयी, उससे कुछ कहते नही बना और उसने श्याम को अपना मन ही समर्पित कर दिया ॥४६॥

जान जु पाए हौं हरि नीकैं।
चोरि-चोरि दधि माखन मेरौ, नित प्रति गीधि रहे हो छीकैं।

रोक्यौ भवन-द्वार ब्रज-सुन्दरि, नूपुर मूँदि अचानक ही कै।
अब कैसे, जैयतु अपने बल, भाजन भाँजि, दूध दधि पी कै ?
सूरदास प्रभु भलैं परे फँद, देउँ न जान भावते जी कै।
भरि गंडूप, छिरकि दै नैननि, गिरिधर भाजि चले दै कीकै ॥४७॥

अर्थ—हे हरि आज मैं तुमको अच्छी तरह जान पाई हूँ। प्रतिदिन मेरा दही और मक्खन चुरा कर इस सीके पर परच गये हो। (ऐसा कहकर) ब्रज युवती ने अचानक ही नूपुर की आवाज बन्द करके (कृष्ण को) भवन के दरवाजे पर रोका। (और कहा) अब अपने बल पर दूध, दही पीकर तथा वर्तनो को तोडकर कैसे जाओगे। सूरदास कहते हैं (गोपी ने कहा) कि हे प्रभु आप अच्छे वन्धन मे पड़े, अब मैं (अपने) प्राणप्रिय को जाने नही दूँगी। कृष्ण ने चुल्लू (मे दही) भर कर (गोपी की) आंख पर छिडक दिया और कीक देकर (जोर से चिल्ला कर) भाग निकले ॥४७॥

अब ये झूठहु वोलत लोग।
पाँच बरष अरु कछुक दिननि कौ, कब भयो चोरी जोग।
इहिं मिस देखन आवति ग्वालिनि, मुँह फाटे जु गँवारि।
अनदोषे कौं दोष लगावतिँ, दई देइगौ टारि।
कैसें करि याकी भुज पहुँची, कौन बेग ह्याँ आयौ ?
ऊखल ऊपर आनि, पीठि दै, तापर सखा चढ़ायौ।
जौ न पत्याहु, चलो सँग जसुमति, देखौ नैन निहारि।
सूरदास प्रभु नैकुँ न बरजौ, मन में महरि विचारि ॥४८॥

अर्थ—(माँ यशोदा कृष्ण की शिकायत सुनकर कहती है) अब ये लोग झूठ भी बोलने लगे हैं। (मेरा कृष्ण) पांच वर्ष और कुछ ही दिनो का है, यह चोरी करने योग्य हुआ कब ? ये मुँहफट, गँवारिन गोपियाँ इसी बहाने कृष्ण को देखने आती हैं। निर्दोष को दोष लगाती हैं। क्या भगवान् इस दोष को छोड देगे ? कैसे इसका हाथ (सीके पर) पहुँचा और कितनी जल्दी यह यहाँ भाग आया ? (तब गोपी कहती हैं कि) ऊखल के ऊपर आकर पीठ का सहारा देकर उस पर साथियो को चढा दिया। हे यशोदा यदि विश्वास न हो तो चल कर अपनी आंखो से देखो। सूरदास कहते हैं (गोपी ने कहा कि हे यशोदा) तुम कृष्ण को बिलकुल नही रोकती। तब यशोदा मन-ही-मन विचार करने लगी ॥४८॥

इन अखियनि आगैं तैं मोहन, एकौ पल जनि होहु नियारे।
हौं बलि गई, दरस देखैं बिनु तलफत है नैननि के तारे।
औरौ सखा बुलाइ आपने इहिं आँगन खेलौ मेरे बारे।
निरखति रहौं फनिग की मनि ज्यौं, सुन्दर बाल-बिनोद तिहारे।
मधु, मेवा, पकवान, मिठाई व्यंजन खाटे, मीठे, खारे।
सूर श्याम जोइ-जोइ तुम चाहौ, सोइ-सोइ माँगि लेहु मेरे बारे ॥४९॥

अर्थ — (माँ यशोदा कृष्ण से कहती हैं) हे मोहन, तुम इन आँखो के आगे से एक पल के लिये भी अलग न रहो। मेरी आँखों के तारे कृष्ण तुम्हें देखे विना मेरे नेत्र तडपते हैं। मेरे प्रिय श्रीकृष्ण अपने अन्य साथियों को भी बुला कर इसी आंगन मे खेला करो जिससे तुम्हारी बाल क्रीडाओ को मैं सांप की मणि की भांति देखती रहूँ। सूरदास कहते हैं कि (माँ यशोदा ने कहा कि) हे श्याम मधु, मेवा, पकवान, मिठाइयाँ, खट्टे-मीठे और खारे भोजन (षटरस-व्यंजन) तुम जो-जो चाहो वही मुझसे मांग लो ॥४९॥

चोरी करत कान्ह धरि पाए।
निसि-बासर मोहिँ बहुत सतायौ अब हरि अरि हाथहिँ आए।
माखन-दधि मेरौ सब खायौ, बहुत अचगरी कीन्ही।
अब तो घात परे हौ लालन, तुम्हैं भलैं मैं चीन्ही।
दोउ भुज पकरि, कह्यौ कहँ जैहौ माखन लेउँ मँगाइ।
तेरी सौं मैं नेकुँ न खायौ, सखा गये सब खाइ।
मुख तन चितै, विहँसि हरि दीन्हौ, रिस तब गई बुझाइ।
लियौ स्याम उर लाइ ग्वालिनी, सूरदास बलि जाइ ॥५०॥

अर्थ—एक गोपी ने कृष्ण को चोरी करते हुये पकड़ लिया। (वह कहने लगी) हे हरि तुमने मुझे रात-दिन बहुत सताया और अब हाथ मे आये हो। तुम मेरा सारा दही और मक्खन खा गये, तुमने बहुत शरारतें की। हे लाल, अब तुम मौके से मिले हो और मैंने तुम्हे भली-भाँति पहचान लिया है। तब गोपी ने कृष्ण की दोनों भुजाये पकड़ कर कहा अब तुम कहाँ जाओगे ? तुमने जितना मक्खन खाया है उतना (अभी तुम्हारे घर से) मँगा लूं। कृष्ण उत्तर देते है तुम्हारी सौगन्ध मैंने बिलकुल नही खाया, सभी साथी खा गये। उसके मुँह की ओर देखकर भगवान् (कृष्ण) ने मुस्करा दिया तब उस (गोपी) का क्रोध समाप्त हो गया। ग्वालिन ने श्याम को हृदय से लगा लिया, सूरदास (उस शोभा पर) बलि जाते हैं ॥५०॥

कान्हहिँ बरजति किन नँदरानी।
एक गाउँ कैं बसत कहाँ लौं करैं नँद की कानी।
तुम जो कहति हौ, मेरो कन्हैया, गङ्गा कैसो पानी।
बाहिर तरुन किसोर बयस बर, बाट घाट कौ दानी।
बचन विचित्र, कमल-दल लोचन, कहत सरस बर बानी।
अचरज महरि तुम्हारे आगैं अबै जीभ तुतरानी।
कहँ मेरी कान्ह, कहाँ तुम ग्वारिनि, यह विपरीति न जानी।
आवति सूर उरहने कैं मिस, देखि कुँवर मुसुकानी ॥५१॥

अर्थ—गोपी यशोदा से शिकायत करती हुई कहती है कि हे नन्दरानी कृष्ण को क्यो नही रोकती। (हम लोग) एक ही गांव के निवासी है, नन्द का संकोच कहां तक करे। तुम यदि यह कहती हो कि मेरा कृष्ण गंगाजल की भांति पवित्र है (तो यह ठीक नही है—क्योकि) वे वाहर श्रेष्ठ किशोर और तरुण वनकर रास्ते और घाट पर दान लेने वाले हैं। कमल के समान नेत्रो वाले कृष्ण विचित्र और सरस विशिष्ट वाणी मे बातचीत करते हैं। हे नन्दरानी यह आश्चर्य है कि अब तुम्हारे सामने इनकी बोली तोतली हो गयी है। (मां यशोदा ने कहा) कहाँ मेरा (छोटा-सा) कृष्ण और कहाँ तुम (युवती) गोपियां यह विपरीत बात नही जानी जाती। सूरदास कहते हैं कि गोपियां उलाहना देने के बहाने आती हैं और कृष्ण को देखकर मुस्कराने लगती हैं ॥५१॥

मथुरा जाति हौं बेचन दहियौ।
मेरै घर कौ द्वार, सखी री तबलौं देखति रहियौ।
दधि-माखन द्वै माट अछूते तोहिं सौंपति हौं सहियौ।
और नहीं या ब्रज मैं कोऊ, नन्द-सुवन सखि लहियौ।
ते सब बचपन सुने मन-मोहन, वहै राह मन गहियौ।
सूर पौरि लौं गई न ग्वालिन, कूद परे दै धहियौ ॥५२॥

अर्थ—एक गोपी दूसरी गोपी से कहती है कि मैं मथुरा दही वेचने जा रही हूँ। हे सखि, तुम तब तक मेरे घर का दरवाजा देखती रहना। मैं पूरे भरे हुए दही के दो मटके और मक्खन तुम्हे सौंपे जा रही हूँ। "हे सखि इस व्रज मे और कोई नही (चोर) है, केवल नन्द-पुत्र (कृष्ण) को देखती रहना।" वे सभी बाते मन-मोहन (कृष्ण) सुन रहे थे और उनके मन ने वही राह पकड ली। सूरदास कहते है कि ग्वालिन रास्ते तक भी न गयी होगी कि भगवान् धाड मारकर (खींचकर उसके घर मे) कूद पडे ॥५२॥

गए स्याम ग्वालिन घर सूनैं।
माखन खाइ, डारि सब गोरस, बासन फोरि किए सब चूने।
बड़ौ माट इक बहुत दिननि कौ, ताहि करयौ दस टूक।
सोवत लरिकनि छिरकि मही सौं, हँसत चले दै कूक।
आइ गई ग्वालिनि तिहिं औसर, निकसत हरि धरि पाए।
देखे घर बासन सब फूटे, दूध दही ढरकाए।
दोउ भुज धरि गाढ़ैं करि लीन्हैं, गई महरि कै आगै।
सूरदास अब बसे कौन ह्यां, पति रहिहैं ब्रज त्यागै ॥५३॥

अर्थ—श्रीकृष्ण गोपी के सूने घर मे गये। उन्होंने मक्खन खाकर सभी गोरस गिराकर बर्तनो को तोडकर चूर्ण कर दिया। बहुत दिनों का एक (पुराना) बडा मटका था, उन्होने तोडकर उसके दस टुकड़े कर दिये। सोते हुए लड़को पर दही छिड़क कर किलकते हुए हँस कर चल दिये। इसी समय गोपी आ गयी और श्याम को घर से निकलते हुये पकड़ लिया। घर मे देखा, सभी बर्तन फूटे हुये हैं और दूध दही ढरका

हुआ है । दोनों भुजाओं को मजबूती से पकडकर वह कृष्ण को माँ यशोदा के पास ले गयी । सूरदास कहते हैं कि (गोपी कहने लगी कि) अब यहाँ कौन बसे ? अब तो ब्रज छोडने पर ही लाज बचेगी ।।५३।।

करत कान्ह ब्रज-घरनि अचगरी ।
खीझति महरि कान्ह सौं पुनि-पुनि, उरहन लै आवति हैं सगरी ।
बड़े बाप के पूत कहावत, वै वास बसत इक बगरी ।
नन्दहु तैं ये बड़े कहैहैं फेरि बसैहैं यह ब्रज नगरी ।
जननी कैं खीझत हरि रोए, झूठहिं मोहिं लगावति धगरी ।
सूर स्याम मुख पोंछि जसोदा, कहति सबै जुवती हैं लँगरी ।।५४।

अर्थ—कृष्ण व्रज के घर-घर मे शरारत करते हैं । माँ यशोदा कृष्ण पर बार-बार विगड़ती हैं कि वे सभी (गोपियां) उलाहना ले-लेकर आती हैं । तुम वड़े वाप के वेटे कहे जाते हो, हम और वे एक ही घर (वगल)में निवास करते है । अव तो कृष्ण-नद से भी वढ़कर कहलाएंगे और प्रतीत होता है कि इस व्रज नगरी को (उजाड़ कर) फिर से वसायेगे । माँ के क्रोध करने पर भगवान् रोने लगे और कहा कि ये कुलटाये मुझे झूठ मे ही (दोष) लगाती है । सूरदास कहते हैं कि श्याम के मुख को पोंछ करके यशोदा कहती हैं कि सभी स्त्रियाँ दुष्ट हैं ।।५४।।

अपनौ गाउँ लेउ नँदरानी ।
वड़े बाप की वेटी, पूतहिं भली पढ़ावति बानी ।
सखा-भीर लै पैठत घर मैं आप खाइ तौ सहिऐ ।
मैं जब चली सामुहैं पकरन, तब के गुन कहा कहिऐ ।
भाजि गए दुरि देखत कतहूँ, मैं घर पौढ़ी आइ ।
हरैं हरैं वेनी गहि पाछें बाँधी पाटी लाइ ।
सुनु भैया, याके गुन मोसौं, इन मोहिँ लयौ बुलाई ।
दधि मैं पड़ी सेंत कीं मोपै चीटीं सबै कढ़ाई ।
टहल करत मैं याके घर की यह पति सँग मिलि सोई ।
सूर वचन सुनि हँसी जसोदा, ग्वाल रही मुख गोई ।।५५।।

अर्थ—(गोपियों ने यशोदा से श्रीकृष्ण की शिकायत करते हुये कहा) हे नन्द-रानी (तुम) अपना गाँव ले लो । वडे वाप की वेटी हो और पुत्र को बडी अच्छी बात पढा रही हो । वह साथियों की भीड़ लेकर घर मे घुस जाता है । स्वयं खाये तो सहा भी जाये । जव मैं सामने पकडने चली तो उस समय के गुणो का वर्णन कहाँ तक करूँ ? वे मुझे देखकर भागकर कही छिप गये और मैं आकर लेट गयी । धीरे-धीरे उन्होने चोटी पकडकर पीछे से पाटी में बांध दिया । (तव कृष्ण ने यशोदा से कहा) हे माँ, मुझसे इनके गुण सुनो, इन्होने मुझे वुला लिया और दही मे पड़ी हुयी सभी चीटियाँ मुझसे मुफ्त मे निकलवा ली । मैं इसके घर की रखवाली करता रहा और

यह अपने पति के साथ मिलकर सो गई। सूरदास जी कहते है कि कृष्ण के वचन सुनकर यशोदा हँस पडी और गोपी अपना मुँह छिपाने लगी ।।५५।।

महरि तैं बड़ी कृपन है माई।
दूध-दही वहु विधि कौ दीनौ, सुत सौं धरति छपाई।
बालक बहुत नहीं री तेरैं एकै कुँवर कन्हाई।
सोऊ तौ घरही घर डोलतु, माखन खात चोराई।
वृद्ध वयस, पूरे पुन्यनि तैं, तैं बहुतै निधि पाई।
ताहू के खैवे-पीवे कौं, कहा करति चतुराई।
सुनहुँ न वचन चतुर नागरि के जसुमति नन्द सुनाई।
सूर स्याम कौं चोरी कौं मिस देखन है यह आई ।।५६।।

अर्थ—हे सखी यशोदा तुम बहुत कृपण हो। तुम्हारे पास भगवान् का दिया बहुत-सा दूध-दही है और उसे अपने पुत्र से छिपा कर रखती हो। तुम्हारे लड़के भी तो बहुत नही हैं एक ही कुमार कृष्ण है। वह भी घर-घर घूमता रहता है और मक्खन चुराकर खाता है। वृद्धावस्था मे बहुत पुण्यो के पूरा होने से तुमने यह अनन्त निधि (पुत्र) प्राप्त की है उसको भी खिलाने-पिलाने मे तुम चतुरता करती हो। यशोदा ने नंद को सुनाकर कहा कि इस चतुर नागरी के वचन तो सुनिये। सूरदास जी कहते हैं कि (यशोदा ने कहा कि) यह चोरी के बहाने श्याम को देखने आयी है ।।५६।।

अनत सुत गोरस कौं कत जात ?
घर सुरभी कारी धौरी कौं माखन माँगि न खात।
दिन प्रति सबै उरहने कैं मिस, आवति है उठि प्रात।
अनलहते अपराध लगावति, विकटि बनावति बात।
निपट निसंक विवादति संमुख, सुनि-सुनि नन्द रिसात।
मोसौं कहतिं कृपन तेरैं घर ढोटाहू न अघात।
करि मनुहारि उठाइ गोद लै, बरजति सुत कौं मात।
सूर स्याम नित सुनत उरहनौ, दुख पावत तेरौ तात ।।५७।।

अर्थ—हे पुत्र अन्यत्र गोरस के लिये क्यो जाते हो। घर मे 'काली' और 'धौरी' (श्वेतवर्ण वाली) गाय का मक्खन माँगकर नही खाते। उलाहना देने के बहाने सभी गोपियाँ सबेरे ही उठकर चली आती हैं। (तुम्हारे ऊपर) अनुचित दोषा-रोपण करती हैं और असम्भव बाते बनाती हैं। इस प्रकार गोपियो द्वारा सामने बिलकुल निशंक होकर विवाद करते हुये सुनकर नन्द को क्रोध आता है। गोपियाँ मुझसे कहती हैं कि कंजूस, (तुम्हारे) घर मे लड़के का भी पेट नही भरता। यशोदा पुत्र को उठाकर उनका दुलार करके रोकती हैं। (सूरदास कहते हैं) कि हे श्याम प्रति-दिन उलाहना सुनकर तुम्हारे पिता जी दुखी होते हैं ।।५७।।

हरि सब भाजन फोरि पराने ।
हाँक देत पैठे दै पैला नैंकु न मनहिं डराने ।
सींके छोरि, मारि लरकनि कौं, माखन-दधि सब खाई ।
भवन मच्यौ दधि काँदौ, लरिकनि रोवत पाए जाई ।
सुनहु-सुनहु सबहिनि के लरिका, तेरौ सौ कहुँ नाहिं ।
हाटनिं-बाटनि, गलिनि कहूँ कोउ चलत नहीं डरपाहिं ।
रितु आए कौ खेल, कन्हैया सब दिन खेलत फाग ।
रोकि रहत गहि गली साँकरी, टेढ़ी बाँधत पाग ।
बारे तैं सुत ये ढङ्ग लाए, मनहीं मनहिं सिहात ।
सुनैं सूर ग्वालिनि की बातैं सकुचि महरि पछिताति ।।५८।।

अर्थ—कृष्ण सभी बर्तनों को तोड़कर भाग निकले, उन्होंने ललकार कर धावा बोल दिया और मन में जरा भी भयभीत नही हुये। वे सीका खोलकर लड़कों को मार कर सब मक्खन और दही खा गये। घर में दधिकाँदो (दही की होली) मचा था। (गोपियों ने) जाकर लडको को रोता हुआ पाया। (तब गोपियाँ यशोदा के पास जाकर कहती हैं) 'सुनो-सुनो, लडके सभी के हैं किन्तु तुम्हारे (लड़के के) समान कोई नही है। उसके भय से बाजार, मार्ग और गली मे कही कोई नही जाता। खेल ऋतु मे ही अच्छा लगता है किन्तु कृष्ण हमेशा होली खेलते हैं। संकीर्ण गलियों मे पकड़कर (हमें) रोक लेते हैं और टेढ़ी पगड़ी बांधते है! बचपन से ही तुम्हारे पुत्र का यह ढंग हो गया है! (ऐसा कहकर वे) मन-ही-मन कृष्ण के लिये लालायित हो रही है। सूरदास कहते हैं कि गोपियो की बाते सुनकर महरि (यशोदा) मन-ही-मन पश्चात्ताप करती हैं।।५८।।

कन्हैया तू नहिं मोहिं डरात ।
षटरस धरे छाँड़ि कत पर घर, चोरी करि करि खात ।
बकत-बकत तोसौं पचिहारी, नैंकहुँ लाज न आई ।
ब्रज-परगन-सिगदार महर, तू ताकी करत नन्हाई ।
पूत सपूत भयौ कुल मेरैं, अब मैं जानी बात ।
सूर स्याम अब लौं तुहिं बकस्यौ, तेरी जानी घात ।।५९।।

अर्थ—हे कृष्ण, तुम मुझसे नही डरते। घर मे रखे हुये षट्रस व्यंजनों को छोड़ कर दूसरो के घर चोरी करके क्यो खाते हो? मैं तुमसे कहते-कहते थक गयी किन्तु तुम्हे बिलकुल लाज नही आती। तुम्हारे पिता व्रज के परगने के सिकदार (अधिकारी) हैं तुम उनकी हेठी (हीनता) (प्रकट) करते हो। अब मैं समझ गयी कि मेरे परिवार में सुपुत्र हुआ है! (सूरदास कहते हैं कि माँ यशोदा ने कहा कि) हे श्याम, अब तक तो मैंने तुम्हे क्षमा कर दिया, किन्तु अब मैं तुम्हारी सभी बाते (दाँव) समझ गयी हूँ।।५८।।

मैया मैं नहिं माखन खायौ ।
ख्याल परैं ये सखा सबै मिलि, मेरैं मुख लपटायौ ।

देखि तुहीं सींकै पर भाजन, ऊँचे धरि लटकायौ।
हौं जु कहत नान्हे कर अपनैं मैं कैसें करि पायौ।
मुख दधि पोंछि, बुद्धि इक कीन्ही, दोना पीठि दुरायौ।
डारि साँटि मुसुकाइ जसोदा, स्यामहिं कठ लगायौ।
बाल-बिनोद मोद मन मोह्यौ, भक्ति प्रताप दिखायौ।
सूरदास जसुमत कौ यह सुख, सिव बिरञ्चि नहिं पायौ ॥६०॥

अर्थ—हे माँ, मैंने मक्खन नही खाया। ये सभी साथी मेरे पीछे पड गये और मेरे मुख मे (मक्खन) लपेट दिया। तुम्ही देखो सिकहरे पर बर्तन रख कर ऊँचे लटका दिया गया। मैं पूछता हूँ कि अपने (इन) छोटे हाथो से मैं इसे कैसे पा सकता हूँ। इतने मे कृष्ण को एक उपाय सूझा, उन्होने मुँह से दही पोछ कर दोना पीछे छिपा लिया। (कृष्ण के इस भोलेपन को देखकर) यशोदा ने छडी फेककर और मुस्करा कर श्याम को गले से लगा लिया। भगवान् ने अपनी भक्ति का प्रताप दिखाया और बाल-क्रीड़ा के आनन्द से मन को मोहित कर लिया। सूरदास कहते है कि यशोदा का यह सुख शिव और ब्रह्मा भी नही पा सके ॥६०॥

जसुमति तेरौ बारौ कान्ह अतिही जु अचगरौ।
दूध-दही माखन लै डारि देत सगरौ।
भोरहिं नित प्रतिही उठि, मोसौं करत झगरौ।
ग्वाल-बाल सग लिए घेरि रहै डगरौ।
हम-तुम सब बैस एक, कातैं को अगरौ।
लियौ दियौ सोई कछु, डारि देहु झगरौ।
सूर श्याम तेरौ अति, गुननि माहिं अगरौ।
चोली अरु हार तोरि, छोरि लियो सगरौ ॥६१॥

अर्थ—हे यशोदा, तुम्हारा बालक कृष्ण अत्यन्त शरारती है। दूध, दही और मक्खन लेकर सब गिरा देता है। प्रतिदिन सवेरे ही उठकर मुझसे झगडा करता है। ग्वाल-बालो को साथ लेकर रास्ता घेर लेता है। (और कहता है कि) हम-तुम सभी समवयस्क हैं कौन किससे बड़ा है! जो कुछ लिया-दिया है उसे (यही) छोड दो अन्यथा झगडा होगा। सूरदास कहते है कि (गोपियाँ कहती हैं कि) तुम्हारा पुत्र कृष्ण गुणो मे अग्रसर हो गया है! मेरी चोली और हार तोडकर उसने सब कुछ छीन लिया ॥६१॥

ऐसी रिस मैं जौ धरि पाऊँ।
कैसे हाल करौं धरि हरि के, तुमकौं प्रगट दिखाऊँ।
सँटिया लिए हाथ नँदरानी, थरथरात रिस गात।
मारे बिना आजु जौ छाँड़ौं, लागै मेरैं तात।
इहिं अतर ग्वारिनि इक औरै, धरे बाँह हरि ल्यावति।
भली महरि सूधौ सुत जायौ, चोली-हार बतावति।

रिस मैं अतिहीं उपजाई, जानि जननि अभिलाष।
सूर स्याम भुज गहे जसोदा, अब बाँधौं कहि माष ॥६२॥

अर्थ—(गोपी द्वारा कृष्ण की शिकायत करने पर यशोदा आवेश मे आकर कहती हैं) यदि मैं ऐसे क्रोध मे (कृष्ण को) पकड पाऊँ तो पकड़ने पर उनका क्या हाल करूँगी यह तुम्हें प्रत्यक्ष दिखाती हूँ। हाथ मे छड़ी लिए नन्दरानी का शरीर क्रोध से काँप रहा है। (बोली) आज यदि कृष्ण को बिना मारे छोड़ूँ तो मुझे बाप की सौगन्ध है। इसी बीच (संयोग से) एक अन्य ग्वालिन बाँह पकड कर कृष्ण को ले आई (और व्यंग्य के साथ बोली) "हे महरि, तुमने बहुत सीधा पुत्र पैदा किया है जो चोली और हार की ओर संकेत करता है।" इस कथन से (यशोदा को) क्रोध मे और भी अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हो गया और कृष्ण ने भी माता के क्रोध के आवेश को समझा। सूरदास कहते हैं कि (तब) यशोदा ने (स्वयं) कृष्ण के हाथ पकड़ लिये और क्रोध से बोली कि अब तुझे बाँधूंगी ॥६२॥

बाँधौं आजु कौन तोहिं छोरै।
बहुत लँगरई कीन्हौ मोसौं, भुज गहि रजु ऊखल सौं जोरै।
जननी अति रिस जानि बँधायौ, निरखि बदन, लोचन जल ढोरै।
यह सुनि ब्रज-जुबतीं सब धाई कहतिं कान्ह अब क्यों नहिं छोरै।
ऊखल सौं गहि बाँधि जसोदा, मारन कौं साँटी कर तोरै।
साँटी देखि ग्वालि पछितानी, बिकल भई जहँ-तहँ मुख मोरै।
सुनहु महरि ऐसी न बूझिऐ सुत बाँधति माखन दधि थोरै।
सूर स्याम कौं बहुत सतायौ, चूक परी हम तैं यह भोरैं ॥६३॥

अर्थ—(यशोदा कृष्ण से कहती है) आज मै तुमको बांध दूँगी देखे (तुम्हे) कौन छुड़ाता है। तुमने मुझसे बहुत शरारत की (ऐसा कहकर) कृष्ण की भुजा को पकड़कर रस्सी को ओखली से बांध देती है। माता को अत्यधिक क्रुद्ध जानकर (कृष्ण ने स्वयं को) बँधा लिया। कृष्ण (जननी के) मुख को देखकर नयनो से जल ढुलकाने लगे। यह सब सुनकर व्रज युवतियाँ दौडी हुई आईं और (यशोदा से) कहने लगी कि कृष्ण को अब क्यो नही छोड देती हो। ओखली से मजबूती से बाँधकर यशोदा मारने के लिए छड़ी तोडती हैं। छडी को देखकर गोपियाँ पछताने लगी और जहाँ-तहाँ मुख दूसरी ओर करने लगी (और बोली) हे महरि, ऐसा करना ठीक नही कि पुत्र को थोडे से मक्खन और दही के लिए बांध दिया है। सूरदास कहते हैं कि (गोपियाँ सोचती हैं) कि हमने कृष्ण को बहुत सताया। आज हमसे भूल से यह गलती हो गयी ॥६३॥

कहा भयौ जौ घर कैं लरिका चोरी माखन खायौ।
अहो जसोदा कत त्रासति हौ यहै कोखि को जायौ।
वालक अजौं अजान न जानै केतिक दह्यौ लुटायौ।
तेरो कहा गयौ? गोरस कौ गोकुल अंत न पायौ।

हा हा लकुट त्रास दिखरावति आँगन पास बँधायौ।
रुदन करत दोउ नैन रचे हैं, मनहुँ कमल-कन छायौ।
पौढि रह धरनी पर तिरछैं बिलखि बदन मुरझायौ।
सूरदास प्रभु रसिक-सिरोमनि, हँसि करि कंठ लगायौ॥६४॥

अर्थ—(गोपियाँ यशोदा को सम्बोधित करते हुए कहती हैं) घर के बालक के चोरी से मक्खन खाने से क्या हुआ। इस कोख से उत्पन्न सुत को क्यो भयभीत कर रही हो! यह बालक अभी अनजान है और नही जानता कि कितना दही लुढका दिया? तेरा इतने से क्या हुआ। (इसने तो गोकुल के वासियो के प्रभूत दधि को खाया तथा लुटाया है जिसके परिणाम का निश्चय आसानी से नही किया जा सकता)। उसकी तुलना में तुम्हारे दधि की क्या मात्रा हो सकती है। दुख है कि तुम कृष्ण को आँगन के पास बाँधकर लाठी से भयभीत कर रही हो। रोदन करते हुए इसके नेत्रों पर आँसू कमल-कण की तरह छाये हुए है। धरती पर तिरछे होकर लेटे हुए है और बिलखने के कारण (इनका) मुख मुरझा गया है। सूरदास कहते हैं कि रसिक-शिरोमणि कृष्ण को (यशोदा ने) हँसकर कण्ठ से लगा लिया॥६४॥

हलधर सौं कहि ग्वालि सुनायौ।
प्रातहिं तैं तुम्हरौ लघु भैया, जसुमति ऊखल बाँधि लगायौ।
काहू के लरिकहिं हरि मार्‍यौ भोरहि आनि तिनहिं गुहरायौ।
तबहीं ते बाँधे हरि बैठे, सो हम तुमकौं आनि जनायौ।
हम बरजी, बरज्यो नहिं मानति, सुनतहिं बल आतुर ह्वै धायौ।
सूर स्याम बैठे ऊखल लगि, माता उर तनु अतिहि त्रसायौ।६५॥

अर्थ—हलधर (बलभद्र) से एक गोपी ने बताया कि प्रातःकाल से तुम्हारे छोटे भाई कृष्ण को यशोदा ने ओखली से बाँध दिया है। किसी के पुत्र को कृष्ण ने मार दिया था। उसने प्रातः ही (यशोदा को) रक्षा के लिए पुकारा। तब से हरि बँधे हुए बैठे है। इसलिए मैंने तुमको आकर बता दिया। मैंने यशोदा को रोका लेकिन वह मानती नही है। (इसे) सुनते ही बलदाऊ आतुर होकर दौड पडे। सूरदास कहते है कि माता के द्वारा तन और मन से भयभीत किये गये श्याम ओखली के पास बैठे हैं॥६५॥

यह सुनि कै हलधर तहँ धाए।
देखि स्याम ऊखल सौं बाँधे, तबही दोउ लोचन भरि आए।
मैं बरज्यो कै बार कन्हैया, भली करी दोउ हाथ बँधाए।
अजहुँ छाँड़ौगे लँगराई, दोउ कर जोर जननि पै आए।
स्यामहिं छोरि मोहिं बाँधै बरु, निकसत सगुन भले नहिं पाए।
मेरे प्रान-जिवन-धन कान्हा, तिनके भुज मोहिं बँधे दिखाए।
माता सौ कह करौं ढिठाई, सो सरूप कहि नाम सुनाए।
सूरदास तब कहति जसोदा दोउ भैया तुम इक मत पाए॥६६॥

अर्थ—यह (कृष्ण को ऊखल से बँधा हुआ) सुनकर हलधर दौड़कर वहाँ गये। कृष्ण को ऊखल से बँधा देखकर उनके दोनों नयन (आँसू से) भर आये। हे कन्हैया, मैंने तुम्हें कितनी वार रोका। अच्छा किया तुमने दोनो हाथ बँधा लिये। क्या अब भी ढीठपन नही छोड़ोगे। [ऐसा कहकर] दोनों हाथ जोड़कर माता के पास आये। [बलराम माता से बोले] कृष्ण को छोड़कर चाहे मुझे बाँध दो। घर से निकलते समय शकुन अच्छे नही मिले। कृष्ण मेरे प्राण और जीवन धन हैं। तूने उनकी बँधी हुई भुजाओं को हमे दिखाया है। (यह भक्त सूर का प्रत्यक्ष कथन भी है)। बलभद्र, कृष्ण के वास्तविक स्वरूप का ध्यान दिलाते हुए कहते हैं कि तुम माता से इतनी शरारत क्यों करते हो। तब यशोदा कहती है कि तुम दोनो भाई एक समान बुद्धि वाले हो ॥६६॥

तवहिं स्याम इक बुद्धि उपाई।
जुवती गईं घरनि सब अपनें, गृह कारज जननी अटकाई।
आपु गए जमलार्जुन-तरु-तरु, परसत पात उठे झहराई।
दिए गिराइ धरनि दोऊ तरु, सुत कुवेर के प्रगटे आई।
दोउ करजोरि करत दोउ अस्तुति, चारि भुजा तिन्ह प्रगट दिखाई।
सूर धन्य ब्रज जनम लियौ हरि, धरनी की आपदा नसाई ॥६७॥

अर्थ—जब सभी व्रज युवतियाँ अपने घर चली गयी और माता गृह कार्य मे लग गयी तब कृष्ण ने एक सूझ पैदा की। स्वयं जमलार्जुन वृक्ष के नीचे चले गये। उनके स्पर्श मात्र से पत्ते घहरा उठे। उन कृष्ण ने दोनों वृक्षों को पृथ्वी पर गिरा दिया। तब कुवेर के पुत्र प्रकट हुए। दोनो हाथ जोड़कर स्तुति करते हुए उन दोनो को अपनी चारों भुजाओ को प्रत्यक्ष दिखाया। सूरदास कहते है कि कृष्ण ने ब्रज मे जन्म लिया इसलिए व्रज धन्य है। [उन्होने] पृथ्वी की आपत्ति को नष्ट कर दिया ॥६७॥

अब घर काहूँ कैं जनि जाहु।
तुम्हरैं आजु कमी काहे की, कत तुम अनतहिं खाहु।
बरै जेंवरी जिहिं तुम बाँधे, परै हाथ भहराइ।
नंद मोहिं आतहीं त्रासत हैं, वाँधें कुँवर कन्हाइ।
रोग जाउ मेरे हलधर के, छोरत हो तब स्याम।
सूरदास प्रभु खात फिरौ जनि, माखन-दधि तुव धाम ॥६८॥

अर्थ—[यशोदा कृष्ण को वर्जित करती हुई कहती है] अब किसी के घर मत जाना। तुम्हे किस चीज की कमी है जो कि तुम अन्यत्र खाने जाते हो। वह रस्सी जल जाय जिससे बाँधने पर तुम्हारे हाथ मे गडारी पड़ गई है वे हाथ गिर कर टूट पड़े (जो तुम्हे बाँधते थे)। कुँवर कन्हैया को वाँधने पर नन्द भी हमे अत्यधिक भयभीत करते हैं। मेरे बलराम के सभी रोग नष्ट हो जायँ, जो मेरे बांधने पर उस समय उनका बन्धन छोड़ देते थे। सूरदास कहते हैं कि हे कृष्ण तुम घर-घर मत घूमो तुम्हारे घर मे ही मक्खन-दधि बहुत है ॥६८॥

भूखौ भयौ आजु मेरौं बारो।
भोरहिं ग्वारि उरहनौ ल्याई, उहिं यह कियौ पसारौ।
पहिलेहिं रोहिनि सौं कहि राख्यौ, तुरत करहु जेवनार।
ग्वाल-बाल सब बोलि लिए, मिलि बैठे नन्द-कुमार।
भोजन बेगि ल्याउ कछु मैया भूख लगी मोहि भारी।
आजु सबारैं कछु नहिं खायौ, सुनत हँसी महतारी।
रोहिनि चितै रही जसुमति-तन सिर धुनि-धुनि पछितानी।
परसहु बेगि, बेर कत लावति, भूखे साँरगपानी।
बहु व्यंजन बहु भाँति रसोई षटरस के परकार।
सूर स्याम हलधर दोउ भैया, और सखा सब ग्वार ॥६९॥

अर्थ—यशोदा कहती हैं कि आज मेरा बालक बहुत भूखा हो गया है। आज प्रातःकाल एक ग्वालिनी उलाहना दे गई थी, उसी ने यह सब पसारा किया है। यशोदा ने पहले ही रोहिणी से कह रक्खा था कि जेवनार (भोजन) का प्रबन्ध करो। सभी ग्वाल-बालो को बुलाकर नन्द कुमार कृष्ण उन सब के साथ बैठ गये। (कृष्ण ने माता यशोदा से कहा) हे माता मुझे बड़ी भूख लगी है इसलिए कुछ खाने के लिए लाओ। मैने आज सुबह कुछ नही खाया था। इसे सुनकर माता (यशोदा) हँसने लगी। रोहिणी, यशोदा की ओर देखकर सिर धुन-धुनकर पछताने लगी। फिर उसने कहा कि शीघ्र ही भोजन परसो क्योकि सारङ्गपाणि (कृष्ण) बहुत भूखे हैं। अनेक प्रकार के षटरस युक्त व्यंजन (भोजन) कृष्ण, बलभद्र तथा ग्वाल सखाओ को परोसो ॥६९॥

मोहिं कहतिं जुवती सब चोर।
खेलत कहूँ रहौं मैं बाहिर, चितै रहतिं सब मेरी ओर।
बोलि लेतिं भीतर घर अपनैं, मुख चूमतिं, भरि लेतिं अँकोर।
माखन हेरि देतिं अपनैं कर कछु कहि बिधि सौं करतिं निहोर।
जहाँ मोहिं, देखतिं, तहँ टेरतिं, मैं नहिं जात दुहाई तोर।
सूर स्याम हँसि कठ लगायौ, वै तरुनी कहँ बालक मोर ॥७०॥

अर्थ—(कृष्ण माता यशोदा से दुहाई देते हुए कहते है) मुझे सभी युवतियाँ चोर कहती हैं किन्तु कही बाहर खेलते हुए मेरी ओर ये सब ताकती रहती हैं। (मुझे) अपने घर के भीतर बुलाकर मेरा मुख चूमती है और गोद मे बिठा लेती हैं। ये अपने ही हाथ से मुझे देखकर मक्खन देती हैं और कुछ कहकर ब्रह्मा से निहोरा करती है। मुझे जहाँ देखती है वही पुकारने लगती हैं। मैं तुम्हारी दुहाई लेकर कहता हूँ कि मैं (स्वेच्छया) नही जाता हूँ। सूरदास कहते है कि (यशोदा ने) हँसकर कृष्ण को गले से लगा लिया और (कहा कि) कहाँ वे तरुणी स्त्रियाँ कहाँ यह मेरा बालक ॥७०॥

जसुमति कहति कान्ह मेरे प्यारे, अपनैं ही आँगन तुम खेलौ।
बोलि लेहु सब सखा संग के, मेरी कह्यौ कबहुँ जिनि पेलौ।
व्रज-बनिता सब चोर कहतिं तोहिं, लाजनि सकुचि जात मुख मेरौ।
आजु मोहिं बलराम कहत हे, झूठहिं नाम धरति हैं तेरौ।
जब मोहिं रिस लागति तब त्रासति, बाँधति, मारति, जैसें चेरौ।
सूर हँसित ग्वालिन दे तारी, चोर नाम कैसेहुँ सुत फेरौ ॥७१॥

अर्थ—यशोदा कहती हैं कि हे मेरे प्यारे कृष्ण तुम अपने ही आँगन में खेलो। सभी ग्वाल सखाओ को यही बुला लो। तुम मेरी आज्ञा का उल्लंघन कभी मत करो। व्रज-युवतियाँ तुम्हें चोर कहती हैं और लज्जा से मेरा मुँह सकुचा जाता है। आज मुझसे बलराम बता रहा था कि वे सब तुम्हे झूठे ही बदनाम करती हैं। जब मुझे क्रोध आता है तो (तुम्हे) दास की तरह डरवाती, बाँधती तथा मारती हूँ। सूरदास कहते हैं तब गोपियाँ तालियाँ बजाकर हँसती है, अतः हे पुत्र, चोर नाम को कैसे भी वापस करो (बदल डालो) ॥७१॥

वृन्दावन लीला

वृन्दावन प्रस्थान

महर-महरि कैं मन यह आई ।
गोकुल होत उपद्रव दिन प्रति, बसिऐ वृन्दावन मैं जाई ।
सब गोपनि मिलि सकटा साले, सबहिनि के मन मैं यह भाई ।
सूर जमुन-तट डेरा दीन्हे, पाँच बरष के कुँवर कन्हाई ।।१।।

अर्थ—महर महरि (नन्द और यशोदा) के मन मे यह (भावना) कि गोकुल मे प्रतिदिन बडा उपद्रव होता है, इसलिए वृन्दावन चलकर बसना चाहिये । यह बात सब के मन को रुचिकर प्रतीत हुई और सब ग्वालो ने मिलकर गाड़ियाँ सजायी । सूरदास कहते हैं सब लोगो ने यमुना के तट पर डेरा डाल दिया । इस समय बालक कृष्ण पाँच वर्ष के थे ।।१।।

गोदोहन

मैं दुहिहौं मोहिं दुहन सिखावहु ।
कैसें गहत दोहनी घुटुवनि, कैसें बछरा थन लै लावहु ।
कैसें लै नोई पग बाँधत, कैसें लै गैया अटकावहु ।
कैसें धार दूध की बाजति, सोइ-सोइ विधि तुम मोहिं बतावहु ।
निपट भई अब साँझ कन्हैया, गैयनि पै कहूँ चोट लगावहु ।
सूर स्याम सौं कहत ग्वाल सब, धेनु दुहन प्रातहि उठि आवहु ।।२।।

अर्थ—[कृष्ण कहते है] मैं दुहूँगा, मुझे दुहना सिखा दो । दोहनी को घुटनो से कैसे पकड़ते है और बछड़े को थन से कैसे लगाते है रस्सी लेकर कैसे गाय के पैर को बाँधकर अटकाते हैं । दूध की धार कैसे बजती है । इन सभी बातों को मुझे बताओ । [ग्वाल उत्तर देता है] कृष्ण अब बिलकुल सन्ध्या हो गयी है, गायो से कही चोट लगा लोगे । सूरदास कहते है कि कृष्ण से सभी ग्वाल कहते हैं कि गाय दुहने के लिए प्रात.काल उठकर आओ ।।२।।

गो चारण

आजु मैं गाइ चरावन जैहौं ।
वृन्दावन के भाँति भाँति फल अपने कर मैं खैहौं ।
ऐसी बात कहौ जनि बारे, देखौ अपनी भाँति ।
तनक तनक पग चलिहौ कैसें, आवत ह्वै है अति राति ।

प्रात जात गैया लै चारन, घर आवत हैं साँझ।
तुम्हरौ कमल बदन कुम्हिलैहै, रेंगति घामहिं माँझ।
तेरी सौं, मोहिं घाम न लागत, भूख नहीं कछु नेक।
सूरदास प्रभु कह्यौ न मानत, पर्‌यौ आपनी टेक ॥३॥

अर्थ—(कृष्ण यशोदा से कहते है) आज मैं गाय चराने जाऊँगा। वृन्दावन के भिन्न-भिन्न प्रकार के फलों को अपने हाथ से खाऊँगा। (यशोदा उत्तर देती हैं) हे बालक, ऐसी बात मत कहो, अपनी भव-वृत्ति तो देखो। तुम छोटे-छोटे पैरों से कैसे चलोगे, आते-आते रात हो जायेगी। प्रातःकाल (ग्वाल) गायों को चराने ले जाते हैं और सायंकाल घर आते हैं। धूप में घूमते-घूमते तुम्हारा कमल की तरह मुख कुम्हला जायेगा। (कृष्ण कहते हैं) तुम्हारी सौगन्ध मुझे धूप नही लगती और न तनिक भी भूख लगती है। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण (यशोदा का) कहना नही मान रहे है और अपनी ही टेक पर अड़े हैं ॥३॥

बृन्दाबन देख्यौ नँद-नंदन, अतिहिं परम सुख पायौ।
जहँ-जहँ गाइ चरतिं ग्वालनि सँग, तहँ-तहँ आपुन धायौ।
बलदाऊ मोकौं जनि छाँड़ौ सँग तुम्हारैं ऐहौं।
कैसेहुँ आजु जसोदा छाँड्यौ, काल्हि न आवन पैहौं।
सोवत मोकौं टेरि लेहुगे, बाबा नंद-दुहाई।
सूर स्याम बिनती करि बल सों, सखनि समेत सुनाई ॥४॥

अर्थ—वृन्दावन को देखकर कृष्ण बहुत सुखी हुए। जहाँ-जहाँ ग्वालो के साथ गाये चरती है, वहाँ-वहाँ स्वयं दौड़कर जाते थे। (बलदाऊ से कृष्ण निवेदन करते है) मुझे कही मत छोड़ो क्योंकि मैं (नित्यप्रति) तुम्हारे साथ आऊँगा। (बलदाऊ ने कहा) यशोदा ने आज तुम्हे किसी तरह आने दिया कल नही आने पाओगे। (कृष्ण ने कहा) तुम्हें बाबा नन्द की सौगन्ध है कि (कल) सोते हुए मुझको बुला लेना। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण अन्य मित्रो को सुनाते हुए बलदाऊ से विनती कर रहे है ॥४॥

बिहारी लाल, आवहु, आई छाक।
भई अबार, गाइ बहुरावहु, उलटावहु दै हाक।
अर्जुन, भोज अरु सुबल, सुदामा, मधुमंगल इक ताक।
मिलि बैठे सब जेंवन लागे, बहुत बने कहि पाक।
अपनी पत्रावलि सब देखत, जहँ-तहँ फेनि पिराक।
सूरदास प्रभु खात ग्वाल सँग, ब्रह्मलोक यह धाक ॥५॥

अर्थ—(ग्वाल कृष्ण को पुकारते हुए कहते है) हे बिहारी लाल आओ, दोपहर का भोजन आ गया है। देर हो रही है। गायो को हँकवाकर वापस लाओ। अर्जुन, भोज, सुबल, सुदामा, मधुमंगल आदि ग्वाल एक ओर एक साथ बैठकर भोजन करने लगे और कहते जाते थे कि पकवान बहुत अच्छे बने हैं। वे सब अपनी पत्तले देखते

जाते थे जिन पर जहाँ-तहाँ फेनी और गुझिये रक्खी थी। सूरदास कहते हैं कि प्रभु कृष्ण ग्वालों के साथ भोजन कर रहे है इससे ब्रह्मलोक मे एक प्रकार से आतंक हो गया ॥५॥

ब्रज मैं को उपज्यौ यह भैया।
संग सखा सब कहत परस्पर, इनके गुन अगमैया।
जब तैं ब्रज अवतार धर्‌यौ इन, कोउ नहिं घात करैया।
तृनावर्त पूतना पछारी, तब अति रहे नन्हैया।
कितिक बात यह बका विदार्‌यौ, धनि जसुमति जिन जैया।
सूरदास प्रभु की यह लीला, हम कत जिय पछितैया ॥६॥

अर्थ—(ग्वाल बाल परस्पर बात-चीत करते हुए कहते हैं) भाई ब्रज मे यह किसने जन्म ले लिया है। इनके गुण आगम हैं। जब से इन्होंने ब्रज मे अवतार धारण किया है तब से ब्रज का कोई अनिष्ट करने वाला नही है। तृणावर्त तथा पूतना को विनष्ट करते समय ये बहुत छोटे थे। इन्होंने वकासुर को विदीर्ण कर दिया। ऐसे पुत्र को जन्म देने वाली माता यशोदा धन्य है। सूरदास कहते है कि यह प्रभु की लीला है इसमे हमे (ग्वाल बालो को) विशेष पछताने की क्या आवश्यकता है ॥६॥

आजु जसोदा जाइ कन्हैया महा दुष्ट इक मार्‌यौ।
पन्नग-रूप मिले सिसु गो-सुत इहिं सब साथ उबार्‌यौ।
गिरि-कंदरा समान भयानक जब अघ बदन पसार्‌यौ।
निडर गोपाल पैठि मुख भीतर, खंड-खड करि डार्‌यौ।
याकै बल हम बदत न काहुहिं सकल भूमि तृन चार्‌यौ।
जीते सबै असुर हम आगैं, हरि कबहूँ नहिं हार्‌यौ।
हरषि गए सब कहनि महरि सौं अबहिं अघासुर मार्‌यौ।
सूरदास प्रभु की यह लीला ब्रज कौ काज सँवार्‌यौ ॥७॥

अर्थ—(ग्वाल यशोदा से कहते है) आज कृष्ण ने एक महा दुष्ट को मार डाला। सर्प रूप में उसने ग्वाल बाल और गाय बछडे सब निगल लिए थे, कृष्ण ने उनका उद्धार किया। पर्वत की कंदरा के समान जब उसने अपने भयंकर पापी मुख को फैलाया तब निर्भय होकर गोपाल ने उसके मुख मे पैठकर उसे खण्ड-खण्ड कर डाला। इनके बल के कारण हम लोग किसी को कुछ समझते नही। सभी जगह की घास चरा डालते है। सभी असुरो को इन्होने हमारे सामने ही हरा दिया किन्तु हरि स्वयं कभी नही हारते। सब लोग प्रसन्न होकर यशोदा से बताने गये कि अभी (कृष्ण ने) अघासुर को मारा। सूरदास कहते है कि प्रभु की इस लीला ने ब्रज के समस्त कारणो को सिद्ध कर दिया ॥७॥

ब्रह्मा बालक-बच्छ हरे।
आदि अंत प्रभु अंतरजामी, मनसा तैं जु करे।

सोइ रूप वै बालक गौ-सुत, गोकुल जाइ भरे।
एक बरष निसि बासर रहि सँग, काहु न जानि परे।
त्रास भयौ अपराध आपु लखि, अस्तुति करत खरे।
सूरदास स्वामी मनमोहन, तामैं मन न धरे ॥८॥

अर्थ—ब्रह्मा ने बालक और बछडों को हर लिया। आदि से लेकर अन्त तक प्रभु अन्तरयामी है इसलिए मन से सब को जान लेते हैं। उसी तरह के बालक और बछड़े बना कर उन्होने गोकुल में छोड़ दिए। एक साल तक वे दिन रात उनके साथ रहे पर उन्हे कोई नही पहचान सका। फिर अपना अपराध समझ कर ब्रह्मा को डर लगा और वे खडे होकर स्तुति करने लगे। सूरदास कहते है कि मनमोहन कृष्ण ने उनके अपराध पर ध्यान नही दिया ॥८॥

आजु कन्हैया बहुत बच्यौ री।
खेलत ह्यौ घोष कैं बाहर, कोउ आयौ सिसु रूप रच्यौ री।
मिलि गयौ आइ सखा की नाईं; लै चढ़ाइ हरि कंध सच्यौ री।
गगन उड़ाइ गयौ लै स्यामहिं, आनि धरनि पर आप दच्यौ री।
धर्म सहाइ होत है जहँ-तहँ, स्रम करि पूरब पुन्य पच्यौ री।
सूर स्याम अब कैं बचि आए, ब्रज-घर-घर सुख-सिंधु मच्यौ री ॥९॥

अर्थ—कृष्ण आज विशेष रूप से बच गये। जब गाँव के बाहर खेल रहे थे तब बालक का रूप धारण करके कोई (व्यक्ति) आया। वह मित्र की तरह (बाल सखाओ) मे मिल गया और फिर कृष्ण को कंधे पर बिठाकर चलने लगा। कृष्ण को वह आकाश में उडा ले गया। पर अपने आप पृथ्वी पर आकर दब गया। धर्म हर स्थल पर सहायक होता है और परिश्रम से किया गया पिछले जन्म का पुण्य काम आया। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण के इस बार बच जाने पर ब्रज के घर-घर मे सुख का सागर फैल गया (सब बहुत सुखी हुए) ॥९॥

अब कैं राखि लेहु गोपाल।
दसहूँ दिसा दुसह दावागिनि, उपजी है इहिं काल।
पटकत बाँस, काँस कुस चटकत, लटकत ताल तमाल।
उचटत अति अगार, फुटत पर झपटत लपट कराल।
धूम धूँधि बाढ़ी घर अम्बर, चमकत बिच-बिच ज्वाल।
हरिन, बराह, मोर, चातक, पिक, जरत जीव बेहाल।
जनि जिय डरहु, नैन मूँदहु सब, हँसि बोले नँदलाल।
सूर अगिनि सब वदन समानी, अभय दिये ब्रज-बाल ॥१०॥

अर्थ—(ब्रजवासी कृष्ण से निवेदन करते है) हे गोपाल, अब हम लोगों की रक्षा करो क्योकि इस समय दशों दिशाओं मे असह्य दावाग्नि उमड़ आयी है। बांस (जलकर) गिर रहे हैं, कांस और कुश चटक रहे हैं। ताल और तमाल के वृक्ष (जलकर) लटकते

जा रहे हैं। अंगारे अत्यन्त छिटक रहे है। फल फूटते जा रहे हैं। भयंकर लपट-झपटती है। तथा बीच-बीच मे ज्वाला चमक रही है। पृथ्वी तथा आकाश के बीच धुएँ की धुंध बढ गई है। हिरन, शूकर, मोर, चातक, कोयल जल रहे हैं तथा (समस्त) जीव व्याकुल हो रहे है। नन्दलाल ने हँसकर कहा कि तुम लोग मन मे मत डरो केवल सब लोग आँखे बन्द कर लो। सूरदास कहते है कि समस्त अग्नि (कृष्णजी के) मुख मे समा गई। इस तरह ब्रज के बालको को भय रहित कर दिया ॥१०॥

वन तैं आवत धेनु चराए।
सध्या समय साँवरे मुख पर, गो-पद-रज लपटाए।
बरह मुकुट कैं निकट लसति लट, मधुप मनौ रुचि पाए।
बिलसत सुधा जलज-आनन पर, उड़त न जात उड़ाए।
विधि बाहन-भच्छन की माला, राजत उर पंहिराए।
एक बरन बपु नहिं बड़ छोटे, ग्वाल बने इक धाए।
सूरदास बलि लीला प्रभु की जीवत जन जस गाए ॥११॥

अर्थ—वन से गाय चराकर कृष्ण आ रहे है। संध्या के समय उनके श्यामल मुख पर गायो के पैर की (उडायी गयी) धूल लगी है। मोर-मुकुट के निकट (बालो की) लट ऐसी सुशोभित हो रही है मानो भौरे रुचिकर समझ कर एकत्रित हो गये हैं। कमल पर अमृत लिपटा हुआ हो और इसीलिए भौरे उड़ते नही हैं। ब्रह्मा की सवारी (हंस) के चुगने की वस्तु (मोती) की माला वक्षस्थल पर सुशोभित हो रही है। सभी ग्वाल एक वर्ण तथा एक ही आयु के हैं कोई बडा छोटा नही है। सूरदास प्रभु की लीला पर न्योछावर होते हैं और कहते है कि भक्तजन यश को गाते हुए जीते हैं ॥११॥

मैया बहुत बुरो बलदाऊ।
कहन लग्यौ बन बड़ौ तमासौ, सब मौड़ा मिलि आंऊ।
मोहूँ कौं चुचकारि गयो लै, जहाँ सघन बन झाऊ।
भागि चलौ कहि गयो उहाँ तैं, काटि खाइ रे हाऊ।
हौं डरपौं कापौं अरु रोवौं कोउ नहिं धीर धराऊ।
थरसि गयौं नहिं भागि सकौं, वै भागे जात अगाऊ।
मोसौं कहत मोल कौ लीनो, आपु कहावत साऊ।
सूरदास गल बड़ौ चबाई, तैसेहिं मिले सखाऊ ॥१२॥

अर्थ—(कृष्ण माता यशोदा से शिकायत करते हुए कहते हैं) हे माता बलभद्र बडा दुष्ट है। वह वन में कहने लगा कि बड़ा सुन्दर तमाशा है, सब लोग मिलकर आओ। मुझे भी पुचकार कर वही ले गया जहाँ झाऊ का सघन वन था। फिर वहाँ से यह कह कर भाग गया कि 'हउआ' काट खायेगा। मै डर से काँप रहा था और रो रहा था लेकिन कोई भी धीरज नही बँधाता था। मैं डर से स्तम्भित हो गया इसलिये भाग

भी नहीं सका। वे आगे-आगे भागते चले जा रहे थे। मुझसे कहते हैं कि तू मोल का लिया हुआ है और अपने को साहु कहते हैं। बलदाऊ तो दुष्ट है ही, वैसे ही उसे मित्र भी मिल गये हैं ।।१२।।

मैया हौं न चरैहौं गाइ।
सिगरे ग्वाल घिरावत मोसौं, मेरे पाइ पिराइ।
जौ न पत्याहि पूछि बलदाउहिं, अपनी सौंह दिवाइ।
यह सुनि माइ जसोदा ग्वालनि, गारी देति रिसाइ।
मैं पठवति अपने लरिका कौ, आवै मन बहराइ।
सूर स्याम मेरौ अति बालक, मारत ताहि रिगाइ ।।१३।।

अर्थ—(कृष्ण यशोदा से कहते हैं) माता मैं गाय नही चराऊँगा। सब लोग मुझसे गाय इकट्ठा करवाते है जिससे मेरे पैर दर्द करने लगते हैं। यदि तुम्हे विश्वास न हो तो बलदाऊ को अपनी सौगध दिलाकर पूँछ लो। यह सुनकर यशोदा ग्वाल वालो पर क्रोधित होती हैं और उन्हे गाली देती है। मैं अपने पुत्र को मन बहलाने के लिए भेजती हूँ, लेकिन मेरे अति छोटे बालक को ये घुमा-घुमाकर मारे डालते हैं (परेशान कर देते हैं) ।।१३।।

धनि यह बृन्दावन की रेनु।
नंद-किसोर चरावत गैयाँ, मुखहिं बजावत बेनु।
मन-मोहन को ध्यान धरैं जिय, अति सुख पावत चैनु।
चलत कहाँ मन और पुरी तन, जहँ कछु लैन न दैनु।
इहाँ रहहु जहँ जूठनि पावहु, ब्रजबासिनि कै ऐनु।
सूरदास ह्याँ की सरवरि नहि, कल्पवृच्छ सुर-धैनु ।।१४।।

अर्थ—वृन्दावन की धूलि धन्य है जहाँ कृष्ण गऊ चराते हैं और वंशी बजाते हैं, जो मन को मोहित करने वाले कृष्ण का ध्यान धरता है वह अत्यन्त सुख तथा चैन प्राप्त करता है। यह मन अन्य पुरी की ओर कहाँ जा सकता है जहाँ न कुछ लेना है न देना। यही रहो, जहाँ कृष्ण की जूठन (प्रसाद) प्राप्त होगी, क्योकि यही ब्रजवासियों का घर है। सूरदास कहते हैं कि यहाँ की समता कल्पवृक्ष तथा कामधेनु नही प्राप्त कर सकते ।।१४।।

सोवत नींद आइ गई स्यामहिं।
महरि उठी पौढ़ाइ दुहुँनि कौं, आपु लगी गृह कामहिं।
बरजति है घर के लोगनि कौं, हरुऐं लै-लै नामहिं।
गाढ़ै बोलि न पावत कोऊ, डर मोहन बलरामहिं।
सिव सनकादि अंत नहिं पावत ध्यावत अह-निस जामहिं।
सूरदास-प्रभु ब्रह्म सनातन, सो सोवत नँद धामहिं ।।१५।।

अर्थ—लेटे हुए कृष्ण को नीद आ गई। महरि यशोदा (कृष्ण बलराम) दोनों को सुलाकर अपने घर के कामो मे लग गईं। धीमे से घर के लोगो के नाम ले-लेकर वर्जित करती हैं। मोहन और बलराम के डर से कोई जोर से बोलने नही पाता। शिव, सनकादि जिसे दिन रात सब समय ध्यान करते हुए पार नही पाते वे ही सूर के प्रभु सनातन ब्रह्म नन्द के घर मे सो रहे है ॥१५॥

देखत नंद कान्ह अति सोवत।
भूखे भये आजु बन-भीतर, यह कहि कहि मुख जोवत।
कह्यौ नहीँ मानत काहू कौ, आपु हठी दोऊ बीर।
बार-बार तनु पोँछत कर सौँ, अतिहिँ प्रेम की पीर।
सेज मँगाइ लई तहँ अपनी, जहाँ स्याम-बलराम।
सूरदास प्रभु कैँ ढिग सोए, सँग पौढ़ी नँद-बाम ॥१६॥

अर्थ—नन्द अत्यधिक सोते हुए कृष्ण को देखते हैं। आज बन के भीतर (कृष्ण को) भूख लगी थी, यह कहकर मुँह देखते है। (नंद कहते है) दोनो (बहुत) हठी हैं और किसी का कहना नही मानते हैं। अत्यधिक प्रेम की पीडा से (नंद) हाथ से (कृष्ण के) शरीर को बार-बार पोंछते है! उन्होने अपनी चारपाई वहीं मँगा ली जहाँ कृष्ण और बलराम (सो रहे) थे। सूरदास कहते हैं कि (नंद) प्रभु कृष्ण के पास सोये और वही नन्दरानी सोयी ॥१६॥

जागि उठे तब कुँवर कन्हाई।
मैया कहाँ गई मो ढिग तैँ, सँग सोवति बल भाई।
जागे नद, जसोदा जागी, बोलि लिए हरि पास।
सोवत झझकि उठे काहे तैँ, दीपक कियौ प्रकास।
सपनैँ कूदि पर्‌यौ जमुना दह्, काहू दियो गिराइ।
सूर स्याम सौँ कहति जसोदा, जनि हो लाल डराइ ॥१७॥

अर्थ—तब कुँवर कृष्ण जाग उठे (और कहने लगे) मेरे पास से माता कहाँ चली गयी और (मेरे) साथ भाई बलभद्र सो रहे हैं। (इतने मे) नन्द और यशोदा जाग गये और कृष्ण को अपने पास बुला लिया। सोते हुए झझककर क्यो उठ गये (इसे जानने के लिए) दीपक से प्रकाश किया। (कृष्ण कहते हैं) स्वप्न में यमुना के दह मे कूद गया या किसी ने गिरा दिया। सूरदास कहते हैं कि यशोदा कृष्ण से कहती हैं, हे मेरे लाल डरो मत ॥१७॥

मैँ बरज्यौ जमुना-तट जात।
सुधि रहि गई न्हात की तेरैँ, जनि डरपौ मेरे तात।
नंद उठाइ लियौ कोरा करि, अपने सँग पौढ़ाइ।
वृन्दावन मैँ फिरत जहाँ तहँ, किहिँ कारन तू जाइ।

अब जनि जैहौ गाइ चरावन, कहँ को रहित बलाइ।
सूर स्याम दम्पति बिच सोए, नींद गई तब आइ ।।१८।।

अर्थ—(नंद कहते है) मैंने तुम्हे यमुना के तट पर जाते हुए रोका था। तुम मे नहाते समय की याद (शेष) रह गई है (इसलिए) हे मेरे तात डरो मत। नंद ने (कृष्ण को) अपनी गोद में उठाकर अपने साथ सुला लिया। (तुम) वृन्दावन में जहाँ-तहाँ घूमते रहते हो। वहाँ किसलिए जाते हो ? अब गाय चराने मत जाना, (तुम्हे) कहाँ की बला पड़ी रहती है। सूरदास कहते है कि कृष्ण (जब) दम्पति के बीच मे सोये तब उन्हें नीद आ गयी ।।१८।।

काली दमन

नारद ऋषि नृप सौं यौं भाषत।
वे हैं काल तुम्हारे प्रगटे, काहैं उनकौं राखत।
काली उरग रहै जमुना मैं, तहँ तैं कमल मँगावहु।
देत पठाइ देहु ब्रज ऊपर, नंदहिं अति डरपावहु।
यह सुनि कै ब्रज लोग डरैंगे, वै सुनिहैं यह बात।
पुहुप लैन जैहैं नँद-ढोटा, उरग करै तहँ घात।
यह सुनि कंस बहुत सुख पायौ, भली कही यह मोहि।
सूरदास प्रभु कौं मुनि जानत, ध्यान धरत मन जोहि ।।१६।।

अर्थ—ऋषि नारद राजा (कंस) से इस प्रकार कहते हैं कि वे (कृष्ण) तुम्हारे काल (मृत्यु के कारण) के रूप मे प्रकट हुए है उन्हे तुम जीवित क्यो रहने देते हो। काली नाम का साँप यमुना में रहता है वही से कमल मँगाओ। ब्रज मे दूत भेजकर नंद को भयभीत कराओ। यह सुनकर ब्रज के लोग डर जायेगे। यह बात जब वे (कृष्ण) सुनेगे तो नंद के पुत्र (कृष्ण) फूल लेने (यमुना) जायेगे और वहाँ साँप चोट करेगा। यह सुनकर कस को बहुत सुख मिला (उन्होने कहा) आपने मुझे अच्छी बात बतायी। सूरदास कहते है कि प्रभु कृष्ण को मुनि जानते हैं और मन से देखकर ध्यान धरते है ।।१६।।

कंस बुलाइ दूत इक लीन्हौ।
कालीदह के फूल मँगाए, पत्र लिखाइ ताहि कर दीन्हौ।
यह कहियो ब्रज जाइ नंद सौं, कंस राज अति काज मँगायो।
तुरत पठाइ दिऐं ही बनिहै भली-भाँति कहि-कहि समुझायौ।
यहि अंतरजामी जानी जिय, आपु रहे, बन ग्वाल पठाए।
सूर स्याम, ब्रज-जन-सुखदायक, कंस-काल, जिय हरष बढ़ाए ।।२०।।

अर्थ—कंस ने एक दूत को बुला लिया। उसे एक पत्र लिखा कर दिया और कालीदह के फूलो को मँगाया। (कंस ने दूत से कहा) ब्रज जाकर नद से यह कहना कि कंस ने राज्य के जरूरी काम के लिए (फूल) मँगा भेजा है। (फूल को) तुरंत भेजवा देने

से ही कल्याण होगा। इस प्रकार भलीभाँति कहकर समझाना। इसे हृदय की बात जानने वाले कृष्ण जान गये। (वे) स्वयं (व्रज मे) रुके रहे और ग्वालो को वन मे भेज दिया। सूरदास कहते हैं व्रज को सुख देने वाले, कंस के काल कृष्ण अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥२०॥

पाती बाँचत नंद डराने।
कालीदह के फूल पठावहु, सुनि सबही घबराने।
जो मोकौं नहिं फूल पठावहु, तौ व्रज देहुँ उजारि।
महर, गोप, उपनंद न राखौं, सबहिनि डारौं मारि।
पुहुप देहु तौ बनै तुम्हारी, ना तरु गए बिलाइ।
सूर स्याम बलरामु तिहारे, माँगौं उनहिं धराइ ॥२१॥

अर्थ—पत्र पढते ही नन्द डर गये। 'कालीदह के फूल को भेजो' इसे सुनकर सब लोग घबडा उठे। यदि मुझे फूल नही भेजते हो तो व्रज को उजाड़ दूँगा। महर (नंद) गोप, उपनंद (नंद के छोटे भाई) किसी को नही रहने दूँगा और सबको मार डालूँगा। यदि फूल दो तो तुम्हारा कल्याण हो सकता है नही तो नष्ट हो जाओगे। तुम्हारे कृष्ण तथा बलराम (दो पुत्र) है उन्ही से मँगा लो ॥२१॥

पूछौ जाइ तात सौं बात।
मैं बलि जाउँ मुखारबिंद की, तुमहीं काज कंस अकुलात।
आए स्याम नंद पै धाए, जान्यौ मातु-पिता बिलखात।
अबहीं दूर करौं दुख इनकौ, कंसहिं पठै देउँ जलजात।
मोसौं कहो बात बाबा यह, बहुत करत तुम सोच बिचार।
कहा कहौं तुमसौं मैं प्यारे, कंस करत तुमसौं कछु झार।
जब तैं जनम भयौ है तुम्हरौ, कैते करबर टरे कन्हाइ।
सूर स्याम कुलदेवनि तुमकौं जहाँ तहाँ करि लियौ सहाइ ॥२२॥

अर्थ—यशोदा कृष्ण से कह रही हैं कि पिता जी के पास जाकर इस बात को पूछो तुम्हारे कमल मुख पर बलिहारी जाती हूँ, तथा (हे पुत्र) तुम्हारे लिए (तुम्हारे कारण) कंस व्याकुल है। श्याम नंद के पास दौडे हुए आए और माता-पिता को बिलखते हुए देखा। (कृष्ण ने सोचा) अभी कंस के पास कमल भेजकर इनके दुख को दूर कर दूँगा। (फिर उन्होंने नंद से कहा) हे बाबा मुझसे (उस) बात को कहो जिसके लिए तुम बहुत सोच विचार कर रहे हो। (नंद ने कहा) हे प्यारे तुमसे क्या कहूँ, कंस तुमसे कुछ बैर करता है। जब से तुम्हारा जन्म हुआ तब से (तुम्हारा अनिष्ट करने के लिए किये गये) कितने यत्न टल गये। कुल के देवताओ ने जहाँ तहाँ तुम्हारी सहायता कर दी ॥२२॥

खेलत स्याम, सखा लिए संग।
इक मारत, इक रोवत गेंदहिं, इक भागत करि नाना रंग।
मार परसपर करत आपु मैं, अति आनंद भए मन माहिं।
खेलत ही मैं स्याम सबनि कौं, जमुना तट कौं लीन्हें जाहिं।

मारि भजत जो जाहि ताहि सो, मारत लेत आपनौ दाउ।
सूर स्याम के गुन को जानै कहत और कछु और उपाउ ।।२३।।

अर्थ—मित्रों को साथ लेकर कृष्ण खेलते हैं। एक गेंद को मारता है, एक रोकता है, एक अनेक प्रकार के खेल करके भागता है। आपस मे मार करते हुए वे सब बहुत सुखी है। खेलते-खेलते ही कृष्ण सबको यमुना तट पर ले गये। मारकर जो भागता था उसे मारकर (कृष्ण) अपना दाँव लेते थे। सूरदास कहते है कि कृष्ण के गुणों को कौन जानता है, वे कुछ कहते हैं और कुछ अन्य उपाय करते हैं ।।२३।।

स्याम सखा कौं गेंद चलाई।
श्रीदामा मुरि अंग बचायौ, गेंद परी कालीदह जाई।
धाइ गही तब फेंट स्याम की, देहु न मेरी गेंद मँगाई।
और सखा जनि मोकौ जानौ, मोसौं तुम जनि करौ ढिठाई।
जानि-बूझि तुम गेंद गिराई, अब दीन्हैं ही बनै कन्हाई।
सूर सखा सब हँसत परसपर, भली करी हरि गेंद गँवाई ।।२४।।

अर्थ—कृष्ण ने मित्र के ऊपर गेद फेका (चलाया)। श्रीदामा ने मुड़कर अङ्ग बचाया जिससे गेंद जाकर कालीदह मे गिर गयी। तब (श्रीदामा) ने दौडकर कृष्ण की फेंट पकड़ ली (और कहा) मेरी गेद (यदि) नही मँगा देते हो (तो ठीक न होगा) मुझे अन्य सखाओं के समान मत समझो। तुम मुझसे ढीठपन मत करो। तुमने जान-बूझकर गेद को गिरा दिया अब हे कृष्ण गेद देने से ही काम बनेगा। सूरदास कहते हैं कि सब मित्र परस्पर हँसते हैं (और कहते हैं) अच्छा किया कृष्ण ने गेंद को गायब कर दिया ।।२४।।

फेंट छाँड़ि मेरी देहु श्रीदामा।
काहे कौं तुम रारि बढ़ावत, तनक बात कैं कामा।
मेरी गेंद लेहु ता बदलैं, बाँह गहत हौ धाइ।
छोटौ बड़ौ न जानत काहूँ, करत बराबरि आइ।
हम काहे कौं तुमहिं बराबर, बड़े नंद के पूत।
सूर स्याम दीन्है ही बनिहैं, बहुत कहावत धूत ।।२५।।

अर्थ—(कृष्ण कहते है) हे श्रीदामा मेरी फेंट छोड़ दो। तुम छोटी-सी बात के लिए क्यों झगड़ा बढ़ाते हो। अपनी गेद के बदले मेरी गेद ले लो। तुम दौड़कर बांह (क्यो) पकड़ते हो। किसी को छोटा बड़ा नही समझते हो। (बस) आकर बराबरी करने लगते हो। (श्रीदामा कहते हैं) हम तुम्हारे बराबर कैसे हो सकते हैं (क्योकि तुम) बड़े नंद के पुत्र हो। हे कृष्ण गेद देने से ही बनेगा (भले ही) तुम बहुत धूर्त कहे जाते हो ।।२५।।

रिस करि लीन्ही फेंट छुड़ाइ।
सखा सबै देखत हैं ठाढ़े, आपुन चढ़े कदम पर धाइ।

तारी दै-दै हँसत सबै मिलि, स्याम गए तुम भाजि डराइ।
रोवत चले श्रीदामा घर कौं, जसुमति आगैं कहिहौं जाइ।
सखा सखा कहि स्याम पुकार्‌यौ, गेंद आपनौ लेहु न आइ।
सूर स्याम पीताम्बर काछे, कूद परे दह में भहराइ ।।२६।।

अर्थ—कृष्ण ने क्रोध मे आकर अपने कमर बन्द को छुड़ा लिया। सभी मित्र खडे होकर देखते रहे और वे स्वयं कदम्ब पर दौड़कर चढ गये। ताली दे-देकर सभी हँसते हैं कि कृष्ण तुम डर कर भाग गये। (तब) श्रीदामा रोते हुए घर की तरफ चले (यह कहते हुए) यशोदा जी के आगे जाकर कहूँगा। कृष्ण ने उन्हे 'सखा-सखा' कहकर पुकारा (और कहा) कि आकर अपनी गेंद लेते क्यो नही। सूरदास कहते है कि कृष्ण पीताम्बर को कसकर दह मे झोके के साथ कूद पडे ।।२६।।

चौंकि परी तन की सुध आई।
आजु कहा ब्रज सोर मचायौ, तब जान्यौ दह गिर्‌यौ कन्हाई।
पुत्र-पुत्र कहिकै उठि दौरी, व्याकुल जमुना-तीरहिं धाई।
ब्रज-वनिता सब संगहिं लागीं आइ गए बल, अग्रज भाई।
जननी व्याकुल देखि प्रबोधत धीरज करि नीकैं जदुराई।
सूर स्याम कौं नैंकुं नहीं डर, जनि तू रोवै जसुमति माई ।।२७।।

अर्थ—(यशोदा) कृष्ण के शरीर की याद करके चौक उठी। आज ब्रज मे शोर क्यो मचा हुआ है। तब उन्हे पता चला कि कृष्ण दह मे गिर गये है (तब यशोदा) पुत्र-पुत्र कहती हुई व्याकुल होकर यमुना के तट को उठकर दौडी। ब्रज की सभी स्त्रियाँ साथ मे लग गयी और (कृष्ण के) बडे भाई बलराम भी आ गये। माता को व्याकुल देखकर (बलराम) समझाते है कि धीरज धरो, कृष्ण अच्छे सकुशल हैं। सूरदास कहते हैं, कृष्ण को कोई डर नही है, हे यशोदा माँ तुम मत रोओ ।।२७।।

जसुमति टेरति कुँवर कन्हैया।
आगैं देखि कहत बलरामहिं, कहाँ रह्यौ तुव भैया।
मेरौ भैया आवत अबहीं तोहिं दिखाऊँ मैया।
धीरज करहु, नैंकु तुम देखहु, यह सुनि लेत बलैया।
पुनि यह कहति मोहिं परमोधत, धरनि गिरी मुरझैया।
सूर बिना सुत भइ अति व्याकुल, मेरौ बाल कन्हैया ।।२८।।

अर्थ—यशोदा कृष्ण को पुकारती हैं। बलराम को आगे देखकर कहती हैं कि तुम्हारा भाई कहाँ है। (बलराम कहते है) मेरा भाई अभी आता है, और माँ तुम्हे (अभी) दिखाता हूँ। तुम धीरज धरो और थोडी देर देखो। यह सुनकर (यशोदा) बलैया लेती हैं। फिर यह कहती हुई कि (तुम) मुझे (मात्र) समझा रहे हो धरती पर मुरझाकर गिर गयी। सूरदास कहते हैं कि (यह सोचती हुई) मेरा कृष्ण बालक है, बिना पुत्र के यशोदा अत्यधिक व्याकुल हो गयी ।।२८।।

अति कोमल तनु धरयौ कन्हाई।
गए तहाँ जहँ काली सोवत, उरग-नारि देखत अकुलाई।
कह्यौ कौन कौ बालक है तू, बार-बार कहि, भागि न जाई।
छनकहि मैं जरि भस्म होइगौ, जब देखे उठि जाग जम्हाई।
उरग-नारि की बानी सुनि कैं आपु हँसे मन मैं मुसुकाई।
मोकौं कंस पठायौ देखन, तू याकौं अब देहि जगाई।
कहा कंस दिखरावत इनकौं, एकहि फूँकहिं मैं जरि जाई।
पुनि-पुनि कहत सूर के प्रभु कौ, तू अब काहे न जाइ पराई ॥२९॥

अर्थ—अत्यधिक कोमल शरीर धारण करके कृष्ण वहाँ गये जहाँ काली सो रहा था। (कृष्ण को) देखते ही साँप की पत्नी आकुल हो गयी। (उसने) कहा कि तुम किसके बालक हो। बार-बार कहती हूँ तुम भाग क्यो नही जाते। जब जागकर (काली) जम्हाई लेगा तुम क्षण भर मे जलकर राख हो जाओगे। साँप की पत्नी की वाणी सुनकर कृष्ण मन मे मुस्कराकर हँसे। (कृष्ण ने कहा) मुझे कंस ने देखने भेजा है इसलिए तुम अब इसे जगा दो। कंस इनको कैसे दिखलाता है (क्योकि) एक ही फूंक मे तो तुम (जीव) जल जाओगे। (नाग-पत्नी) वार-बार कहती है तू अब क्यों नही भाग जाता ॥२९॥

झिरकि कै नारि, दै गारि गिरिधारि तव, पूँछ पर लात दै अहि जगायौ।
उठ्यो अकुलाइ, डर पाइ खग-राज कौं, देखि बालक गरब अति बढ़ायौ।
पूँछ लीन्ही झटकि, धरनि सौं गहि पटकि फुंकरयौ लटकि करि क्रोध फूले।
पूँछ राखी चाँपि, रिसनि काली काँपि, देखि सब साँपि-अवसान भूले।
करत फन घात, विष जात उतरात अति, नीर जरि जात, नहिं गात परसै।
सूर के स्याम प्रभु लोक अभिराम, विनु जान अहिराज विष ज्वाल बरसै ॥३०॥

अर्थ—(कृष्ण ने) नाग की पत्नी को झिड़ककर, गाली देकर पूँछ पर पैर रख कर नाग को जगा दिया। वह व्याकुल होकर गरुड के भय से डर कर उठा। (किन्तु) बालक को देखकर अत्यधिक गर्व हुआ। (काली ने) पूँछ को झटक लिया और (पूँछ को) पृथ्वी पर पटक कर, क्रोध से फण फूलाकर, तिरछा होकर फुंकार किया। (कृष्ण ने) पूँछ को दबाये रखा। क्रोध से काली नाग काँप उठा। (उसे) देखकर सभी साँपिनिओं की सुध-बुध भूल गयी। फण से चोट करने पर विष उतरा जाता है जिससे पानी जल जाता है (लेकिन) (कृष्ण के) शरीर को छू (तक) नही जाता। सूरदास कहते हैं कि लोक को सुन्दर लगने वाले (कृष्ण को बिना जाने नागों का राजा काली) विष की ज्वाला बरसाता है ॥३०॥

उरग लियौ हरि कौ लपटाइ।
गर्व-वचन कहि-कहि मुख भाषत, मोकौं नहिं जानत अहिराइ।
लियौ लपेटि चरन तैं सिख लौं, अति इहिं मोसौं करत ढिठाइ।

चाँपी पूँछ लुकावत अपनी, जुवतिनि कौं नहिं सकत दिखाइ।
प्रभु अंतरजामी सब जानत, अब डारौं इहिं सकुचि मिटाइ।
सूरदास प्रभु तन बिस्तारचौ, काली बिकल भयौ तब जाइ ॥३१॥

अर्थ—नाग ने कृष्ण को लपेट किया। मुंह से गर्व की बातें करते हो (कृष्ण कहते है) हे सर्पराज, तुम मुझे नही जानते हो। चरण से शिखा तक लपेट लिया है इससे मुझसे अत्यधिक घृष्टता करते हो। दबी हुई अपनी पूँछ को छिपाते हो (क्योकि) उसे तुम युवतियो को दिखा नही सकते। हृदय की बात जानने वाले प्रभु सब कुछ जानते है (इसलिए) उन्होंने कहा अब इसके संकोच को मिटा डालूं। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण ने (जब) शरीर का विस्तार किया तब काली विफल हो गया ॥३१॥

जबहिं स्याम तन, अति बिस्तारचौ।
पटपटात टूटत अँग जान्यौ, सरन-सरन सु पुकारचौ।
यह बानी सुनतहिं करुनामय, तुरत गए सकुचाइ।
यहै बचन सुनि द्रुपद-सुता दीन्हौ बसन बढ़ाइ।
यहै बचन गजराज सुनायौ, गरुड़ छाँड़ि तहँ धाए।
यहै बचन सुनि लाखा गृह मैं, पांडव जरत बचाए।
यह बानी सहि जात न प्रभु सौं, ऐसे परम कृपाल।
सूरदास प्रभु अग सकोरचौ ब्याकुल देख्यौ ब्याल ॥३२॥

अर्थ—जब कृष्ण ने शरीर का अत्यधिक विस्तार कर लिया (तब) पटपटा कर टूटते हुए शरीर को जानकर (काली ने) शरण-शरण (कहकर) पुकारा। यह वाणी सुनते ही करुणा से भरे हुए कृष्ण तुरन्त सकुचा गये। द्रौपदी के मुख से यही वचन सुनकर वस्त्र (चीर) बढा दिया था। यही वचन (जब) हाथी ने सुनाया (तब) गरुड़ को छोड़कर वहाँ दौडे थे। यही वचन सुनकर लाख से बने घर (लाक्षागृह) मे पांडवो को जलने से बचाया था। (शरणागत की दीन) वाणी प्रभु से सही नही जाती। वे ऐसे परम कृपालु हैं। सूरदास कहते हैं कि साँप को व्याकुल देखकर कृष्ण ने अपना अङ्ग सिकोड़ लिया ॥३२॥

नाथत ब्याल बिलम्ब न कीन्हौ।
पग सौं चाँपि धीँच बल तोरचौ, नाक फौरि गरि लीन्हौ।
कूदि चढे ताके माथे पर काली करत बिचार।
स्रवननि सुनी रही यह बानी, ब्रज ह्वै है अवतार।
तेइ अवतरे आइ गोकुल मैं, मैं जानी यह बात।
अस्तुति करन लग्यौ सहसौ मुख, धन्य-धन्य जग-तात।
बार-बार कहि सरन पुकारचौ, राखि-राखि गोपाल।
सूरदास प्रभु प्रगट भए जब, देख्यौ ब्याल बिहाल ॥३३॥

अर्थ—(कृष्ण ने) नाग को नाथते देर नहीं की। पैर से दबाकर, गरदन के बल तोड़कर, नाक को फोड़कर पकड़ लिया। (फिर) कूदकर उसके मस्तक पर (कृष्ण) चढ़ गये। (तब) काली विचार करता है कि कानों में यह वाणी सुनी थी कि ब्रज मे अवतार होगा। उन्ही (भगवान् ने) गोकुल में आकर अवतार लिया है। मैं यह बात जान गया। अपने हजार मुख से विनती करने लगा कि हे जग के पिता तुम धन्य हो। बार-बार शरण, कहकर पुकार की कि हे गोपाल रक्षा करो। सूरदास कहते है कि कृष्ण ने जब नाग को व्याकुल देखा तो वे (विष्णु रूप में) प्रकट हुए ॥३३॥

आवत उरग नाथे स्याम।
नंद जसुदा गोपी, कहत हैं बलराम।
मोर-मुकुट, बिसाल लोचन, स्रवन कुंडल लोल।
कोटि पितंबर, बेष नटवर, नृतत फन प्रति डोल।
देव दिवि दुँदुभि बजावत, सुमन गन बरषाइ।
सूर स्याम बिलोकि ब्रज-जन, मातु-पितु-सुख पाइ ॥३४॥

अर्थ—नंद, यशोदा, गोप गोपी तथा बलराम सभी कह रहे हैं कि नाग को नाथ कर कृष्ण आ रहे हैं। (उनके सिर पर) मोर का मुकुट है। (उनके) नेत्र विशाल हैं। कानों मे चंचल कुंडल, कटि (कमर) मे पीताम्बर, नटवर का वेष धरे (कृष्ण काली के) प्रति फण पर घूम-घूम कर नाच रहे है। देव आकाश में दुन्दुभी बजा रहे हैं तथा अत्यधिक फूल बरसा रहे हैं। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण को देखकर ब्रजवासी तथा माता-पिता सुखी हो गये ॥३४॥

गोपाल राइ निरतत फन-प्रति ऐसे।
गिरि पर आए बादर देखत, मोर अनंदित जैसे।
डोलत मुकुट सीस पर हरि के, कुडल-मडित-गड।
पीत बसन, दामिन मनु घन पर, तापर सुर-कोदंड।
उरग-नारि आगैं, सब ठाढ़ीं, मुख मुख अस्तुति गावैं।
सूर स्याम अपराध छमहु अब, हम मागैं पति पावैं ॥३५॥

अर्थ—गोपालराज प्रति फण पर ऐसे नाच रहे हैं जैसे पर्वत पर आये हुए बादल को देखते ही मोर आनंदित होकर (नाचने लगता है)। कृष्ण के सिर पर मुकुट डोल रहा है। कनपटी कुंडल से सुशोभित है। पीताम्बर (ऐसा लग रहा है) मानो बादलो के ऊपर बिजली और उस पर इन्द्रधनुष हो। नाग की सभी पत्नियाँ आगे खडी होकर (अपने-अपने) मुख से स्तुति (गा) कर रही है। सूरदास कहते हैं कि (वे कहती हैं) हे कृष्ण अब अपराध को क्षमा कर दीजिए। हम लोग यह माँगते हैं कि हमारे पति फिर मिल जावे ॥३५॥

गरुड़-त्रास तैं जौ ह्याँ आयौ।
तौ प्रभु चरन-कमल फन-फन प्रति, अपनैं सीस धरायौ।

।रषि साप दियौ खगपति कौं, ह्यां तब रह्यौ छपाइ ।
प्रभु वाहन-डर भाजि बच्यौ, नातरु लेतौ खाइ ।
यह सुनि कृपा करी नँद-नंदन, चरन चिह्न प्रगटाए ।
सूरदास प्रभु अभय ताहि करि, उरग-द्वीप पहुँचाए ।।३६।।

अर्थ—(काली नाग कहता है) गरुड के भय से जो यहां आ गया तभी प्रभु के चरण-कमल को प्रत्येक फन से अपने सिर पर धारण कराया । वे ऋषि धन्य हैं जिन्होने पक्षियो के स्वामी (गरुड) को शाप दिया था (कि गरुड़ कालीदह में नही आ सकता) तभी (मैं) यहाँ छिपा रहा । प्रभु की सवारी (गरुड) के डर से भाग कर बच गया नही तो (वह मुझे) खा लेता । यह सुनकर नन्द के नन्दन (पुत्र) कृष्ण ने कृपा करके (उसके मस्तक पर) चरण के चिह्न को प्रकट किया । सूरदास कहते है कि कृष्ण ने उसे भयरहित करके नागो के द्वीप मे भेज दिया ।।३६।।

सहस सकट भरि कमल चलाए ।
अपनी समसरि और गोप जे, तिनकौं साथ पठाए ।
और बहुत काँवरि दधि-माखन, अहिरनि काँधैं जोरि ।
नृप कैं हाथ पत्र यह दीजौ, विनती कीजौ मोरि ।
मेरो नाम नृपति सौं लीजौ, स्याम कमल लै आए ।
कोटि कमल आपुन नृप-माँगे, तीनि कोटि हैं पाए ।
नृपति हमहिं अपनौं करि जानौ, तुम लायक हम नाहिं ।
सूरदास कहियौ नृप आगैं, तुमहिं छाँड़ि कहँ जाहिं ! ।।३७।।

अर्थ—हजारो गाड़ियो को कमल से भरकर चला दिया । अपनी समानता वाले जो और गोप थे उनको साथ भेज दिया और अहीरो के कन्धे से जोडकर दही और मक्खन से भरी बहँगियो को (भेजा) । (किसी गोप के हाथ मे पत्र देकर नन्द कहते है) राजा (कस) के हाथ मे यह पत्र देकर मेरी (ओर से) विनती करना । नृपति से मेरा नाम लेकर (कहना) कृष्ण कमल ले आये । हे राजा आपने एक करोड कमल माँगे थे, तीन करोड पा गये है । राजा हम लोगो को अपना ही करके जानिए । (यद्यपि) आपके लायक हम नही है । सूरदास कहते हैं कि (नन्द ने कहा) कि राजा के आगे कहना कि तुम्हे छोड़कर (हम लोग) कहाँ जायें ।।३७।।

मुरली

जब हरि मुरली अधर धरत ।
थिर चर, चर थिर, पवन थकित रहैं, जमुनाजल न बहत ।
खग मोहैं, मृग-जूथ भुलाहीं, निरखि मदन-छवि छरत ।
पसु मोहैं सुरभी विथकित, तृन दंतनि टेकि रहत ।
सुक सनकादि सकल मुनि मोहैं, ध्यान न तनक गहत ।
सूरजदास भाग हैं तिनके, जे या सुखहिं लहत ।।३८।।

अर्थ—अब कृष्ण बाँसुरी ओठ पर धरते हैं तब न चलने वाले चलकर, गरदन के और चलने वाले स्थिर हो जाते हैं। पवन शिथिल (थका हुआ) रह जाता है। यमुना के पानी का बहना बन्द हो जाता है। पक्षी मोहित हो जाते हैं। (इसे) देखकर कामदेव की छवि अपहृत (क्षीण) हो जाती है। पशु मोह जाते हैं। गाये विशेष रूप से थकित होकर तृण को दांतों से पकडे रह जाती हैं। शुकदेव, सनक आदि मुनि मोह मे पड़ जाते हैं और तनिक भी ध्यान नही धर पाते। सूरदास कहते है कि वे भाग्यवान है जो इस सुख को पाते हैं ॥३८॥

(कहौं कहा) अंगनि की सुधि विसरि गईं।
स्याम अधर मृदु सुनत मुरलिका, चकित नारि भईं।
जो जैसें तो तैसें रहि गईं, सुख-दुख कह्यौ न जाई।
लिखी चित्र सी सूर ह्वै रहिं इकटक पत्र बिसराई ॥३९॥

अर्थ—(कैसे कहूँ) (स्त्रियाँ) अंगो की याद ही (ज्ञान) भूल गईं। कृष्ण के ओठो से वंशी की मीठी (ध्वनि) सुनते ही स्त्रियाँ चकित हो गयी। जो जैसे थी वैसे ही रह गयी। सुख-दुख (कुछ) कहा नही जाता। सूरदास कहते हैं कि वे सब विना पलक मारे एकटक देखती हुई लिखे हुए चित्र की तरह हो गयी ॥३९॥

मुरली धुनि स्रवन सुनत, भवन रहि न परै।
ऐसी को चतुर नारि, धीरज मन धरै।
सुर नर मुनि सुनत सुधि न, सिव-समाधि टरै।
अपनी गति तजत पवन, सरिता नहिं ढरै।
मोहन मुख-मुरली, मन मोहिनि बस करै।
सूरदास सुनत स्रवन, सुधा-सिंधु भरै ॥४०॥

अर्थ—मुरली की आवाज कान से सुनते ही कोई (गोपी) भवन में रह नही पाती। कौन ऐसी चतुर स्त्री है जो मन में धीरज धर सके। (वंशी की ध्वनि) सुनते ही देवता, मनुष्य, मुनि सभी की स्मृति खो जाती है। शिव की समाधि डिग जाती है। हवा अपनी चाल को छोड़ देता है। नदी का वहना रुक जाता है। मोहन के मुख की वंशी मन को मोहने वाली नारियो को वस मे कर लेती है। सूरदास कहते हैं कि कानों से सुनते ही (कानो मे) अमृत का सागर भर जाता है ॥४०॥

बाँसुरी बजाइ आछें रंग सौं मुरारी।
सुनि कै धुनि छूटि गई, सकर की तारी।
वेद पढ़न भूलि गए, ब्रह्मा ब्रह्मचारी।
रसना गुन कहि न सकै, ऐसी सुधि बिसारी।
इंद्र-सभा थकित भइ, लगी जय करारी।
रंभा कौ मान मिट्यौ, भूली नृत कारी।

जमुना जू थकित भई, नहीं सँभारी।
सूरदास मुरली है, तीन-लोक प्यारी ।।४१।।

अर्थ — कृष्ण ने अच्छे रग (मोहक ढंग) से वंशी बजायी। (वंशी) की ध्वनि को सुनकर शंकर का ध्यान टूट गया। ब्रह्मचारी (ब्रह्मा, वेद पढना भूल गये। इस तरह से स्मृति) समाप्त हो गई कि वाणी गुण को कह ही नही सकती। जब तेजी से (मुरली की ध्वनि) सुनाई पडी तब इन्द्र की सभा थकित हो गई। रंभा का गर्व मिट गया (वह) नाचना भूल गयी। यमुना शिथिल हो गई। (वह) होश नही सँभाल पायी। सूरदास कहते है कि (कृष्ण की) वंशी तीनो लोक को प्रिय है ।।४१।।

मुरली तऊ गुपालहिं भावति।
सुनि री सखी जदपि नँदलालहिं, नाना भाँति नचावति।
राखति एक पाइ ठाढ़ौ करि, अति अधिकार जनावति।
कोमल तन आज्ञा करवावति, कटि टेढ़ौ ह्वै आवति।
अति अधीन सुजान कनौड़े, गिरिधर नार नवावति।
आपुन पौंढ़ि अधर सज्जा कर, पर पल्लव पलुटावति।
भृकुटी कुटिल, नैन नासा-पुट, हम पर कोप करावति।
सूर प्रसन्न जानि एकौ छिन, धर तैं सीस डुलावति ।।४२।।

अर्थ —(एक सखी दूसरी सखी से कहती है) मुरली तब भी कृष्ण को अच्छी लगती है। सुनो सखी यद्यपि वह नन्दलाल को अनेक भाँति से नचाती है। (उन्हे) एक ही पैर पर खडा करके रखती है और (अपना) अत्यधिक अधिकार जनाती है। (कृष्ण के) कोमल तन से आज्ञा (का पालन) करवाती है (इसी से कृष्ण की) कमर टेढी हो आती है। अत्यधिक आधीन तथा कृपा से दबे हुए सुजान कृष्ण की गरदन को झुकवाती है। स्वयं (कृष्ण के) ओठ रूपी सेज पर लेट कर पल्लव सदृश हाथ से पैर दबवाती है। भौहे, नेत्र, नथुने कुटिल करके हम पर क्रोध करवाती है। सूरदास कहते हैं कि (गोपी कहती हैं) कृष्ण को एक भी क्षण प्रसन्न जानकर धड से सिर हिलवाती है ।।४२।।

अधर-रस मुरली लूटन लागी।
जा रस कौं षटरितु तप कीन्हौ, सो रस पियति सभागी।
कहाँ रही, कहँ तैं यह आई, कौनैं याहि बुलाई?
चकित भई कहतिं ब्रजबासिनि यह तौ भली न आई।
सावधान क्यौं होतिं नहीं तुम, उपजी बुरी बलाई।
सूरदास प्रभु हम पर ताकौं, कीन्हौ सौति बजाई ।।४३।।

अर्थ — मुरली (कृष्ण के) ओठो का रस लूटने लगी। जिस रस के लिए (हम ब्रज बालाओ ने) छहो ऋतुओं मे तप किया, उसी रस को भाग्यशाली (वंशी) पीती है। (यह) कहाँ थी, कहाँ से आ गयी, इसे किसने बुलाया। (ऐसा) कहती हुई ब्रज-

वासिनियाँ चकित हो गईं (और कहने लगी) कि इस (मुरली) का आना अच्छा नही हुआ। तुम लोग सावधान क्यों नही हो जाती हो क्योकि (यह) एक बुरी बला पैदा हो गयी है। सूरदास कहते है कि (हम ब्रज की नारियों के ऊपर कृष्ण ने) उसे सौत के रूप में घोषित कर दिया है ॥४३॥

अबहीं तैं हम सबनि बिसारी।
ऐसे बस्य भये हरि वाके, जाति न दसा बिचारी।
कबहूँ कर पल्लव पर राखत, कबहुँ अधर लै धारी।
कबहुँ लगाइ लेत हिरदै सौं, नैंकहुं करत न न्यारी।
मुरली स्याम किए बस अपनैं, जे कहियत गिरिधारी।
सूरदास प्रभु कैं तन-मन-धन, बाँस बँसुरिया प्यारी ॥४४॥

अर्थ—अब तो (वे कृष्ण) हम सब को भूल गये। कृष्ण ऐसे उसके वश मे हो गये है कि उस दशा का विचार ही नही किया जा सकता। कभी उसे हाथ रूपी पल्लवो पर रखते हैं कभी ओंठ पर धारण करते हैं। कभी (उसे) हृदय से लगा लेते हैं, (इस तरह) तनिक समय के लिए भी (वंशी को) अपने से अलग नही करते। मुरली ने (ऐसे) कृष्ण को वश मे कर लिया है जो कि गिरधारी कहे जाते है। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण को तन, मन, धन सभी से बाँस की बाँसुरी प्रिय है ॥४४॥

मुरली की सरि कौन करै।
नॅद-नंदन त्रिभुवन-पति नागर सो जौ बस्य करै।
जबहीं जब मन आवत तब तब अधरनि पान करै।
रहत स्याम आधीन सदाई आयसु तिनहिं करै।
ऐसी भई मोहिनी माई मोहन मोह करै।
सुनहु सूर याके गुन ऐसे ऐसी करनि करै ॥४५॥

अर्थ—मुरली की समता कौन कर सकता है। जिस (मुरली ने) तीनों लोक के स्वामी नन्द के पुत्र चतुर कृष्ण को अपने वश मे कर लिया है। जब-जब (उसके) मन मे आता है तब-तब ओंठ का पान करती है। कृष्ण सदा उसी के आधीन रहते हैं और उसी की आज्ञा का पालन करते हैं। वह ऐसी मोहने वाली है कि मोहन को ही मोह लेती है। सूरदास सुनो इसके गुण ऐसे ही है और ऐसी इसकी करनी है ॥४५॥

काहैं न मुरली सौं हरि जोरैं।
काहैं न अधरनि धरैं जु पुनि-पुनि मिली अचानक भोरैं।
काहैं नहीं ताहि कर धारैं, क्यौं नहिं ग्रीव नवावैं।
काहैं न तनु त्रिभंगा करि राखैं ताके मनहिं चुरावैं।
काहैं न यौं आधीन रहैं ह्वै, वै अहीर वह बेनु।
सूर स्याम कर तैं नहिं टारत, बन-बन चारत धेनु ॥४६॥

अर्थ—मुरली से कृष्ण क्यो न सम्बन्ध जोड़ें। उसे बार-बार ओठो से क्यो न लगायें जो उन्हे अचानक सहज ही मिल गयी। उसे क्यों न हाथ में धारण करें और क्यों न गरदन झुकाये। क्यों न शरीर को तीन जगह टेढा करके, उसके मन को चुरायें। क्यों न इस तरह से उसके अधीन रहें क्योंकि (स्वयं) अहीर हैं और वह (मुरली) बांस है। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण उसे हाथ से नही टालते, (लेकर ही) वन-वन गाय चराते है ॥४६॥

मुरलिया कपट चतुरई ठानी।
कैसें मिलि गई नँद-नंदन कौं, उन नाहिं न पहिचानी।
इक वह नारि, बचन मुख मीठे, सुनत स्याम ललचाने।
जाँति-पाँति की कौन चलावै, वाकैं रंग भुलाने।
जाकौ मन मानत है जासौं, सौ तहँई सुख माने।
सूर स्याम वाके गुन गावत, वह हरि के गुन गाने ॥४७॥

अर्थ—मुरली ने कपटपूर्ण चतुरता ठान ली है। यह नन्द के पुत्र कृष्ण को कैसे मिल गयी। उनकी यह (कोई) पहचानी भी तो नही है। एक तो वह स्त्री है (दूसरे) उसके वचन मीठे हैं, सुनते ही कृष्ण ललचा गये। जाति-पाँति की कौन चर्चा करे (बस) उसी के रंग मे भूल गये। जिसका मन जिसे स्वीकार करता है उसे वही सुख मिलता है। सूरदास कहते हैं कि वह कृष्ण का गुण गाती है, कृष्ण उसका गुण गाते है ॥४७॥

स्यामहिं दोष कहा कहि दीजै।
कहा बात मुरली सौं कहियै, सब अपनैहिं सिर लीजै।
हमहीं कहति बजावहु मोहन, यह नहीं तब जानी।
हम जानी यह बाँस बँसुरिया, को जानै पटरानी।
बारे तैं मुँह लागत-लागत, अब ह्वै गई सयानी।
सुनहु सूर हम भोरी-भारी, याकी अकथ कहानी ॥४८॥

अर्थ—कृष्ण को कैसे दोष दिया जाय। वंशी से क्या कहे, सब (दोष) अपने ही सिर पर लीजिए। हमी तो कहते है कि मोहन इसे बजाओ। तब यह (सब) हमने नही जाना था। हमने तो समझा था कि यह बांस की बाँसुरी (ही) है, (इसे) पटरानी कौन समझ सकता है। बचपन से मुंह लगते-लगते अब सयानी हो गई है। सूरदास सुनो हम सब भोली-भाली हैं, इसकी कहानी तो न कही जा सकने वाली है ॥४८॥

मुरली कहै सु स्याम करैं री।
वाही कैं वस भये रहत हैं वाकैं रग ढरैं री।
घर-बन, रैन-दिना सँग डोलत, कर तैं करत न न्यारी।
आई बन बलाइ यह हमकौं, कहा दीजियै गारी।

अब लौं रहे हमारे माई, इहिं अपने अब कीन्हें ।
सूर स्याम नागर यह नागरि, दुहुँनि भलैं कर चीन्हें ।।४८।।

अर्थ—मुरली जो कहती है वही कृष्ण करते है। उसी के वश में हुए रहते हैं, उसी के रङ्ग मे ढल गये हैं। घर, वन, रात-दिन साथ लिये घूमते है, हाथ से उसे अलग नही करते। उनके पास आकर यह हम लोगो के लिए विपत्ति बन गयी। गाली देने से ही क्या लाभ। अब तक तो कृष्ण हमारे थे, अब इसने अपना बना लिया। सूरदास कहते है कि कृष्ण चतुर नागर (छैला) है और यह नागरी बनी है दोनों ने अच्छी पहचान कर ली है ।।४८।।

मेरे दुख को ओर नहीं ।
षट रितु सीत उष्न बरषा मैं, ठाढ़े पाइ रही ।
कसकी नहीं नैं कहूँ काटत, घामें राखी डारि ।
अगिनि सुलाक देत नहिं मुरकी, बेह बनावत जारि ।
तुम जानति मोहिं बाँस बँसुरिया, अगिनि छाप दै आई ।
सूर स्याम ऐसैं तुम लेहु न, खिझति कहाँ हो माई ।।५०।।

अर्थ—(मुरली गोपियों की खीझ का उत्तर देती हुई कहती है) मेरे दुःख का अन्त नही है। छहो ऋतुओं, ठण्डी, गर्मी तथा वर्षा में एक पैर पर खड़ी रही। काटते समय तनिक भी कसक नही हुई फिर (कृष्ण ने) मुझे धूप मे डालकर रखा। आग से गरम की गयी शलाका देते समय हिली डुली नही। फिर जलाकर (कृष्ण) छेद बनाते हैं। तुम मुझे बाँस की बांसुरी (मात्र) समझती हो। आग की छाप देकर (मैं कृष्ण के पास) आई हूँ। सूरदास कहते है कि (मुरली कहती है) हे सखियो तुम लोग खीझती क्यों हो। इस प्रकार तुम लोग भी (कृष्ण से आदर) क्यो नही ले लेती हो ।।५०।।

स्रम करिहौ जब मेरी सी ।
तब तुम अधर-सुधा-रस बिलसहु, मैं ह्वै रहिहौं चेरी सी ।
बिना कष्ट यह फल न पाइहौ, जानति हौ अवडेरी सी ।
षटरितु सीत तपनि तन गारौ, बाँस बँसुरिया केरी सी ।
कहा मौन ह्वै ह्वै जु रही हौ, कहा करत अवसेरी सी ।
सुनहु सूर मैं न्यारी ह्वै हौं, जब देखौं तुम मेरी सी ।।५१।।

अर्थ—(मुरली गोपियो से कहती है) जब (तुम लोग) मेरे समान परिश्रम करोगी तब तुम (कृष्ण) के ओठो के रस का भोग करोगी, मैं दासी बनकर ही रहूँगी। बिना कष्ट के यह फल नही पाओगी (इसे तुम) झझट समझती हो। बाँस की बांसुरी के समान छहो ऋतुओ मे ठंडो, गर्मी से शरीर गलाओ। अब कैसे मौन बनती जा रही हो। चिन्ता क्यों करती हो। सूरदास कहते हैं कि (मुरली कहती है कि) (गोपियो) जब मैं अपने समान (मेहनत) करते हुए तुम्हें देखूंगी तब मैं स्वयं शान्त हो जाऊंगी ।।५१।।

मुरली स्याम बजावन दै री।
स्रवननि सुधा पियति काहै॓ नहि॓, इहि॓ तू जनि बरजै री।
सुनति नही॓ वह कहति कहा है, राधा राधा नाम।
तू जानति हरि भूल गए मोहि॑, तुम एकै पति बाम।
वाही कै॓ मुख नाम धरावत, हमहि॓ मिलावत ताहि।
सूर स्याम हमकौ॓ नहि॓ बिसरे, तुम डरपति हौ काहि ॥५२॥

अर्थ—(एक गोपी राधा से कहती है) श्याम को मुरली बजाने दे। कानो से अमृत क्यों नही पीती। इसे तुम रोको मत। सुनती नही हो कि वह क्या कह रही है। (वह) राधा का नाम (ही) तो पुकार रही है। तुम जानती हो कि मुझे कृष्ण भूल गये। तुम पति कृष्ण की एकमात्र पत्नी हो। वही (मुरली) (कृष्ण) के मुख पर नाम धराती है और हमे कृष्ण से मिलवाती है। सूरदास कहते हैं कि (गोपी कहती है) कृष्ण हमे भूल नही सकते तुम (अनायास) क्यों डरती हो ॥५२॥

मुरलिया मोकौ॓ लागति प्यारी।
मिलो अचानक आइ कहूँ तै॓, ऐसी रही कहाँ री।
धनि याके पितु-मातु, धन्य यह, धन्य-धन्य मृदु बोलनि।
धन्य स्याम गुन गुनि कै ल्याए, नागरि चतुर अमोलनि।
यह निरमोल मोल नहि॓ याकौ, भलो न यातै॓ कोई।
सूरदास याके पटतर कौ, तौ दीजै जौ होई ॥५३॥

अर्थ—मुरली मुझे बहुत प्रिय लगती है। यह अचानक (कही से) आकर (कृष्ण को) मिल गयी। (इस तरह के गुणो से भरी) यह कहाँ थी। इसके माता-पिता धन्य हैं; यह (स्वयं) धन्य है; इसकी मीठी बोली धन्य है। कृष्ण धन्य हैं जो इस चतुर अनमोल नागरी (शिष्ट स्त्री) को ले आये। यह निरमोल है इसकी कोई कीमत नही है। इससे अच्छा और कोई नही है। सूरदास कहते हैं कि इसके समान जो हो वही इसकी समानता करे ॥५३॥

कमरी

धनि धनि यह कामरी मोहन स्याम की।
यहै ओढ़ि जात बन, यहै सेज कौ बसन, यहै निवारिनि मेह-
बूँद छाँह घाम की।
याही ओट सहत सिसिर-सीत, याही गहने हरत लै धरत
ओट कोटि बाम की।
यहै जाति-पाँति, परिपाटी यहै सिखवत, सूरज प्रभु के यहै
सब बिसराम की ॥५४॥

अर्थ—यह कृष्ण की कमरी धन्य है। इसे ओढकर (कृष्ण) वन जाते हैं। यही (उनके) सेज का वस्त्र है। यही बादल की बूंदो का निवारण करने वाली है तथा

धूप में छाया (करने वाली है)। इसी की ओट में (कृष्ण) शीत ऋतु की ठंडी सहते है। (इसी की सहायता से) कृष्ण हजारों स्त्रियो के आभूषण चुराकर इसी की ओट मे लाकर रखते हैं (अर्थात् छिपाते है)। यही जाति-पाँति तथा परिपाटी सिखाती है। सूर के प्रभु कृष्ण के सब विश्रामों का यह एक मात्र उपाय है ॥५४॥

यह कमरी कमरी करि जानति।
जाके जितनी बुद्धि हृदय मैं, सौ तितनौ अनुमानति।
या कमरी कैं एक रोम पर, वारौं चीर पटंबर।
सो कमरी तुम निंदति गोपी, जो तिहुँ लोक अडंबर।
कमरी कैं बल असुर सँहारे, कमरिहिं तैं सब भोग।
जाति-पाँति कमरी सब मेरी, सूर सबै यह जोग ॥५५॥

अर्थ—इस कमरी को (कुछ लोग) केवल कमरी ही करके जानते है। जिसके हृदय में जितनी बुद्धि है वह उतना ही अनुमान लगाता है। इस कमरी के एक रोम पर चीर तथा रेशमी वस्त्र न्योछावर कर दूँ। गोपी उसी कमरी की तुम निन्दा करती हो जो तीनों लोकों का आच्छादन है। कमरी के बल से असुरों का नाश किया। कमरी ही से सभी भोग हैं। मेरी जाति-पाँति सब कुछ कमरी ही है। सूरदास कहते हैं कि यही सब प्रकार का योग है ॥५५॥

चीर-हरन

भवन रवन सबही बिसरायौ।
नँद-नंदन जब तैं मन हरि लियौ, बिरथा जनम गँवायौ।
जप, तप, व्रत, संजम, साधन तैं, द्रवति होत पाषान।
जैसें मिलैं स्याम सुदर बर, सोइ कीजै, नहिँ आन।
यहै मंत्र दृढ़ कियौ सवनि मिलि, यातैं होइ सुहोइ।
वृथा जनम जग मैं जिनि खोवहु, ह्याँ अपनी नहिँ कोइ।
तव प्रतीत सवहिनि कौं आइ, कीन्हौ दृढ़ बिस्वास।
सूर स्यामसुदर पति पावैं, यहै हमारी आस ॥५६॥

अर्थ—सभी गोपियो ने घर और पति को भुला दिया। जब से नन्द के पुत्र कृष्ण ने मन हर लिया (तब से लगता है कि) सारा जीवन व्यर्थ है। जप, तप, व्रत संयम तथा (अन्य) साधनो से पत्थर पिघल जाता है। जैसे कृष्ण वर (पति) के रूप मे मिले, वही कीजिए, दूसरा कुछ नही। सव गोपियो ने मिलकर यही मन्त्र दृढ किया इसी से जो होगा, सो होगा। संसार मे व्यर्थ में जन्म मत खोओ, यहाँ पर अपना कोई नही है। तब सभी को ज्ञान आया तथा सव ने दृढ विश्वास कर लिया। सूरदास कहते हैं श्यामसुन्दर हमे (गोपियो को) पति रूप मे मिलें यही हमारी आशा है ॥५६॥

जमुना तट देखे नँद नदन।
मोर-मुकुट मकराकृत-कुंडल, पीत-बसन तन चदन।

लोचन तृप्त भए दरसन तैं उर की तपनि बुझानी।
प्रेम-मगन तब भईं सुंदरी, उर गदगद, मुख-बानी।
कमल-नयन तट पर हैं ठाढे, सकुचहिं मिलि ब्रज नारी।
सूरदास-प्रभु अंतरजामी, व्रत-पूरन पगधारी ।।५७।।

अर्थ—(गोपियो ने) कृष्ण को यमुना के तट पर देखा। (सिर पर) मोर का मुकुट, (कान मे) मकर के आकार का कुण्डल, शरीर मे पीताम्बर तथा चन्दन धारण करने वाले (कृष्ण) के दर्शन से आँखे तृप्त हो गयी तथा हृदय की तपन बुझ गयी। तब सुन्दरियाँ प्रेम मे डूब गईं तथा उनके हृदय गद्‌गद् हो गये। वाणी, मुख मे ही रह गयी। कमल के समान नेत्र वाले कृष्ण तट पर खडे हैं, मिलने से ब्रज की स्त्रियो में संकोच हो रहा है। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण अन्तर की बात जानने वाले हैं, उन्होने व्रत पूरा करने के लिए कदम बढाया ।।५७।।

बनत नहिँ जमुना कौ ऐबौ।
सुंदर स्याम घाट पर ठाढे, कहौ कौन बिधि जैबौ।
कैसैं बसन उतारि धरैं हम, कैसैं जलहिँ समैबौ।
नँद नंदन हमकौं देखैंगे, कैसैं करि जु अन्हैबौ।
चोली, चीर, हार लै भाजत, सो कैसैं करि पैबौ।
अकन भरि-भरि लेत सूर प्रभु, काल्हि न इहिँ पथ ऐबौ ।।५८।।

अर्थ—यमुना का आना (हम गोपियों के लिए) ठीक नही लगता है। सुन्दर कृष्ण घाट पर खडे हैं, कहो किस तरह जाना होगा। हम लोग वस्त्रों को उतारकर कैसे रखे और जल मे कैसे पैठे। कृष्ण हम लोगों को देखेगे (इस दशा मे) स्नान कैसे होगा। चोली, चीर, हार लेकर (कृष्ण) भागते हैं। इन सब को कैसे पायेगे। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण (सब गोपियो) को गोद मे भर लेते हैं (आलिगन कर लेते है) कल इस रास्ते से आना नही होगा ।।५८।।

नीकैं तप कियौ तनु गारि।
आपु देखत कदम पर चढि, मानि लियौ मुरारि।
वर्ष भर व्रत-नेम-संजम, स्रम कियौ मोहिँ काज।
कैसे हूँ मोहिँ भजै कोऊ, मोहिँ बिरद की लाज।
धन्य व्रत इन कियौ पूरन, सीत तपति निवारि।
काम-आतुर भजीं मोकौं, नव तरुनि ब्रज-नारि।
कृपा-नाथ कृपाल भए तब, जानि जन की पीर।
सूर-प्रभु अनुमान कीन्हौ, हरौं इनके चीर ।।५९।।

अर्थ—शरीर को गलाकर (गोपियो) ने बहुत तप किया। (कृष्ण ने) कदम पर चढ़कर (जब) देखा तब उनकी (तपस्या) को मान लिया। (कृष्ण कहते है) पूरे साल (तुम लोगो ने) मेरे लिए व्रत, नियम तथा संयम किया। मुझे किसी भी तरह कोई

भजे मुझे तो अपने विरद को चिन्ता है ही। शीत तथा गर्मी का त्याग करके इन्होने अपना व्रत पूरा कर लिया इसलिये ये धन्य हैं। व्रज की नवयुवती स्त्रियो ने मुझे कामातुर होकर भजा है। कृपा के नाथ तथा कृपा के पालन करने वाले कृष्ण ने जनों (भक्त जनो) की पीड़ा को जानकर यह निश्चय किया कि इनके (गोपियो के) चीर को हरूं ॥५६॥

बसन हरे सब कदम चढ़ाए।
सोरह सहस गोप-कन्यनि के, अंग अभूषन सहित चुराए।
नीलांवर, पाटंवर, सारी, सेत पीत चुनरी, अरुनाए।
अति ब्रिस्तार नीप तरु तामैं, लै-लै जहाँ तहाँ लटकाए।
मनि आभरन डार-डारनि प्रति, देखत छबि मनहीं अँटकाए।
सूर, स्याम जु तिनि व्रत पूरन, कौ फल डारनि कदम फराए ॥६०॥

अर्थ—सब वस्त्रो को हरकर (कृष्ण ने) कदम पर चढा दिया। सोलह हजार कन्याओं के अङ्ग आभूषणो को एक साथ चुरा लिया। नीले वस्त्र, रेशमी वस्त्र, साडी, सफेद, पीली तथा लाल चुनरी (सभी प्रकार के वस्त्रों को) ले लेकर अत्यधिक फैले हुए कदम्ब के वृक्ष पर जहाँ तहाँ लटका दिया। मणि से बने गहनों को प्रत्येक डार पर अँटका कर मन से उसी की छवि देखते हैं। सूरदास कहते हैं कि उन गोपियों के व्रत को पूर्ण करने के लिये (व्रत) फल कदम्ब की डालों में फला दिया ॥६०॥

हमारे अम्बर देहु मुरारी।
लै सब चीर कदम चढ़ि बैठे, हम जल-माँझ उघारी।
तट पर बिना बसन क्यौं आवैं, लाज लगति है भारी।
चोली हार तुमहिं कौं दीन्हौं, चीर हमहिं द्यौ डारी।
तुम यह बात अचम्भौ भाषत, नाँगी आवहु नारी।
सूर स्याम कछु छोह करौ जू, सीत गई तनु मारी ॥६१॥

अर्थ—(गोपियाँ कृष्ण से विनती करती हैं) मुरारी हम लोगो के वस्त्रों को दे दो। सब वस्त्रों को चुराकर (तुम) कदम्ब पर चढ़कर बैठे हो, हम लोग जल के बीच बिना वस्त्र के (उघारी) हैं। तट पर बिना वस्त्र के कैसे आवे, क्योकि हमें बहुत लाज लग रही है। चोली, हार तुम्ही को दे दिया लेकिन चीर तो हमें दे डालो। तुम यह आश्चर्य से भरी बात कह रहे हो कि नारियाँ नङ्गी ही बाहर आओ। सूरदास कहते हैं कि (गोपियाँ विनय करती हैं) कृष्ण कुछ दया करो, हमारे शरीर में ठण्डी लग गयी है ॥६१॥

लाज ओट यह दूरि करौ।
जोइ मैं कहौं करौ तुम सोई, सकुच बापुरिहि कहा करौ।
जल तैं तीर आइ कर जोरहु, मैं देखौं तुम बिनय करौ।
पूरन व्रत अब भयौ तुम्हारौ, गुरुजन सका दूरि करौ।

अव अंतर मोसौं जनि राखहु, वार-वार हठ वृथा करौ।
सूर स्याम कह्यौ चीर देत हौं, मौ आगे सिँगार करौ ।।६२।।

अर्थ--(कृष्ण गोपियो से कहते हैं) यह लाज का अन्तर दूर कर दो। जो मैं कहूँ वही करो, तुम बेचारी संकोच क्यो करती हो। जल से तीर पर आकर हाथ जोड़ो। तुम लोग विनय करो हम देखें। अब तुम्हारे व्रत पूरे हो गये, गुरुजनों की शंका दूर कर दो। अब हमसे कोई भेद न रखो। वार-वार व्यर्थ ही हठ करती हो। सूरदास कहते हैं (कृष्ण ने कहा) चीर दे रहा हूँ मेरे सामने शृङ्गार करो ।।६२।।

व्रत पूरन कियौ नंद-कुमार। जुवतिनि के मेटे जंजार।।
जप तप करि अव जनि तन गारौ। तुम घरनी मैं कंत तुम्हारौ।।
अंतर सोच दूरि करि डारौ। मेरो कह्यौ सत्य उर धारौ।।
सरद-रास तुम आस पुराऊँ। अकन भरि सवकौं उर लाऊँ।।
यह सुनि सव मन हरष वढ़ायौ। मन-मन कह्यौ कृस्न पति पायौ।।
जाहु सवै घर घोष कुमारी। सरद-रास देहौं सुख भारी।।
सूर स्याम प्रगटे गिरिधारी। आनँद सहित गईं घर नारी ।।६३।।

अर्थ--नन्द कुमार कृष्ण ने (युवतियों के) व्रत को पूरा कर दिया। तथा उनके (सव) जंजाल को मिटा दिया। (कृष्ण कहते है) अव जप-तपकरके अपने शरीर को गलाओ मत। तुम पत्नी हो मैं तुम्हारा पति हूँ। अन्तर की चिन्ता को दूर कर डालो। मेरे कहने को सत्य मानकर हृदय मे धारण करो। शरद के रास मे तुम्हारी आशा पूरी करूँगा, गोद मे भरकर सवको हृदय से लगाऊँगा। यह सुनकर सव के मन का हर्ष बढ़ गया। (वे) अपने-अपने मन मे कहने लगी कि कृष्ण पति रूप मे मिल गये। सव गोपियाँ अपने घर जाओ। शरद के रास मे भरपूर सुख दूँगा। सूरदास कहते है कि कृष्ण के प्रकट होने पर गोपियाँ आनन्द सहित अपने घर गयी ।।६३।।

गोवर्द्धन धारण

वाजति नद-अवास वधाई।
वैठे खेलत द्वार आपनैं, सात वरस के कुँवर कन्हाई।
वैठे नंद सहित वृषभानुहिं, और गोप वैठे सब आई।
थापैं देत घरनि के द्वारैं, गावतिं मंगल नारि वधाई।
पूजा करत इंद्र की जानी, आए स्याम तहाँ अतुराई।
वार वार हरि वूझत नंदहिं, कौन देव की करत पुजाई।
इंद्र वड़े कुल-देव हमारे, उनतैं सव यह होति वड़ाई।
सूर स्याम तुम्हरे हित कारन, यह पूजा हम करत सदाई ।।६४।।

अर्थ--नन्द के घर वधाई वजती है। सात वर्ष के कृष्ण द्वार पर बैठे खेल रहे हैं। नन्द के साथ वृषभानु बैठे है, अन्य गोप भी आकर वैठ गये। स्त्रियाँ घर के द्वारों पर थाप देती हैं और मङ्गल तथा वधाई गा रही हैं। (उन्हे) इन्द्र की पूजा करते हुए

जानकर कृष्ण आतुर होकर वहाँ आये। बार-बार कृष्ण नंद से पूछते है कि किस देवता की पूजा कर रहे हो। (नंद उत्तर देते हैं) इंद्र हमारे बड़े कुल देवता हैं उन्ही से इतनी बडाई होती है। कृष्ण तुम्हारे ही हित के लिए, यह पूजा हम सदा करते है ॥६४॥

मेरौ कह्यौ सत्य करि जानौ।
जौ चाहौ ब्रज की कुसलाई, तौ गोबर्धन मानौ।
दूध दही तुम कितनी लैहौ, गोसुत बढ़ैं अनेक।
कहा पूजि सुरपति सैं पायौ, छाँड़ि देहु यह टेक।
मुँह माँगे फल जौ तुम पावहु, तौ तुम मानहु मोहिं।
सूरदास प्रभु कहत ग्वाल सौं, सत्य बचन करि दोहिं ॥६५॥

अर्थ—(कृष्ण कहते हैं) मेरी बात सत्य करके जानो। यदि ब्रज की कुशलता चाहते हो तो गोवर्द्धन को (देवता की तरह) मानो। दूध, दही तुम कितना (भी) लो, गायों के बछड़े अनेक प्रकार से बढ़े गे। इंद्र की पूजा से तुम लोगो ने क्या पाया, यह टेक छोड़ दो। मुँह माँगा फल यदि तुम पाओ तो मेरा कहना सही मानो। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण ग्वालो को सौगन्ध खाकर समझाते है कि बात सत्य है ॥६५॥

बिप्र बुलाइ लिए नँदराइ।
प्रथमारम्भ जज्ञ कौ कीन्हौ, उठे बेद-धुनि गाइ।
गोबर्धन सिर तिलक चढ़ायौ, मेटि इंद्र ठकुराइ।
अन्नकूट ऐसौ रचि राख्यौ, गिरि की उपमा पाइ।
भाँति-भाँति व्यंजन परसाएँ, कापैं बरन्यौ जाइ।
सूर स्याम सौं कहत ग्वाल गिरि जेवहिं कहौ बुझाइ ॥६६॥

अर्थ—नन्द ने ब्राह्मणो को बुला लिया। पहले यज्ञ का आरम्भ किया, (सब) वेद की ध्वनि गा उठे। इंद्र के स्वामित्व को मिटाकर गोवर्द्धन के सिर पर तिलक लगाया। अन्न के पिण्ड को इस प्रकार बनाया जो पर्वत की उपमा पाए। तरह-तरह के भोजन को परोसा जिसका वर्णन किससे किया जा सकता है। सूरदास कहते हैं कि ग्वाल, कृष्ण से कह रहे है कि पर्वत को समझा कर कहो कि वह जेए (खाना खाए) ॥६६॥

गिरिबर स्याम की अनुहारि।
करत भोजन अधिक रुचि यह, सहस भुजा पसारि।
नंद कौ कर गहें ठाढ़े, यहै गिरि कौ रूप।
सखी ललिता राधिका सौं, कहति देखि स्वरूप।
यहै कुंडल, यहै माला, यहै पीत पिछौरि।
सिखर सोभा स्याम की छबि, स्याम-छबि गिरि जोरि।
नारि बदरौला रही, वृषभानु-घर रखवारि।
तहाँ तैं उहिं भोग अरप्यौ, लियौ भुजा पसारि।

राधिका-छबि देखि भूली, स्याम, निरखैं ताहि।
सूर प्रभु-बस भई प्यारी, कोर-लोचन चाहि।।६७।।

अर्थ—श्रेष्ठ पर्वत (गोवर्द्धन) कृष्ण के ही समरूप है। यह अपनी हजारो भुजा पसार कर भोजन करता है। नन्द का हाथ पकडे खडे यही गिरि का रूप है। सखी ललिता राधा से इस रूप को देखकर कहती है। यही कुण्डल, यही माला, यही पीताम्बर पर्वत की शोभा है जो कृष्ण की भी है। बदरौला नाम की नारी वृषभानु के घर की रखवाली करती थी उसने वही से भोग चढाया उसे भुजा पसार कर ले लिया। राधिका इस छवि को देखकर भूल गयी, कृष्ण उन्हे देख रहे हैं। सूरदास कहते है कि प्यारी (राधा) नेत्र के कटाक्ष से देखकर कृष्ण के वश मे हो गयी।।६७।।

ब्रज बासिनि मोकौं बिसरायौ।
भली करी बलि मेरी जो कछु, सो सब लै परबतहिं चढ़ायौ।
मोसौं गर्व कियौ लघु प्रानी, ना जानियै कहा मन आयौ।
तैंतिस कोटि सुरनि कौ नायक, जानि-बूझि इन मोहिं भुलायौ।
अब गोपनि भूतल नहिं राखौं, मेरी बलि मोहिं नहिं पहुँचायौ।
सुनहु सूर मेरैं मारत धौं, परबत कैसें होत सहायौ।।६८।।

अर्थ—ब्रज वासियो ने मुझे (इंद्र को) भुला दिया। अच्छा किया जो मेरी बलि थी उसे लेकर सब पर्वत को चढा दिया। छोटे प्राणियों ने मुझसे गर्व किया। उनके मन मे न जाने क्या (भावना) आयी। तैतीस करोड देवताओ के नायक को जान-बूझकर इन लोगों ने भुला दिया। अब गोपो को धरती पर नही रहने दूंगा क्योकि उन्होने हमारी बलि हमारे पास नही पहुँचायी। सूरदास कहते है (इन्द्र कहते हैं) मेरे मारते समय देखता हूँ पर्वत कैसे सहायक होता है।।६८।।

गिरि पर बरषन लागे बादर।
मेघवर्त्त, जलवर्त्त, सैन सजि, आए लै लै आदर।
सलिल अखड धार धर टूटत, किये इद्र मन सादर।
मेघ परस्पर यहै कहत हैं, धोइ करहु गिरि खादर।
देखि देखि डरपत ब्रजवासी, अतिहिं भए मन कादर।
यहै कहत ब्रज कौन उबारै, सुरपति कियैं निरादर।
सूर स्याम देखैं गिरि अपनैं, मेघनि कीन्हौ दादर।
देव आपनौ नहीं सम्हारत, करत इद्र सौ ठादर।।६९।।

अर्थ—पर्वत पर बादल बरसने लगे। मेघवर्त्त तथा जलवर्त्त नामक प्रलयकालीन मेघ अपनी सेना सजाकर आदर पूर्वक लाये। अखड पानी की धारा से पृथ्वी टूटने लगी। (इससे) बादलो ने आदरपूर्वक इंद्र के मन की बात पूरी की। मेघ आपस मे यही कहते है कि पर्वत को धोकर नीची जमीन मे बदल दो। देख-देखकर ब्रज के निवासी डरने लगे तथा वे मन से बहुत अधीर हो गये। (वे) यही कहते है कि देवराज का

अनादर करने पर ब्रज की रक्षा कौन करेगा ? सूरदास कहते हैं कि कृष्ण अपने गिरि को देखे। बादलो ने निर्णय कर लिया है। (तुम लोग) अपने देवता को नही सम्हालते और इन्द्र से झगडा करते हो ॥६९॥

ब्रज के लोग फिरत बितताने।
गैयनि लै बन ग्वाल गए, ते धाए आवत ब्रजहिँ पराने।
कोउ चितवत नभ-तन चक्रित ह्वै, कोउ गिरि परत धरनि अकुलाने।
कोउ लै रहत ओट वृच्छि की, अंध-धुध दिसि बिदिस भुलाने।
कोउ पहुँचे जैसेँ तैसेँ गृह, कोउ ढूँढ़त गृह नहिँ पहिचाने।
सूरदास गोबर्धन-पूजा, कीन्हे कौ फल लेहु बिहाने ॥७०॥

अर्थ— ब्रज के लोग व्याकुल होकर घूम रहे है। गायो को लेकर जो ग्वाल वन में गये थे वे ब्रज को दौड़ते हुए चले आ रहे है। कोई चकित होकर नभ की ओर देखता है, कोई धरती पर आकुल होकर गिर पड़ता है। कोई वृक्षों की ओट लेता है, अँधेरे के धुंध मे दिशाये भूल गईं। कोई जैसे-तैसे घर पहुँचा और कोई ढूँढता हुआ (अपना) घर ही नही पहचान पा रहा है। सूरदास कहते हैं कि गोवर्द्धन पूजा का फल (तुम लोग) शीघ्र लो ॥७०॥

राखि लेहु अब नंदकिसोर।
तुम जौ इंद्र की मेटी पूजा, बरसत है अति जोर।
ब्रजवासी तुम तन चितवत हैँ, ज्यौँ करि चंद चकोर।
जनि जिय डरौँ नैन जनि गूँदौ, धरिहौँ नख की कोर।
करि अभिमान इंद्र झरि लायौ, करत घटा घनघोर।
सूर स्याम कह्यौ तुम कौँ राखौँ, बूँद न आवै छोर ॥७१॥

अर्थ (ब्रजवासी कृष्ण से निवेदन करते हैं) कृष्ण अब रक्षा करो। तुमने जो इंद्र की पूजा मिटायी (इसी से) बहुत जोर से बरस रहा है। ब्रजवासी तुम्हारी ओर उसी तरह से देखते हैं जैसे चकोर चन्द्रमा की तरफ (देखता है)। (कृष्ण ने कहा) मन मे डरो मत, न तो आँख मूँदो। नाखून की कोर से (पर्वत को) धारण करूँगा। इन्द्र अभिमान करके लगातार वर्षा कर रहा है और घनघोर घटा कर रहा है। पर मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा और एक बूंद भी न आएगी ॥७१॥

स्याम लियौ गिरिराज उठाइ।
धीर धरौ हरि कहत सबनि सौँ, गिरि गोबर्धन करत सहाइ।
नन्द गोप ग्वालनि के आगैँ, देव कह्यौ यह प्रगट सुनाइ।
काहे कौँ व्याकुल भएँ डोलत, रच्छा करै देवता आइ।
सत्य बचन गिरि-देव कहत हैँ, कान्ह लेहि मोहिँ कर उचकाइ।
सूरदास नारी-नर ब्रज के, कहत धन्य तुम कुँवर कन्हाइ ॥७२॥

अर्थ—कृष्ण ने पर्वतराज गोवर्द्धन को उठा लिया। कृष्ण सबसे कहते हैं कि धैर्य धरो, गोवर्द्धन पर्वत सहायता कर रहा है। नंद, गोप तथा ग्वालो के सामने देव ने यह प्रत्यक्ष सुनाकर कहा। (तुम लोग) व्याकुल होकर क्यो घूमते हो देवता आकर रक्षा करता है। गिरि देवता सत्य वचन कहते हैं कि कृष्ण मुझे हाथ से उठाकर ऊँचा कर दे। सूरदास कहते है कि व्रज के नर और नारी कृष्ण से कहते हैं कि तुम धन्य हो ॥७२॥

गिरि जनि गिरै स्याम के कर तैं।
करत विचार सबै ब्रजवासी, भय उपजत अति उर तैं।
लै-लै लकुट ग्वाल सब धाए, करत सहाय जु तुरतैं।
यह अति प्रबल, स्याम अति कोमल, रबकि रबकि हरबर तैं।
सप्त दिवस कर पर गिरि धारयौ, बरसि थक्यौ अम्बर तैं।
गोपी ग्वाल नंद-सुत राख्यौ, मेघ-धार जलधर तैं।
जमलार्जुन दोउ सुत कुवेर के, तेउ उखारे जर तैं।
सूरदास प्रभु इन्द्र-गर्ब हरिं, ब्रज राख्यौ करबर तैं ॥७३॥

अर्थ—पर्वत कृष्ण के हाथ से गिर न जाय। सभी ब्रजवासी (ऐसा) विचार करते हैं और हृदय मे अत्यधिक भय पैदा हो रहा है। लाठी ले लेकर सभी ग्वाल दौड़े और तुरन्त सहायता करने लगे। यह (पर्वत) अत्यन्त प्रबल है, और कृष्ण अत्यन्त कोमल हैं, हड़बड़ मे यह कँपता है। सात दिन तक पर्वत को (कृष्ण ने) हाथ पर रखा। (बादल) आकाश से बरसते-बरसते थक गये। कृष्ण ने गोपी, ग्वाल आदि को बादल की जलधारा से बचाया। जमल तथा अर्जुन कुवेर के दोनो पुत्रों को जड़ से उखाड़ दिया। सूरदास कहते हैं कि प्रभु ने इंद्र के गर्व को हर कर संकट से ब्रज की रक्षा की ॥७३॥

मेघनि जाइ कही पुकारि।
दीन ह्वै सुरराज आगैं, अस्त्र दीन्हे डारि।
सात दिन भरि बरसि ब्रज पर, गई नैकुँ न झारि।
अखँड धारा सलिल निझरयौ, मिटी नहिं लगारि।
धरनि नैंकु न बूँद पहुँची, हरषे ब्रज-नर-नारि।
सूर घन सब इन्द्र आगैं, करत यहै गुहारि ॥७४॥

अर्थ—बादलो ने जाकर पुकार कर कहा और दीन होकर इन्द्र के आगे अस्त्र डाल दिये। सात दिन तक (हमने) ब्रज पर वर्षा की (ब्रज पर) कोई आँच नही आयी। अखंड धारा से पानी बरसाया, उसका क्रम टूटा नही। (लेकिन) धरती पर तनिक (भी) बूँद नही पहुँची, (इससे) ब्रज के नर-नारी प्रसन्न हो गये। सूरदास कहते हैं कि इन्द्र के आगे बादल यही गोहार करते हैं ॥७४॥

घरनि घरनि ब्रज होति बधाई।
सात बरष को कुँवर कन्हैया, गिरिवर धरि जीत्यौ सुरराई।
गर्व सहित आयौ ब्रज बोरन, वह कहि मेरी भक्ति घटाई।
सात दिवस जल बरषि सिरान्यौ, तब आयौ पाइनि तर धाई।
कहाँ कहाँ नहिं संकट मेटत, नर-नारी सब करत बड़ाई।
सूर स्याम अब कैं ब्रज राख्यो, ग्वाल करत सब नंद दोहाई ।।७५।।

अर्थ—ब्रज के घर-घर में बधाई हो रही है। सात वर्ष के कृष्ण ने गोवर्द्धन को धारण करके इन्द्र को जीत लिया। गर्व के साथ (इन्द्र के बादल) ब्रज को डुबाने के लिए आये थे। उसने (इन्द्र ने) कहा कि मेरी भक्ति को घटा दिया। सात दिन तक जल बरसा कर निराश हो गये तब दौड़कर पैरो के नीचे आये। कहाँ-कहाँ (कृष्ण) संकट नही मिटाते, नर-नारी सब बडाई करते हैं। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण ने अब की बार ब्रज को रख लिया, (इससे) सभी ग्वाल नन्द की दुहाई दे रहे हैं ।।७५।।

(तेरैं) भुजनि बहुत बल होइ कन्हैया।
बार-बार भुज देखि तनक सैं, कहति जसोदा मैया।
स्याम कहत नहिं भुजा पिरानी, ग्वालिन कियौ सहैया।
लकुटिनि टेक सबनि मिलि राख्यौ, अरु बाबा नँदरैया।
मोसौं क्यौं रहतौ गोबरधन, अतिहिं बड़ौ यह भारी।
सूर स्याम यह कहि परबोध्यौ, चकित देखि महतारी ।।७६।।

अर्थ—बार-बार छोटी-छोटी भुजाओ को देखकर यशोदा माता कहती है कन्हैया तुम्हारी बाहो में बहुत बल हो। कृष्ण कहते हैं कि हमारी भुजा दुखी नही (क्योकि) ग्वालो ने हमारी सहायता की। सब ने मिलकर लाठी की टेक लगा रखी थी और बाबा नन्द ने भी (सहायता की थी)। मुझसे गोवर्द्धन कैसे रखा जाता क्योकि वह बहुत भारी है। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण ने यह कहकर चकित माता को समझाया ।।७६।।

मातु पिता इनके नहिं कोइ।
आपुहिं करता, आपुहिं हरता, त्रिगुन रहित हैं सोइ।
कितिक बार अवतार लियौ ब्रज, ये हैं ऐसे ओइ।
जल-थल, कीट-ब्रह्म के व्यापक, और न इन सरि होइ।
बसुधा-भार-उतारन-काजैं, आपु रहत तनु गोइ।
सूर स्याम माता-हित-कारन, भोजन माँगत रोइ ।।७७।।

अर्थ—इनके (कृष्ण के) माता-पिता कोई नही हैं। ये स्वय कर्त्ता है, हर्त्ता हैं, ये तीनों गुणो से रहित हैं। इन्होंने कितनी बार ब्रज मे अवतार लिया है, ये वही है। जल और स्थल तथा कीट और ब्रह्म सर्वत्र ये व्याप्त हैं और कोई इनके समान नही है। पृथ्वी के भार को उतारने के लिए अपने शरीर को छिपाकर रहते हैं। सूरदास कहते हैं कि माता को प्रसन्न करने के लिए भोजन रोकर माँगते है ।।७७।।

सुरगन सहित इन्द्र ब्रज आवत ।
धवल बरन ऐरावत देख्यौ उतरि गगन तैं धरनि धँसावत ।
अमरा-सिव-रबि-ससि चतुरानन, हय-गय बसह हंस-मृग जावत ।
धर्मराज, बनराज, अनल, दिव, सारद, नारद, सिव-सुत भावत ।
मेढ़ा, महिषि, मगर, गुदरारौ, मोर, आखुमन वाहन, गावत ।
ब्रज के लोग देखि डरपे मन, हरि आगैं कहि कहि जु सुनावत ।
सात दिवस जल बरषि सिरान्यौ, आवत चल्यौ ब्रजहिं अतुरावत ।
घेरी करत जहाँ तहँ ठाढे, ब्रजवासिनि कौं नाहिं बचावत ।
दूरहिं तैं वाहन सौं, उतर्चौ, देवनि सहित चल्यौ सिर नावत ।
आइ पर्चौ चरननि तर आतुर, सूरदास-प्रभु सीस उठावत ।।७८।।

अर्थ—देवता गण सहित इंद्र ब्रज की ओर आते है । सफेद रंग के ऐरावत हाथी को देखो जिसे गगन से उतारकर पृथ्वी पर पैठा रहे (प्रवेश करा रहे) हैं । देवतागण, शिव, सूर्य, चन्द्र, ब्रह्मा, हाथी, घोड़े, बैल, हस, मृग जितने हैं (वे सब) तथा धर्मराज, वनराज, अग्नि, दिव, नारद, सारद, गणेश आदि प्रार्थना करते हैं । भेड, भैंसा, मगर, गुडुरी नाम की चिडिया, मोर, चूहा, आदि वाहन गाते है । ब्रज के लोग इन सब को देखकर डर गये । कृष्ण के आगे कह कहकर सुनाते है । सात दिन तक जल की वर्षा समाप्त करके ब्रज को आतुर मरता हुआ (इन्द्र) चला आ रहा है । घेर कर (निंदा करते) खड़े हुए ब्रजवासियो से अपने को बचाता नही है । दूर से ही सवारी से उतरकर (इन्द्र) देवताओ के साथ सिर झुकाते हुए चले । आकर चरणों के नीचे आतुर होकर गिर पडे । सूरदास कहते हैं कि कृष्ण सिर पकडकर उठाते हैं ।।७८।।

रास लीला

जवहिं बन मुरली स्रवन परीं ।
चकित भईं गोप कन्या सब, काम-धाम बिसरीं ।
कुल मर्जाद वेद की आज्ञा, नैंकहुँ नहीं डरीं ।
स्याम-सिंधु, सरिता-ललना-गन, जल की ढरनि ढरीं ।
अँग-मरदन करिबे कौं लागीं, उबटन तेल धरीं ।
जो जिहिं भाँति चली सो तैसेंहिं,निसि बन कौं जुखरीं ।
सुत पति-नेह, भवन-जन-सका, लज्जा नाहिं करीं ।
सूरदास-प्रभु मन हरि लीन्हौ, नागर नवल हरीं ।।७९।।

अर्थ—जैसे ही बन (मे बजती हुई) मुरली (की ध्वनि) कान में पडी । (तब) गोप की कन्याये चकित हो गयी, और सभी काम-धधा भूल गयी । कुल की मर्यादा तथा वेद की आज्ञा को तनिक भी नही डरी । कृष्ण रूपी सागर की ओर ब्रज की स्त्री रूपी नदियां जल की तरह ढल गयी । अग का मरदन करने मे लगी स्त्रियो ने उबटन तथा तेल रख दिया । जो जैसी थी वैसे ही रात मे वन की ओर चल पड़ी । पुत्र तथा पति

के स्नेह, घर के लोगों की शंका से लज्जा नही की। सूरदास कहते है कि चतुर तथा सुन्दर कृष्ण ने (गोपियो) के मन को हर लिया ॥७६॥

चली बन वेनु सुनत जब धाइ।
मातु पिता-बाधव अति त्रासत, जाति कहाँ अकुलाइ।
सकुच नहीं, संका कछु नाहीं, रैनि कहाँ तुम जाति।
जननी कहति दई की घाली, काहे कौं इतराति।
मानति नहीं और रिस पावति, निकसी नातौ तोरि।
जैसें जल-प्रवाह भादौं कौ, सो को सकै बहोरि।
ज्यौं केंचुरी भुअंगम त्यागत, मात पिता यौं त्यागे।
सूर स्याम कैं हाथ बिकानी, अलि अम्बुज अनुरागे ॥८०॥

अर्थ—वंशी सुनकर जब गोपियाँ वन की ओर दौड़कर चली, (तब) माता-पिता तथा बंधु आदि भयभीत करते हुए (पूछते है) आकुल होकर तुम लोग कहाँ जा रही हो। तुम्हे संकोच नही और न कुछ शका है, रात मे तुम लोग कहाँ जा रही हो। माताये कहती हैं दैव की मारी क्यो इतराती हो। लेकिन (गोपियाँ) कहना नही मानती (जिससे) माताये और क्रोधित होती है। वे सब नाता तोड़कर निकल पडी। जैसे भादो के जल प्रवाह को कौन लौटा सकता है। जिस प्रकार सांप केचुली त्याग देता है वैसे गोपियो ने माता-पिता को त्याग दिया। सूरदास कहते है कि वे सब कृष्ण के हाथ बिक गयी जिस प्रकार भौरा कमल के अनुराग से (उसके हाथ बिक जाता है) ॥८०॥

मातु-पिता तुम्हरे धौं नाहीं।
बारम्बार कमल-दल-लोचन, यह कहि-कहि पछिताहीं।
उनकैं लाज नहीं, बन तुमकौं आवन दीन्ही राति।
सब सुंदर, सबै नवजोबन, निठुर अहिर की जाति।
की तुम कहि आईं, की ऐसेंहिं कीन्ही कैसी रीति।
सूर तुमहिं यह नहीं बूझियै, करी बड़ी बिपरीति ॥८१॥

अर्थ—(कृष्ण गोपियो से पूछते हैं) सम्भवतः तुम्हारे माता-पिता नही है। बार-बार यह कहकर कमल के दल के समान आँख वाले कृष्ण पछताते है। उन लोगो को लाज नही जो तुम्हे रात मे वन आने दिया। सभी सुन्दरियाँ है तथा युवतियाँ है। अहीर की जाति बडी निठुर है। तुम लोग कहकर आयी हो या ऐसे ही चली आयी। (तुमने) कैसी रीति अपनायो। सूरदास कहते हैं कि (कृष्ण पूछते है) तुम लोगो को जान नही पड़ा तुमने बड़ा उलटा काम किया ॥८१॥

इहिं विधि वेद-मारग सुनौ।
कपट तजि पति करौ पूजा, कहा तुम जिय गुनौ।
कंत मानहु भव तरौगी, और नाहिं उपाइ।
ताहि तजि क्यौं बिपिन आईं, कहा पायौ आइ।

बिरध अरु बिन भागहूँ को, पतित जो पति होइ।
जऊ मूरख होइ रोगी, तजै नाहीं जोइ।
यहै मैं पुनि कहत तुम सौं, जगत मैं यह सार।
सूर पति-सेवा बिना, क्यौं तरौगी ससार ।।८२।।

अर्थ—(कृष्ण कहते है) इस प्रकार वेद की रीति सुनो। कपट त्यागकर पति की पूजा करो (और) क्या तुम मन मे गुनती हो। पति मान करके भवसागर तर जाओगी और कोई उपाय नही है। उसे छोड़कर वन मे क्यों आई और यहाँ आने पर क्या मिला। बुड्ढा, अभागा, पतित, मूर्ख तथा रोगी कैसा भी पति हो उसको भी पत्नी के द्वारा नही छोडा जाना चाहिए। यही मैं तुमसे फिर कहता हूँ कि संसार मे यही सार है। सूरदास कहते हैं (कृष्ण समझाते है) पति की सेवा के बिना संसार को क्योकर पार करोगी ।।८२।।

तुम पावत हम घोष न जाहिँ।
कहा जाइ लैहैं हम ब्रज यह दरसन त्रिभुवन नाहिँ।
तुमहूँ तैं ब्रज हितू न कोऊ, कोटि कही नहिँ मानैं।
काके पिता, मातु हैं काकी, काहूँ हम नहिँ जानैं।
काके पति, सुत-मोह कौन कौ, घरही कहा पठावत।
कैसौ धर्म, पाप है कैसौ, आप निरास करावत।
हम जानैं केवल तुमहीं कौं, और बृथा ससार।
सूर स्याम निठुराई तजियै, तजियै बचन-विकार ।।८३।।

अर्थ—गोपियाँ उत्तर देती है कि तुम को पाते हुए हम अहीरो की बस्ती मे (वापस) नही जायेगी। ब्रज मे जाकर हम क्या पायेगी, यह (आपका) दर्शन संसार मे कही नही है। तुमसे अधिक हितकारक ब्रज मे और कोई नही है। आप हजारो बार कहे लेकिन हम मानती नही। किसके पिता (है) किसकी माता है। हम किसी को नही जानती। किसके पति, किसे पुत्र का स्नेह है और आप किसके घर भेजते है। कैसा धर्म, कैसा पाप, आप हमे निराश करते है। हम केवल आप ही को जानती है और संसार व्यर्थ है। हे कृष्ण निठुराई तथा उल्टी बातो को छोड़ दीजिए ।।८३।।

कहत स्याम श्रीमुख यह बानी।
धन्य-धन्य दृढ़ नेम तुम्हारौ, बिनु दामनि मो हाथ बिकानी।
निरदय बचन कपट के भाखे, तुम अपनैं जिय नैंकु न आनी।
भजीं निसक आइ तुम मोकौं, गुरुजन की संका नहिँ मानी।
सिंह रहै जंबुक सरनागत, देखी सुनी न अकथ कहानी।
सूर स्याम अंकन भरि लीन्हीं, बिरह अग्नि-झर तुरत बुझानी ।।८४।।

अर्थ—कृष्ण अपने सुन्दर मुख से यह वाणी कहते है। तुम लोगो के नियम दृढ है (इसलिए) तुम धन्य हो। बिना दाम के मेरे हाथ बिक गयी। कपट से भरे निर्दय

वचन हमने कहे लेकिन उसे मन में तनिक भी न लायी। गुरुजनों की शंका न मानकर तुम लोगों ने निशंक होकर मेरे पास आकर मुझे भजा। सिंह सियार की शरण में आये, ऐसी अकथ कहानी मैंने नही सुनी। सूरदास कहते है कि कृष्ण ने गोपियों को गोद मे भर लिया जिससे तुरन्त विरह अग्नि की ज्वाला बुझ गयी ।।८४।।

कियौ जिहिँ काज तप घोप नारी।
देहु फल हौँ तुरत लेहु तुम अब घरी, हरष चित करहु दुख देहु डारी।
रास रस रचौँ, मिलि सग बिलसौ, सबै वस्त्र हरि कहि जो निगम बानी।
हँसत मुख मुख निरखि, बचन अमृत बरषि, कृपा-रस भरे सारंग पानी।
व्रज-जुवति चहुँ पास, मध्य सुदर स्याम राधिका बाम अति छवि बिराजै।
सूर नव-जलद-तनु,सुभग स्यामल काति,इंदु-बहु-पाँति-बिच अधिक छाजै।।८५।।

अर्थ—जिस कार्य के लिए अहीर की नारियो ने तप किया, मैं उसका फल देता हूँ उसे तुम लोग इस अवसर पर लो। मन प्रसन्न करो तथा दुःखों को छोड़ दो। रास के रस को रचूंगा, मेरे साथ मिलकर विलास करो, वस्त्र हरते समय जो वेद-वाणी कही थी। कृपा के रस मे भरे हुए कमलपाणि कृष्ण वचन-रूपी अमृत की वर्षा करके प्रत्येक गोपी के मुख को देख-देखकर हँसते हैं। चारों ओर व्रज की युवतियाँ है, बीच मे कृष्ण है, बायी ओर राधिका है। (इस प्रकार) अत्यधिक छवि विराज रही है। सूरदास कहते हैं कि नये बादल के समान शरीर की सुन्दर साँवली कांति (कृष्ण) चन्द्रमा की बहुत सी पंक्तियों (गोपियो) के बीच अधिक शोभा दे रही है ।।८५।।

मानो माई घन घन अतर, दामिनि।
घन दामिनि दामिनि घन अंतर, शोभित हरि-व्रज भामिनि।
जमुन पुलिन मल्लिका मनोहर, सरद-सुहाई-जामिनि।
सुदर ससि गुन रूप-राग-निधि, अंग-अंग अभिरामिनि।
रच्यौ रास मिलि रसिक राइ सौँ, मुदित भईं गुन ग्रामिनि।
रूप-निधान स्याम सुंदर घन, आनँद मन बिस्रामिनि।
खजन-मीन-मयूर-हंस-पिक, भाइ-भेद गज-गामिनि।
को गति गनै सूर मोहन सँग, काम बिमोह्यौ कामिनि ।।८६।।

अर्थ—मानो बादल के बीच बिजली और बिजली के बीच बादल हो, इसी प्रकार कृष्ण व्रज की स्त्रियों के बीच शोभा देते है। यमुना का किनारा, मनोहर मल्लिका, शरद की सुहावनी रात, सुन्दर चन्द्रमा एवं गुणरूप तथा प्रेम की राशि और अग अंग को आनंद देने वाली गोपियो ने कृष्ण के साथ रास रचाया और इससे गुण के समूहों से युक्त युवतियाँ प्रसन्न हो गयी। रूप के निधान अत्यन्त सुंदर कृष्ण के मन को (गोपियाँ) आनंद एवं विश्राम देने वाली है। खंजन, मछली, मोर, हंस, कोयल इन उपमानो को भुलाकर इस समय गोपियाँ गज गामिनी हैं। सूरदास कहते हैं कि मोहन के साथ होने वाली गति को कौन गिन सकता है ? कामिनियो को कामदेव ने मोहित कर लिया ।।८६।।

गरब भयौ ब्रजनारि कौं, तबहीं हरि जाना।
राधा प्यारी संग लिये, भए अंतर्धाना।
गोपिनि हरि देख्यौ नहीं, तब सब अकुलाई।
चकित होइ पूछन लगीं, कहँ गए कन्हाई।
कोउ मर्म जानैं नहीं, व्याकुल सब बाला।
सूर स्याम ढूँढ़ति फिरैं, जित-तित ब्रज-बाला ॥८७॥

अर्थ—(जब) ब्रज की नारियो को गर्व हो गया तभी कृष्ण ने जान लिया। राधा प्यारी को साथ लेकर वे अन्तर्ध्यान हो गये। गोपियाँ हरि को न देखकर व्याकुल हो गयी। चकित होकर पूछने लगी कि कृष्ण कहाँ गये। कोई मर्म को नही जानती हैं, (इससे) सभी गोपियाँ व्याकुल है। सूरदास कहते है कि गोपियाँ जहाँ-तहाँ (कृष्ण) को खोजती फिरती हैं ॥८७॥

तुम कहुँ देखे स्याम बिसासी।
तनक बजाइ बाँस की मुरली, लै गए प्रान निकासी।
कबहुँक आगैं, कबहुँक पाछैं, पग-पग भरति उसासी।
सूर स्याम-दरसन के कारन, निकसीं चंद-कला सी ॥८८॥

अर्थ—तुमने कही धोखेबाज कृष्ण को देखा है। तनिक बाँस की वंशी बजाकर वे प्राणो को निकाल ले गये। कभी आगे कभी पीछे (गोपियाँ) लम्बी साँस भरती हैं। सूरदास कहते हैं कि श्याम कृष्ण के दर्शन के लिए चन्द्रमा की कला के समान वे निकल पडी ॥८८॥

कहि धौं री बन बेलि कहूँ तैं, देखे हैं नँद-नंदन।
बूझहु धौं मालती कहूँ तैं, पाए हैं तन-चंदन।
कहि धौं कुंद, कदब, बकुल, बट, चंपक, ताल, तमाल।
कहि धौं कमल कहाँ कमलापति, सुन्दर नैन बिसाल।
कहि धौं री कुमुदिनि, कदली कछु, कहि बदरी करबीर।
कहि तुलसी तुम सब जानति हौ, कहँ घनस्याम सरीर।
कहि धौं मृगी मया करि हमसौं, कहि धौं मधुप मराल।
सूरदास-प्रभु के तुम सगी, हैं कहँ परम कृपाल ॥८९॥

अर्थ—वन की लताओं, निश्चय ही बताओ कि तुमने कृष्ण को कही देखा है। मालती तुम (तनिक) बूझो कि शरीर के लिए चन्दन के समान (कृष्ण) को तुमने कही पाया है। कुद, कदम्ब, बकुल, वट, चम्पा, ताल, तमाल तुम लोग (कृष्ण को) बताओ कहाँ है। कमल कहो लक्ष्मी के पति सुन्दर विशाल नयनो वाले कृष्ण कहाँ हैं। कुमुदिनी, कदली, बेर, कनैर (तुम लोग) कुछ कहो। तुलसी तुम सब कुछ जानती हो, घन के समान साँवले शरीर वाले कृष्ण कहाँ है। हिरणी हमसे प्रेम करके बताओ तथा

हे भ्रमर और मराल कहो कि कृष्ण कहाँ है। सूरदास तुम कृष्ण के साथी हो परम कृपाल कृष्ण कहाँ है ॥८६॥

स्याम सबनि कौं देखही, वै देखतिं नाहीं।
जहाँ तहाँ व्याकुल फिरैं, धीर न तनु माहीं।
कोउ बंसीबट कौं चली, कोउ बन घन जाहीं।
देखि भूमि वह रास की, जहँ-तहँ पग-छाहीं।
सदा हठीली, लाड़िली, कहि-कहि पछिताहीं।
नैन सजल जल ढारहीं, व्याकुल मन माहीं।
एक-एक ह्वै ढूँढ़हीं, तरुनी बिकलाहीं।
सूरज प्रभु कहुँ नहिं मिले, ढूँढ़ति द्रुम पाहीं ॥६०॥

अर्थ—कृष्ण सबको देखते है, लेकिन वे (गोपियाँ) नही देखती। जहाँ तहाँ व्याकुल होकर घूमती है, शरीर में धीरज नही है। कोई वंशीवट की ओर चली कोई घने वन में जाती हैं। वे रास की भूमि देखकर जहाँ तहाँ पग की छाया देखती हैं। (हम) सदा हठ करने वाली तथा दुलारी हैं यह कह कहकर पछताती है। नयनो से जल ढुलकाती हैं और मन से व्याकुल हैं। एक-एक करके ढूंढती है और (न पाने पर) युवतियाँ विकल हो जाती है। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ वृक्षों के बीच ढूंढती हैं लेकिन कृष्ण मिलते नही ॥६०॥

तब नागरि जिय गर्ब बढ़ायौ।
मो समान तिय और नहीं कोउ, गिरिधर मैं हीं बस करि पायौ।
जोइ-जोइ कहति करत पिय सोइ सोइ, मेरैं ही हित रास उपायौ।
सुन्दर, चतुर और नहिं मोसी, देह धरे कौ भाव जनायौ।
कबहुँक बैठि जाति हरि कर धरि, कबहुँ कहति मैं अति स्रम पायौ।
सूर स्याम गहि कंठ रहो तिय, कंध चढ़ौ यह बचन सुनायौ ॥६१॥

अर्थ—तब राधा के मन मे (कृष्ण) ने गर्व बढा दिया। वे समझती है मेरे समान कोई और स्त्री नही है। गिरिधर कृष्ण को मैंने ही वश मे किया है। जो-जो कहती हूँ कृष्ण वही-वही करते है। मेरे ही लिए (उन्होने) रास रचाया। मुझसे सुन्दर और चतुर और कोई नही है, क्योकि कृष्ण ने हमे शरीर धारण करने का भाव बता दिया। कभी कृष्ण के हाथ पकड़ कर बैठ जाती है, कभी कहती है मैंने अत्यधिक श्रम किया है। सूरदास कहते हैं कि राधा ने कृष्ण के गले से लिपट कर कहा कि मैं कन्धे पर चढ़ जाऊँ ॥६१॥

कहै भामिनी कंत सौं, मोहिं कध चढ़ावहु।
नृत्य करत अति स्रम भयो, ता स्रमहिं मिटावहु।
धरनी धरत बनै नहीं, पग अतिहिं पिराने।
तिया-बचन सुनि गर्ब के, पिय मन मुसुकाने।

मैं अविगत, अज, अकल हौं, यह मरम न पायौ।
भाव बस्य सब पै रहौं, निगमनि यह गायौ।
एक प्रान द्वै देह हैं, द्विविधा नहिं यामैं।
गर्व कियौ नरदेह तैं, मैं रहौं न तामैं।
सूरज-प्रभु अंतर भए, संग तैं तजि प्यारी।
जहँ की तहँ ठाड़ी रही, वह घोष-कुमारी ।।६२।।

अर्थ—स्त्री (राधा) पति से कहती है कि मुझे कन्धे पर चढ़ाओ। नाच करते-करते अत्यधिक परिश्रम हुआ उस थकावट को मिटाओ। पैर बहुत दर्द कर रहे है (जिससे) पृथ्वी पर धरते नही बनता। स्त्री के बचन सुनकर (पति) कृष्ण मन मे मुसकाये। मैं अज्ञात, अजन्मा, तथा अकल हूँ यह मर्म (गोपियो) ने नही पाया। भाव के वश सबके साथ रहता हूँ। वेदो ने यही गाया है। (हमारे बीच) प्राण एक है तथा शरीर दो है, इसमे कोई शंका नही है। (पर) मनुष्य के शरीर से जो गर्व करते हैं मैं उसमे नही रहता। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण प्यारी राधा का साथ छोडकर अंतर्ध्यान हो गये। वह अहीर की लड़की राधा जहाँ की तहाँ खड़ी रह गई ।।६२।।

जो देखैं द्रुम के तरैं, मुरझी सुकुमारी।
चकित भईं सब सुन्दरी, वह तौ राधा री।
याही कौं खोजति सबै, यह रही कहाँ री।
धाइ परीं सब सुदरी, जो जहाँ-तहाँ री।
तन की तनकहुँ सुधि नहीं, व्याकुल भईं बाला।
यह तौ अतिं वेहाल है, कहुँ गए गोपाला।
बार-बार बूझतिं सबै, नहिं बोलति बानी।
सूर स्याम काहैं तजी, कहि सब पछितानी ।।६३।।

अर्थ—जब (गोपियों ने) वृक्ष के नीचे देखा तो (उन्हे) मुरझायी हुई सुकुमारी (राधा) दिखाई पडी। सब सुन्दरियाँ चकित हो गयी कि यह तो राधा है। इसे ही सब खोजते हे, यह कहाँ थी। जो जहाँ थी वहाँ से सब सुन्दरियाँ दौड पडी। शरीर की तनिक भी याद नही, वालाये व्याकुल हो गयी। यह (राधा) तो अत्यधिक वेहाल है गोपाल कही चले गये। बार वार सभी पूछती हैं लेकिन वह नही बोलती। सूरदास कहते हैं (कि गोपियाँ सोचती है) कृष्ण ने इसे क्यो छोड़ दिया, यह कहकर सभी पछताती है ।।६३।।

केहिं मारग मैं जाउँ सखी री, मारग मोहिं बिसर्यौ।
ना जानैं कित ह्वै गए मोहन, जात न जानि पर्यौ।
अपनौ पिय ढूँढ़ति फिरौं, मोहिं मिलिबे कौ चाव।
काँटो लाग्यौ प्रेम कौ, पिय यह पायौ दाव।
वन डोंगर ढूँढ़त फिरी, घर-मारग तजि गाउँ।

बूझौं द्रुम, प्रति वेलि कोउ, कहै न पिय कौ नाउँ।
चकित भई, चितवत फिरी, व्याकुल अतिहिं अनाथ।
अब कैं जो कैसेहु मिलौं, पलक न त्यागौं साथ।
हृदय माँझ पिय-घर करौं, नैननि वैठक देउँ।
सूरदास प्रभु सँग मिलौं, वहुरि रास-रस लेउँ ॥९४॥

अर्थ—सखी मैं किस रास्ते से जाऊँ, मुझे मार्ग भूल गया है। (मैं) नही जानती कि मोहन किधर गये, जाते समय (मुझे) जान नही पडा। मैं अपने प्रिय को ढूँढती फिरती हूँ। मुझे मिलने की इच्छा है। मुझे प्रेम का काँटा गड़ गया, और प्रिय को यह मौका मिला। मैं गाँव को छोड़कर वन, पहाड़ी, तथा घर के रास्ते मे ढूँढती फिरी। (मैंने) वृक्षों से पूछा, प्रत्येक लता से पूछा, लेकिन कोई प्रिय के नाम को नही कहता। इसके बाद मैं) चकित हो गयी, (मेरी) निगाह फिर गयी और अत्यधिक असहाय होकर व्याकुल हो गयी। अबकी बार यदि कैसे (भी) मिलेगे तो पलभर भी साथ नही छोड़ूँगी। हृदय के बीच प्रिय के लिए घर बनाऊँगी और नयनों में वैठक दूँगी। सूरदास कहते हैं कि प्रभु के साथ मिलने पर फिर से रास का रस लूंगी ॥९४॥

कृपा सिंधु हरि कृपा करौ हो।
अनजानैं मन गर्व वढ़ायौ, सो जिनि हृदय धरौ हो।
सोरह सहस पीर तनु एकै, राधा जिव, सब देह।
ऐसी दसा देखि करुनामय, प्रगटौ हृदय-सनेह।
गर्व-हत्यौ तनु विरह प्रकास्यौ, प्यारी व्याकुल जानि।
सुनहु सूर अब दरसन दीजै, चूक लई इनि मानि ॥९५॥

अर्थ—कृपा के सागर कृष्ण कृपा करो। अज्ञान वश मन मे गर्व वढाया उसे हृदय में धारण मत करो। सोलह सहस्र गोपियाँ, पर सबके शरीर मे पीडा एक ही। और सब शरीर हैं, राधा ही मानो उनका प्राण है। ऐसी दशा देखकर करुणामय कृष्ण के हृदय मे स्नेह प्रकट हुआ। (कृष्ण ने गोपियों के) गर्व को समाप्त कर दिया और प्यारी को व्याकुल जानकर शरीर मे विरह प्रकाशित किया। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण सुनो, अब दर्शन दीजिए। इन लोगो ने अपनी भूल मान ली ॥९५॥

अंतर तैं हरि प्रगट भए।
रहत प्रेम के वस्य कन्हाई, जुवतिनि कौं मिलि हर्ष दए।
वैसोइ सुख सबकौं फिरि दीन्हौं, वहै भाव सब मानि लियौ।
वै जानति हरि संग तबहिं तैं, वहै वुद्धि सब, वहै हियौ।
वहै रास-मंडल-रस जानतिं, विच गोपी, विच स्याम धनी।
सूर स्याम स्यामा मधि नायक, वहै परस्पर प्रीति वनी ॥९६॥

अर्थ—ओट से कृष्ण प्रकट हो गये। कृष्ण प्रेम के वश रहते हैं। (उन्होने फिर युवतियों से मिलकर) (उन्हे) आनन्द दिया। सबको वैसा ही सुख फिर से दिया और

उसी भाव से सबको (अपनाकर) मान लिया। वे (गोपियाँ) हरि को पहले से ही साथ जानने लगी। सबकी वही बुद्धि और वही हृदय (हो गया)। फिर उसी रास मण्डल के रस को समझने लगी जिसमे (श्याम के) बीच मे गोपी और (गोपी के) बीच में श्याम (थे)। सूरदास कहते हैं कि श्याम और श्यामा के मध्य नायक कृष्ण का फिर वही परस्पर प्रेम बन गया ॥९६॥

आजु हरि अद्भुत रास उपायौ।
एकहिं सुर सब मोहित कीन्हे, मुरली नाद सुनायौ।
अचल चले, थकित भए, सब मुनिजन ध्यान भुलायौ।
चंचल पवन थक्यौ नहिँ डोलत, जमुना उलटि बहायौ।
थकित भयौ चंद्रमा सहित-मृग, सुधा-समुद्र बढ़ायौ।
सूर स्याम गोपिनि सुखदायक, लायक दरस दिखायौ ॥९७॥

अर्थ—आज कृष्ण ने अद्भुत रास रचाया। एक ही स्वर से सबको मोहित करके मुरली की ध्वनि सुनायी। (जिससे) न चलने वाले (जड) चलने लगे, चलने वाले थक गये और सब मुनि जनो का ध्यान भूल गया। चंचल पवन थककर (अब) नही डोलता है। जमुना को उलटा बहा दिया। हिरण सहित चन्द्रमा थक गया और अमृत के समुद्र को बढ़ा दिया। सूरदास कहते है गोपियो को सुख देने वाले कृष्ण ने सत्पात्र को दर्शन दिया ॥९७॥

बनावत रास मंडल प्यारौ।
मुकुट की लटक, झलक कुंडल की, निरतत नंद दुलारौ।
उर बनमाल सोह सुंदर बर, गोपिनि कैं सँग गावै।
लेत उपज नागर नागरि सँग, बिच-बिच तान सुनावै।
बंसीबट-तट रास रच्यौ है, सब गोपिनि सुखकारौ।
सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन सौं, भक्तनि प्रान अधारौ ॥९८॥

अर्थ—कृष्ण प्यारे रास मण्डल को बनाते हैं। मुकुट को झुकाते हुए, कुण्डल को झलकाते हुए, नन्द के दुलारे (कृष्ण) नाचते हैं। वक्ष स्थल पर श्रेष्ठ सुन्दर बनमाल सुशोभित है, (और कृष्ण) गोपियो के साथ गाते है। कृष्ण राधा के साथ नया स्वर भरते है, और बीच-बीच मे तान सुनाते है। सब गोपियो को सुख देने वाला रास (कृष्ण ने) बंसीबट के निकट रचा है। सूरदास कहते हैं कि प्रभु, तुमसे मिलने की आशा ही भक्तो के प्राण का आधार है ॥९८॥

रास रस स्रमित भईं व्रजबाल।
निसि सुख दै यमुना-तट लै गए, भोर भयौ तिहिं काल।
मनकामना भई परिपूरन, रही न एकौ साधि।
षोड़स सहस नारि सँग मोहन, कीन्हौ सुख अवगाधि।

जमुना-जल बिहरत नँद-नंदन, संग मिलीं सुकुमारि।
सूर धन्य धरनी वृन्दावन, रबि तनया सुखकारि।।६६।।

अर्थ—रास के रस से व्रज की बालायें थक गयी। रात को सुख देकर (कृष्ण) उन्हे जमुना के तट पर ले गये, उस समय सवेरा हो गया। (गोपियो की) सारी मनोकामनाये पूर्ण हो गयी, एक भी इच्छा बाकी न रही। सोलह हजार नारियो के साथ मोहन ने अगाध सुख प्राप्त किया। कृष्ण सुकुमारियो को साथ मे लेकर जमुना के जल मे बिहार करते है। सूरदास कहते है कि वृन्दावन की धरती धन्य है और सुख देने वाली यमुना (धन्य है) ।।६६।।

ललकत स्याम मन ललचात।
कहत हैं घर जाहु सुंदरि, मुख न आवति बात।
षट सहस दस गोप कन्या, रैनि भोगीं रास।
एक छिन भईं कोउ न न्यारी, सबनि पूजी आस।
बिहँसि सब घर-घर पठाईं, व्रज गईं व्रज-बाल।
सूर प्रभु-नँद-धाम पहुँचे, लख्यौ काहु न ख्याल।।१००।।

अर्थ—इच्छा से (कृष्ण का) मन (बार-बार) ललचाता है। कृष्ण कहते हैं कि हे सुन्दरियों घर जाओ, (लेकिन) मुँह मे बात नही आती। सोलह हजार गोप कन्याओ ने रात मे रास का भोग किया। कोई एक भी क्षण अलग न हुई और सभी ने अपनी-अपनी आशाओ को पूर्ण किया। कृष्ण ने हँस कर व्रज बालाओं को उनके घर भेज दिया। सूरदास कहते है कि फिर कृष्ण नन्द के घर पहुँचे और किसी ने इस खेल को देखा समझा नही ।।१००।।

व्रजबासी सब सोवत पाए।
नंद सुवन मति ऐसी ठानी, उनि घर लोग जगाए।
उठे प्रात-गाथा मुख भाषत, आतुर रैनि बिहानी।
ऐंडत अंग जम्हात बदन भरि, कहत सबै यह बानी।
जो जैसें सो तैसें लागे, अपनैं-अपनैं काज।
सूर स्याम के चरित अगोचर, राखी कुल की लाज।।१०१।।

अर्थ—(लौटकर) उन लोगों ने व्रजवासियो को सोता पाया। नद के पुत्र (कृष्ण) ने बुद्धि मे ऐसा निश्चय करके उनके घर के लोगों को जगाया। उठ करके प्रातः काल सामान्य बातो को मुँह से कहते हैं। आतुरता मे ही रात बीती। अङ्ग को ऐठकर तथा मुँह भरकर जम्हाई लेते हुये सभी यह बात कहते है। जो जैसे थे वैसे ही अपने-अपने काम में लग गये। सूरदास कहते है कि कृष्ण चरित्र न दिखाई देने वाला है (उन्होने गोपियों की) कुल की लाज रख दी ।।१०१।।

ब्रज-जुवती रस-रास पगीं।
कियौ स्याम सब को मन भायो, निसि रति-रंग जगीं।
पूरन ब्रह्म, अकल, अविनासी, सबनि संग सुख दीन्हौ।
जितनी नारि भेष भए तितने, भेद न काहू कीन्हौ।
वह सुख टरत न काहूँ मन तैं, पति हित-साध पुराईं।
सूर स्याम दूलह सब दुलहिनि, निसि भाँवरि दै आईं ॥१०२॥

अर्थ—व्रज युवतियां रास के रस मे पगी रही। कृष्ण (के द्वारा) किया गया (रास) सब के मन को अच्छा लगा। (वे) रात भर रति के रङ्ग मे जागती रही। पूर्ण ब्रह्म, अकल, अविनाशी, कृष्ण ने सब को साथ सुख दिया। जितनी स्त्रियां थी, कृष्ण ने उतने ही वेष बनाये, किसी के साथ भेद-भाव नही किया। वह सुख किसी के मन से टलता नही है। उन्होने (कृष्ण के लिए) पति प्रेम की इच्छा पूर्ण कर ली। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण दूल्हा तथा (सब गोपियां) दुल्हिनियां रात मे भांवर दे आईं ॥१०२॥

रास रस लीला गाइ सुनाऊँ।
यह जस कहै, सुनै मुख स्रवननि, तिहि चरननि सिर नाऊँ।
कहा कहौं वक्ता स्रोता फल, इक रसना क्यौं गाऊँ।
अष्ट सिद्धि नवनिधि सुख-सपति, लघुता करि दरसाऊँ।
जौ परतीति होइ हिरदै मैं, जग-माया धिक देखै।
हरि-जन दरस हरिहि सम बूझे, अंतर कपट न लेखै।
धनि वक्ता, तेई धन स्रोता, स्याम निकट हैं ताकैं।
सूर धन्य तिहि के पितु, माता, भाव भगति है जाकैं ॥१०३॥

अर्थ—रास के रस की लीला को गाकर सुनाता हूं। यह यश जो मुँह से कहता और सुनता है उसके चरणो पर सिर झुका दूं। कहने वाले और सुनने वाले के फल को कहाँ तक कहूँ और इस एक जीभ से क्यो गाऊँ। आठो सिद्धियां और नौ निधियों के सुख सम्पत्ति को (इस रास रस के सामने) हीन करके दिखा दूं। यदि हृदय मे विश्वास हो तो ससार की माया को देखना धिक्कार है। भगवान् के भक्त का दर्शन भगवान् के समान ही समझते हुए हृदय मे कपट नही रक्खे। वह वक्ता धन्य है और वही श्रोता धन्य है और उसी के निकट कृष्ण हैं। सूरदास कहते हैं कि उसी के माता-पिता धन्य हैं जिनमे भक्ति भाव है ॥१०३॥

पनघट लीला

पनघट रोके रहत कन्हाई।
जमुना-जल कोउ भरन न पावै, देखत हीं फिरि जाई।
तबहिं स्याम इक बुद्धि उपाई, आपुन रहे छपाई।

तट ठाढे जे सखा संग के, तिनकौं लियौ बुलाई।
बैठारचौ ग्वालनि कौं द्रुमतर, आपुन फिरि-फिरि देखत।
बड़ी वार भई कोउ न आई, सूर स्याम मन लेखत ॥१०४॥

अर्थ—कृष्ण पनघट को रोके रहते है। यमुना में कोई जल भरने नही पाता और (कृष्ण को देखते ही) सब वापस फिर जाती हैं। तभी कृष्ण को एक उपाय सूझा और उन्होंने अपने को छिपा लिया। तट पर जो मित्र खडे थे उन्हें बुला लिया। ग्वालों को वृक्ष के नीचे बैठा दिया और स्वयं घूम-घूम कर देखते है। बैठे-बैठे देर हो गई लेकिन कोई (गोपी) नही आई जिससे कृष्ण मन में सोचते है ॥१०४॥

जुवति इक आवति देखी स्याम।
द्रुम कैं ओट रहै हरि आपुन, जमुना तट गई वाम।
जल हलोरि गागरि भरि नागरि, जबही सीस उठायो।
घर कौं चली जाइ ता पाछैं, सिर तैं घट ढरकायो।
चातुर ग्वालि कर गह्यो स्याम कौ, कनक लकुटिया पाई।
औरनि सौं करि रहे अचगरी, मोसौं लगत कन्हाई।
गागरि लै हँसि देत ग्वारि-कर, रीतौ घट नहिं लैहौं।
सूर स्याम ह्याँ आनि देहु भरि, तबहिं लकुट कर दैहौं ॥१०५॥

अर्थ—एक युवती को आते हुए कृष्ण ने देखा। कृष्ण स्वयं वृक्ष की ओट में (छिपे) रहे और वह युवती यमुना के तट पर गयी। जल हिलोर कर गगरी भर कर जब स्त्री ने सिर पर उठाया और (जैसे ही) घर की ओर चली, (कृष्ण ने) पीछे से जाकर सिर से घडा ढरका दिया। चतुर ग्वालिन ने कृष्ण के हाथ को पकडा और सोने की लकुटी पा गयी। (ग्वालिन बोली) कृष्ण औरों से शरारत करते रहे मुझसे (क्यों) लगते हो। (कृष्ण) हँसकर खाली घड़ा ग्वालिन को देते है, (लेकिन वह कहती है) मैं खाली घड़ा नही लूंगी। सूरदास कहते हैं कि (गोपी कहती है) कृष्ण इसे भर कर लाओ तभी लकुटी दूंगी ॥१०५॥

घट भरि दियौ स्याम उठाइ।
नैंकु तन की सुधि न ताकौं, चली व्रज-समुहाइ।
स्याम सुन्दर नैन-भीतर, रहे आनि समाइ।
जहाँ-तहँ भरि दृष्टि देखै, तहाँ-तहाँ कन्हाइ।
उतहिं तैं इक सखी आई, कहति कहा भुलाइ।
सूर अबहीं हँसत आई, चली कहाँ गवाँइ ॥१०६॥

अर्थ—कृष्ण ने घडा उठाकर भर दिया। उसे तनिक भी शरीर का ख्याल नही और व्रज की ओर चली। श्याम सुन्दर नयनो के भीतर आकर समा गये। जहाँ-जहाँ निगाह भर कर देखती है तहाँ-तहाँ कृष्ण ही दिखाई देते हैं। उस तरफ से एक सखी

आयी और कहती है कि (तुम) कैसे भूली हुई हो। सूरदास कहते हैं कि (सखी पूछती है) अभी तो तुम हँसती हुई आयी, कहाँ (मन) गवाँकर चली जा रही हो ॥१०६॥

नीकैं देहु न मेरी गिंडुरी।
लै जैहैं धरि जसुमति आगैं, आवहु री सब मिलि झुँडरी।
काहूँ नहीं डरात कन्हाई, वाट घाट तुम करत अचगरी।
जमुना-दह गिंडुरी फटकारी, फोरी सब मटुकी अरु गगरी।
भली करी यह कुँवर कन्हाई, आजु मेटिहैं तुम्हरी लँगरी।
चलीं सूर जसुमति के आगें, उरहन लै ब्रज-तरुनी सगरी ॥१०७॥

अर्थ—(गोपियां कहती है) ठीक है तुम हमारी गिंडुरी मत दो। तुम्हे पकड़कर यशोदा के आगे ले चलूंगी। आओ (सखियो) सब झुंड बनाकर चले। कृष्ण किसी से नही डरते, घाट तथा रास्ते में शरारत करते है। यमुना के दह मे गिंडुरी फेक दी, और मटकी तथा गगरी को फोड दिया। कुंवर कृष्ण तुमने अच्छा किया। आज तुम्हारी दुष्टता मिटा दूंगी। सूरदास कहते हैं कि सभी ब्रज की तरुणियां यशोदा के आगे शिकायत करने चली ॥१०७॥

सुनहु महरि तेरौ लाड़िलौ, अति करत अचगरी।
जमुन भरन जल हम गईं, तहँ रोकत डगरी।
सिरतैं नीर ढराइ दै, फोरी सब गगरी।
गेंडुरि दई फटकारि कै, हरि करत जु लँगरी।
नित प्रति ऐसे ढंग करै, हमसौं कहै धगरी।
अब बस-वास बनैं, नहिं इहिं तुव ब्रज-नगरी।
आपु गयौ चढ़ि कदम पर, चितवत रहीं सगरी।
सूर स्याम ऐसेंहि सदा, हम सौं करै झगरी ॥१०८॥

अर्थ—(गोपियां कहती है) महरि सुनो तुम्हारा लाड़ला बहुत शरारत करता है। हम यमुना मे जल भरने गयी थी वहाँ (हमारी) राह रोकता था। सिर से पानी ढुलकाकर सब घडे फोड डाले। गेंडुरी फेक दी, (इस प्रकार) कृष्ण शरारत करते हैं। नित्य प्रति ऐसा ही ढङ्ग अपनाते है और हमे कुल्टा कहते हैं। तुम्हारी इस ब्रज नगरी में अब बसना-सहना नही बनता। स्वय कदम्ब पर चढ गये और (हम) सब देखती रही। सूरदास कहते हैं कि हम (गोपियो) से ऐसे हमेशा झगडा करते है ॥१०८॥

ब्रज-घर-घर यह बात चलावत।
जसुमति कौ सुत करत अचगरी, जमुना जल कोउ भरन न पावत।
स्याम वरन नटवर बपु काछे, मुरली राग मलार बजावत।
कुंडल-छबि रबि किरनहुँ तैं दुति, मुकुट इंद्र-धनुहूँ तैं भावत।
मानत काहु न करत अचगरी, गागरि धरि जल मुँह ढरकावत।
सूर स्याम कौं मात पिता दोउ, ऐसे ढँग आपुनहिं पढ़ावत ॥१०९॥

अर्थ—ब्रज के (निवासी) घर-घर यह बात चलाते हैं कि यशोदा का पुत्र दुष्टता करता है जिससे कोई यमुना में जल भरने नही पाता। श्याम वर्ण के (कृष्ण) नटवर का रूप सँवार कर मुरली से मलार राग बजाते है। कुंडल की छवि सूर्य की किरण से भी तेज, मुकुट इन्द्र-धनुष से भी (अधिक) अच्छा लगता है। किसी का कहना न मानकर (वे) शरारत करते हैं। गगरी को पकड़ कर मुंह से जल ढलका देते हैं। सूरदास कहते हैं कि (ब्रजवासी कहते हैं) कृष्ण के माता-पिता ऐसे ढङ्ग स्वय (कृष्ण को) पढ़ाते हैं ॥१०६॥

करत अचगरी नंद महर कौ।
सखा लिये जमुना तट बैठ्यो, निबह न लोग डगर कौ।
कोउ खीझो, कोऊ बिन बरजौ, जुवतिन कैं मन ध्यान।
मन-बच-कर्म स्याम सुन्दर तजि, और न जानति आन।
यह लीला सब स्याम करत हैं, ब्रज-जुवतिन कैं हेत।
सूर भजे जिहिँ भाव कृष्न कौं, ताकौं, सोइ फल देत ॥११०॥

अर्थ—महर नन्द के (पुत्र) शरारत करते रहते हैं। मित्रों को लेकर यमुना के तट पर बैठ गये हैं जिससे लोगों को रास्ते मे निबाह नही है। कोई (चाहे) खीझे, कोई (चाहे) रोके, युवतियो के मन मे (कृष्ण का गहरा) ध्यान है। मन, वाणी तथा कर्म से कृष्ण को छोड़कर और किसी को नही जानती। यह सब लीला ब्रज की युवतियों के लिए (ही) कृष्ण करते हैं। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण को जो जिस भाव से भजता है उसे वैसा ही फल देते हैं ॥११०॥

दान लीला

ऐसौ दान माँगियै नहिँ जौ, हम पैं दियौ न जाइ।
बन मैं पाइ अकेली जुवतिनि, मारग रोकत धाइ।
घाट बाट औघट जमुना-तट, बातैं कहत बनाइ।
कोऊ ऐसौ दान लेत है, कौनें पठए सिखाइ।
हम जानतिँ तुम यौं नहिँ रैहौ, रहिहौ गारी खाइ।
जो रस चाहौ सो रस नाहीं, गोरस पियौ अघाइ।
औरनि सौं लै लीजै मोहन, तब हम देहिँ बुलाइ।
सूर स्याम कत करत अचगरी, हम सौं कुँवर कन्हाइ ॥१११॥

अर्थ—(गोपियाँ कहती हैं) ऐसा दान मत माँगिये जो हमसे दिया न जा सके। वन में युवतियों को अकेली पाकर दौडकर (कृष्ण) रास्ता रोकते हो। घाट, रास्ते दुर्गम पथ तथा यमुना के तट पर बनाकर बातें कहते हो। कोई ऐसा दान लेता है (लगता है तुम्हे) किसी ने सिखाकर भेजा है। हम जानते है कि तुम ऐसे नहीं रहोगे बल्कि गाली खाकर ही रहोगे। जो रस चाहते हो वह रस नही है, गोरस भरपेट पी सकते हो। मोहन औरों से ले लीजिए तब हम बुलाकर दे देंगी। सूरदास कहते हैं कि (गोपियां कहती है) हे कुँवर कृष्ण हमसे दुष्टता क्यो करते हो ॥१११॥

ऐसैं जनि बोलहु नँद-लाला।
छाँड़ि देहु अँचरा मेरी नीकैं, जानत और सी बाला।
बार-बार मैं तुमहिं कहत हौं, परिही बहुरि जँजाला।
जोवन, रूप देखि ललचाने, अबहीं तैं ये ख्याला।
तरुनाई तनु आवन दीजै, कत जिय होत बिहाला।
सूर स्याम उर तैं कर टारहु, टूटै मोतिनि-माला ॥११२॥

अर्थ—(गोपी कहती है) हे नन्दलाल ऐसे मत कहो। मेरे सुन्दर अंचल को छोड दो, मुझे अन्य बालाओं के समान (तो नही) समझ रहे हो। मैं बार-बार तुमसे कहती हूँ कि फिर तुम जंजाल मे पड़ जाओगे। यौवन रूप को देखकर (आप) ललचा गये और अभी से ये बातें सोचने लगे। शरीर मे जवानी आने दीजिए; मन (अभी से) आकुल क्यों होता है। सूरदास कहते हैं कि (गोपी कहती है) वक्षस्थल से हाथ हटा लो (नही तो) मोतियो की माला टूट जायेगी ॥११२॥

तैं कत तोर्‌यौ हार नौ सरि कौ।
मोती बगरि रहे सब-बन मैं, गयौ कान कौ तरिकौ।
ये अवगुन जु करत गोकुल मैं, तिलक दियै केसरि कौ।
ढीठ गुवाल दही कौ मातौ, ओढ़नहार कमरि कौ।
जाइ पुकारैं जसुमति आगैं, कहति जु मोचन लरिकौ।
सूर स्याम जानी चतुराई, जिहिं अभ्यास महुअरि कौ ॥११३॥

अर्थ—तुमने नव लडियो का हार क्यों तोड़ दिया? (टूटकर) सब मोती वन में बिखर गये। कान का तरौना भी (चला) गया। केसर का तिलक देकर गोकुल मे इन अवगुणो को करते हो। (तुम) दही से मस्त, तथा कमरी के ओढने वाले ढीठ ग्वाल हो। जाकर पुकार कर यशोदा के आगे कहूँगी जो मोहन को बालक कहती हैं। सूरदास कहते हैं कि (गोपी कहती है) कृष्ण चतुरता जान गये जिन्हे महुअर (बाजा) का अभ्यास हो गया है ॥११३॥

आपुन भईं सबै अब भोरी।
तुम हरि कौ पीताम्बर झटक्‌यौ, उन तुम्हरी मोतिनि लर तोरी।
माँगत दान ज्वाब नहिं देतीं, ऐसी तुम जोवन की जोरी।
डर नहिं मानतिं नँद-नंदन कौ, करतिं आनि झकझोरा झोरी।
इक तुम नारि गँवारि भली हौ, त्रिभुवन मैं इनकी सरि को री।
सूर सुनहु लैहैं छँडाइ सब, अबहिं फिरौगी दौरी दौरी ॥११४॥

अर्थ—अब सभी अपने आप अनजान (भोली) हो गयी, तुमने कृष्ण का पीतांबर झटका, उन्होने तुम्हारी मोतियो की लडी तोड़ी। (उनके) दान माँगने पर (तुम लोग) जवाब नही देती, (तुम) ऐसी यौवन के जोर वाली हो गयी हो। तुम नन्द के नन्दन (कृष्ण) का डर नही मानती जो इस तरह आकर धक्का-मुक्की करती हो।

एक तो तुम स्त्री हो, दूसरे मूर्खा भी भली भाँति हो भला संसार मे इनके समान कौन है। सूरदास कहते है अभी सब छुड़ा लेंगे तो दौड़ी-दौडी फिरोगी ।।११४।।

हँसत सखनि यह कहत कन्हाई।
जाइ चढ़ी तुम सघन द्रुमनि पर, जहँ तहँ रहौ छपाई।
तब लौं बैठि रहौ मुख मूँदे, जब जानहु सब आई।
कूदि परौ तब द्रुमनि-द्रुमनि तैं, दै दै नंद दुहाई।
चकित होहिं जैसैं जुवती-गन, डरनि जाहिं अकुलाई।
बेनु-विषान-मुरलि-धुन कीजौ, संख-सब्द घहनाई।
नित प्रति जाति हमारे मारग, यह कहियौ समुझाई।
सूर स्याम माखनदधि दानी, यह सुधि नाहिं न पाई ? ।।११५।।

अर्थ— हँसते हुए मित्रो से कृष्ण यह कहते है। तुम जाकर घने वृक्षो पर चढ़कर जहाँ-तहाँ छिप रहो। तब तक मुंह मूंद कर बैठे रहो और जब जानो कि सब (गोपियाँ) आ गई तब पेड-पेड़ से नन्द की दुहाई देकर कूद पड़ो। जैसे युवतियों का समूह चकित और आकुल होकर डर से घबरा जाय तो बंशी, विषाण, मुरली की ध्वनि करना और शंख का गहन शब्द करना। नित्य प्रति (तुम लोग) हमारे मार्ग से जाती हो यह समझा कर कहना। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण माखन और दही के दानी हैं क्या यह खबर नही है ।।११५।।

ग्वारिनि जब देखे नँद-नंदन।
मोर मुकुट पीताम्वर काछे, खौरि किए तन चंदन।
तब यह कह्यौ कहाँ अब जैहौ, आगैं कुँवर कन्हाई।
यह सुनि मन आनन्द बढ़ायौ, मुख कहैं, बात डराई।
कोउ-कोउ कहति चलौ री जैये, कोउ कहै घर फिरि जैये।
कोउ-कोउ कहति कहा करिहैं हरि, इनसौं कहा परैयै।
कोउ-कोउ कहति कालिही हमकौं, लूटि लई नँद लाल।
सूर स्याम के ऐसे गुन हैं, घरहिं फिरीं व्रज-बाल। ११६।

अर्थ—ग्वालिनो ने जब कृष्ण को देखा जो मोर मुकुट तथा पीताम्बर से सजे थे तथा शरीर पर चन्दन का लेप किये थे तो कहा कि अब कहाँ जायेगे, आगे कुँवर कृष्ण हैं। यह सुनकर मन मे आनन्द बढ़ गया और मुख से डरती हुई बात कहती है। कोई कोई कहती हैं (आगे) चली चलो। कोई कहती है घर वापस चलिये ! कोई कहती है कृष्ण क्या करेंगे इनसे कैसे भागा जाय। कोई कहती है कि कल ही हमको कृष्ण ने लूट लिया था। सूरदास कहते है कि कृष्ण के ऐसे ही गुण है इसलिए व्रज-बालाएँ घर की ओर वापस चली गईं ।।११६।।

कान्ह कहत दधि-दान न दैहौ ?
लैहौं छीनि दूध दधि माखन, देखति ही तुम रैहौ।

सब दिन कौ भरि लेउँ आजुहीँ, तब छाड़ौं, मैं तुमकौं।
उघटति हो तुम मातु-पिता लौं, नहिँ जानत हो हमकौं।
हम जानति हैँ तुमकौं मोहन, लै-लै गोद खिलाए।
सूर स्याम अब भये जगाती, वै दिन सब बिसराए ॥११७॥

अर्थ—कृष्ण कहते है कि (यदि) तुम दही का दान नही दोगी तो दूध, दही, मक्खन छीन लूंगा (तुम) देखती ही रह जाओगी। सब दिन (की कमी) आज ही पूरी कर लूंगा तब मैं तुमको छोड़ूंगा। तुम माता-पिता तक को बुरा-भला कहती हो (लेकिन) मुझे जानती नही हो। (गोपियाँ कहती हैं) हम मोहन तुमको जानती हैं तुम्हें गोद मे लेकर खिलाया है। सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती हैं) अब तुम कर उगाहने वाले हो गये हो, उन दिनो को भुला दिया ॥११७॥

जाइ सबै कंसहि गुहरावहु।
दधि माखन घृत लेत छुड़ाए, आजु हजूर बुलावहु।
ऐसे कौं कहि मोहिँ बतावति, पल भीतर गहि मारौं।
मथुरापतिहिँ सुनौगी तुमहीँ, जब धरि केस पछारौं।
बार-बार दिन हमहिँ बतावति, अपनौ दिन न विचारचौ।
सूर इन्द्र ब्रज जबहिँ बहावत, तब गिरि राखि उबारचौ ॥११८॥

अर्थ—जाकर तुम सब लोग कंस को गुहारो। दही, माखन, घी, छुडाए लेते हैं; आज हुजूर को बुलाओ। ऐसे आदमी को मुझसे कहकर बताती हो जिसे पल भर मे मार डालूं। तुम ही सुनोगी जब मथुरा पति को बाल पकड़कर पछाड़ूंगा। बार-बार हमसे दिन बताती हो अपना दिन नही विचारती। सूरदास कहते है कि जब इन्द्र ने ब्रज को बहाना चाहा तब मैंने (कृष्ण ने) गिरि के द्वारा रक्षा की थी ॥११८॥

मोसौं बात सुनहु ब्रज-नारी।
इक उपखान चलत त्रिभुवन मैं, तुमसौं कहौं उघारी।
कबहूँ बालक मुँह न दीजियै, मुँह न दीजियै नारी।
जोइ मन करै सोइ करि डारैं, मूँड़ चढ़त हैं भारी।
बात कहत अँठिलाति जाति सब, हँसति देति कर तारी।
सूर कहा ये हमकों जानैं, छाँछहिँ बेंचनहारी ॥११९॥

अर्थ—हे ब्रज की नारियो मुझसे (एक) बात सुनो। तीनो लोकों में एक उपाख्यान (कहावत) चलता है उसे उघाडकर कहता हूँ। कभी बालक तथा स्त्री को मुँह नही लगाना चाहिए। जो (ये) करना चाहे वही कर डाले तो सिर पर सवार हो जाते है। बात कहने पर (गोपियाँ) हँसती, ताली देती और अठिलाती चली जाती हैं। सूरदास कहते हैं कि (कृष्ण कहते हैं) ये छाछ बेचने वाली स्त्रियाँ हमको क्या जाने ॥११९॥

यह जानति तुम नंदमहर-सुत ।
धेनु दुहत तुमकौं हम देखतिं, जबहिं जाति खरिकहिं उत ।
चोरी करत यहौ पुनि जानति, घर-घर ढूँढ़त भाँड़े ।
मारग रोकि भए अब दानी, वे ढँग कब तैं छाँड़े ।
और सुनौ जसुमति जब बाँधे, हम कियौ सहाइ ।
सूरदास-प्रभु यह जानति हम, तुम ब्रज रहत कन्हाइ ।।१२०।।

अर्थ—यह जानती है कि तुम नन्द महर के पुत्र हो । तुमको गाय दुहते हुए हम देखते है जब भी गायो के रहने के स्थान से होकर जाती हैं । फिर यह जानती है कि तुम चोरी करते हो और घर-घर बरतन ढूँढते फिरते हो । अब दानी होकर मार्ग रोकने लगे हो । उन कार्यों (ढगो) को कब से छोड़ दिया । और सुनो, यशोदा जब बाँधती थी तब हम ही सहायक होती थी । सूरदास कहते है कि (हम गोपी) यह जानती हैं कि तुम कृष्ण ब्रज मे रहते हो ।।१२०।।

को माता को पिता हमारैं ।
कब जनमत हमकौं तुम देख्यौ, हँसियत बचन तुम्हारैं ।
कब माखन चोरी करि खायौ, कब बाँधे महतारी ।
दुहत कौन गैया चारत, बात कही यह भारी ।
तुम जानत मोहिं नंद-ढुटौना, नंद कहाँ तैं आए ।
मैं पूरन अविगत, अविनासी, माया सबनि भुलाए ।
यह सुनि ग्वालि सबै मुसुक्यानी, ऐसे गुन हौ जानत ।
सूर स्याम जो निदर्‌यौ सबही,मात-पिता नहिं मानत ।।१२१।।

अर्थ—(कृष्ण कहते हैं) मेरी कौन माता है और कौन पिता है । हमको कब जन्मते देखा, तुम्हारी बातो पर हँसी आती है । कब माखन चुराकर खाया, कब माता ने हमे बाँधा । किसकी गाय दुहता और चराता हूँ, तुमने यह बडी बात कही । तुम मुझे नन्द का पुत्र समझती हो लेकिन नन्द कहाँ से आये । मैं पूर्ण, अविगत, अविनाशी (हूँ) माया से सभी भूले हैं । यह सुनकर सभी ग्वालिने मुसकायी, ऐसे गुण को हम जानती हैं । सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती है) जो सबका निरादर करता है तथा माता-पिता को नही मानता (ऐसे तुम्हे जानती हूँ) ।।१२१।।

भक्त हेत अवतार धरौं ।
कर्म-धर्म कैं वस मैं नाहीं, जोग जज्ञ मन मैं न करौं ।
दीन-गुहारि सुनौं स्रवननि भरि, गर्व-वचनसुनि हृदय जरौं ।
भाव-अधीन रहौं सवही कै, और न काहू नैंकु डरौं ।
ब्रह्मा कीट आदि लौं व्यापक, सबकौं सुख दै दुखहिं हरौं ।
सूर स्याम तब कही प्रगटही, जहाँ भाव तहँ तैं न टरौं ।।१२२।।

अर्थ—(कृष्ण कहते हैं) भक्त के लिए अवतार धरता हूँ। धर्म-कर्म के वश में नही रहता हूँ। योग और यज्ञ को मन में (धारण) नही करता। दीन की पुकार को कान भर के सुनता हूँ। गर्व के वचन सुनकर हृदय से जल जाता हूँ। सब के (भक्ति) भाव के अधीन रहता हूँ, और किसी से तनिक भी नही डरता। ब्रह्मा से लेकर कीट तक व्याप्त हूँ, सब को सुख देकर दुःख को हरता हूँ। सूरदास कहते हैं तब कृष्ण ने प्रत्यक्ष ही (सब कुछ कहा) कि जहाँ भाव है वहाँ से मै नही टलता ॥१२२॥

जौ तुमहीं ही सबके राजा।
तौ बैठौ सिहासन चढ़ि कै, चँवर, छत्र, सिर भ्राजा।
मोर-मुकुट, मुरली पीतांबर, छाड़ौ नटवर-साजा।
वेनु, विषान, सख क्यौं पूरत, बाजै नौबत बाजा।
यह जु सुनैं हमहूँ सुख पावैं, सग करैं कछु काजा।
सूर स्याम ऐसी बातैं सुनि, हमकौं आवति लाजा ॥१२३॥

अर्थ—(गोपियाँ कहती हैं) जब तुम ही सब के राजा हो तो सिहासन पर चढकर बैठो, और सिर पर चँवर तथा छत्र सुशोभित हो। मोर-मुकुट, मुरली, पीताम्बर और नटवर के वेश को छोड दो। बंशी, विषाण शंख क्यों बजाते हो, नौबत बजे। यह जो सुने तो हम भी सुख पाये, और साथ मे कुछ काम करें। सूरदास कहते है कि यह बाते सुनकर हमको लज्जा आती है ॥१२३॥

हमहिं और सो रोकै कौन।
रोकनहारौ नदमहर सुत, कान्ह नाम जाकौ है तौन।
जाकैं बल है कामनृपति कौ, ठगत फिरत जुवतिनि कौं जौन।
टोना डारि देत सिर ऊपर, आपु रहत ठाढ़ौ ह्वै मौन।
सुनहु स्याम ऐसी न बूझियै, बानि परी तुमकौं यह कौन।
सूरदास-प्रभु कृपा करहु अब, कैसेंहु जाहिं आपनै भौन ॥१२४॥

अर्थ – (गोपियाँ कहती हैं) हमको और कौन रोक सकता है। रोकने वाले वही महर नन्द के पुत्र हैं, जिनका नाम कृष्ण है। जिनके पास राजा के समान काम करने का बल है, जो युवतियो को ठगते फिरते है। सिर के ऊपर टोना डालकर स्वय मौन होकर खडे रहते है। हे कृष्ण सुनो समझ मे नही आता कि तुम्हारी यह कौन सी आदत पड़ गयी है। हे कृष्ण अब कृपा करो किसी प्रकार हम अपने घर जायँ ॥१२४॥

राधा सौं माखन हरि माँगत।
औरनि की मटुकी कौ खायौ, तुम्हरौ कैसौ लागत।
लै आई वृषभानु-सुता, हँसि, सद लवनो है मेरौ।
लै दीन्हौं अपनैं कर हरि-मुख, खात अल्प हँसि हेरौ।
सबहिनि तैं मीठौ दधि है यह, मधुरैं कह्यौ सुनाइ।
सूरदास-प्रभु सुख उपजायौ, व्रज ललना मनभाइ ॥१२५॥

अर्थ—कृष्ण राधा से मक्खन मांगते है। और कहा कि औरों की मटकी का (मक्खन) खाया। (देखूं) तुम्हारा कैसा लगता है। वृषभानु की पुत्री (मक्खन) ले आयी और हँस कर (बोली) मेरा मक्खन ताजा है। (राधा ने मक्खन) लेकर अपने हाथ से हरि के मुँह में दिया, और खाते हुए थोड़ा हँस कर देखा। कृष्ण ने कहा सबसे अधिक मीठा दही है, यह मीठी बात कहकर (कृष्ण ने) सुनायी। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण ने व्रज की स्त्री (राधा) के मन को अच्छा लगने वाले सुख को उत्पन्न किया ॥१२५॥

मेरे दधि कौ हरि स्वाद न पायौ।
जानत इन गुजरिनि कौ सौ है, लयौ छिड़ाइ मिलि ग्वालनि खायौ।
धौरी धेनु दुहाइ छानि पय, मधुर आँचि मैं औटि सिरायौ।
नई दोहनी पोंछि पखारी, धरि निरधूम खिरनि पै तायौ।
तामैं मिलि मिस्रित मिसिरी करि, दै कपूर पुट जावन नायौ।
सुलभ ढकनियाँ ढाँकि बाँधि पट, जतन राखि छीकैं समुदायौ।
हौं तुम कारन लै आई गृह, मारग मैं न कहूँ दरसायौ।
सूरदास-प्रभु रसिक-सिरोमनि, कियौ कान्ह ग्वालिनि मन भायौ ॥१२६॥

अर्थ—(एक ग्वालिन कहती है) मेरे दही का स्वाद कृष्ण ने नही पाया। समझा कि मेरा दही अन्य गुजरियों जैसा है। लेकर सब ग्वालो मे बांट कर खाया। धौरी (सफेद गाय) को दुहाकर, दूध को छानकर, हल्की आँच में गरम करके फिर ठडा किया। नयी दोहनी को पोछकर धोया और बिना धुएँ की अँगीठी पर ताया। उसमें मिसरी मिलाकर कपूर के पुट के साथ जावन दिया। अच्छी ढकनियाँ से ढाँक कर कपड़े से बांधा और चिन्ता के साथ छीके पर रख दिया। मैं तुम्हारे ही कारण (इसे) ले आँई, घर और रास्ते में किसी को नही दिखाया। सूरदास कहते है कि कृष्ण रसिकों में शिरोमणि हैं, उन्होने ग्वालिन के मन की बात की ॥१२६॥

गोपी कहति धन्य हम नारी।
धन्य दूध, धनि दधि, धनि माखन, हम परुसति जेंवत गिरिधारी।
धन्य घोष, धनि दिन, धनि निसि वह, धनि गोकुल प्रगटे बनवारी।
धन्य सुकृत पाँछिलौ, धन्य धनि नँद, धन्य जसुमति महतारी।
धनि धनि ग्वाल, धन्य वृन्दावन, धन्य भूमि यह अति सुखकारी।
धन्य दान, धनि कान्ह मँगैया, धन्य सूर त्रिन-द्रुम बन-डारी ॥१२७॥

अर्थ—गोपियाँ कहती है कि हम स्त्रियाँ धन्य हैं, दूध धन्य है, दही धन्य है, माखन धन्य है जिन्हे हम परोसती है और गिरधारी खाते है। अहीरों का गांव धन्य है, दिन धन्य है और वह रात्रि धन्य है, गोकुल धन्य है, जहां कृष्ण प्रकट हुए। पिछला पुण्य धन्य है, नन्द धन्य हैं, यशोदा माता धन्य है, वृन्दावन धन्य है, अत्यधिक सुख देने वाली यह भूमि धन्य है। दान धन्य है, मांगने वाले कृष्ण धन्य हैं। सूरदास कहते हैं कि तृण, वृक्ष तथा वन की डाले धन्य है ॥१२७॥

गन गंधर्व देखि सिहात ।
धन्य ब्रज-ललनानि कर तें, ब्रह्म माखन खात ।
नहीं रेख, न रूप, नहिं तनु, बरन नहिं अनुहारि ।
मातु-पितु नहिं दोउ जाकैं, हरत-मरत न जारि ।
आपु कर्त्ता आपु हर्त्ता, आपु त्रिभुवन नाथ ।
आपुहीं सब घट कौ व्यापी, निगम गावत गाथ ।
अंग प्रति-प्रति रोम जाकै, कोटि-कोटि ब्रह्मंड ।
कीट ब्रह्म प्रजंत जल-थल, इनहिं तैं यह मंड ।
येइ विस्वंभरन नायक, ग्वाल-संग-विलास ।
सोइ प्रभु दधि दान माँगत, धन्य सूरजदास ॥१२८॥

अर्थ—गन्धर्वगण देखकर सिहाते है कि व्रज की स्त्रियो से ब्रह्म (कृष्ण) मक्खन खाते हैं। जिनकी न कोई रेखा, न रूप है, न शरीर का कोई रङ्ग है, जिनकी समता नही है। माता-पिता दोनो जिसके नही हैं, जिसे न कोई हरता है और न जो स्वयं मरता है, न नष्ट होता है। जो स्वयं कर्त्ता है, स्वय हर्त्ता है और तीनों लोकों का स्वामी है। स्वयं सब घटों मे व्याप्त है। वेद-शास्त्र जिनकी गाथा गाते हैं, जिनके एक-एक रोम मे करोडों ब्रह्माण्ड है। कीट से ब्रह्म तक जल, थल और नभ की इन्ही से शोभा है, यही विश्वम्भर नायक कृष्ण ग्वालो के साथ खेलते हैं। वही प्रभु दही का दान माँगते हैं। सूरदास कहते हैं कि (गोपियाँ) धन्य हैं ॥१२८॥

ब्रह्म जिनहिं यह आयसु दीन्हौ ।
तिन तिन सग जन्म लियौ परगट, सखी सखा करि कीन्हौ ।
गोपी ग्वाल कान्ह द्वै नाहीं, ये कहुँ नैंकु न न्यारे ।
जहाँ-जहाँ अवतार धरत हरि, ये नहिं नैंकु बिसारे ।
एकै देह बहुत करि राखे, गोपी ग्वाल मुरारी ।
यह सुख देखि सूर कै प्रभु कौं, थकित अमर-सँग-नारी ॥१२९॥

अर्थ—ब्रह्म (कृष्ण) ने जिन (लोगो) को आज्ञा दी, उन-उन (लोगो) ने इनके साथ जन्म लिया। (कृष्ण ने) इन्हे सखा और सखी करके (यथा उचित) माना। गोपी-ग्वाल और कृष्ण दो नही है। ये कही तनिक भी अलग नही है। जहाँ-जहाँ कृष्ण (अवतार) धरते हैं इन्हे तनिक भी नही भूलते। एक ही शरीर है उसे गोपी, ग्वाल और मुरारी के बहुत (रूपो) मे बना रखा है। सूरदास कहते है कि कृष्ण के इस सुख को देखकर देवताओ के साथ की स्त्रियाँ थकित (बेचैन) हो जाती हैं ॥१२९॥

यह महिमा येई पै जानैं ।
जोग-यज्ञ तप ध्यान न आवत, सो दधि-दान लेत सुख मानैं ।
खात परस्पर ग्वालनि मिलि कै, मीठौ कहि कहि आप बखानैं ।
विस्वंभर जगदीस कहावत, ते दधि दोना माँझ अघानैं ।

आपुहिं करता, आपुहिं हरता, आपु बनावत, आपुहिं भाने ।
ऐसे सूरदास के स्वामी, ते गोपिनि कैं हाथ बिकाने ।।१३०।।

अर्थ—यह महिमा ये ही जानते हैं। योग, यज्ञ, तप, ध्यान में जो नही आते वे ही (कृष्ण) दही का दान लेते सुख मानते हैं। आपस मे ग्वालों के साथ (दही) खाते हैं और मीठा कह कहकर स्वयं बखान करते है। (जो) जगदीश विश्व का भरण करने वाले कहाते हैं वही दोना भर दही से अघा जाते हैं। स्वयं कर्त्ता है, स्वयं हर्त्ता हैं, स्वयं बनाते है और स्वयं नष्ट करते हैं। सूरदास कहते हैं कि ऐसे स्वामी कृष्ण गोपियो के हाथ बिक गये हैं ।।१३०।।

सुनहु बात जुवती इक मेरी ।
तुमतें दूरि होत नहिं कबहूँ, तुम राख्यौ मोहिं घेरी ।
तुम कारन बैकुंठ तजत हौं, जनम लेत ब्रज आइ ।
वृन्दावन राधा-गोपी सँग, यहि नहिं बिसरचौ जाइ ।
तुम अंतर-अंतर कह भाषति, एक प्रान द्वै देह ।
क्यौं राधा ब्रज बसैं बिसारौं, सुमिरि पुरातन नेह ।
अब घर जाहु दान मैं पायौ, लेखा कियौ न जाइ ।
सूर स्याम हँसि-हँसि जुबतिनि सौं, ऐसी कहत बनाइ ।।१३१।।

अर्थ—(कृष्ण कहते है) हे युवतियों, मेरी एक बात सुनो। (मैं) कभी तुमसे दूर नही होता हूँ। तुमने हगे चारो ओर से घेर रखा है। तुम्हारे लिए बैकुण्ठ छोडकर व्रज मे आकर जन्म लेता हूँ। राधा और गोपियो के साथ यह वृन्दावन भूल नही जाता। तुम भेद-भेद कहती हो (किन्तु) (दोनो) मे एक ही प्राण हैं (केवल) शरीर दो है। पुराने स्नेह को याद करके राधा के ब्रज के निवास को क्यो भूलूँगा। अब घर जाओ, मैंने दान पा लिया क्योकि (दान का) हिसाब नही किया जा सकता। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण हँस-हँसकर युवतियो से इस प्रकार (बात) बनाकर कहते हैं ।।१३१।।

तुमहिं बिना मन धिक अरु धिक घरु ।
तुमहिं बिना धिक-धिक माता पितु, धिक कुल-कानि, लाज, डरु ।
धिक सुत पति, धिक जीवन जग कौ, धिक तुम बिनु संसार ।
धिक सौ दिवस, पहर, घटिका, पल जो बिनु नंद-कुमार ।
धिक धिक स्रवन कथा बिनु हरि कै, धिक लोचन बिनु रूप ।
सूरदास प्रभु तुम बिनु घर ज्यौं, बन भीतर के कूप ।।१३२।।

अर्थ—(गोपियाँ कहती है) तुम्हारे बिना मन और घर (सबको) धिक्कार है। तुम्हारे बिना माता और पिता धिक्कार योग्य है और कुल की मर्यादा, लज्जा, डर सबको धिक्कार है। तुम्हारे बिना पुत्र, पति, जग का जीवन तथा संसार को धिक्कार है। वह दिन, पहर, घड़ी, पल सब धिक्कारने योग्य हैं जो बिना नदकिशोर (कृष्ण) के हैं। कानो को धिक्कार है जो कृष्ण की कथा के बिना है तथा नयनो को धिक्कार है

जिनमें आपका रूप नही । सूरदास कहते है कि कृष्ण तुम्हारे विना घर वैसे ही है जैसे वन के भीतर कुँआ (निरर्थक) हो ॥१३२॥

रीती मटुकी सीस धरैं ।
वन की घर की सुरति न काहूँ, लेहु दही या कहति फिरैं ।
कवहुँक जाति कुंज भीतर कौं, तहाँ स्याम को सुरति करैं ।
चौंकि परतिँ, कछु तन सुधि आवति, जहाँ तहाँ सुख सुनति ररैं ।
तव यह कहतिँ कहीं मैं इनसौं, भ्रमि भ्रमि वन मैं वृथा मरैं ।
सूर स्याम कैं रस पुनि छाकतिं, वैसें हीं ढँग वहुरि ढरैं ॥१३३॥

अर्थ—(गोपियां) खाली मटुकी सिर पर घर लेती है । वन की और घर की (उन्हे) याद नही, लो दही यह कहती फिरती हैं । कभी कुंज के भीतर जाती हैं और वहाँ कृष्ण की याद करती हैं । कुछ शरीर की याद आने पर चौंक पड़ती हैं और जहाँ तहाँ सखियो को सुनाते हुए वार-बार कहती हैं । तव यह कहती है कि मुझे इनसे क्या करना है जो वन घूम-घूमकर व्यर्थ मरती हूँ । सूरदास कहते हैं कि कृष्ण के रस से पुनः मस्त हो जाती हैं वैसा ही ढङ्ग फिर घर लेती हैं ॥१३३॥

तरुनी स्याम-रस मतवारि ।
प्रथम जोवन-रस चढ़ायौ, अतिहि भई खुमारि ।
दूध नहिँ दधि नहीं, माखन नहीं रीतौ माट ।
महा-रस अँग-अंग पूरन, कहाँ घर, कहँ वाट ।
मातु-पितु गुरुजन कहाँ के, कौन पति को नारि ।
सूर प्रभु कैं प्रेम पूरन, छकि रहीं व्रजनारि ॥१३४॥

अर्थ—तरुणियाँ कृष्ण के रस मे मतवाली हो गई हैं । प्रथम यौवन के रस के चढ़ जाने से वे अत्यधिक शिथिल हो गयी । दूध नही, दही नही, मक्खन नही, मटुकी खाली है । अंग-अंग मे महारस भर गया है । कहाँ घर और कहाँ रास्ता, कहाँ के माता-पिता, कौन पति और कौन स्त्री (उन्हे कुछ भी ज्ञात नही) । सूरदास कहते हैं कि कृष्ण के प्रेम-रस से पूर्ण व्रज नारियाँ मस्त हो गयी हैं ॥१३४॥

कोउ माई लैहै री गोपालहिँ ।
दधि की नाम स्यामसुंदर-रस, विसरि गयौ व्रज-वालहिं ।
मटुकी सीस, फिरति ब्रज-वीथिनि, वोलति वचन रसालहिँ ।
उफनत तक्र चहूँ दिसि चितवत, चित लाग्यौ नँद-लालहिँ ।
हँसति, रिसाति, बुलावति, वरजति, देखहु इनकी चालहिँ ।
सूर स्याम बिनु और न भावै, या विरहिनि वेहालहिँ ॥१३५॥

अर्थ—सखी, कोई गोपाल को लेगा । श्यामसुन्दर के रस मे व्रज की युवती को दही का नाम ही भूल गया । मटुकी को सिर पर (घर के) व्रज की गलियो मे रस से भरी बाते कहती है । मट्ठा के उफनते समय चारों दिशाओ मे देखती है उसका मन

नन्दलाल में (ही) लगा है। (वह) हँसती है, नाराज होती है, बुलाती है और रोकती हुई कहती है कि इनकी चाल देखो। सूरदास कहते है कि इस व्याकुल विरहिणी को कृष्ण के बिना कुछ अच्छा नही लगता ॥१३५॥

गोपिका अनुराग

लोक-सकुच कुल-कानि तजी।
जैसेँ नदी सिंधु कौं धावै, वैसेहिं स्याम भजी।
मातु-पिता बहु त्रास दिखायौ, नैकुँ न डरी, लजी।
हारि मानि बैठे, नहिँ लागति, बहुतै बुद्धि सजी।
मानत नहीँ लोक मरजादा, हरि कैँ रङ्ग मजी।
सूर स्याम कौँ मिलि, चूनौ हरदी ज्यौँ रँजी ॥१३६॥

अर्थ—लोक के संकोच और कुल की मर्यादा को छोड़ दिया। जैसे नदी समुद्र की ओर उमडती है वैसे ही (गोपियो ने) कृष्ण को भजा। माता-पिता ने बहुत डराया (लेकिन वे) तनिक भी न डरी और न लजायी। (सब) हार मानकर बैठ गये, बहुत बुद्धि लगायी। (लेकिन बुद्धि) लगती नही। (गोपियां) लोक की मर्यादा नही मानती (वे) कृष्ण के रंग में रंग गयी। सूरदास कहते है कि कृष्ण से मिलकर चूना और हल्दी की तरह रंग रंगित हो गयी ॥१३६॥

कहा कहति तू मोहिँ, री माई।
नँद-नंदन मन हरि लियौ मेरौ, तब तैँ मोकौँ कछु न सुहाई।
अब लौँ नहिँ जानति मैँ को ही, कब तैं तू मेरैँ ढिग आई।
कहाँ गेह, कहँ मातु-पिता हैं, कहाँ सजन, गुरुजन कहँ भाई।
कैसी लाज, कानि है कैसो, कहा कहति ह्वै ह्वै रिसहाई?
अब तौ सूर भजी नँद-लालहिँ, की लघुता की होइ बड़ाई ॥१३७॥

अर्थ—हे सखी, तुम मुझे क्या कहती हो? कृष्ण ने (जब से) मेरा मन हर लिया तब से मुझे कुछ भी अच्छा नही लगता। अब तक मैं नही जान पाई कि मैं कौन थी, तू कब से मेरे पास आयी। कहाँ घर, कहाँ माता-पिता है, पति कहाँ और गुरुजन तथा भाई कहाँ हैं। (मुझे कुछ भी नही मालूम) कैसी लज्जा, मर्यादा कैसी है, तुम लोग नाराज होकर क्या कह रहे हो? सूरदास कहते है कि (गोपियां कहती हैं) अब तो कृष्ण को भजा है चाहे छोटाई हो चाहे बड़ाई ॥१३७॥

मेरे कहे मैँ कोउ नाहिँ।
कहा कहौँ, कछु कहि न आवै, नैकहुँ न डराहिँ।
नैन ये हरि-दरस-लोभी, स्रवन सब्द-रसाल।
प्रथमहीँ बन गयौ तन तजि, तब भई बेहाल।
इन्द्रियनि पर भूप मन है, सबनि लियौ बुलाइ।
सूर प्रभु कौँ मिले सब ये, मोहिँ करि गए बाइ ॥१३८॥

अर्थ—(गोपी कहती है) मेरे कहने मे कोई नही है। क्या कहूँ, कुछ कहा नही जाता, ये (इन्द्रियाँ) तनिक भी नही डरती। ये आँखे कृष्ण के दर्शन की लालची है, कान रसयुक्त शब्दो के (लालची हैं)। मन पहले ही शरीर को छोड़कर चला गया तब मैं बेहाल हो गयी। इन्द्रियो का राजा मन है (उसने) सब को बुला लिया। सूरदास कहते है कि (गोपी कहती है) ये सब जाकर कृष्ण से मिल गये। मेरे लिये बला कर गये ॥१३८॥

अब तौ प्रगट भई जग जानी।
वा मोहन सौँ प्रीति निरन्तर, क्यौँऽब रहैगी छानी।
कहा करौँ सुन्दर मूरति, इन नैननि माँझ समानी।
निकसति नहीँ बहुत पचि हारी, रोम-रोम अरुझानी।
अब कैसैँ निरवारि जाति है, मिली दूध ज्यौँ पानी।
सूरदास प्रभु अन्तरजामी, उर अन्तर की जानी ॥१३९॥

अर्थ—अब तो (प्रेम) प्रकट हो गया और ससार जान गया। उस कृष्ण से निरन्तर प्रेम अब क्योकर छिपा रहेगा ? क्या करूँ सुन्दर मूर्ति इन आँखो के बीच समा गयी है। बहुत (प्रयास) करके हार गयी (यह) निकलती नही (बल्कि) रोम-रोम मे उलझ गयी है। दूध और पानी के समान एक मे मिल जाने पर अलग कैसे किया जाय ? सूरदास कहते हैं कि कृष्ण अन्तरयामी है इसलिए हृदय के अन्दर की बात जान गये ॥१३९॥

सखि मोहिँ हरिदरस रस प्याइ।
हौँ रँगी अब स्याम-मूरति, लाख लोग रिसाइ।
स्याम सुन्दर मदन मोहन, रंग रूप सुभाइ।
सूर स्वामी-प्रीति-कारन, सीस रहौ कि जाइ ॥२४०॥

अर्थ—सखी मुझे कृष्ण के दर्शन रूपी रस को पिलाओ। मैं श्याम के रंग मे रग गयी हूँ (चाहे) लाखो लोग नाराज हो जायँ। श्यामसुन्दर का स्वाभाविक रूप और रग कामदेव को भी मोहित करने वाला है। सूरदास कहते हैं कि गोपी कह रही है कि स्वामी के प्रेम के कारण अब चाहे मेरा सिर रहे या (चला) जाय ॥१४०॥

नन्दलाल सौँ मेरौ मन मान्यौ, कहा करैगौ कोउ।
मैँ तौ चरन-कमल लपटानी, जो भावै सो होउ।
बाप रिसाइ, माइ घर मारै, हँसैँ बिराने लोग।
अब तौ स्यामहिँ सौँ रति बाढ़ी, बिधना रच्यौ सँजोग।
जाति महति पति जाइ न मेरी, अरु परलोक नसाइ।
गिरिधर वर मैँ नैँकु न छाँड़ौँ, मिली निसान बजाइ।
बहुरि कबहिँ यह तन धरि पैहौँ, कहँ पुनि श्रीबनवारि।
सूरदास स्वामी कैँ ऊपर, यह तन डारौँ वारि ॥१४१॥

अर्थ—(गोपी कहती है) कृष्ण पर मेरा मन रीझ गया है (अब) कोई क्या करेगा। मैं तो चरण रूपी कमल से लिपट गयी जो होना हो सो हो। (चाहे) पिता नाराज हो जायँ, घर में माता मारे, तथा पराये लोग हँसी करे। अब तो कृष्ण से प्रेम वढ गया है। ब्रह्मा ने यह संयोग रचा है। मेरी जाति की प्रतिष्ठा तथा लाज (भले ही) न रहे तथा मेरा परलोक नष्ट हो जाय (फिर भी) मैं (पति) कृष्ण को तनिक भी छोड़ नही सकती। (मैं उनसे) नगाड़ा वजाकर (घोषित करके) मिली हूँ। फिर यह तन कहाँ घर पाऊँगी और बनवारी कृष्ण फिर कहाँ मिलेंगे। सूरदास कहते हैं कि (गोपी कहती है) कृष्ण के ऊपर (मैं) यह शरीर न्योछावर करती हूँ ।।१४१।।

करन दै लोगनि कौं उपहास।
मन क्रम वचन नद-नंदन कौ, नैंकु न छाड़ौं पास।
सब या ब्रज के लोग चिकनियाँ, मेरे भाऐं घास।
अब तौ यहै बसी री माई, नहिं मानौं गुरु त्रास।
कैसें रह्यौ परै री सजनी, एक गाँव कै बास।
स्याम मिलन की प्रीति सखी री, जानत सूरजदास ।।१४२।।

अर्थ—(गोपी कहती है) लोगो को हँसी करने दो। मन, कर्म तथा वचन से कृष्ण की निकटता तनिक भी नही छोड़ सकती। इस ब्रज के सब लोग छैला हैं! (लेकिन) मेरी बुद्धि से (सव) घास है (नगण्य है)। अब तो यही (कृष्ण) मन में बस गये हैं। (अब) गुरुजनो का भय नही मानती हूँ। एक ही गाँव का निवास (बिना मिलन के) कैसे रहा जा सकता है। हे सखी, कृष्ण से मिलने की प्रीति को सूरदास (जैसे भक्त ही) जानते हैं ।।१४२।।

एक गाउँ कै वास बसौ हौं, कैसें धीर धरौं।
लोचन-मधुप अटक नहिं मानत, जद्यपि जतन करौं।
वै इहिं मग नित प्रति आवत हैं, हौं दधि लै निकरौं।
पुलकित रोम-रोम, गदगद सुर, आनँद उमँग भरौं।
पर अन्तर चलि जात, कलप बर, बिरहा अनल जरौं।
सूर सकुच कुल-कानि कहाँ लगि, आरज-पथहिं डरौं ।।१४३।।

अर्थ—हे सखी एक ही गाँव का बास (होते हुए) मैं कैसे धीरज धरूँ। (मेरे) आँख रूपी भौरे प्रयत्न करने पर भी रोक नही मानते। वे इसी मार्ग से रोज आते हैं, मैं दही लेकर निकलती हूँ। (देखकर मेरे) रोम-रोम पुलकित हो जाते है आवाज गद्गद् हो जाती है तथा (मैं) आनन्द तथा उमग से भर जाती हूँ। (क्षण भर) ओट मे चले जाने पर एक कल्प से भी अधिक (जान पडने वाले समय की कल्पना से) विरह की अग्नि में जलती हूँ। सूरदास कहते हैं (गोपी कहती है) संकोच, कुल की मर्यादा तथा श्रेष्ठ पथ से कहाँ तक डरूँ ।।१४३।।

हौं संग साँवरे के जैहौं।
होनी होइ होइ सो अबहीं, जस अपजस काहूँ न डरैहौं।
कहा रिसाइ करे कोउ मेरौ, कछु जो कहै प्रान तिहिं देहौं।
देहौं त्यागि राखिहौं यह व्रत, हरि-रति बीज बहुरि कब वैहौं।
का यह व्रज-बापी क्रीड़ा जल, भजि नँद-नंद सबै सुख लैहौं ।।१४४।।

अर्थ—मैं कृष्ण के साथ जाऊँगी। जो होना हो अभी हो जाय। यश-अपयश किसी को नही डरूँगी। कोई नाराज होकर मेरा क्या कर सकता है? अगर कोई कुछ कहता है तो उस पर प्राण दे दूँगी। शरीर को त्याग कर भी यह व्रत रखूंगी। कृष्ण के प्रेम के बीज को फिर कब बोऊँगी? सूरदास कहते हैं (गोपी कहती है) यह नश्वर पृथ्वी (कृष्ण-सुख की तुलना मे) क्या है, (मैं तो उस सुख के लिए) शरीर को भी त्याग कर प्रिय कृष्ण के भवन आकाश मे समा जाऊँगी। (उस सुख के विना) व्रज-सरोवर की जल-क्रीड़ा का भी आनन्द नगण्य है। अतः नन्द नन्दन (कृष्ण) को भजकर सब सुख पाऊँगी ।।१४४।।

रूप-वर्णन

देखौ माई सुन्दरता कौ सागर।
बुधि-बिवेक बल पार न पावत, मगन होत मन नागर।
तनु अति स्याम अगाध अंबु-निधि, कटि पट पीत तरंग।
चितवत चलत अधिक रुचि उपजत, भँवर परति सब अंग।
नैन-मीन, मकराकृत कुडल, भुज सरि सुभग भुजंग।
मुक्ता-माला मिलीं मानौ द्वै, सुरसरि एकै संग।
कनक खचित मनिमय आभूषण, मुख, स्रम-कन सुख देत।
जनु जल-निधि मथि प्रकट कियौ ससि, श्री अरु सुधा समेत।
देखि सरूप सकल गोपी जन, रहीं बिचारि-बिचारि।
तदपि सूर तरि सकीं न सोभा, रहीं प्रेम पचि हारि ।।१४५।।

अर्थ—(गोपी कहती है) सखी, सुन्दरता के सागर कृष्ण को देखो। बुद्धि तथा विवेक के बल से चतुर मन पार न पाकर इसमे डूब जाता है। अत्यधिक सांवलापन गहरा जलनिधि है, कमर का पीला वस्त्र तरङ्ग के समान है। देखते हुए जब चलते हैं तो अधिक रुचि पैदा होती है और सब अङ्ग मे भंवर (निगाह) पड़ जाते हैं। नेत्र मछली (के समान) है, मगर के आकार का कुडल (मगर) है। भुजाये सुन्दर सांप के समान हैं। मुक्ता की माला इस प्रकार मिली है जैसे दो गङ्गा (एक साथ मिली हो)। सोने से जडे हुए मणिमय आभूषण हैं, मुख पर श्रम से उत्पन्न पसीना सुख देता है, मानो समुद्र को मथकर चन्द्रमा को लक्ष्मी तथा अमृत के साथ निकाला हो। सुन्दर रूप को देख कर सभी गोपियां सोच-सोच कर रह जाती हैं। सूरदास कहते है कि वे शोभा (के सागर) को तर नही सकी। प्रेम मे अधिक परिश्रम से हार कर रह गयी ।।१४५।।

स्याम भुजनि की सुन्दरताई ।
चन्दन खौरि अनूपम राजति, सो छवि कही न जाई ।
बड़े बिसाल जानु लौं परसत, इक उपमा मन आई ।
मनौ भुजंग गगन तैं उतरत, अधमुख रह्यौ झुलाई ।
रत्न-जटित पहुँची कर राजति, अँगुरी सुन्दर भारी ।
सूर मनौ फनि-सिर मनि सोभित, फन-फन की छबि न्यारी ।।१४६।।

अर्थ—कृष्ण की भुजाओ की सुन्दरता तथा मस्तक पर लगे हुए चन्दन के तिलक की शोभा कही नही जा सकती । (भुजाएँ) बहुत विशाल हैं और घुटने तक छूती हैं । एक उपमा मन मे आती है मानो आकाश से उतरता हुआ सर्प अधोमुख झूल रहा हो । हाथ में रत्न जड़ित पहुँची शोभित है । अँगुलियाँ अत्यन्त सुन्दर हैं । सूरदास कहते हैं कि यह (ऐसे शोभित है) मानो सर्प के सिर पर मणि शोभित हो तथा प्रति फण की शोभा न्यारी हो ।।१४६।।

स्याम-अंग जुवती निरखि भुलानी ।
कोउ निरखति कुंडल की आभा, इतनेहिं माँझ बिकानी ।
ललित कपोल निरखि कोउ अटकी, सिथिल भई ज्यौं पानी ।
देह-गेह की सुधि नहिं काहूँ, हरषत कोउ पछितानी ।
कोउ निरखति रही ललित नासिका, यह काहू नहिं जानी ।
कोउ चक्रित भइ दसन-चमक पर, चकचौंधी अकुलानी ।
कोउ निरखति दुति चिबुक चारु की, सूर तरुनि बिततानी ।।१४७।।

अर्थ—कृष्ण के अंगों को देखकर युवतियाँ भूल गयी । कोई कुंडल की कान्ति देखती है, इसी बीच बिक गयी । सुन्दर कपोल को देखकर कोई उलझ गयी और पानी की तरह शिथिल हो गयी । किसी को शरीर और घर की याद नही । कोई पछताती हैं, कोई प्रसन्न होती हैं । कोई सुन्दर नाक को देखती रही, यह कोई (अन्य) न जान पायी । कोई ओठों की शोभा देखती है और मुख से वाणी नही फूटती । कोई दाँतो की चमक से चकित होकर चकाचौध से आकुल हो गयी । कोई सुन्दर ठोढ़ी की कान्ति देखती हैं । सूरदास कहते हैं कि इस प्रकार तरुणियाँ व्याकुल हो गयी ।।१४७।।

मैं बलि जाउँ स्याम-मुख-छबि पर ।
बलि-बलि जाउँ कुटिल कच बिथुरे, बलि-बलि भृकुटी ललाट पर ।
बलि-बलि जाउँ चारु अवलोकनि, बलि-बलि कुडल-रबि की ।
बलि-बलि जाउँ नासिका सुललित, बलिहारी वा छबि की ।
बलि-बलि जाउँ अरुन अधरनि की, बिद्रुम-बिंब लजावन ।
मैं बलि जाउँ दसन चमकनि की, बारौं तड़ितनि सावन ।

मैं बलि जाउँ ललित ठोड़ी पर, बलि मोतिन की माल।
सूर निरखि तन-मन बलिहारौं, बलि बलि जसुमति-लाल ॥१४८॥

अर्थ — मैं कृष्ण के मुख की शोभा पर बलि जाती हूँ। बिखरे हुए कुटिल बालों पर बलि जाती हूँ। भौह तथा मस्तक पर न्योछावर होती हूँ। सुन्दर चितवन पर बलि जाती हूँ। कुंडल के प्रकाश पर बलि जाती हूँ। सुन्दर नासिका पर न्योछावर होती हूँ। उसकी छवि की बलिहारी है। मूँगा और त्रिवाफल को लज्जित करने वाले लाल अधरो पर बलि जाती हूँ। मैं कृष्ण के दाँतो की चमक पर बलिहारी हूँ। उस पर सावन की बिजली को न्योछावर करती हूँ। मैं सुन्दर ठोढी तथा मोतियो की माला पर बलि जाती हूँ। सूरदास कहते है कि मैं गोपी (कृष्ण) को देखकर तन मन सब की बलि देती हूँ। हे यशोदा के लाल (तुम पर) निछावर हूँ ॥१४८॥

नटवर वेप धरे व्रज आवत।
मोर मुकुट मकराकृत कुडल, कुटिल अलक मुख पर छवि पावत।
भृकुटी बिकट नैन अति चंचल, इहिँ छविपर उपमा इक धावत।
धनुष देखि खजन विधि डरपत, उड़ि न सकत उड़िबै अकुलावत।
अधर अनूप मुरलि-सुर पूरत, गौरी राग अलापि वजावत।
सुरभी-वृन्द गोप-बालक-सँग, गावत अति आनन्द बढावत।
कनक-मेखला कटि पीतावर, निर्तत मन्द-मन्द सुर गावत।
सूर-स्याम-प्रनि-अग-माधुरी, निरखत व्रज-जन कैं मन भावत ॥१४९॥

अर्थ—कृष्ण नटवर का वेष धर कर ब्रज आते हैं। (सिर पर) मोर का मुकुट, (कान मे) मकर के आकार का कुंडल, घुंघराले बाल मुख पर शोभा पाते हैं। (उनकी) भौह विकट (वक्र) तथा नेत्र चंचल हैं। इस पर एक उपमा (मन मे) आती है जैसे धनुष को देखकर खजन का एक जोडा डर कर उड़ना चाहता हो पर उड न पाने से आकुल हो। ओठ अनुपम और मुरली के स्वर से पूर्ण है तथा गौरी राग को अलाप कर बजाते हैं। गायो तथा गोप बालको के साथ गाते हुए वे अत्यधिक आनन्द बढाते हैं। कमर मे सोने की करधनी और पीताम्बर शोभित है नाचते हुए मन्द-मन्द सुर से गाते हैं। सूरदास कहते है कि कृष्ण के प्रत्येक अग की मधुरता को देखकर ब्रज के लोगों का मन भा जाता है ॥१४९॥

आवत मोहन धेनु चराए।
मोर मुकुट सिर, उर बनमाला, हाथ लकुट गोरज लपटाए।
कटि काछनी किंकिन-धुनि बाजति, चरन चलत नूपुर रव लाए।
ग्वाल-मडली मध्य स्यामघन, पीत बसन दामिनहिँ लजाए।
गोप सखा आवत गुन गावत, मध्य स्याम हलधर छबि छाए।
सूरदास प्रभु असुर सँहारे, व्रज आवत मन हरष बढ़ाए ॥१५०॥

अर्थ—मोहन गाय चराकर आ रहे है। सिर पर मोर का मुकुट, वक्ष स्थल

पर वन माला, हाथ में लाठी और गायों से उड़ायी गयी धूल शोभित है। कमर में पहनी गयी कछनी और उस पर किंकिणि की ध्वनि बजती है। चलते समय चरणो से नूपुर की ध्वनि होती है। ग्वालों की मंडली के बीच कृष्ण अपने पीताम्बर से बिजली को लजाते है। गोप मिल कर गुण गाते हुए आते हैं। बीच में बलभद्र और कृष्ण की शोभा छायी है। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण ने असुरों का संहार किया और मन के हर्ष को बढ़ाते हुए व्रज आते है ॥१५१॥

उपमा हरि-तनु देखि लजानी।
कोउ जल मैं, कोउ बननि रहीं दुरि, कोउ कोउ गगन समानी।
मुख निरखत ससि गयौ अम्बर कौं, तड़ित दसन-छबि हेरि।
मीन कमल कर-चरन नयन डर, जल मैं कियौ बसेरि।
भुजा देखि अहिराज लजाने, बिबरन पैठे धाइ।
कटि निरखत केहरि डर मान्यौ, बन-बन रहे दुराइ।
गारी देहिं कबिनि कैं बरनत, श्री-अँग पटतर देत।
सूरदास हमकौं सरमावत, नाउँ हमारौ लेत ॥१५१॥

अर्थ—कृष्ण के शरीर को देखकर (सारी) उपमाये लजा गयी। कोई जल में, कोई वन में छिपी रही, कोई-कोई आकाश में समा गयी। मुख को देखकर चन्द्रमा आकाश मे चला गया और दांतो को देखकर बिजली (आकाश मे चली गयी)। नेत्रो के डर से मीन, हाथ तथा चरणो के डर से कमलो ने पानी मे जाकर बसेरा लिया। भुजा को देखकर सर्पों के राजा (शेषनाग) लजाकर बिल मे जाकर बैठ गये। कमर को देखकर सिंह ने डर माना और वन-वन छिपता रहा। अङ्ग शोभा की समता करते समय कवियों को (उपमान) गाली देते है। और वे कहते है कि हमारी चर्चा करके हमें (कविगण) लज्जित करते है।१५१॥

स्याम सुख-रासि, रस-रासि भारी।
रूप की रासि, गुन-रासि, जोबन-रासि, थकित भईं निरखि नव तरुन नारी।
सील की रासि, जस-रासि, आनँद रासि, नील नव-जलद छबि बरनकारी।
दया की रासि, विद्या-रासि, बल-रासि, निर्दयारति दनुकुल-प्रहारी।
चतुराई-रासि, छल-रासि, कल-रासि, हरि भजै जिहिं हेत तिहिं देन हारी।
सूर-प्रभु स्याम सुख-धाम पूरन काम, बसन-कटि-पीत मुख मुरलीधारी॥१५२॥

अर्थ—कृष्ण सुख की और रस की भारी राशि (हैं)। (कृष्ण के) रूप की राशि, गुण की राशि, यौवन की राशि को देखकर तरुणी नारियां थकित हो गयी। (कृष्ण) शील की राशि, यश की राशि, आनन्द की राशि हैं तथा नीले नये बादल के समान शोभा वाले है। (वे) दया की राशि, विद्या की राशि, बल की राशि हैं, शत्रुओं के लिए निर्दयी तथा राक्षसो का नाश करने वाले हैं। चतुरता की राशि, छल की राशि, कला की राशि कृष्ण को जिस हेतु भेजा जाता है उसी को पूरा करते हैं।

सूरदास कहते हैं कृष्ण सुख के धाम तथा इच्छा को पूरा करने वाले, कमर में पीतांबर और मुँह में मुरली धारण करने वाले हैं ॥१५२॥

स्याम-कमल-पद-नख की सोभा।
जे नख-चंद्र इन्द्र-सर परसे, सिव बिरंचि मन लोभा।
जे नख-चंद्र सनक मुनि ध्यावत, नहिँ पावत भरमाहीँ।
ते नख-चंद्र प्रकट ब्रज-जुवती, निरखि निरखि हरषाहीँ।
जे नख-चंद्र फनिंद-हृदय तैँ, एकौ निमिष न टारत।
जे नख-चंद्र महामुनि नारद, पलक न कहूँ बिसारत।
जे नख-चंद्र-भजन खल नासत, रमा हृदय जे परसति।
सूर स्याम-नख-चंद्र बिमल छवि, गोपीजन मिलि दरसति ॥१५३॥

अर्थ— कृष्ण के कमल के समान चरणों के नखो की शोभा (अनुपम) है। जिन नख रूपी चन्द्रों को इन्द्र ने सिर से स्पर्श किया, और जिन नख-रूपी चन्द्रों की सनक मुनि ध्यान धरते हैं और (उन्हे) न पाकर भरमते हैं। वही नख रूपी चन्द्रमा प्रकट (हुआ) देख-देखकर ब्रज की युवतियां हर्षित होती हैं। जिन नख-चन्द्रो को शेषनाग अपने हृदय से एक भी क्षण नही हटाते। जिन नख चन्द्रों को महा मुनि नारद पल भर भी नही बिसारते हैं। जो नख-चन्द्र भजन करने पर दुष्टो का नाश करते हैं, और लक्ष्मी के हृदय का स्पर्श करते है। सूरदास कहते हैं कि गोपियां मिलकर कृष्ण के नख रूपी चन्द्र की शोभा को देखती हैं ॥१५३॥

स्याम-हृदय जल-सुत की माला, अतिहिँ अनूपम छाजै (री)।
मनहुँ बलाकपाँति नवधन पर, यह उपमा कछु भ्राजै (री)।
पीत, हरित, सित, अरुन मालबन, राजति हृदय विसाल(री)।
मानहुँ इन्द्रधनुष नभमंडल, प्रगट भयौ तिहिँ काल (री)।
भृगु पद-चिन्ह उरस्थल प्रगटे,कौस्तुभ मनि ढिग दरसत (री)।
बैठे मानौ षट बिधु एक सँग, अर्द्ध निसा मिलि हरषत (री)।
भुजा बिसाल स्याम सुन्दर की, चन्दन खौरि चढ़ाये (री)।
सूर सुभग अँग-अँग की सोभा, ब्रज-ललना ललचाए (री) ॥१५४॥

अर्थ—कृष्ण के हृदय पर मोती की माला अत्यधिक अनुपम शोभा (देती) है। मानो नये बादलों पर बगुलो की पंक्ति हो, यह उपमा कुछ उचित लगती है। पीली, हरी, सफेद, लाल बनमाला विशाल हृदय पर शोभित है। मानो उस समय आकाश मंडल मे इन्द्र धनुष उदित हो। भृगु के पैरो के (प्रहार) का चिह्न वक्ष स्थल पर स्पष्ट है और उसके निकट ही कौस्तुभ मणि दिखाई पडती है। मानो आधी रात मे छः चन्द्रमा (पांचो अँगुलियो से युक्त चरम चिह्न एवं कौस्तुभ-मणि) बैठे हुए मिलकर प्रसन्न हो रहे है। कृष्ण की भुजा चन्दन का लेप किए विलसित है। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण के अङ्ग-अङ्ग की शोभा ब्रज की स्त्रियो को ललचा देने वाली है ॥१५४॥

मुख पर चंद डारौं वारि।
कुटिल कच पर भौंर वारौं, भौंह पर धनु वारि।
भाल-केसरि-तिलक छवि पर, मदन-सर सत वारि।
मनु चली बहि सुधा- धारा, निरखि मन द्यौं वारि।
नैन सुरसति-जमुन-गंगा, उपम डारौं वारि।
मीन खंजन मृगज वारौं, कमल के कुल वारि।
निरखि कुंडल तरनि वारौं, कूप स्रवननि वारि।
झलक ललित कपोल-छवि पर, मुकुट सत-सत वारि।
नासिका पर कीर वारौं, अधर बिद्रुम वारि।
दसन पर कन-बज्र वारौं, बीज दाड़िम वारि।
चिबुक पर चित-बित्त धारौं, प्रान डारौं वारि।
सूर हरि की अंग-सोभा, को सकै निरवारि।।१५५।।

अर्थ—कृष्ण के मुख पर चन्द्रमा को निछावर कर दूं। कुटिल लटों पर भौरे को तथा भौह पर धनुष निछावर (करती हूँ)। मस्तक पर केसर के तिलक की शोभा पर मदन के सैकड़ो बाण निछावर हैं। (वह ऐसा प्रतीत होता है) मानो अमृत की धारा बह चली हो और उसे देखकर मन को निछावर कर दूं। नैनों पर सरस्वती, यमुना और गङ्गा को उपमा निछावर कर दूं। तब मछली, खंजन, मृग शावक तथा कमल के समूह निछावर (है)। कुंडल को देखकर सूर्य को निछावर कर दूं और कानों पर कुआं को निछावर देती हूं। सुन्दर कपोल की शोभा की झलक पर सैकडों मुकुट निछावर हैं। नासिका पर तोता तथा ओंठ पर मूंगे को वारती हूं। दांतो पर हीरे के दानो तथा अनार के बीज को निछावर करती हूं। ठुड्डी पर चित्त की वृत्ति को धरती हूं और प्राणो को निछावर करती हूं। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण के अङ्ग की शोभा का निर्णय कौन कर सकता है।।१५५।।

नेत्र अनुराग

नैन न मेरे हाथ रहे।
देखत दरस स्याम सुन्दर कौ, जल की ढरनि बहे।
वह नीचे कौं धावत आतुर, वैसेहि नैन भए।
वह तो जाइ समात उदधि मैं, ये प्रति अंग रए।
यह अगाध कहुँ वार पार नहिं, येउ सोभा नहिं पार।
लोचन मिले त्रिवेनी ह्वैकै, सूर समुद्र अपार।।१५६।।

अर्थ—(गोपियां कहती हैं) आँखें मेरे वश मे नही रहती। सुन्दर कृष्ण का दर्शन करते ही जल की तरह ढल कर बह जाती हैं। वह (जल) नीचे की ओर आतुर होकर दौड़ता है वैसे ही नेत्र भी हो गये है। वह तो जाकर समुद्र में समा-जाता है, किन्तु ये (नेत्र) कृष्ण के हर अङ्ग पर मोह गये हैं। यह (समुद्र) अगाध है

इसका कोई वार-पार नहीं है। इन (कृष्ण) की शोभा की भी कोई सीमा नहीं है। सूरदास कहते हैं कि (गोपियों के) नेत्र त्रिवेणी होकर अपार समुद्र (रूपी कृष्ण) से मिल गये ॥१५६॥

इन नैननि मोहिं बहुत सतायौ।
अब लौं कानि करी मैं सजनी, बहुतै मूँड़ चढ़ायौ।
निदरे रहत गहे रिस मोसौं, मोहिं दोष लगायौ।
लूटत आपुन श्री-अँग-सोभा, ज्यौं निधनी धन पायौ।
निसिहूँ दिन ये करत अचगरी, मनहिं कहा धौं आयौ।
सुनहु सूर इनकौं प्रतिपालत, आलस नैंकु न लायौ ॥१५७॥

अर्थ—इन नैनों ने मुझे बहुत सताया। अब तक हे सखी मैंने मर्यादा रखी, (इन्हें) बहुत सिर पर चढ़ाया। (लेकिन अब) ये मुझसे क्रोध करके रूठे रहते हैं और हम को ही दोष लगाते हैं। स्वयं सुन्दर अंगों की शोभा को लूटते हैं जैसे निर्धन को धन मिल गया हो। रात-दिन ये शरारत करते हैं (न मालूम) इनके मन को क्या हो गया है (क्या समा गया है)। (गोपी कहती है) सूरदास सुनो इनका पालन करते हुए मैं तनिक भी आलस नहीं लायी ॥१५७॥

नैन करैं सुख, हम दुख पावैं।
ऐसौ को पर-वेद न जानै, जासौं कहि जु सुनावैं।
तातैं मौन भलौ सबही तैं, कहि कै मान गँवावैं।
लोचन, मन, इंद्री हरि कौं भजि, तजि हमकौं सुख पावैं।
ये तौ गए आपने कर तैं, वृथा जीव भरमावैं।
सूर स्याम हैं चतुर सिरोमनि, तिनसौं भेद जनावैं ॥१५८॥

अर्थ—आँखें सुख करती हैं और हम दुःख पाते हैं। ऐसा कौन है जो दूसरे के दुख को समझे, जिससे (अपना दुख) कहकर सुनाऊँ। सबसे अच्छा है मौन रहना, कह कर कौन आदर गँवाये। आँख, मन, इन्द्रियाँ कृष्ण के होकर हमको छोड़कर सुख पाते हैं। ये तो अपने हाथ से निकल गये अब जीव को व्यर्थ ही भरमाते हैं। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण चतुर शिरोमणि हैं, उनसे (ये सब) (गोपियों का) भेद जानते हैं ॥१५८॥

ऐसे आपु स्वारथी नैन।
अपनोइ पेट भरत हैं निसि-दिन, और न लैन न दैन।
वस्तु अपार परी ओछैं कर, ये जानत घटि जैहैं।
को इनसैं समुझाइ कहै यह, दीन्हे हीं अधिकैहैं।
सदा नहीं रैहैं अधिकारी, नाउँ राखि जो लेते।
सूर स्याम सुख लूटैं आपुन, औरनि हूँ कौं देते ॥१५९॥

अर्थ—ये नेत्र स्वयं कितने स्वार्थी हैं। रात-दिन अपना ही पेट भरते रहते हैं और (से कुछ इनका) लेना-देना नहीं है। अपार वस्तु नीच के हाथ पड़ गई है, ये समझते हैं कि घट जायेगी। कौन इनसे समझाकर कहे कि देने से अधिकाई ही होगी।

सदा अधिकारी नही रहेंगे जो (चाहें तो) नाम रख लें। सूरदास कहते हैं कि औरो को भी देते हुए स्वयं सुख लूटे ।।१५८।।

नैन भए बस मोहन तैं।
ज्यौं कुरंग बस होत नाद के, टरत नहीं ता गोहन तैं।
ज्यौं मधुकर बस कमल-कोस के, ज्यौं बस चंद चकोर।
तैसेंहि ये बस भए स्याम के, गुड़ी-वस्य ज्यौं डोर।
ज्यौं बस स्वाँति-बूँद कै चातक, ज्यौं बस जल के मीन।
सूरज-प्रभु के बस्य भए ये, छिनु-छिनु प्रीति नवीन ।।१६०।।

अर्थ—नैन मोहन के वश मे हो गये। जैसे मृग नाद के वश में होकर उसके पास से नही टलता। जैसे भौरा कमल की कली के वश में होता है और चकोर पक्षी चन्द्रमा के (वश मे होता है)। वैसे ही ये कृष्ण के वश मे हो गये हैं, जैसे पतग डोरी के वश में रहती है। जैसे स्वाती नक्षत्र की बूंद के वश में पपीहा और जल के वश मे मछली उसी तरह ये कृष्ण के वश मे हो गये और क्षण-क्षण नयी प्रीति (का अनुभव) करते हैं ।।१६०।।

तब तैं नैन रहे इकटकहीं।
जब तैं दृष्टि परे नँद-नंदन, नैंकु न अत मटकहीं।
मुरली धरे अरुन अधरनि पर, कुडल झलक कपोल।
निरखत इकटक पलक भुलाने, मनो विकाने मोल।
हमकौं वै काहैं न बिसारैं, अपनी सुधि उन नाहिं।
सूर स्याम- छवि-सिंधु सामने, वृथा तरुनि पछिताहिं ।।१६१।।

अर्थ—तब से नेत्र एकटक ही हैं, जब से कृष्ण पर नजर पडी (तब से) तनिक भी अन्यत्र नही हिलते। लाल ओठो पर मुरली धरे हुए, कपोल पर झलकते कुण्डल वाले (कृष्ण) को पलक भांजना भूलकर एकटक देख रहे हैं मानो कीमत पर बिक गये है। हमको वे क्यो न भुला दे जबकि उन्हे अपनी ही सुध नही है। सूरदास कहते है कि कृष्ण के शोभा-समुद्र मे (ये नेत्र) समा गये हैं, युवतियाँ व्यर्थ ही पछताती हैं ।।१६१।।

नैननि सौं झगरौ करिहौं री।
कहा भयौ जौ स्याम-संग हैं, बाँह पकरि सम्मुख लरिहौं री।
जन्महिं तैं प्रतिपालि गड़े किये, दिन-दिन कौ लेखौ करिहौं री।
रूप-लूट कीन्ही तुम काहैं, अपने बाँटे कौं धरिहौं री।
एक मातु पितु भवन एक रहे, मैं काहैं उनकौं डरिहौं री।
सूर अंस जौ नहीं देहिगे, उनकें रँग मैं हूँ ढरिहौं री ।।१६२।।

अर्थ—आंखों से झगड़ा करूँगी। क्या हुआ जो वे कृष्ण के साथ हैं। बाँह पकडकर सामने लडूंगी। जन्म से पालकर बडा किया है, उनसे एक-एक दिन का हिसाब करूँगी। (कृष्ण) के रूप को लूट कर तुमने अपना क्यो कर लिया (उनसे)

अपना हिस्सा धरा लूंगी। एक ही माता पिता तथा एक ही भवन में निवास रहा (इसलिए) मैं उन (नेत्रो) को क्यों डरूँगी। सूरदास कहते हैं कि मुझ (गोपी) को यदि हिस्सा नही देगे तो उनके रंग में मैं ढल जाऊँगी ॥१६२॥

कपटी नैननि तैं कोउ नाहीं।
घर कौ भेद और के आगैं, क्यौं कहिवे कौं जाहीं।
आपु गए निधरक ह्वै हमतें, वरजि-वरजि पचिहारी।
मनकॉमना भई परिपूरन, ढरि रीझे गिरिधारी।
इनहिँ विना वे, उनहिँ विना ये, अंतर नाहीं भावत।
सूरदास यह जुग की महिमा, कुटिल तुरत फल पावत ॥१६३॥

अर्थ—नैनों से (अधिक) छली कोई नही है। दूसरे के आगे घर का भेद कहने क्यो जाते हैं। स्वयं बेधड़क होकर चले गये, रोक-रोककर हार गयी। इनकी मनोकामना पूरी हो गयी जो कि ढलकर कृष्ण इनसे रीझ गये। इनके विना वे (कृष्ण) और उनके विना ये (नेत्र) दोनो को वियोग नही अच्छा लगता। सूरदास कहते हैं कि यह युग की महिमा है कि कुटिल व्यक्ति, तुरन्त फल पाता है ॥१६३॥

नैना घूँघट मैं न समात।
सुन्दर वदन नन्द-नन्दन कौ, निरखि-निरखि न अघात।
अति रस लुब्ध महा मधु लम्पट, जानत एक न वात।
कहा कहौं दरसन-सुख माते, ओट भएँ अकुलात।
वार-वार वरजत हौं हारी, तऊ टेव नहिँ जात।
सूर तनक गिरिधर विनु देखै, पलक कलप सम जात ॥१६४॥

अर्थ—नेत्र घूंघट मे नही समाते। कृष्ण के सुन्दर शरीर को देख-देखकर नही अघाते हैं। (कृष्ण के रूप के) रस-माधुर्य के अत्यधिक लोभी ये लंपट एक भी वात नही जानते। क्या कहूँ दर्शन के सुख से मतवाले (कृष्ण से) ओट होने पर आकुल हो जाते हैं। वार-वार रोककर हार गयी तव भी आदत नही छूटती। सूरदास कहते हैं कि पल भर विना देखे उन्हे एक कल्प के समान बीतता है ॥१६४॥

ये नैना मेरे ढीठ भए री।
घूँघट-ओट रहत नहिँ रोकैं, हरि-मुख देखत लोभि गए री।
जउ मैं कोटि जतन करि राखे, पलक-कपाटनि मूँदि लए री।
तउ ते उमँगि चले दोउ हठ करि, करौं कहा मैं जान दए री।
अतिहिँ चपल, वरज्यौ नहिँ मानत, देखि वदन तन फेरि नए री।
सूर स्यामसुंदर-रस अटके, मानहुँ लोभी उहँह छए री ॥१६५॥

अर्थ—ये मेरे नेत्र धृष्ट हो गये हैं। घूंघट की ओट मे रोकने से नही रहते, कृष्ण के रूप को देखते ही ललचा गये। यद्यपि मैंने सैकडो उपाय करके रखा और पलक रूपी किवाड़ को बन्द कर लिया, तव भी वे दोनो हठ करके उमगकर चले, क्या करूँ,

मैंने जाने दिया। अत्यधिक चंचल हैं, रोक-टोक नहीं मानते, (कृष्ण के) शरीर को देख कर उधर ही झुक पडते हैं। सूरदास कहते हैं कि (गोपी कहती है) ये कृष्ण के (रूप) रस में उलझ गये, मानो ये लोभी वहाँ ही छा गये हैं ।।१६५।।

अँखियाँ हरि कैं हाथ बिकानीं।
मृदु मुसुकानि मोल इनि लीन्ही, यह सुनि सुनि पछितानीं।
कैसैं रहति रहीं मेरैं बस, अब कछु औरै भाँति।
अब वै लाज मरतिँ मोहिँ देखत, बैठीं मिलि हरि-पाँति।
सपने की सी मिलनि करति हैं, कब आवतिँ कब जातिँ।
सूर मिलीं ढरि नँद-नन्दन कौं, अनत नहीं पतियातिँ ।।१६६।।

अर्थ—आंखे कृष्ण के हाथ बिक गयी। मीठी हँसी ने इन्हे मोल ले लिया, यह सुन-सुनकर पछताती हूँ। मेरे वश मे कैसे रहती थी, अब तो कुछ और ही तरह का व्यवहार है। अब वे कृष्ण की पंक्ति में बैठी हुई मुझे देखकर लाज के मारे मरती हैं, स्वप्न के समान मिलन करती हैं। (मालूम नही) कब आती और कब जाती हैं। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण के साथ प्रेम करके अब ये अन्यत्र विश्वास नही करती ।।१६६।।

अँखियन तब तैं बैर धरयौ।
जब हम हटकी हरि-दरसन कौं, सो रिस नहिं बिसरयौ।
तबहीं तैं उनि हमहिं भुलायौ, गईं उतहिँ कौं धाइ।
अब तौ तरकि तरकि ऐंठति हैं; लेनी लेतिँ बनाइ।
भईं जाइ वै स्याम-सुहागिनि, बड़भागिनि कहवावैं।
सूरदास वैसी प्रभुता तजि, हम पै कब वै आवैं ।।१६७।।

अर्थ—आंखो ने तब से शत्रुता ठान ली है जब से कृष्ण के दर्शन से उन्हे रोका, (और उस) क्रोध को (उन्होने) भुलाया नही। तब ही से उन्होने हमे भुला दिया, और उन्ही की ओर दौड़कर चली गयी। तब ही से तड़क-तड़क कर ऐंठती है, और लेनी (बदला) बना ले रही हैं। वे जाकर कृष्ण की सुहागिन होकर वडभागी कहलाती हैं। सूरदास कहते हैं कि वैसी वड़ाई को छोड़कर हमारे पास वे क्यों आने लगी ।।१६७।।

———

राधा-कृष्ण

प्रथम मिलन

खेलत हरि निकसे ब्रज-खोरी ।
कटि कछनी पीतांबर बाँधे, हाथ लिये भौँरा, चक, डोरी ।
मोर-मुकुट, कुंडल स्रवननि वर, दसन-दमक दामिनि-छवि छोरी ।
गए स्याम रबि-तनया कैं तट, अंग लसति चन्दन की खोरी ।
औचक ही देखी तहँ राधा, नैन बिसाल भाल दिये रोरी ।
नील बसन फरिया कटि पहिरे, बेनी पीठि रुलति झकझोरी ।
संग लरिकिनी चली इत आवति, दिन-थोरी, अति छवि तन-गोरी ।
सूर स्याम देखत हीं रीझे, नैन-नैन मिलि परी ठगोरी ॥१॥

अर्थ—खेलते हुए कृष्ण ब्रज की सँकरी गली मे निकले, कमर में कछनी और पीताम्बर बाँधे हुए हैं और हाथ मे भौरा (लट्टू) और लट्टू की डोरी लिए हुए हैं। उनके (मस्तक पर) मोर का मुकुट है, कानो में श्रेष्ठ कुण्डल हैं और उनके दांतो की चमक ने बिजली की छवि को छीन लिया है। कृष्ण यमुना के तट पर गये, उनके अंग पर चंदन का लेप शोभित है। उन्होने अचानक ही वहां राधा को देखा, जिसके नेत्र बड़े-बड़े थे तथा मस्तक पर तिलक लगा था, जिसने नीला वस्त्र तथा कमर में घांघरी पहन रखी थी। जिसके पीठ पर झकझोरती हुई चोटी हिलती डुलती है। वह लडकियों के साथ इधर ही चली आती है। वह थोडे दिन (कम उम्र) की (होते हुए भी), अत्यधिक सुन्दर तथा गोरे शरीर की है। सूरदास कहते है कि कृष्ण (उसे) देखते ही रीझ गये। नेत्र से नेत्र मिलते ही जादू का सा असर हुआ ॥१॥

बूझत स्याम कौन तू गोरी ।
कहाँ रहति, काकी है बेटी, देखी नहीं कहूँ ब्रज खोरी ।
काहे कौं हम ब्रज-तन आवतिं, खेलति रहतिँ आपनी पौरी ।
सुनत रहतिँ स्रवननि नँद-ढोटा, करत फिरत माखन-दधि-चोरी ।
तुम्हरौ कहा चोरि हम लैहैं, खेलन चलौ संग मिलि जोरी ।
सूरदास प्रभु रसिक-सिरोमनि, बातनि भुरइ राधिका भोरी ॥२॥

अर्थ—कृष्ण (राधा) से पूछते है—गोरी तुम कौन हो। कहाँ रहती हो और किसकी बेटी हो, (क्योकि) तुम्हें ब्रज की गलियो मे कभी नही देखता हूँ। (राधा उत्तर देती है) मैं ब्रज में किसलिए आऊँ, (मैं) अपने द्वार पर खेलती रहती हूँ। माखन तथा

दही की चोरी करते फिरते हुए नन्द के पुत्र (कृष्ण) की कहानी सुनती रहती हूँ। (कृष्ण कहते हैं) मैं तुम्हारा क्या चुरा लूंगा, साथ मिलकर खेलने चलें। सूरदास कहते हैं कि रसिक शिरोमनि कृष्ण ने भोली राधा को बातो से ही फुसला लिया ॥२॥

प्रथम सनेह दुहुँनि मन जान्यौ।
नैन नैन कीन्ही सब बातैं, गुप्त प्रीति प्रगटान्यौ।
खेलन कबहुँ हमारैं आवहु, नंद-सदन, ब्रज गाउँ।
द्वारैं आइ टेरि मोहिं लीजौ, कान्ह हमारौ नाउँ।
जौ कहियै घर दूरि तुम्हारौ, बोलत सुनियै टेरि।
तुमहिं सौंह बृषभानु बबा की, प्रात-साँझ इक फेरि।
सूधी निपट देखियत तुमकौं, तातैं करियत साथ।
सूर स्याम नागर-उत नागरि, राधा दोउ मिलि गाथ ॥३॥

अर्थ--प्रथम प्रेम को दोनों ने मन से ही जान लिया। (दोनों ने) आँख ही आंख से सब बाते कर ली और गुप्त प्रेम को प्रकट किया। (कृष्ण कहते हैं) कभी हमारे ब्रज गाँव के नन्द के घर खेलने आओ। द्वार पर आकर मुझे बुला लेना, कृष्ण मेरा नाम है। जो कहो कि तुम्हारा घर दूर है, तुम्हारे (जोर से) पुकारने पर सुनाई देगा। तुम्हे वृषभानु वावा की सौगन्ध है, सुवह या शाम एक बार (अवश्य) आना। तुम्हे विलकुल सीधी-सरल देख कर मैं तुम्हारा साथ करना चाहता हूँ। सूरदास कहते है कि श्याम कृष्ण नागर (सभ्य तथा चतुर पुरुष) तथा राधा नागरि (सभ्य तथा चतुर नारी) है, दोनो मिल कर लीला करते है ॥३॥

गई बृषभानु-सुता अपने घर।
सग सखी सौं कहति चली यह, को जैहैं इनकैं दर।
वड़ी वेर भई जमुना आए, खीझति ह्वैहै मैया।
वचन कहति मुख, हृदय-प्रेम-दुख, मन हरि लियौ कन्हैया।
माता कहति कहाँ री प्यारी, कहाँ अबेर लगाई।
सूरदास तव कहति राधिका, खरिक देखि हौं आई ॥४॥

अर्थ—वृषमानु की पुत्री (राधा) अपने घर गयी। साथ की सखियों से यह कहती हुई चली कि कौन इनके (कृष्ण) घर जायेगा। यमुना आए हुए बहुत देर हो गयी। माता खीझती होंगी। मुँह से यह वचन कहती है, (किन्तु) हृदय मे प्रेम की पीड़ा है, (क्योंकि) कृष्ण ने उसका मन हर लिया। माता कहती हैं—प्यारी तुम अब तक कहाँ थी, कहाँ देर लगायी। सूरदास कहते है कि तब राधा ने अपनी माँ को उत्तर दिया—कि मैं पशुओं का वाड़ा देखकर आई हूँ ॥४॥

नंद गए खरिकहिं हरि लीन्हे।
देखी तहाँ राधिका ठाढ़ी, बोलि लिए तिहिं चीन्हे।

महर कह्यौ खेलौ तुम दोऊ, दूरि कहूँ जिनि जैही।
गनती करत ग्वाल गैयनि की, मोहिँ नियरैँ तुम रैही।
सुनि बेटी बृषभानु महर की, कान्हहिँ लेइ खिलाइ।
सूर स्याम कौँ देखे रहिही, मारै जनि कोउ गाइ ।।५।।

अर्थ—नन्द कृष्ण को लेकर पशुओ के बाड़े (गोशाला) में गये। वहाँ पर उन्होने राधिका को खडी देखा, उसे पहचान कर (नन्द ने) बुला लिया। महर ने कहा तुम दोनों खेलो, कही दूर मत जाना। ग्वाल और गायों की गिनती करते हुए मेरे ही पास तुम रहना। महर वृषभानु की बेटी सुनो! कृष्ण को खिला लो। सूरदास कहते हैं (महर कहते है) कि कृष्ण को देखते रहना, कोई गाय मारने न पावे ।।५।।

नन्द बबा की बात सुनौ हरि।
मोहिँ छाँड़ि जौ कहूँ जाहुगे, ल्याऊँगी तुमकौँ धरि।
भली भई तुम्हेँ सौँपि गए मोहिँ, जान न दैहौँ तुमकौँ।
बाँह तुम्हारी नैँकु न छाँड़ौँ, महर खीझिहैँ हमकौँ।
मेरी बाँह छाँड़ि दै राधा, करत उपरफट बातैँ।
सूर स्याम नागर, नागरि सौँ, करत प्रेम की घातैँ ।।६।।

अर्थ—(राधा कहती है) कृष्ण, बाबा नन्द की बात सुनो। मुझको छोडकर यदि कही जाओगे तो मै तुमको पकड लाऊँगी। अच्छा हुआ तुम्हे वे मुझे सौप गये, मैं तुमको जाने नही दूंगी। तुम्हारी बाँह तनिक भी नही छोडूंगी, नही तो महर हमसे नाराज होंगे। (कृष्ण कहते है) राधा मेरी बाँह छोड दे, क्यो अनर्गल बाते करती है। सूरदास कहते है कृष्ण चतुर राधा से प्रेम की चोटे करते है ।।६।।

खेलन कैँ मिस कुँवरि राधिका, नंद-महरि कैँ आई (हो)।
सकुच सहित मधुरे करि बोली, घर ही कुँवर कन्हाई (हो)।
सुनत स्याम कोकिल सम बानी, निकसे अति अतुराई (हो)।
माता सौँ कछु करत कलह हे, रिस डारी बिसराई (हो)।
मैया री तू इनकौँ चीन्हति, बारम्बार बताई (हो)।
जमुना-तीर काल्हि मैँ भूल्यौ, बाँह पकरि लै आई (हो)।
आवति इहाँ तोहिँ सकुचति है, मैँ दै सौँह बुलाई (हो)।
सूर स्याम ऐसे गुन-आगर, नागरि बहुत रिझाई (हो) ।।७।।

अर्थ—खेलने के बहाने कुमारी राधा नन्द महर के (घर) आई। संकोच के साथ मधुरता से बोलती है कि (हे) कुँवर कृष्ण घर हो ? कोयल के समान राधा की बोली सुन कर (कृष्ण) अत्यधिक आकुलता से निकले। माता से कुछ तकरार कर रहे थे, पर (उस) क्रोध को वे तुरन्त भूल गये। (कृष्ण कहते है) मैया तुम इसको पहचानती हो। (फिर) बार-बार बताते है कि यमुना के किनारे कल मैं भटक गया था, (यह) मेरी बांह पकड़ कर ले आयी। यहां आते हुए इसको तुमसे संकोच होता है। मैने इसे

सौगंध देकर बुलाया है। सूरदास कहते हैं गुणो के भांडार कृष्ण ने नागरि राधा को बहुत रिझाया ॥७॥

नाम कहा तेरौ री प्यारी।
बेटी कौन महर की है तू, को तेरी महतारी।
धन्य कोख जिहिँ तोकौँ राख्यौ, धनि घरि जिहिँ अवतारी।
धन्य पिता माता तेरे, छवि निरखति हरि-महतारी।
मैँ बेटी वृषभानु महर की, मैया तुमकौँ जानतिँ।
जमुना-तट बहु बार मिलन भयौ, तुम नाहिँन पहिचानतिँ।
ऐसी कहि, वाकौँ मैँ जानति, वह तो बड़ी छिनारि।
महर बड़ौ लंगर सब दिन कौ, हँसति देति मुख गारि।
राधा बोलि उठी, बाबा कछु, तुमसौं ढीठौ कीन्हौ।
ऐसे समरथ कब मैँ देखे, हँसि प्यारिहिँ उर लीन्हौ।
महरि कुँवरि सौँ यह कहि भाषति, आउ करौँ तेरी चोटी।
सूरदास हरषित नँदरानी, कहति महरि हम जोटी ॥८॥

अर्थ—प्यारी तेरा क्या नाम है। तू कौन महर की बेटी है और कौन तुम्हारी माता है। वह कोख धन्य है जिसने तुझको रखा और वह (माता) धन्य है जिसने तुम्हें जन्म दिया। तुम्हारे पिता, माता (दोनो) धन्य है। (इस प्रकार) कृष्ण की माता (उसकी) छवि देखती हैं। (राधा उत्तर देती है) मैं वृषभानु महर की पुत्री हूँ, माता तुमको जानती हैं। यमुना के तट पर बहुत बार मिलन हुआ है, (क्या) तुम नही पहचानती हो। ऐसा कहो, उसको मैं जानती हूँ, वह तो बहुत कुलटा है। महर (वृषभानु भी) सब दिन के बडे धृष्ट हैं, इस प्रकार (यशोदा) हँसती और मुँह से गाली देती है। राधा (इस पर) बोल उठी कि बाबा ने क्या तुमसे कुछ धृष्टता की है। इस पर यशोदा ने कहा ऐसे समर्थ उनको मैंने कब देखा ? फिर हँस कर प्यारी राधा को हृदय से लगा लिया। यशोदा कुँवरि राधा से यह कहती है—आओ तुम्हारी चोटी करूँ। सूरदास कहते हैं नन्दरानी प्रसन्न होती हैं और कहती है कि महरि और हम जोड़ी है ॥८॥

जसुमति राधा कुँवरि सँवारति।
बड़े बार सीमंत सीस के, प्रेम सहित निरुवारति।
माँग पारि बेनी जु सँवारति, गूँथी सुन्दर भाँति।
गोरैँ भाल बिंदु बदन, मनु इन्दु प्रात-रवि काँति।
सारी चीरि नई फरिया लै, अपने हाथ बनाइ।
अंचल सौँ मुख पोँछि अंग सब, आपुहि लै पहिराइ।
तिल, चाँवरी, बतासे, मेवा, दियौ कुँवरि की गोद।
सूर स्याम-राधा तनु चितवत, जसुमति मन-मन मोद ॥९॥

अर्थ—यशोदा कुमारी राधा को सँवारती हैं। फिर की माँग के बड़े बालो को प्रेम के साथ सुलझाती हैं। उन्होने माँग काढकर, चोटी को सँवारकर, सुन्दर तरह से गूँथा। गोरे मस्तक (और गोरे) मुख पर बिन्दी ऐसी शोभित है मानो चन्द्रमा तथा प्रातः कालीन सूर्य की कांति एक साथ शोभित हो रही हो। यशोदा ने साड़ी को चीर कर अपने हाथ से नया लहँगा बनाया, फिर अपने आँचल से राधा के मुख तथा अन्य सब अङ्गो को पोछ कर उन्होंने अपने हाथ से लहँगा पहना दिया। इसके उपरान्त तिल, चावल, बतासा और मेवा से कुँवरि (राधा) की गोद भरी। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण और राधा की ओर देखते हुए यशोदा मन-ही-मन आनन्दित हैं ॥६॥

बूझति जननि कहाँ हुती प्यारी।
किन तेरे भाल तिलक रचि कीनौ, किहिँ कच गूँदि माँग सिर पारी।
खेलत रही नंद कैं आँगन, जसुमति कही कुँवरि ह्याँ आ री।
मेरौ नाउँ बूझि बाबा कौ, तेरौ बूझि दई हँसि गारी।
तिल, चाँवरी गोद करि दीनी, फरिया दई फारि नव सारी।
मो तन चितै, चितै ढोटा-तन, कछु सविता सौं गोद पसारी।
या सुनि कै वृषभानु मुदित चित, हँसि-हँसि बूझत बात दुलारी।
सूर सुनत रस-सिन्धु बढ्यौ अति, दम्पति एकै बात विचारी ॥१०॥

अर्थ—माता पूछती हैं कि प्यारी तुम कहाँ थी। किसने तुम्हारे मस्तक पर तिलक की रचना की है, किसने बालों को गूंथ (सुलझा) कर सिर की माँग निकाली है। (राधा उत्तर देती है) जब मैं नंद के आँगन मे खेल रही थी, तब यशोदा ने कहा कुँवरि यहाँ आओ। मेरा नाम पूछा और बाबा का नाम पूछा, फिर तुम्हारा नाम पूछ कर हँसते हुए गाली दी। तिल और चावल से (मेरी) गोद भर दी तथा नयी साड़ी फाडकर लहँगा पहनाया। मेरी ओर देखकर और पुत्र की ओर देखकर उन्होने सूर्य की ओर आँचल पसार कर कुछ प्रार्थना की। यह सुनकर वृषभानु प्रसन्न मन से हँस-हँसकर प्यारी राधा से बात पूछते है। सूरदास कहते हैं कि (यह सब) सुनते ही दंपति के हृदय मे रस का सागर अत्यधिक उमड़ आया और दोनो के मन मे एक ही विचार उठा ॥१०॥

गारुड़ी कृष्ण

सखियनि मिलि राधा घर लाईं।
देखहु महरि सुता अपनी कौं, कहुँ इहिँ कारैं खाई।
हम आगैं आवति, यह पाछैं, धरनि परी भहराई।
सिर तैं गई दोहनी ढरिकै, आपु रही मुरझाई।
स्याम-भुअंग डस्यौ हम देखत, ल्यावहु गुनी बुलाई।
रोवति जननि कंठ लपटानी, सूर स्याम गुन राई ॥११॥

अर्थ—सखियाँ मिलकर राधा को घर ले आयी और कहने लगी, महरि अपनी बेटी को देखो, कही इसे सांप ने काट लिया है। हम सब आगे-आगे आ रही थीं, पीछे यह जमीन पर गिर पड़ी। सिर से दोहनी (दूध की हांडी) ढुलक गयी, स्वयं मुरझा गयी। हमारे देखते इसे काले सांप ने डस लिया, किसी गुणी को बुला लाओ। रोती हुई माता कंठ से लिपटकर कहती है कि कृष्ण ही गुणियो मे श्रेष्ठ हैं ।।११।।

नंद-सुवन गारुड़ी बुलावहु।
कह्यौ हमारौ सुनत न कोऊ, तुरत जाहु, लै आवहु।
ऐसौ गुनी नहीं त्रिभुवन कहुँ, हम जानतिँ हैं नीकै।
आइ जाइ तौ तुरत जियावहिँ, नैँकु छुवत उठै जी कै।
देखौ धौं यह बात हमारी, एकहि मन्त्र जिवावै।
नन्द महर कौ सुत सूरज जौ, कैसेहुँ ह्याँ लौ आवै ।।१२।।

अर्थ—गारुडी नंद के पुत्र (कृष्ण) को बुलाओ। हमारा कहना तो कोई सुनता नही, तुरन्त जाकर ले आओ। ऐसा सांप के मंत्र को जानने वाला तीनो लोक मे कोई नही है। हम उसे अच्छी तरह जानती हैं। आ जायँ तो तुरन्त जिला दे, तनिक छूते ही जी कर उठ जाय। हमारी यह बात निश्चय करके देखो एक ही मंत्र मे वह जिला देता है। नन्द महर के पुत्र को कैसे भी यहां पर ले आया जाय ।।१२।।

महरि, गारुड़ी कुँवर कन्हाई।
एक बिटिनियाँ कारैं खाई, ताकौं स्याम तुरतहीं ज्याई।
बोलि लेहु अपने ढोटा कौं, तुम कहि कै देउ नैँकु पठाई।
कुँवरि राधिका प्रात खरिक गई, तहाँ कहूँ-धौं कारैं खाई।
यह सुनि महरि मनहिँ मुसुक्यानी, अबहिँ रही मेरैं गृह आई।
सूर स्याम राधहिँ कछु कारन, जसुमति समुझि रही अरगाई ।।१३।।

अर्थ—हे महरि (यशोदा) कुंवर कृष्ण सांप के विष को मंत्र से उतारने वाले है। एक लड़की को सांप ने काट लिया, उसे कृष्ण ने तुरन्त जिला दिया। अपने पुत्र को बुला लो और तुम (स्वय) कहकर उसे भेज दो। कुमारी राधा प्रात: पशुओं के चरने के स्थान पर गई थी वहां कही उसे काले सांप ने काट लिया। यह सुनकर महरि (यशोदा) ने मन ही मन मुस्करा कर सोचा, अभी तो हमारे ही घर थी। सूरदास कहते हैं कि यशोदा राधा की मूरछा के मूल कारण को समझकर चुप हो गईं ।।१३।।

तब हरि कौं टेरति नँदरानी।
भली भई सुत भयौ गारुड़ी, आजु सुनी यह बानी।
जननी-टेर सुनत हरि आए, कहा कहति री मैया ?।
कीरति महरि बुलावन आई, जाहु न कुंवर कन्हैया।
कहूँ राधिका कारैं खाई, जाहु न आवौ झारि।
जंत्र-मंत्र कछु जानत हौ तुम, सूर स्याम बनवारि ।।१४।।

अर्थ—तब कृष्ण को नंदरानी जोर से बुलाती हैं। अच्छा हुआ पुत्र गारुड़ी हो गया, (मैंने) यह बात आज सुनी। माता की पुकार को सुनकर कृष्ण आये, (और पूछने लगे) माता क्या कहती हो। कीरति नाम की महरि बुलाने आयी है, कुँवर कृष्ण जाते क्यों नही। राधा को कही साँप ने डस लिया है, जाओ झाड़ (फूंक) आओ न! सूरदास कहते हैं कि (यशोदा कहती हैं) बनवारी कृष्ण तुम कुछ जन्त्र-मन्त्र जानते हो ॥१४॥

हरि गारुड़ी तहाँ तब आए।
यह बानी वृषभानु सुता सुनि, मन-मन हरष बढ़ाए।
धन्य-धन्य आपुन कौं कीन्हौ, अतिहिं गई मुरझाई।
तन पुलकित रोमांच प्रगट भए, आनंद-अश्रु बहाइ।
विह्वल देखि जननि भई व्याकुल, अँग विष गयौ समाइ।
सूर स्याम-प्यारी दोउ जानत, अन्तरगत कौ भाइ ॥१५॥

अर्थ—तब गारुड़ी कृष्ण वहाँ आये। यह वाणी सुनकर राधा के मन-ही-मन मे हर्षोल्लास हुआ। अत्यन्त मुरझाई हुई राधा ने अपने को धन्य-धन्य माना। उसके पुलकित शरीर मे रोमांच प्रकट हो गया और आनद के आँसू बहने लगे। (राधा को) विह्वल देखकर माता व्याकुल हो गयी कि (राधा के) अंग मे विष समा गया। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण और (प्यारी) राधा दोनों पारस्परिक अन्तर के भाव को समझते हैं ॥१५॥

रोवति महरि फिरति बिततानी।
बार-बार लै कंठ लगावति, अतिहिं सिथिल भई पानी।
नन्द सुवन कैं पाइ परी लै, दौरि महरि तब आइ।
व्याकुल भई लाड़िली मेरी, मोहन देहु जिवाइ।
कछु पढ़ि-पढ़ि कर, अंग परस करि, विष अपनौ लियौ झारि।
सूरदास-प्रभु बड़े गारुड़ी, सिर पर गाड़ू डारि ॥१६॥

अर्थ—रोती हुई महरि व्याकुल फिरती हैं। बार-बार (राधा को) लेकर गले से लगातीं हैं। वह अत्यधिक शिथिल होकर पानी-पानी (द्रवित) हो गईं। तब महरि दौड़कर कृष्ण के पैरो पर (गिर) पडी। (और बोली) मेरी प्रिय पुत्री व्याकुल हो गयी है, मोहन उसे जिला दो। कुछ पढ-पढ़ कर, अंग छू कर, सिर पर जादू डालकर कृष्ण ने विष झाड दिया। सूरदास कहते हैं कि (इस प्रकार) कृष्ण बड़े गारुड़ी (सिद्ध हो गये) है ॥१६॥

लोचन दए कुँवरि उघारि।
कुँवर देख्यौ नन्द कौ तब, सकुचौ अंग सम्हारि।
बात बूझति जननि सौं री, कहा है यह आज।
मरत तैं तू बची प्यारी, करति है कह लाज।
तब कहति तोहिँ कारैं खाई, कछु न रहि सुधि गात।
सूर प्रभु तोहिँ ज्याइ लीन्ही, कही कुँवरि सौं मात ॥१७॥

अर्थ—कुँवरि राधा ने आँखें खोल दी, जब कृष्ण को देखा तो संकोच से अङ्गों को सम्हाला। (फिर) राधा माता से (एक) बात पूछती है कि यह आज क्या है? (माता ने कहा) प्यारी आज तू मरने से बची, लाज क्यो करती हो। तब कहती है सॉंप ने काट लिया था इसलिए शरीर मे चेतना नही थी। सूरदास कहते है कि माता राधा से कहती हैं कि कृष्ण ने तुझे जिला लिया ॥१७॥

बड़ौ मंत्र कियौ कुँवर कन्हाई।
बार-बार लै कंठ लगायौ, मुख चूम्यौ दियौ घरहिँ पठाई।
धन्य कोषि वह महरि जसोमति, जहाँ अवतरचौ यह सुत आई।
ऐसौ चरित तुरतहीँ कीन्हौँ, कुँवरि हमारी मरी जिवाई।
मनहीँ मन अनुमान कियौ यह, बिधिना जोरी भली बनाई।
सूरदास प्रभु बड़े गारुड़ी, ब्रज घर-घर यह धैरु चलाई ॥१८॥

अर्थ—कुँवर कृष्ण ने बड़े मंत्र का प्रयोग किया। (राधा की माँ ने) कृष्ण को लेकर बार-बार गले से लगाया और मुख चूमकर घर भेज दिया। वह महरि यशोदा की कोख (कुक्षि) धन्य है, जिससे इस पुत्र ने जन्म (अवतार) लिया। तुरन्त ऐसा उपाय किया जिससे मेरी मरी हुई बेटी जी गई। फिर उन्होने मन-ही-मन अनुमान किया कि ब्रह्मा ने भली जोड़ी बनायी है। सूरदास कहते है कि कृष्ण बड़े गारुड़ी हैं, ब्रज के घर-घर में यह चर्चा चल पडी ॥१८॥

सम्बन्ध रहस्य

तुम सौँ कहा कहौँ सुन्दर घन।
या ब्रज मैँ उपहास चलत है, सुनि सुनि स्रवन रहति मनहीँ मन।
जा दिन सबनि पछारि, नोइ करि, मोहिँ दुहि दई धेनु बंसीबन।
तुम गही बाँह सुभाइ आपनैँ, हौँ चितई हँसि नैँकु बदन-तन।
ता दिन तैँ घर मारग जित तित, करत चवाव सकल गोपीजन।
सूर-स्याम अब साँच पारिहौँ, यह पतिव्रत तुम सौँ नँद-नंदन ॥१९॥

अर्थ—सुन्दर कृष्ण तुमसे क्या कहूँ। इस ब्रज मे हँसी होती है। कान से सुन-सुन कर मन-ही-मन (चुप) रह जाती हूँ। जिस दिन सब को पिछाड़कर तुमने नयी गाय को नोइ (दुहनें के समय रस्सी से गाय के पिछले पैर को बाँध) कर वंशीवन मे दुहा और आपने स्वभाव वश (मेरी) बाँह पकडी, (और) मैं तनिक (तुम्हारे) मुख की ओर देखकर किंचित हँस दी। उसी दिन से घर, मार्ग और जहाँ तहाँ गोप जन कुचर्चा करते है। सूरदास कहते हैं कि (राधा कहती है) कि अब कृष्ण तुम्हारे प्रति सच्चे पति व्रत का पालन करूँगी ॥१९॥

स्याम यह तुमसौं क्यौं न कहौं।
जहाँ तहाँ घर घर कौ घैरा, कौनी भाँति सहौं।
पिता कोपि करवाल गहत कर, बंधु बधन कौं धावै।
मातु कहै कन्या कुल कौ दुख, जनि कोऊ जग जावै।
बिनती एक करौं कर जोरे, इनि बीथिन जनि आवहु।
जौ आवहु तौ मुरलि-मधुर-धुनि, मो जनि कान सुनावहु।
मन क्रम बचन कहति हौं साँची, मैं मन तुमहिं लगायौ।
सूरदास-प्रभु अन्तरजामी, क्यौं न करौ मन भायौ ॥२०॥

अर्थ—कृष्ण यह तुमसे क्यो न कहूँ। जहाँ-तहाँ घर-घर की कुचर्चा किस तरह सहूँ। पिता क्रोधित होकर हाथ मे तलवार लेते हैं। भाई मारने को दौडते हैं। माता कहती है कि कन्या कुल का दुःख है, जग मे कोई (कन्या) न पैदा करे। (राधा कहती है) तुमसे मैं हाथ जोडकर विनती करती हूँ कि इन गलियो में मत आओ। जो आओ (भी) तो मुरली की मधुर ध्वनि मेरे कान मे न पडने पाये। मन, कर्म और वचन से सत्य कहती हूँ, मैंने मन तुम्ही मे लगाया है। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण तुम अन्तर की बात जानने वाले हो, क्यो मन को भाने वाली बात नही करते हो ॥२०॥

हँसि बोले गिरिधर रस-बानी।
गुरजन खिझैं कतहिं रिस पावति, काहे कौं पछतानी।
देह धरे कौ धर्म यहै है, स्वजन कुटुंब गृह-प्रानी।
कहन देहु, कहि कहा करैंगे, अपनी सुरत हिरानी ?।
लोक लाज काहे कौं छाँड़ति, ब्रजहीं बसैं भुलानी।
सूरदास घट द्वै हैं, मन इक, भेद नहीं कछु जानी ॥२१॥

अर्थ—हँसकर कृष्ण रस से भरी वाणी बोले। गुरुजन के खीझने पर तुम नाराज क्यो होती हो और पछताती क्यो हो। शरीर धारण करने वाले का यही धर्म है। स्वजन, कुटुंब तथा घर के प्राणी (जो कुछ कहते हो) कहने दो, कहकर क्या करेंगे ? क्या (तुम्हारी) स्वयं की स्मृति (सुरति) खो गयी है ? लोक की लाज क्यो छोड़ती हो। ब्रज में बसने पर भूल गई। सूरदास कहते हैं कि (कृष्ण कहते है) शरीर दो है किन्तु मन एक ही है, इसमे (मैं) कुछ भेद नही जानता ॥२१॥

ब्रज बसि काके बोल सहौं।
तुम बिनु स्याम और नहिं जानौं, सकुचि न तुमहिं कहौं।
कुल की कानि कहा लै करिहौं, तुमकौं कहाँ लहौं।
धिक माता, धिक पिता बिमुख तुव, भावै तहाँ बहौं।
कोउ कछु करै, कहै कछु कोऊ, हरष न सोक गहौं।
सूर स्याम तुमकौं बिनु देखैं, तनु मन जीव दहौं ॥२२॥

अर्थ—(राधा कहती है) व्रज मे वसकर किसके वोल (व्यंग) सहूँ। कृष्ण तुम्हारे सिवाय मैं किसी और को नही जानती। संकोच के कारण तुमसे नही कहती हूँ। कुल की मर्यादा का निर्वाह कहाँ तक करूँगी, (उस स्थिति में) तुमको कैसे पाऊँगी। माता पिता सवको धिक्कार है। तुम से विमुख होकर जो जहाँ चाहे वहाँ वहे अर्थात् जो जैसा चाहे कहे। कोई कुछ भी करे, कुछ भी कहे, मैं हर्ष या विषाद कुछ नही मानती। सूरदास कहते है कि (राधा कहती है) कृष्ण तुम्हे विना देखे, मैं शरीर, मन, जीव सव जला दूँगी ॥२२॥

व्रजहिं बसैं आपुहिं विसरायौ।
प्रकृति पुरुप एकहि करि जानहु, बातनि भेद करायौ।
जल थल जहाँ रहौं तुम बिनु नहिं, वेद उपनिषद गायौ।
द्वै-तन जीव-एक हम दोऊ, सुख-कारन उपजायौ।
ब्रह्म-रूप द्वितिया नहिं कोऊ, तब मन तिया जनायौ।
सूर स्याम-मुख देखि अलप हँसि, आनँद-पुंज वढ़ायौ ॥२३॥

अर्थ—(कृष्ण कहते हैं) व्रज में अपने (मूल रूप) को भुलाकर हम निवास करते हैं। प्रकृति और पुरुष को एक ही करके जानो, (दोनो मे) केवल कहने मे भेद किया गया है। जल, पृथ्वी कही भी, तुम्हारे विना नही रहता हूँ, वेद तथा उपनिषद् (भी यही) कहते हैं। हम दोनो दो तन तथा एक जीव रूप मे सुख के लिए उत्पन्न हुए है। ब्रह्म का कोई दूसरा रूप नही है। इस प्रकार मन (की वात) प्रिया को (कृष्ण ने) जना दिया। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण के मुख को देख कर राधा किंचित हँस दी और इस प्रकार उनका आनन्दोल्लास बढ़ गया ॥२३॥

तव नागरि मन हरप भई।
नेह पुरातन जानि स्याम कौ, अति आनंद-भई।
प्रकृति पुरुष, नारी मैं वै पति, काहैं भूलि गई।
को माता, को पिता, वंधु को, यह तो भेंट नई।
जन्म-जन्म, जुग-जुग यह लीला, प्यारी जानि लई।
सूरदास प्रभु की यह महिमा, यातैं बिबस भई ॥२४॥

अर्थ—तव नागरि राधा का मन हर्षित हुआ। कृष्ण के पुरातन स्नेह को जानकर उन्हें अत्यधिक आनन्द हुआ। प्रकृति-पुरुष के रूप मे मैं नारी और वे पति हैं, (यह मैं) क्यों भूल गयी। कौन माता, कौन पिता, कौन भाई, यह तो नयी भेट (सम्वन्ध) है। जन्म-जन्म और युग-युग की इस लीला को प्यारी (राधा) ने जान लिया। सूरदास कहते हैं कि प्रभु की यह महिमा है जिससे (राधा) विवश हो गयी ॥२४॥

देह धरे कौ कारन सोई।
लोक-लाज कुल-कानि तजियै, जातैं भलौ कहै सब कोई।

मातु पिता के डर कौं मानै, मानै सजन कुटुँव सव लोई।
तात मातु मोहूँ कौं भावत, तन धरि कै माया-वस होई।
सुनि वृषभानु-सुता मेरी वानी, प्रीति पुरातन राखहु गोई।
सूर स्याम नागरिहिँ सुनावत, मैं तुम एक नाहिँ हैं दोई ॥२५॥

अर्थ—शरीर धारण करने का वही कारण है। लोक की लाज तथा कुल की मर्यादा न छोड़िये, जिससे सब लोग भला कहे। माता पिता के डर को माने तथा अपने सम्वन्धियो तथा कुटुम्बियो (के डर) को माने। पिता-माता मुझे (राधा को) भाते हैं। (क्योकि) शरीर धरकर (मै) माया वस हो गयी। (कृष्ण कहते हैं) हे वृषभानु की पुत्री मेरी वात सुनो, पुरानी प्रीति छिपाकर रखो। सूरदास कहते है कि नागरि राधा को (कृष्ण) सुनाते हैं कि हम तुम एक है, दो नही ॥२५॥

राधा-सखी संवाद

घरहिँ जाति मन हरष बढ़ायौ।
दुख डारचौ, सुख अंग भार भरि, चली लूट सौ पायौ।
भौंह सकोरति चलति मंद गति, नैंकु बदन मुसुकायौ।
तहँ इक सखी मिली राधा कौं, कहति भयौ मन भायौ।
कुंज-सुवन हरि-संग विलस रस, मन कौ सुफल करायौ।
सूर सुगन्ध चुरावनहारौ, कैसैं दुरत दुरायौ ॥२६॥

अर्थ—घर जाते समय राधा का मन हर्षोल्लसित हो गया है। दुःख को छोड़ कर सुख के भार से अंगों को भरकर चली जैसे लूट का माल पा गयी हो। भौह को सिकोड़ती, धीमी चाल से चलती हुई तनिक मुख पर मुसकान आ गयी। वहाँ एक सखी राधा को मिली और कहती है कि तुम्हारे मन को भाने वाला हुआ। कुंज के भवन मे कृष्ण के साथ विलसने का रस पाकर मन को सफल कर लिया। सूरदास कहते है कि (सखी कहती हैं) सुगंध को चुराने वाला छिपाने से कैसे छिप सकता है ॥२६॥

मोसौं कहा दुरावति राधा।
कहाँ मिली नँद-नंदन कौं, जिनि पुरई मन की साधा।
ब्याकुल भई फिरति हो अवहीं, वाम-विथा तनु बाधा।
पुलकित रोम रोम गद गद, अव अँग अँग रूप अगाधा।
नहिँ पावत जो रस जोगी जन, जप तप करत समाधा।
सुनहु सूर तिहिँ रस परिपूरन, दूरि कियौ तनु दाधा ॥२७॥

अर्थ—राधा मुझसे क्यो छिपाती हो। (तुम) कृष्ण को कहाँ मिली, जिन्होने मन की साध (इच्छा) पूरी कर दी। अभी व्याकुल होकर घूमती थी और शरीर काम की पीड़ा से दुखी था। (अव) रोम-रोम पुलकित तथा गद्‌गद् है। अंग-अंग मे गहरा रूप निखर आया है। जो रस योगी जप, तप तथा समाधि करके भी नही पाते।

सूरदास कहते हैं, सुनो, उसी रस से परिपूर्ण करके कृष्ण ने शरीर के दाह को दूर कर दिया ।।२७।।

स्याम कौन कारे की गोरे ।
कहाँ रहत काके पै ढोटा, वृद्ध, तरुन की धौं हैं भोरे ।
इहँई रहत कि और गाउँ कहुँ, मैं देखे नाहिँन कहुँ उनकौं ।
कहै नहीं समुझाइ बात यह, मोहिँ लगावति हौ तुम जिनकौं ।
कहाँ रहौं मैं, वै धौं कहँकै, तुम मिलवति हौ काहैं ऐसी ।
सुनहु सूर मोसी भोरी कौं, जोरि जोरि लावति हौ कैसी ।।२८।।

अर्थ—(राधा कहती है) श्याम (कृष्ण) कौन है। (वह) काले हैं कि गोरे। कहाँ रहते हैं और किसके पुत्र है। वृद्ध हैं कि युवक हैं कि भोले हैं। यही रहते हैं कि और किसी गाँव मे (रहते हैं)। मैंने कही उनको देखा नही है। यह बात समझाकर कहो जिससे मेरा अवैध (भोग-विलास का) सम्बन्ध लगाती हो। मैं कहाँ रहती हूँ, वे पता नही कहाँ के हैं। तुम क्यों ऐसे (व्यर्थ ही) बातें मिलाती हो। सूरदास कहते है कि (राधा कहती है) मेरी जैसी भोली को क्या उलटा-पुलटा लगा रही हो ।।२८।।

सुनहु सखी राधा की बातैं ।
मोसौं कहति स्याम हैं कैसे, ऐसी मिलई घातैं ।
की गोरे, की कारे-रँग हरि, की जोबन, की भोरे ।
की इहिँ गाउँ बसत, की अनतहिँ, दिननि बहुत की थोरे ।
की तू कहति बात हँसि मोसौं, की बूझति सति-भाउ ।
सपनैं हूँ उनकौं नहिँ देखे, वाके सुनहु उपाउ ।
मोसौं कही कौन तोसौ प्रिय, तोसौं बात दुरैहौं ।
सूर कही राधा मो आगैं, कैसैं मुख दरसैहौं ।।२६।।

अर्थ—सखी राधा की बातें सुनो। मुझसे कहती है कि कृष्ण कैसे हैं। इस प्रकार कपटपूर्ण बाते बनाती है कि (कृष्ण) गोरे है कि काले है, युवक हैं या किशोर (भोले) है। (वह) इस गाँव में बसते हैं कि दूसरी जगह, बड़े (बहुत दिन के) हैं कि छोटे (थोड़े दिन के) हैं। तू मुझसे हँसी की बात कहती हो कि सच्चे भाव से पूछती हो? स्वप्न में भी मैंने उनको नही देखा। उसके (राधा के बहाने बनाने के) उपाय को सुनो। उन्होंने मुझसे कहा कि तुम्हारे समान प्रिय कौन है जिससे कि मैं बात छिपाऊँगी। सूरदास कहते हैं कि (एक सखी दूसरी सखी से कहती है) राधा मेरे आगे कैसे मुँह दिखायेगी ।।२६।।

राधे तेरौ बदन बिराजत नीकौ ।
जब तू इत-उत बंक बिलोकति, होत निसा-पति फीकौ ।
भृकुटी धनुष, नैन सर साँधे, सिर केसरि कौ टीकौ ।
मनु-घूँघट-पट मैं दुरि बैठ्यौ, पारधि रति-पतिही कौ ।

गति मैमंत नाग ज्यौं नागरि, करे कहति हौं लीकौ ।
सूरदास-प्रभु विविध भाँति करि, मन रिझयौ हरि पी कौ ।।३०।।

अर्थ—राधा तुम्हारा मुख अच्छी तरह से शोभित है। जब तुम इधर-उधर तिरछे देखती हो तो चन्द्रमा फीका हो जाता है। भौंह रूपी धनुष, नैन रूपी बाणों को साधे हुए है। मस्तक (सिर) पर केशर का टीका ऐसा जान पड रहा है मानो घूंघट के बीच कामदेव का शिकारी छिपकर बैठा हो। हे नागरि (तुम्हारी) चाल मतवाले हाथी के समान है, (यह सब) लकीर खींचकर कहती हूँ। सूरदास कहते हैं कि (सखी कहती है) विविध भाँति (के श्रृङ्गार से) प्रिय कृष्ण के मन को (तुमने) रिझाया ।।३०।।

काकौ काकौ मुख माई बातनि कौं गहियै ।
पाँच की सात लगायौ, झूठी-झूठी के बनायौ, साँची जौ तनक होई, तौलौं सब सहियै ।
बातनि गह्यौ अकास, सुनत न आवै साँस, बोलि तौ कछू न आवै, तातैं मौन गहियै ।
ऐसैं कहैं नर नारि, बिना भीति चित्रकारि, काहे कौं देखे मैं कान्ह, कहा कहौ कहियै ।
घर घर यहै घैर, वृथा मोसौं करैं बैर, यह सुनि स्रौन, हिरदय दहिए ।
सूरदास बरु उपहास होइ सिर मेरैं, नद कौ सुवन मिलै, तौ पै कहा चहियै ।।३१।।

अर्थ—सखी किसके-किसके मुख की बातो को पकड़ा जाय। लोग पाँच का सात लगाते है, झूठी-झूठी बाते बनाते हैं। इसमे यदि कुछ भी सच हो तो उसे सहा भी जाय। बातो ही बातो मे आकाश छूते है, और ऐसी बातें सुनकर ऊपर की साँस ऊपर और नीचे की साँस नीचे रह जाती है। कुछ उत्तर में कहते नही बनता, अतः मौन धारण करना ही अच्छा है। इन लोगो (नर-नारियो) की बात ऐसी है, जैसे भीति के बिना चित्रावली की कल्पना करना। मैंने भला कान्ह को क्यों देखा होगा। क्या बताऊँ और क्या कहूँ, (इस गाँव मे) घर-घर तो यही चर्चा चल रही है, जैसे कि सब मुझसे बैर रखते हों। कानो से सुन-सुन कर मेरा हृदय जलता है। सूरदास कहते हैं कि (अब तो राधा सब घोषित करती है) भले ही अब लोग मेरा उपहास उड़ाएँ, पर नन्द नन्दन कृष्ण मिल जाने पर फिर किसी को क्या चाहिये ।।३१।।

कैसे हैं नँद-सुवन कन्हाई ।
देखे नहीं नैन भरि कबहूँ, ब्रज मैं रहत सदाई ।
सकुचति हौं इक बात कहति तोहिं, सो नहिं जाति सुनाई ।
कैसैंहुं मोहिं दिखावहु उनकौं, यह मेरैं मन आई ।

अतिहीं सुंदर कहियत हैं वै, मोकौं देहु बताई।
सूरदास राधा की बानी, सुनत सखी भरमाई ॥३२॥

अर्थ—नंद के पुत्र कृष्ण कैसे है? (उन्हें) आंख भरके कभी देखा नहीं, (यद्यपि) वह व्रज में सदा रहते है। तुमसे एक बात कहने में सकुचाती हूँ, उसे सुनाया नही जाता। कैसे भी उनको हमे दिखाओ, यह (भावना) मेरे मन मे आ गयी है। वह अत्यधिक सुन्दर कहे जाते हैं, (उन्हे) मुझे बता दो। सूरदास कहते हैं कि राधा की वाणी सुनकर सखी भ्रम मे पड़ गयी ॥३२॥

सुनहु सखी राधा की बानी।
व्रज बसि हरि देखे नहिँ कबहूँ, लोग कहत कछु अकथ कहानी।
यह अब कहत दिखावहु हरि कौं, देखहु री यह अचिरज मानी।
जो हम सुनति रही सो नाहीं, ऐसैं ही यह बायु बहानी।
ज्वाव न देत बनै काहू सौं, मन मैं यह काहू नहिँ मानी।
सूर सबै तरुनी मुख चाहतिँ, चतुर-चतुर सौं चतुरई ठानी ॥३३॥

अर्थ—सखी, राधा की बात तो सुनो। व्रज मे बसकर इसने कृष्ण को कभी नही देखा, और लोग तो बेसिर-पैर की बात करते हैं अथवा कुछ न कही जा सकने वाली कहानी कहते हैं। यह अब कहती है कि कृष्ण को दिखाओ, यह श्रेष्ठ आश्चर्य देखो। जो हम सुनती रही वह (ठीक) नही है, यह ऐसे ही हवा मे बह गयी इसकी (चर्चा चल पड़ी)। किसी से जवाब नही देते बनता, मन मे कोई इसे मानेगा भी नही। सूरदास कहते हैं कि सभी युवतियां (कृष्ण के) मुख (का दर्शन) चाहती है, फिर (इसके लिए) चतुर-से-चतुर स्त्रियों ने चतुरता ठान ली ॥३३॥

सुनि राधे तोहिँ स्याम दिखैहैं।
जहाँ तहाँ व्रज-गलिनि फिरत हैं, जब इहिँ मारग ऐहैं।
जबहीं हम उनकौं देखैंगी, तबहीं तोहिँ बुलैहैं।
उनहूँ कैं लालसा बहुत यह, तोहिँ देखि सुख पैहैं।
दरसन तैं धीरज जब रैहै, तब हम तोहिँ पत्यैहैं।
तुमकौं देखि स्याम सुन्दर घन, मुरली मधुर बजैहैं।
तनु त्रिभंग करि अंग अंग सौं, नाना भाव जनैहैं।
सूरदास-प्रभु नवल कान्ह बर, पीतांबर फहरैहैं ॥३४॥

अर्थ—सुनो राधा तुम्हे कृष्ण को दिखाऊँगी। वे जहाँ-तहाँ व्रज की गलियो मे घूमते रहते हैं। जब इस मार्ग से आयेंगे और जब उनको हम देखेगे तभी तुम्हे बुलायेगे। उनकी भी बहुत अभिलाषा है, तुम्हे देखकर सुख पायेगे। दर्शन से जब तुम्हे धीरज रहेगा तभी हम लोग तुम्हारा विश्वास करेंगे। तुमको देखकर श्यामसुन्दर कृष्ण मधुर मुरली बजायेगे। शरीर को त्रिभंगी (तीन तरह) आकृति मे मोड़कर अग-अंग से

अनेक भाव दिखायेंगे। सूरदास कहते हैं (गोपी कहती है) नवल तथा श्रेष्ठ कृष्ण पीताम्बर फहरायेंगे ।।३४।।

माता की सीख

काहे कौं पर-घर छिनु-छिनु जाति।
घर मैं डाँटि देति सिख जननी, नाहिँन नैंकु डराति।
राधा-कान्ह कान्ह राधा ब्रज, ह्वै रह्यौ अतिहि लजाति।
अब गोकुल कौ जैबौ छाँड़ौ, अपजस हू न अघाति।
तू वृषभानु बड़े की बेटी, उनकैं जाति न पाँति।
सूर सुता समुझावति जननी, सकुचति नहिँ मुसुकाति ।।३५।।

अर्थ—दूसरे के घर क्षण-क्षण क्यों जाती हो। घर मे माता फटकार कर सीख देती है कि तुम तनिक भी नही डरती हो। राधा-कृष्ण और कृष्ण-राधा यही चर्चा ब्रज मे व्याप्त हो गयी है, इससे (मुझे) अत्यधिक लाज लगती है। अब गोकुल का जाना छोड दो, अपयश से (तुम) नही अघाती हो। तुम श्रेष्ठ वृषभानु की बेटी हो, उन (कृष्ण) की जाति-पाँति का कुछ ठीक नही है। सूरदास कहते हैं कि माता पुत्री को समझाती हैं। इससे राधा सकुचाती नही (बल्कि) मुसकाती है ।।३५।।

खेलन कौं मैं जाउं नहीं ?
और लरिकिनी घर घर खेलति, मोहीं कौं पै कहति तुहीं।
उनकैं मातु पिता नहिँ कोई, खेलत डोलतिँ जहीं तहीं।
तोसी महतारी वहि जाइ न, मैं रैहौं तुमहीं बिनुहीं।
कबहूँ मोकौं कछू लगावति, कबहूँ कहति जनि जाहु कहीं।
सूरदास बातैं अनखौहीं, नाहिँन मो पै जाति सही ।।३६।।

अर्थ—(राधा कहती है) मैं खेलने न जाऊँ ? और लड़कियाँ घर-घर खेलती हैं; किन्तु तुम मुझे ही कहती हो। (क्या) उनके माता-पिता नही है, जहाँ-तहाँ खेलती डोलती हैं। तुम्हारी जैसी माँ मर जाय, मैं तुम्हारे बिना ही रहूँगी। कभी मुझे कुछ लगाती हो, कभी कहती हो कही खेलने मत जाओ। सूरदास कहते हैं (राधा कहती है) यह क्रोध दिलाने वाली बात मुझसे सही नही जाती ।।३६।।

मनहीं मन रीझति महतारी।
कहा भई जौ बाढ़ि तनक गई, अबहीं तौ मेरी है बारी।
झूठैं हीं यह बात उड़ी है, राधा-कान्ह कहत नर नारी।
रिस की बात सुता के मुख की, सुनत हँसति मनहीं मन भारी।
अब लौं नहीं कछू इहिं जान्यौ, खेलत देखि लगावैं गारी।
सूरदास जननी उर लावति, मुख चूमति पोंछति रिस टारी ।।३७।।

अर्थ—मन-ही-मन माता रीझती है। क्या हुआ जो तनिक बढ़ गयी, अभी तो मेरी लड़की का बचपन ही है। यह बात झूठ ही उड़ गयी है और नर और नारी राधा

और कृष्ण का नाम व्यर्थ ही लगाते है। वे पुत्री के मुख की क्रोध की बाते सुनकर मन-ही-मन बहुत हँसती है। अब तक इसके विषय मे लोगो ने कुछ नही जाना, केवल खेलते देखकर आरोप लगाते है। सूरदास कहते हैं कि माता (राधा को) हृदय से लगाती है और क्रोध दूर कर पोछती तथा मुख चूमती है ।।३७।।

सुता लए जननी समुझावति ।
संग बिटिनिअनि कैं मिलि खेलौ, स्याम-साथ सुनि-सुनि रिस पावति ।
जातैं निंदा होइ आपनी, जातैं कुल कौं गारी आवति ।
सुनि लाड़ली कहति यह तोसैं, तोकों यातैं रिस करि धावति ।
अब समुझी मैं बात सबनि की, झूठैं ही यह बात उड़ावति ।
सूरदास सुनि सुनि ये बातैं, राधा मन अति हरष बढ़ावति ।।३८।।

अर्थ—बेटी को लेकर माता समझाती है कि लडकियो के साथ मिलकर खेलो। कृष्ण के साथ (खेलने की बात) सुनकर क्रोध आता है। जिससे अपनी निंदा हो और कुल को गाली आती हो (उसे नही करना चाहिए)। सुनो प्यारी बेटी यह तुमसे कहती हूँ, तेरी ओर इसी से क्रोध करके दौड़ती हूँ। अब मैं सबकी बात समझ गयी। (सब) लोग झूठ ही (कृष्ण और तुम्हारे बारे में) बात उडाते है। सूरदास कहते हैं कि ये बाते सुन-सुनकर राधा अपने मन में हर्षित होती है ।।३८।।

राधा बिनय करत मनहीं मन, सुनहु स्याम अतर के जामी ।
मातु-पिता कुल-कानिहिं मानत, तुमहिं न जानत हैं जग स्वामी ।
तुम्हारौ नाउ लेत सकुचत हैं, ऐसैं ठौर रही हौं आनी ।
गुरु परिजन की कानि मानियौ, बारंबार कही मुख बानी ।
कैसे संग रहौं बिमुखनि कैं, यह कहि-कहि नागरि पछितानी ।
सूरदास-प्रभु कैं हिरदै धरि, गृह-जन देखि-देखि मुसुकानी ।।३९।।

अर्थ—राधा मन-ही-मन निवेदन करती है कि हे अंतर की बात जानने वाले कृष्ण सुनो!—माता और पिता तो कुल की मर्यादा को मानते है, (इसी से) संसार के स्वामी तुमको (जानकर भी) नही जानते (अर्थात् भुला देते हैं)। मैं ऐसे स्थान पर रह रही हूँ जहाँ तुम्हारा नाम लेते सकुचाती हूँ। (तुमने) बार-बार अपने मुख से यह बात कही कि गुरुजन की मर्यादा मानो। (लेकिन) भगवान् से विमुख (लोगो) के साथ कैसे रहूँ; यह कहकर नागरि राधा पछताती है। सूरदास कहते है कि प्रभु को हृदय मे धर-कर घर के लोगो को देख-देखकर (राधा) मुसकायी ।।३९।।

कृष्ण-दर्शन

राधा जल बिहरति सखियन सँग ।
ग्रीव-प्रजत नीर मैं ठाढी, छिरकति जल अपनैं अपनैं रँग ।

मुख भरि नीर परसपर डारतिँ, सोभा अतिहिँ अनूप बढ़ी तब ।
मनहु चंद-गन सुधा गँडूपनि, डारति हैँ आनंद भरे सब ।
आईँ निकसि जानु कटि लौँ सब, अँजुरिन तैँ लै लै जल डारतिँ ।
मानहु सूर कनक-वल्ली जुरि, अमृत-बूँद पवन-मिस झारतिँ ।।४०।।

अर्थ—राधा सखियों के साथ जल मे विहार करती हैं। गले तक पानी में खडी अपने आप मे मगन पानी छिडकती है। मुँह मे भरकर आपस मे पानी डालती हैं तब अत्यधिक अनुपम शोभा बढ जाती है, मानो चन्द्रमा के समूह आनन्द से भरकर अपने मुख से अमृत के कुल्ले डाल रहे हो (इसी प्रकार गोपियाँ आनन्द मे भरकर जल डालती है)। पुनः जांघ तथा कमर तक पानी मे सब निकलकर अँजुलियों से जल डालने लगी। सूरदास कहते हैं मानो सोने की लतायें जुड़कर हवा के वहाने अमृत के बूंदों की झडी लगाती हैं ।।४०।।

जमुना-जल विहरति ब्रज-नारी ।
तट ठाढ़े देखत नँद-नंदन, मधुरि मुरलि कर धारी ।
मोर-मुकुट, स्रवननि मनि कुंडल, जलज-माल उर भ्राजत ।
सुंदर सुभग स्याम तन नव घन, बिच वग पाँति विराजत ।
उर बनमाल सुमन वहु भाँतिनि, सेत, लाल, सित पीत ।
मनहुँ सुरसरी तट बैठे सुक, वरन वरन तजि भीत ।
पीतांबर कटि तट छुद्रावलि, बाजति परम रसाल ।
सूरदास मनु कनकभूमि ढिग, बोलत रुचिर मराल ।।४१।।

अर्थ—यमुना के जल मे व्रज की स्त्रियाँ विहार करती हैं। तट पर खडे कृष्ण हाथ मे मधुर मुरली लिए हुए देखते है। (सिर पर) मोर मुकुट, कानों में मणि का कुडल और वक्षस्थल पर मोती की माला शोभित है। (माला ऐसे शोभित है जैसे) सुन्दर तथा सुभग कृष्ण के शरीर रूपी नये बादल के बीच बगुलों की पंक्ति शोभित हो। वक्षस्थल की वनमाला में सफेद, लाल, पीले तथा उज्ज्वल अनेक तरह के फूल हैं, मानो गंगा के किनारे भय छोडकर तरह-तरह के रंगों के तोते बैठे हो। कमर पर पीताम्बर है तथा करधनी अत्यन्त आनन्ददायक ध्वनि करती है। सूरदास कहते है कि मानो सोने की भूमि के पास रुचिपूर्वक हस बोल रहे हैं ।।४१।।

चितवनि रोकै हूँ न रही ।
स्याम सुंदर सिंधु-सनमुख, सरित उमँगि बही ।
प्रेम-सलिल-प्रवाह भँवरनि, मिति, न कबहुँ लही ।
लोभ-लहर-कटाच्छ, घूँघट-पट-करार ढही ।
थके पल पथि, नाव धीरज परति नहिँन गही ।
मिली सूर सुभाव स्यामहिँ, फेरिहू न चही ।।४२।।

अर्थ—(गोपी की) दृष्टि रोकने पर भी न रुकी। श्याम सुन्दर रूपी समुद्र की ओर (दृष्टि रूपी) नदी उमगकर वह चली। प्रेम रूपी जल के प्रवाह की भँवरों (आँख की भौंहो) (कृष्ण से) की गहराई का अनुमान कभी (सुख) नही मिला। (मिलन) के लोभ तथा (आँख की) कटाक्ष रूपी लहर से घूँघट रूपी किनारा ढह गया। पलक रूपी पथिक थक गये। धीरज की नाव सम्हाली नही जाती। सूरदास कहते हैं कि यह दृष्टि स्वभावतः कृष्ण मे मिल गयी, फिर वापस हो कर भी नही देखा (मुडकर भी नही देखा) ।।४२।।

हमहिँ कह्यौ हौँ स्याम दिखावहु।
देखहु दरस नैन भरि नीकैँ, पुनि-पुनि दरस न पावहु।
बहुत लालसा करति रही तुम, वे तुम कारन आए।
पूरी साध मिली तुम उनकौँ, यातैँ हमहिँ भुलाए।
नीकैँ सगुन आजु ह्याँ आईँ, भयौ तुम्हारौ काज।
सुनहु सूर हमकौँ कछु दैहौ, तुमहिँ मिले ब्रजराज ।।४३।।

अर्थ—हमसे (तुमने) कहा कि (हमे) कृष्ण को दिखाओ। अब सुन्दर (कृष्ण) को आँख भरकर देखो। बार-बार दर्शन नही पाओगी। तुम बहुत अभिलाषा करती रही। तुम्हारे ही कारण वह (यहाँ) आये हैं। तुम उनको मिल गयी जिससे तुम्हारी इच्छा पूरी हो गयी, इसी से तुमने हम लोगो को भुला दिया। आज शुभ अवसर (सगुन) था कि यहाँ आ गई जिससे तुम्हारा काम हो गया। सूरदास कहते हैं कि सखी राधा से कहती है, तुमको कृष्ण मिल गये अब हमको भी कुछ दोगी ? ।।४३।।

राधा चलहु भवनहिँ जाहिँ।
कबहिँ की हम जमुना आई, कहहिँ अरु पछिताहिँ।
कियौ दरसन स्याम कौ तुम, चलौगी की नाहिँ।
बहुरि मिलिहौ चीन्हि राखहु, कहत, सब मुसुकाहिँ।
हम चलीँ घर तुमहुँ आवहु, सोच भयौ मन माहिँ।
सूर राधा सहित गोपी, चलीँ ब्रज-समुहाहिँ ।।४४।।

अर्थ—राधा चलो घर चले। हम लोग कब की यमुना आई है। सखियाँ (ऐसा) कहती और पछताती हैं। तुमने कृष्ण का दर्शन कर लिया (अब) चलोगी कि नही। फिर मिलोगी, पहचान रखो (ऐसा) कहकर सब सखियाँ हँसती है। हम घर चलती हैं तुम भी आओ (यह सुनकर राधा को) मन मे सोच हो गया। सूरदास कहते हैं कि राधा सहित गोपियाँ ब्रज की ओर (सम्मुख) चली ।।४४।।

कहि राधा हरि कैसे हैँ।
तेरैँ मन भाए की नाहीँ, की सुदर, को नैसे हैँ।
की पुनि हमहिँ दुराव करौगी, की कैहौ वै जैसे हैँ।
की हम तुमसौँ कहति रहीँ ज्यौँ, साँच कहौ की तैसे हैँ।

नटवर-वेप काछनी काछे, अंगनि रति-पति-सै से हैं।
सूर स्याम तुम नीकैं देखे, हम जानत हरि ऐसे हैं ॥४५॥

अर्थ—कहो राधा कृष्ण कैसे हैं ? तुम्हारे मन को अच्छे लगे कि नही। सुन्दर हैं कि बुरे हैं। फिर हमसे छिपाव करोगी, कि कहोगी कि वह जैसे हैं (होंगे)। या हम तुमसे जैसा कहती थी, सच्ची कहो वैसे है (कि नही)। नटवर वेप पर काछनी पहने (कृष्ण के) अंग सैकडो कामदेव के समान हैं; सूरदास कहते हैं कि (सखियां कहती हैं) तुमने अच्छी तरह से देखा (या नही) हम तो जानती ही हैं कि कृष्ण इस तरह (सुन्दर) हैं ॥४५॥

स्याम सखि नीकैं देखे नाहिं।
चितवत ही लोचन भरि आए, वार-वार पछिताहिं।
कैसेहुँ करि इकटक मैं राखति, नैंकहिं मैं अकुलाहिं।
निमिष मनौं छवि पर रखवारे, तातैं अतिहिं डराहिं।
कहा करैं इनकौ कह दूपन, इन अपनो सी कीन्ही।
सूर स्याम-छवि पर मन अटक्यौ, उन सव सोभा लीन्ही ॥४६॥

अर्थ—हे सखी कृष्ण को अच्छी तरह देखा नही, देखते ही आंखें भर आयी और (मैं) वार-वार पछताने लगी। किसी तरह मैं (आंखों को) एकटक रखती लेकिन वे जल्दी ही आकुल हो जाती थी। मानो निमिप शोभा की रखवाली कर रहे हों, उसी से अत्यधिक डरते हों। इनको दोप देकर क्या करे, इन्होने तो अपना सा किया। सूरदास कहते हैं कि (राधा कहती है) मन कृष्ण की छवि पर अटक गया किन्तु उन (नेत्रो ही) ने सव शोभा ले ली ॥४६॥

राधा का अनुराग

पुनि-पुनि कहति हैं व्रज नारि।
धन्य वड़ भागिनी राधा, तेरैं वस गिरिधारि।
धन्य नंद-कुमार धनि तुम, धन्य तेरी प्रीति।
धन्य दोउ तुम नवल जोरी, कोक कलानि जीति।
हम विमुख, तुम कृष्ण संगिनी, प्रान इक, द्वै देह।
एक मन, इक वुद्धि, इक चित, दुहुँनि एक सनेह।
एक छिनु विनु तुमहिं देखैं, स्याम धरत न धीर।
मुरलि मैं तुम नाम पुनि पुनि, कहत हैं बलबीर।
स्याम मनि तैं परखि लीन्हौं, महा चतुर सुजान।
सूर के प्रभु प्रेमहीं वस, कौन तो सरि आन ॥४७॥

अर्थ—वार-वार व्रज की स्त्रियां कहती हैं कि वडे भाग्यवाली राधा तू धन्य है, क्योकि कृष्ण तुम्हारे वश मे हैं। कृष्ण धन्य हैं, तुम धन्य हो तथा तुम्हारी प्रीति धन्य है। काम की कलाओ को जीतने वाली तुम दोनों की नयी जोड़ी धन्य है। हम (कृष्ण से) विमुख हैं, तुम कृष्ण की संगिनी हो, (तुम दोनों का) प्राण एक है और शरीर दो

हैं। एक ही मन, एक ही बुद्धि, एक चित्त तथा दोनो का एक ही स्नेह है। बिना तुम्हे देखे कृष्ण एक भी क्षण धैर्य नही धरते है। कृष्ण मुरली में तुम्हारा नाम बार-बार कहते है। महा चतुर, सुजान कृष्ण ने मन से परख लिया। सूरदास कहते है कि कृष्ण प्रेम ही के वश मे हैं। (राधा) तुम्हारे समान और कौन है ? ॥४७॥

राधा परम निर्मल नारि।
कहति हौं मन कर्मना करि, हृदय-दुविधा टारि।
स्याम कौं इक तुहीं जान्यौ, दुराचारिनि और।
जैसैं घट पूरन न डोलै, अध भरौ डगडौर।
धनी धन कबहूँ न प्रगटै, धरै ताहि छपाइ।
तैं महानग स्याम पायौ, प्रगटि कैसैं जाइ।
कहति हौं यह बात तोसौं, प्रगट करिहौं नाहिं।
सूर सखी सुजान राधा, परसपर मुसुकाहिं ॥४८॥

अर्थ—राधा परम स्वच्छ स्त्री है। मैं मन और कर्म से दुविधा टालकर कहती हूँ। कृष्ण को केवल तुम्ही ने जाना और (स्त्रियाँ तो) दुराचारिणी हैं। जैसे भरा हुआ घड़ा हिलता-डुलता नही, किन्तु आधा भरा (घड़ा) डगमगाता रहता है। धनी धन को कभी प्रकट नही करता, उसे छिपाकर रखता है, उसी तरह तुमने महामणि कृष्ण को पाया है, उसे प्रकट कैसे किया जाय। मैं तुमसे यह बात कहती हूँ कि (तुम) इसे प्रकट नही करोगी। सूरदास कहते हैं कि सखी तथा सुजान राधा आपस में मुसकाती हैं ॥४८॥

तैं ही स्याम भले पहिचाने।
साँची प्रीति जानि मनमोहन, तेरेहिं हाथ बिकाने।
हम अपराध कियौ कहि तुमसौं, हमहीं कुलटा नारि।
तुमसौं उनसौं बीच नहीं कछु, तुम दोऊ बर-नारि।
धन्य सुहाग भाग है तेरौ, धनि बड़भागी स्याम।
सूरदास-प्रभु से पति जाकैं, तोसी जाकैं बाम ॥४९॥

अर्थ—तुमने ही कृष्ण को भली-भाँति पहचाना। कृष्ण सच्चा प्रेम जानकर तेरे ही हाथ बिक गये। हमने तुमसे कहकर अपराध किया क्योकि हम कुलटा स्त्री हैं। तुममें और उन (कृष्ण) मे कुछ अन्तर नही है, तुम दोनो पति-पत्नी हो। तुम्हारा सुहाग तथा भाग्य धन्य है, तथा बड़े भाग्य वाले कृष्ण धन्य हैं। सूरदास कहते हैं कि (सखी कहती है) कृष्ण जैसे जिसके पति है और तुम जैसी जिनकी पत्नी है (उसका भाग्य) निश्चय ही सराहनीय है ॥४९॥

राधा स्याम की प्यारी।
कृष्न पति सर्वदा तेरे, तू सदा नारी।
सुनत बानी सखी-मुख की, जिय भयौ अनुराग।
प्रेम-गदगद, रोम पुलकित, समुझि अपनौ भाग।

प्रीति परगट कियौ चाहै, वचन बोलि न जाइ।
नंद-नंदन काम-नायक, रहे नैननि छाइ।
हृदय तैं कहुँ टरत नाहीं, कियौ निहचल बास।
सूर प्रभु-रस भरी राधा, दुरत नहीं प्रकास ॥५०॥

अर्थ—राधा कृष्ण की प्यारी हैं। कृष्ण सदा तुम्हारे पति हैं तथा तू सदा उनकी स्त्री है। सखी के मुँह से वाणी सुनकर हृदय मे प्रेम हुआ। अपने भाग्य को समझकर (वह) प्रेम से गद्‌गद् हो गयी तथा (उसके) रोम पुलकित हो गये। प्रेम प्रकट करना चाहती है लेकिन कुछ कहा ही नही जाता। काम के नायक कृष्ण आँखो मे छा गये। हृदय से कही टलते नही वहाँ निश्चित रूप से बस गये। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण के प्रेम से भरी राधा के हृदय का उल्लास छिपता नही ॥५०॥

जौ बिधना अपबस करि पाऊँ।
तो सखि कह्यौ होइ कछु तेरौ, अपनी साध पुराऊँ।
लोचन रोम-रोम-प्रति माँगौं, पुनि-पुनि त्रास दिखाऊँ।
इकटक रहैं पलक नहिं लागैं, पद्धति नई चलाऊँ।
कहा करौं छवि-रासि स्यामघन, लोचन द्वै नहिं ठाऊँ।
एते पर ये निमिष सूर सुनि, यह दुख काहि सुनाऊँ ॥५१॥

अर्थ—यदि ब्रह्मा को अपने वश मे कर पाऊँ तो सखी तुम्हारा कहना कुछ होगा और मैं अपनी इच्छा पूरी कर पाऊँ। प्रत्येक रोम मे, लोचन मे मांगू और उन आँखो को बार-बार भयभीत करूँ कि वे एकटक देखती रहें तथा पलक न भांजे। इस तरह नयी परिपाटी चला दूँ। क्या करूँ कृष्ण रूप की राशि है और इन दोनो आँखो मे स्थान कहाँ है। सूरदास कहते है कि (राधा सखी से कहती है) सुनो (सखी) इतने पर इन आँखों मे पलक झपकने से निमिष होता है, इसका दु:ख किससे कहूँ ॥५१॥

कहि राधिका बात अब साँची।
तुम अब प्रगट कही मो आगैं, स्याम-प्रेम-रस माँची।
तुमकौं कहाँ मिले, नँद-नंदन, जब उनकैं रँग राँची।
खरिक मिले, की गोरस बेंचत, की जब बिषहर बाँची।
कहै बनै छाँड़ौ चतुराई, बात नहीं यह काँची।
सूरदास राधिका सयानी, रूप-रासि-रस-खाँची ॥५२॥

अर्थ—राधा अब सच्ची बात कहो। अब तुमने मेरे आगे प्रकट रूप से कहा कि तुम कृष्ण के प्रेम रस मे डूबी हो। तुमको कृष्ण कहाँ मिले, जब से उनके रग मे रँग गयी। गायो के बाँधे जाने के स्थान पर मिले थे, कि गोरस बेचते समय, या जब साँप (के काटने) से (उनके बचाने पर) बची थी। अब कहते ही के बनेगा चतुराई छोड़िये, यह बात कच्ची नही है। सूरदास कहते हैं कि सयानी राधा (कृष्ण के) (रूप की राशि के रस के खिची है) अनन्त रूप सौन्दर्य के आनन्द से आकर्षित हुई है ॥५२॥

कब री मिले स्याम नहिं जानौं।
तेरी सौं करि कहति सखी री, अजहूँ नहिं पहिचानौं।
खरिक मिले, की गोरस बेंचत, की अबहीं, की कालि।
नैननि अंतर होत न कबहूँ, कहति कहा री आलि।
एकौ पल हरि होत न न्यारैं, नीकैं देखे नाहिं।
सूरदास-प्रभु टरत न टारैं, नैननि सदा बसाहिं।।५३।।

अर्थ—कृष्ण कब मिले थे, मैं नही जानती। सखी, तुम्हारी सौगन्ध लेकर कहती हूँ कि अब भी नही पहचानती हूँ। पशुओ के बाड़े मे मिले थे, कि गोरस बेंचते समय, कि अभी मिले या कल। निगाह से अलग कभी होते ही नहीं, सखी तू क्या कहती है। एक भी पल कृष्ण अलग नही हो रहे है, (क्योकि उनको) अच्छी तरह से देख ही नही पाई। सूरदास कहते है कि (राधा कहती है) कृष्ण नैनो मे बस गये हैं, टालने से टलते नही।।५३।।

स्याम मिले मोहिं ऐसैं माई। मैं जल कौं जमुना तट आई।।
औचक आए तहाँ कन्हाई। देखत ही मोहिनी लगाई।।
तबहीं तैं तन-सुरति गँवाई। सूधैं मारग गई भुलाई।।
बिनु देखैं कल परै न माई। सूर स्याम मोहिनी लगाई।।५४।।

अर्थ—सखी मुझे कृष्ण ऐसे मिले। मैं यमुना के किनारे जल भरने के लिए गयी थी। वहाँ अचानक कृष्ण आ गये। देखते ही मोहनी लगा दी। तभी से शरीर की सुध खो दी। (मैं) सीधे मार्ग मे भूल गयी। सूरदास कहते हैं कि (राधा कहती है) हे सखी तब से बिना देखे चैन नही पडती। (क्योकि) कृष्ण ने मोहिनी लगा दी है।।५४।।

तबहीं तैं हरि हाथ बिकानी। देह-गेह-सुधि सबै भुलानी।।
अंग सिथिल भए जैसैं पानी। ज्यौं-त्यौं करि गृह पहुँची आनी।।
बोले तहाँ अचानक बानी। द्वारैं देखे स्याम बिनानी।।
कहा कहौं सुनि सखी सयानी। सूर स्याम ऐसी मति ठानी।।५५।।

अर्थ—तभी से मैं कृष्ण के हाथ बिक गयी। शरीर और घर सब कुछ भूल गयी। शरीर पानी की तरह शिथिल हो गया। जैसे-तैसे घर पहुँच पायी। वहाँ से अचानक (कृष्ण) वाणी बोले। (तब) मैंने द्वार पर विज्ञानी कृष्ण को देखा। सुनो सयानी सखी क्या कहूँ, कृष्ण ने बुद्धि से ऐसा दृढ संकल्प किया।।५५।।

जा दिन तैं हरि दृष्टि परे री।
ता दिन तैं मेरैं इन नैननि, दुख सुख सब बिसरे री।
मोहन अंग गुपाल लाल के, प्रेम-पियूष भरे री।
बसे उहाँ मुसुकानि-बाँह लैं, रचि रुचि भवन करे री।
पठवति हौं मन, तिनहिं मनावन, निसदिन रहत अरे री।
ज्यौं ज्यौं जतन, करति उलटावति, त्यौं त्यौं उठत खरे री।

पचिहारी समुझाइ नीच-उँच, पुनि-पुनि पाँइ परे री।
सो सुख सूर कहाँ लौं बरनौं, इक टक तैं न टरे री ।।५६।।

अर्थ—जिस दिन से कृष्ण दिखाई पडे, उसी दिन से मेरी इन आँखो का दुःख-सुख सब भूल गया। गोपाल कृष्ण के मोहने वाले अङ्गो के प्रेम का अमृत इन आँखो मे भर गया है। इन नेत्रों ने कृष्ण की मुस्कान का आश्रय लेकर वहाँ रुचिपूर्वक बना-सँवार कर अपना घर कर लिया है। मन को उन्हे मनाने के लिए भेजती हूँ, (क्योकि) वे (वहाँ) रात-दिन अडे रहते हैं। ज्यो-ज्यो यत्न करके वापस करवाती हूँ, त्यो-त्यो वे और तेज हो जाते थे। बार-बार पैर पकडकर, बार-बार ऊँचा-नीचा समझाकर हार गयी। सूरदास कहते है (राधा कहती है) उस सुख का वर्णन कहाँ तक करूँ, (वे आँखें) एक टक से (कभी) टली नही ।।५६।।

जब तैं प्रीति स्याम सौं कीन्ही।
ता दिन तैं मेरैं इन नैननि, नैंकहुँ नींद न लीन्ही।
सदा रहै मन चाक चढ़्यौ, सो और न कछू सुहाइ।
करत उपाइ बहुत मिलिबे कौं, यहै बिचारत जाइ।
सूर सकल लागति ऐसीयै, सो दुख कासौं कहियै।
ज्यौं अचेत बालक कौ वेदन, अपनैं ही तन सहियै ।।५७।।

अर्थ—जिस दिन से कृष्ण से प्रेम किया, उसी दिन से मेरी इन आँखो ने किंचित नीद नही ली। मन सदा चाक पर चढा रहता है, इसी से और कुछ अच्छा नही लगता। सदा मिलने का उपाय करती हूँ, यह विचारती जाती हूँ। सूरदास कहते है कि (राधा कहती है) यह सब कुछ ऐसा लगता है कि इस दुःख को किससे कहा जाय। अचेत बालक के दुःख की तरह इसे अपने ही शरीर मे सहते रहना है ।।५७।।

ना जानौं तबहीं तैं मोकौं, स्याम कहा धौं कीन्हौ री।
मेरी दृष्टि परी जा दिन तैं, ज्ञान ध्यान हरि लीन्हौ री।
द्वारैं आइ गए औचक हीं, मैं आँगन ही ठाढ़ी री।
मनमोहन-मुख देखि रही तब, काम-विथा तनु बाढ़ी री।
नैन-सैन दै दै हरि मो तन, कछु इक भाव बतायौ री।
पीतांबर उपरैना कर गहि, अपनैं सीस फिरायौ री।
लोक-लाज, गुरुजन की संका, कहत न आवै बानी री।
सूर स्याम मेरैं आँगन आए, जात बहुत पछितानी री ।।५८।।

अर्थ—मालूम नही तभी से कृष्ण ने मुझे क्या कर दिया। मेरी निगाह जिस दिन से पड़ी उसी दिन से इन्होने (मेरा) ज्ञान, ध्यान सब कुछ हर लिया। वे अचानक ही द्वार पर आ गये, मैं आँगन मे खड़ी थी। मनमोहन के मुख को देखकर शरीर मे काम की पीड़ा बढ गयी। उन्होने आँखों से इशारा करके मेरी ओर कुछ एक भाव प्रकट किया। पीताम्बर के उत्तरीय को हाथ से पकड़कर अपने सिर के चारो ओर फिरा

लिया (मानो घूँघट निकाल लिया)। लोक की लाज तथा गुरुजनो की शंका से वाणी कही नही जाती। सूरदास कहते है कि (राधा कहती है) कृष्ण मेरे आँगन आये, (उनको) जाते हुए जानकर मैं बहुत पछतायी ।।५८।।

मैं अपनौ मन हरत न जान्यौ।
कीधौं गयौ संग हरि कैं वह, कीधौं पंथ भुलान्यौ।
कीधौं स्याम हटकि है राख्यौ, कीधौं आपु रतान्यौ।
काहे तैं सुधि करी न मेरी, मोपै कहा रिसान्यौ।
जवहीं तैं हरि ह्याँ ह्वै निकसे, बैरु तवहिं तैं ठान्यौ।
सूर स्याम सँग चलन कह्यौ मोहिं, कह्यौ नहीं तब मान्यौ ।।५९।।

अर्थ—मैंने अपने मन को हरते हुए नही जाना। वह कृष्ण के साथ गया कि (कही) रास्ते मे भूल गया। उसे कृष्ण ने रोक रखा है या वह कृष्ण पर स्वयं रत हो गया है। उसने मेरा ख्याल किस कारण से नही किया, मुझ पर क्यो नाराज हो गया। जब से कृष्ण यहाँ से निकले तभी से इनसे शत्रुता ठान ली। सूरदास कहते है कि (राधा कहती है) (मन ने) कृष्ण के साथ चलने के लिए मुझसे कहा, तब मैंने (उसका) कहना नही माना ।।५९।।

स्याम करत हैं मन की चोरी।
कैसैं मिलत आनि पहलैं हीं, कहि-कहि बतियाँ भोरी।
लोक-लाज की कानि गँवाई, फिरति गुड़ी बस डोरी।
ऐसैं ढग स्याम अब सीख्यौ, चोर भयौ चित कौ री।
माखन की चोरी सहि लीन्हीं, बात रही वह थोरी।
सूर स्याम भयौ निडर तवहिं तैं, गोरस लेत अँजोरी ।।६०।।

अर्थ—कृष्ण मन की चोरी करते है। पहले ही आकर कैसे भोली बातें कह-कह कर मिलते हैं। लोक-लाज की मर्यादा गँवाकर, डोरी के वश में हुई पतंग की तरह फिरती हूँ। अब कृष्ण ने ऐसा ढंग सीख लिया है कि वे चित्त के चोर हो गये हैं। माखन की चोरी सह ली क्योंकि वह थोड़ी-सी बात थी। सूरदास कहते हैं कि (राधा कहती है) कृष्ण तभी से ढीठ हो गये, जब से वे गोरस छीन-झपटकर ले लेते थे ।।६०।।

माई कृष्ण-नाम जब तैं स्रवन सुन्यौ है री, तब तैं भूली
री भौन बावरी सी भई री।
भरि भरि आवैं नैन, चित न रहत चैन बैन नहिं सूधौ
दसा औरहिं ह्वै गई री।
कौन माता, कौन पिता, कौन भैनी, कौन भ्राता, कौन ज्ञान,
कौन ध्यान, मनमथ हई री।
सूर स्याम जब तैं परै री मेरी डीठि, वाम, काम, धाम,
लोक-लाज, कुल-कानि नई री ।।६१।।

अर्थ—सखी, कृष्ण के नाम को जब से मैंने इन कानो से सुना है, तभी से भूली हुई, घर मे वावली-सी हो गई हूँ। आँखे भर-भर आती हैं, चित्त मे चैन नही रहता, वाणी शुद्ध नही है, (शरीर की) दशा कुछ और ही हो गयी है। कौन माता, कौन पिता, कौन वहन, कौन भाई, कैसा ज्ञान, कैसा ध्यान, (सब भूल गया) है और कामदेव से घायल हो गयी हूँ। कृष्ण जब से मेरी दृष्टि मे पडे है, स्त्री-धर्म, काम-काज, घर-गृहस्थी, लोक-लाज, कुल-मर्यादा सब कुछ मैंने भुला दिया है ॥६१॥

राधा तैं हरि कैं रँग राँची।
तो तैं चतुर और नहिं कोऊ, वात कहौं मैं साँची।
तैं उनकौ मन नहीं चुरायौ, ऐसी है तू काँची।
हरि तेरौ मन अवहिं चुरायौ, प्रथम तुहीं है नाँची।
तुम अरु स्याम एक हौ दोऊ, वाकी नाहीं वाँची।
सूर स्याम तेरैं वस, राधा, कहति लीक मैं खाँची ॥६२॥

अर्थ—राधा तू कृष्ण के रग मे रंग गयी। तुमसे चतुर और कोई नही है, मैं सच्ची वात कहती हूँ। तुमने उनका मन नही चुराया, तू ऐसी कच्ची है। कृष्ण ने तुम्हारा मन अभी चुराया है, तुम पहले ही खुशी के मारे स्थिर न रही। तुम और कृष्ण एक हो इसमे कुछ शेष नही है। सखी कहती है—हे राधा मैं लकीर खीच कर कहती हूँ कि कृष्ण तुम्हारे वश मे हैं ॥६२॥

तुम जानति राधा है छोटी।
चतुराई अंग-अंग भरी है, पूरन-ज्ञान, न वुधि की मोटी।
हमसौं सदा दुराव कियौ इहिं, वात कहै मुख चोटी-पोटी।
कबहुँ स्याम तैं नैंकु न विछुरति, किये रहति हमसौं हठ ओटी।
नँद नंदन याही कैं वस हैं, विवस देखि वेंदी छवि-चोटी।
सूरदास-प्रभु वै अति खोटे, यह उनहूँ तैं अतिहीं खोटी ॥६३॥

अर्थ—तुम जानती हो कि राधा छोटी है, किन्तु इसके अंग-अंग मे चतुरता भरी है; यह पूर्ण ज्ञानी है, वुद्धि की मोटी नही। चिकनी चुपड़ी बातें करके इसने हमसे छिपाव किया है। यह कभी भी कृष्ण से तनिक भी नही विछुडती, हम से हठ पूर्वक छिपाव किये रहती है। कृष्ण इसी के वश में हैं, वेदी और चोटी की छवि देखकर (कृष्ण) विवश हैं। सूरदास कहते हैं (सखियाँ कहती हैं) कि कृष्ण वहुत खोटे है, यह (राधा) उनसे भी खोटी है ॥६३॥

सुनहु सखी राधा सरि को है।
जो हरि हैं रतिपति मनमोहन, याकौं मुख सो जोहै।
जैसे स्याम नारि यह तैसी, सुंदर जोरी सोहै।
यह द्वादस वहऊ दस द्वै कौ, व्रज-जुवतिनि मन मोहै।

मैं इनकौं घटि वढि नहिँ जानति, भेद करै सो को है।
सूर स्याम नागर, यह नागरि, एक प्रान तन दो है ।।६४।।

अर्थ—सुनो सखी राधा के समान कौन है। जो कृष्ण कामदेव के भी मन को मोहित करने वाले है वह भी इसके मुख को देखते हैं। जैसे कृष्ण है, वैसे ही यह स्त्री है। इन दोनो की सुंदर जोडी शोभित होती है। यह बारह (वर्ष) की है, वह भी बारह (वर्ष) के ही हैं और ब्रज की युवतियो के मन मोहते हैं। मैं इनको कम ज्यादा नही समझती, भेद करने वाला कौन है। सूरदास कहते है कि (सखियाँ कहती हैं) कृष्ण नागर (हैं) और यह नागरी (है)। प्राण एक है, (केवल) शरीर दो है ।।६४।।

राधा नँद-नंदन अनुरागी।
भय चिंता हिरदै नहिँ एकौ, स्याम रंग-रस पागी।
हरद चून रँग, पय पानी ज्यौं, दुबिधा दुहुँ की भागी।
तन-मन-प्रान समर्पन कीन्हौ, अंग-अंग रति खागी।
ब्रज-बनिता अवलोकन करि-करि, प्रेम-बिबस तनु त्यागी।
सूरदास प्रभु सौं चित्त लाग्यौ, सोवत तैं मनु जागी ।।६५।।

अर्थ—राधा कृष्ण से अनुराग रखने वाली है। हृदय मे भय और चिन्ता एक भी नहीं है, कृष्ण के रंग के रस मे (वह) पग गयी है। दोनों की द्वैतता दूर हो गयी, जैसे हल्दी चूने से मिलकर तथा दूध पानी से मिलकर (एक हो जाते है) (वैसे ही वे दोनों हो गये)। उसने अपने तन, मन, प्राण (सब) का समर्पण कर दिया है, और उसके अंग-अंग मे रति व्याप्त (अड) हो गयी है। ब्रज की स्त्रियो ने उसे देख-देखकर प्रेम के कारण विवश होकर शरीर त्याग दिया। सूरदास कहते हैं कि (राधा का) चित्त कृष्ण से लग गया, (वह) मानो सोते से जग गयी है ।।६५।।

आँखिनि मैं बसै, जिय मैं बसै, हिय मैं बसत निसि दिवस प्यारौ।
तन मैं बसै, मन मैं बसै, रसना हूँ मैं बसै नंदवारौ।
सुधि मैं बसै, बुधिहू मैं बसै, अग-अंग बसै मुकुटवारौ।
सूर बन बसै, घरहु मैं बसै, संग ज्यौं तरंग जल न न्यारौ ।।६६।।

अर्थ—रात दिन प्यारे आंखो में बसते है, प्राण में बसते हैं, हृदय मे बसते हैं। कृष्ण तन मे बसते हैं, मन मे बसते हैं और जीभ मे भी बसते हैं। मुकुट वाले (कृष्ण) स्मृति, बुद्धि और अंग-अंग मे बसते हैं। सूरदास कहते है कि (राधा कहती है) वन मे बसते हैं, घर मे बसते हैं। मेरे साथ से वे उसी तरह से अलग नही हैं जैसे जल से तरंग (पृथक् नही है) ।।६६।।

उपहास

तुम कुल बधू निलज जनि ह्वैहौ।
यह करनी उनहीं कौं छाजै, उनकैं संग न जैहौ।

राधा-कान्ह-कथा ब्रज-घर-घर, ऐसैं जनि कहवैहौ।
यह करनी उन नई चलाई, तुम जनि हमहिँ हँसैहौ।
तुम ही बडे महर की वेटी, कुल जनि नाउँ धरैहौ।
सूर स्याम राधा की महिमा, यहै जानि सरमैहौ ॥६७॥

अर्थ—तुम कुल वधू होकर निर्लज्ज मत होना। यह कार्य उन्ही (कृष्ण) के उपयुक्त है, (तुम) उनके साथ मत जाना। राधा और कृष्ण की कथा व्रज के घर-घर मे इस प्रकार मत चलवाओ। उन्होने यह नयी करतूत चलायी है, तुम हमारी हँसी मत कराओ। तुम वडे महर की बेटी हो, कुल का नाम मत धराओ। सूरदास कहते है कि (सखियाँ कहती हैं) कृष्ण और राधा (इन दोनो के नाम) की महिमा जानकर ही शर्म करो ॥६७॥

यह सुनि कै हँसि मौन रहीं री।
ब्रज उपहास कान्ह-राधा को, यह महिमा जानी उनहीं री।
जैसी बुद्धि हृदय है इनकैं, तैसीयै मुख बात कहीं री।
रवि कौ तेज उलूक न जानै, तरनि सदा पूरन नभहीं री।
विष को कीट विषहिँ रुचि मानै, कहा सुधा रसहीं री।
सूरदास तिल-तेल-सवादी, स्वाद कहा जानै घृतहीं री ॥६८॥

अर्थ—यह सुनकर (राधा) हँसकर मौन रह गयी। व्रज मे कृष्ण और राधा के उपहास की महिमा वे ही जानते हैं। उनकी जैसी बुद्धि है और जैसा हृदय है, वैसे ही मुख से बात कहते हैं। सूर्य के तेज को उल्लू नही जानता, लेकिन सूर्य (की किरणे) सदा आकाश मे व्याप्त हैं। विष के कीडो को विष ही रुचिकर होता है, अमृत के रस से उनका क्या प्रयोजन। सूरदास कहते हैं कि तिल के स्वादी घी के स्वाद को क्या जाने ॥६८॥

सहसा भेंट

इततैं राधा जाति जमुन-तट, उततैं हरि आवत घर कौं।
कटि काछनी, वेष नटवर कौ, वीच मिली मुरलीधर कौं।
चितै रही मुख-इंदु मनोहर, वा छवि पर वारति तन कौं।
दूरिहु तैं देखत ही जाने, प्राननाथ सुदर घन कौं।
रोम पुलक, गदगद बानी कहि, कहाँ जात चोरे मन कौं।
सूरदास-प्रभु चोरन सीखे, माखन तैं चित-वित-धन कौं ॥६९॥

अर्थ—इधर से राधा यमुना के तट पर जाती है उधर से कृष्ण घर की तरफ आते हैं। कमर मे काछनी पहने हुए नटवर के वेष वाले मुरलीधर कृष्ण को वह बीच मे मिल गयी। वह चंद्रमा के समान मुख को देखकर उसकी मनोहर छवि पर शरीर को न्याछोवर कर देती है। दूर से देखते ही (राधा) प्राणनाथ सुन्दर कृष्ण को जान गयी। पुलकित रोम से (राधा) गद्‌गद् वाणी बोली कि (हे कृष्ण) मन को चुराकर कहाँ

जा रहे हो। सूरदास कहते हैं कि (राधा कहती है) माखन को चुराने से तुम चित्त रूपी धन-सम्पदा को चुराना सीख गये ॥६९॥

भुजा पकरि ठाढे हरि कीन्हे।
बाँह मरोरि जाहुगे कैसें, मैं, तुम नीकैं चीन्हे।
माखन-चोरी करत रहे तुम, अब भए मन के चोर।
सुनत रही मन चोरत हैं हरि, प्रगट लियौ मन मोर।
ऐसे ढीठ भए तुम डोलत, निदरे ब्रज की नारि।
सूर स्याम मोहूँ निदरौगे, देहुँ प्रेम की गारि ॥७०॥

अर्थ—भुजा पकड़कर (कृष्ण को राधा ने) खड़ा कर दिया। (और कहा) बाँह मरोड़ कर (तुम) कैसे जाओगे। मैंने तुम्हें अच्छी तरह पहचान लिया है। (पहले) तुम माखन की चोरी करते रहे, (अब) मन के चोर हो गये हो। (मैं) सुनती रही कि कृष्ण मन चुराते हैं, (आज) प्रकट हो तुमने मेरा मन चुरा लिया। तुम ऐसे धृष्ट हो कि ब्रज की स्त्रियो का निरादर करते डोलते हो। सूरदास कहते है (राधा कहती है) यदि हमारा निरादर करोगे तो मैं प्रेम की गाली दूँगी ॥७०॥

यह बल केतिक जादौ राइ।
तुम जु तमकि कै मो अबला सौं, चले बाहँ छुटकाइ।
कहियत हो अति चतुर सकल अँग, आवत बहुत उपाइ।
तो जानौं जौ अब एकौ छन, सकौ हृदय तैं जाइ।
सूरदास स्वामी श्रीपति कौं, भावत अंतर भाइ।
सहि न सके रति-वचन, उलटि हँसि लीन्ही कंठ लगाइ ॥७१॥

अर्थ—हे यादवो के राजा यह कितना बल है जो तुम मुझ अबला (नारी) की बाँह छुड़ाकरे चल पड़े। (तुम) कहते हो मैं समस्त अंगों से बहुत चतुर हूँ और (मुझे) बहुत से उपाय आते है। हम इसे तब जानेगी जब एक भी क्षण मे लिए मेरे हृदय से चले जाओ। सूरदास कहते है कि लक्ष्मीपति कृष्ण को अन्तर का भाव (बहुत) भाता है। वे रति के वचन को सह न सके और लौटकर उन्होने (कृष्ण ने) हँसकर (राधा को) गले से लगा लिया ॥७१॥

कुल की लाज अकाज कियौ।
तुम बिनु स्याम सुहात नहीं कछु, कहा करौं अति जरत हियौ।
आपु गुप्त करि राखी मोकौं, मैं आयसु सिर मानि लियौ।
देह-गेह सुधि रहति बिसारे, तुम तैं हितु नहिँ और बियौ।
अब मोकौं चरननि तर राखौ, हँसि नँद-नंदन अंग छियौ।
सूर स्याम श्रीमुख की बानी, तुम पै प्यारी बसत जियौ ॥७२॥

अर्थ—कुल की लाज ने कार्य में (काफी) विघ्न डाला। कृष्ण तुम्हारे बिना मुझे कुछ अच्छा नही लगता। क्या करूँ (मेरा) हृदय अत्यधिक जलता रहा है। आपने

मुझे गुप्त करके रखा और मैंने आपकी आज्ञा मान ली। मैं शरीर तथा घर का ख्याल भुलाये रहती हूँ। तुमसे भिन्न (मेरा) और दूसरा कोई हितैषी नहीं है। अब मुझे चरणो के नीचे रखो। (इसके बाद) कृष्ण ने हँसकर (राधा के) अंग को छुआ। सूरदास कहते है कि कृष्ण ने सुन्दर मुख से कहा, प्यारी तुम्ही पर मेरे प्राण बसते हैं ।।७२।।

मातु,पिता अति त्रास दिखावति।
भ्राता मोहिँ मारन कौं धिरवै, देखेँ मोहिँ न भावति।
जननी कहति बड़े की बेटी, तोकौं लाज न आवति।
पिता कहैं कैसी कुल उपजी, मनहीं मन रिस पावति।
भगिनी देख देति मोहिँ गारी, काहैं कुलहिँ लजावति।
सूरदास-प्रभु सौं यह कहि-कहि, अपनी बिपति जनावति ।।७३।।

अर्थ--माता-पिता अत्यधिक भय दिखाते हैं। भाई मुझे मारने की धमकी देते हैं, यह देखकर मुझे (कुछ) भाता नही। माता कहती हैं बडे की बेटी होकर तुम्हे लाज नही आती। पिता कहते हैं कि कैसी (लड़की) कुल में पैदा हो गयी। इससे मन-ही-मन क्रोध आता है। बहन देखकर मुझे गाली देती है कि क्यो कुल को लजावती हो। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण से यह कह-कहकर (राधा) अपनी विपत्ति प्रकट करती है ।।७३।।

सुंदर स्याम कमल-दल-लोचन।
बिमुख जननि की संगति कौं दुख, कब धौं करिहौ मोचन।
भवन मोहिँ भाठी सौं लागत, मरति सोचहीं सोचन।
ऐसी गति मेरी तुम आगैं, करत कहा जिय दोचन।
धिक वे मातु-पिता, धिक भ्राता, देत रहत मोहिँ खोचन।
सूर स्याम मन तुमहिँ लगान्यौ, हृदय-चून-रँग-रोचन ।।७४।।

अर्थ—कमल के दल के समान आंख वाले सुन्दर कृष्ण विमुख माताओ की संगति के दुःख से मुझे कब छुडाओगे। घर मुझे भट्ठा के समान लगता है, (मैं) सोच-सोचकर ही मरती हूँ। तुम्हारे आगे मेरा ऐसा हाल है, (तुम) जी मे दुविधा क्यो करते हो। उन माता-पिता को धिक्कार है तथा (उस) भाई को धिक्कार है जो (सदैव) हमे कोसते रहते हैं। सूरदास कहते हैं कि (राधा कहती है) हे कृष्ण हमारा तुम्ही से मन लग गया है, (हम तुम्हारे रंग मे) हल्दी और चूने के (रंग की तरह रंग गये है) मिल जाने से रोचना (लाल) के रंग मे रंजित हो गये हैं ।।७४।।

कुल की कानि कहाँ लगि करिहौं।
तुम आगैं मैं कहौं जु साँची, अब काहू नहिँ डरिहौं।
लोग कुटुँब जग के जे कहियत, पेला सबहिँ निदरिहौं।
अब यह दुख सहि जात न मोपैं, बिमुख बचन सुनि मरिहौं।
आपु सुखी तौ सब नीके हैं, उनके सुख कह सरिहौं।
सूरदास प्रभु चतुरसिरोमनि, अबकैं हौं कछु लरिहौं ।।७५।।

अर्थ—कुल की मर्यादा (का ध्यान) कहाँ तक करूँगी। तुम्हारे आगे सच्ची बात कहती हूँ कि अब किसी को नही डरूँगी। घर, संसार के लोग जो (कुछ) कहते हैं उन्हे बलात् (हठपूर्वक) निरादर कर दूँगी। अब यह दुःख मुझसे नही सहा जाता। विमुख वचन सुन-सुनकर मर जाऊँगी। अगर आप सुखी है तो सब ठीक (ही) है। उनके सुख को पूरा कर डालूँगी। सूरदास कहते हैं (राधा कहती है) कि अबकी बार मैं (भी) कुछ लडूँगी ॥७५॥

प्राननाथ हो मेरी सुरति किन करौ।
मैं जु दुख पावति हौं, दीनद्याल, कृपा करौ, मेरी कामदंद-दुख औ बिरह हरौ।
तुम बहु रमनी रमन सो जानति हौं, याही के जु धोखैं हौ मौसौं काहैं लरौ।
सूरदास-स्वामी तुम हौ अंतरजामी सुनो मनसा बाचा मैं ध्यान तुम्हरौई धरौं ॥७६॥

अर्थ—हे प्राणनाथ मेरी याद क्यो नही करते जो मैं दुःख पाती हूँ। दीनदयाल (मुझपर) कृपा करो, मेरी काम-पीडा दु.ख तथा विरह को हरो। यह समझ कर कि मै जानती हूँ कि तुम अनेक रमणियो के साथ रमण करने वाले हो, मुझसे झगड़ा क्यो करते हो। सूरदास कहते हैं (राधा कहती है) कृष्ण तुम अन्तर्यामी हो। (ऐसा मैंने) सुना है। (इसलिए) मन और वाणी से मै तुम्हारा ही ध्यान करती हूँ ॥७६॥

हौं या माया ही लागी तुम कत तोरत।
मेरौ तौ जिय तिहारे चरननि ही मैं लाग्यौ, धीरज क्यौं रहै रावरे मुख मोरत।
कोऊ लै बनाइ बातैं, मिलवति तुम आगैं, सोई किन आइ मोसौं अब है जोरत।
सूरदास-पिय, मेरे तौ तुमहिं हो जु जिय, तुम बिनु देखैं मेरौ हिय ककोरत ॥७७॥

अर्थ—मैं तो आपकी इस माया (प्रेम) में ही लग गई (पग गई) हूँ, उसे आप क्यो तोडते है (नष्ट करते है)। मेरा तो हृदय तुम्हारे चरणो में ही लग गया है। तुम्हारे मुख मोड़ लेने पर मुझे धीरज किस प्रकार रहे। कोई बाते बनाकर तुम्हारे आगे (इधर-उधर) जोड़कर कहती है वही (लोग) आकर अब हमसे जोड़ती है। सूरदास कहते हैं (राधा कहती है) कि मेरे तो प्राण तुम ही हो तुम्हें बिना देखे मेरा हृदय कुरेदता है ॥७७॥

बिहँसि राधा कृष्न अंक लीन्ही।
अधर सौं अधर जुरि, नैन सौं नैन मिलि, हृदय सौं हृदय लगि, हरष कीन्ही।

कंठ भुज-भुज जोरि, उछंग लीन्ही नारि, भुवन-दुख टारि,
सुख दियौ भारी।
हरषि बोले स्याम, कुन्ज-बन धन-धाम, तहाँ हम तुम सग
मिलैं प्यारी।
जाहु गृह परम धन, हमहुँ जैहैं सदन, आइ कहुँ पास मोहिं
सैन दैहौ।
सूर यह भाव दै, तुरतहीं गवन करि, कुज-गृह सदन तुम जाइ रैहौ ।।७८।।

अर्थ--हँस कर कृष्ण ने राधा को गोद मे ले लिया। ओंठ से ओठ आँख से आँख मिलाकर, हृदय से हृदय लगाकर हर्षित किया। कठ से भुजा जोडकर नागरि (राधा) को गोद मे ले लिया। घर के दु खो को टालकर वहुत सुख दिया। खुश होकर कृष्ण बोले कि घने कुज वन के कुटीर मे हम तुम प्यारी साथ मिले। हे परमधन (राधा) घर जाओ, हम भी घर जायेगे, पास मे आकर मुझे कोई इशारा दे देना। सूरदास कहते है कि यह भाव देकर उन्होने तुरन्त ही गमन किया और कहा कि तुम कुज-गृह रूपी घर मे आकर रहना ।।७८।।

ब्याज मिलन

सुनि री मैया काल्हिही, मोतिसरी गँवाई।
सखिनि मिलै जमुना गई, धौं उनहिं चुराई।
कोधौं जलही मैं गई, यह सुधि नहिं मेरैं।
तब तैं मैं पछितातिं हौं, कहति न डर तेरैं।
पलक नहीं निसि कहूँ लगी, मोहिं सपथ तिहारी।
इहि डर तैं मैं आजुहीं, अति उठी सवारी।
महरि सुनत चकित भई, मुख ज्वाब न आवै।
सूर राधिका गुन भरी, कोउ पार न पावै ।।७९।।

अर्थ—सुनो री माता ! कल मैंने मोतियो की माला गँवा दी। मैं सखियो से मिलने के लिए यमुना गयी थी, शायद उन्होने ही चुरा लिया। न जाने जल ही मे डूब गयी, मुझे याद नही है। तभी से मैं पछताती हूँ, तुम्हारे डर से तुमसे कहती नही हूँ। रात मे तनिक भी पलक नही लगी, मुझे तुम्हारी कसम है। इसी डर से आज मैं सबेरे ही उठ पडी। महरि यह सुनकर चकित हो गयी। उनके मुख से उत्तर नही निकला। सूरदास कहते है कि राधा गुण से भरी है, (इसका) कोई पार नही पाता ।।७९।।

सुनि राधा अब तोहिं न पत्यैहौं।
और हार चौकी हमेल अब, तेरैं कंठ न नैहौं।
लाख टकटकी हानि करी तैं, सो जब तोसौं लैहौं।
हार बिना ल्याएँ लड़बौरी, घर नहिं पैठन दैहौं।

जब देखौंगी वहै मोतिसरि, तवहीं तौ सचु पैहौं ।
नातरु सूर जन्म भरि तेरो, नाउँ नहीं मुख लैहौं ॥८०॥

अर्थ—सुनो राधा अब तुम पर विश्वास नही करूँगी। हार, चौकी, हमेल (कुछ भी) तेरे गले मे नही डालूँगी। तुमने लाख टका की हानि की है, वह जब तुमसे लूँगी (तभी और आभूषण पहनने को दूँगी)। हे अनाड़ी, हार बिना लाए (तुम्हे) घर में नही बैठने दूँगी। जब वही मोती का हार देखूँगी तभी सत्य मानूँगी। सूरदास कहते हैं कि (माता कहती है) नही तो जन्म भर तुमसे मुँह से नही बोलूँगी ॥८०॥

जैहै कहाँ मोतिसरि मोरी ।
अब सुधि भई लई वाही नैं, हँसति चली वृषभानु-किसोरी ।
अबहीं मैं लीन्हे आवति हौं, मेरैं सँग आवै जानि को री ।
देखौं धौं कहा करिहौं वाकौ, बड़े लोग सीखत हैं चोरी ।
मौकौं आजु अवेर लागि है, ढूढौंगी घर-घर ब्रज खोरी ।
सूर चली निधरक ह्वै सब सौं, चतुर राधिका बातनि भोरी ॥८१॥

अर्थ—मेरी मोती की माला कहाँ जायेगी। अब ख्याल हो गया, उसी ने ले लिया है। (यह कहकर) हँसती हुई राधा चली। अभी मैं लिये आती हूँ; मेरे साथ कोई मत आये। देखो (पकड़ने पर) उसका क्या करूँगी, बडे लोग (भी) चोरी सीखते हैं। आज मुझे देर लगेगी, (क्योकि) ब्रज की गलियो मे घर-घर (उसे) ढूढूँगी। सूरदास कहते हैं चतुर राधिका बातों से भुलाकर सबसे निधडक होकर चली ॥८१॥

नंद-महर घर कें पिछवारैं राधा आइ बतानी ।
मनौ अंब-दल-मौर देखि कें, कुहुकी कोकिल बानी ।
झूठेहिं नाम लेति ललिता कौं, काहैं जाहु परानी ।
वृन्दावन-मग जाति अकेली, सिर लै दही-मथानी ।
मैं बैठी परखति ह्याँ रैहौं, स्याम तबहिं तिहिं जानी ।
कोक-कला-गुन आगरि नागरि, सूर चतुरई ठानी ॥८२॥

अर्थ—नंद महर के घर के पीछे राधा ने आकर बाते की, मानो आम के कोमल पत्ते और बौर को देखकर कोयल कुहकी हो। झूठे ही ललिता का नाम लेती है कि क्यो भागी जा रही हो। वृन्दावन के मार्ग पर सिर पर दही और मथानी लिये अकेली चली जा रही है। मैं बैठकर यहाँ परखती रहूँगी। कृष्ण तभी उसे जान गये। सूरदास कहते हैं कि काम-कला के गुणों मे श्रेष्ठ राधा ने चतुराई ठानी ॥८२॥

सैन दै नागरी गई बन कौं ।
तबहिं कर-कौर दियौ डारि, नहिं रहि सकैं, ग्वाल जेंवत तजे,
मोह्यौ उनकौं ।

चले अकुलाइ बन धाइ, ब्याई गाइ देखिहौं जाइ, मन हरष कीन्हौ।
प्रिया निरखति पंथ, मिलैं कब हरि कंत, गए इहिं अंत, हँसि अंक लीन्हो।
अतिहिं सुख पाइ, अतुराइ मिले धाइ, दोउ मनौ अति रंक, नव-निधहिं पाई।
सूर प्रभु की प्रिया, राधिका अति नवल, नवल नँदलाल के, मनहिं भाई ॥८३॥

अर्थ—इशारा देकर नागरि राधा वन को गयी। तभी उसने (कृष्ण ने) हाथ का कौर रख दिया। अब उनके लिये रुकना सम्भव नही था। कृष्ण ने ग्वालों को भी मोह लिया और उन्हें भोजन करते छोड दिया। मन मे हर्ष करके, आकुल होकर वन को दौडे कि ब्याई गाय देखूँगा। प्रिया रास्ता निहारती थी कि कंत कृष्ण (कब) मिलेगे, इसी बीच वे पहुँचे और उन्होने हँसकर उसे गोद मे ले लिया। अत्यधिक सुख पाकर दोनो आतुर होकर दौडकर मिले जैसे दरिद्र को खजाना मिल गया हो। सूरदास कहते है कि कृष्ण की प्रिया राधा अत्यधिक सुन्दर है और सुन्दर कृष्ण के मन भा गयी है ॥८३॥

दीजै कान्ह काँधे की कंवर।
नान्हीं नान्हीं बूँदनि बरषन लाग्यौ, भीजत कुसुँभी अंबर।
बार-बार अकुलाइ राधिका, देखि मेघ-आडंबर।
हँसि हँसि रीझि बैठि रहे दोऊ, ओढ़ि सुभग पीतंबर।
सिव सनकादिक नारद-सारद, अत न पावै तुंबर।
सूर स्याम-गति लखि न परति कछु, खात ग्वाल सँग संबर ॥८४॥

अर्थ—हे कृष्ण कन्धे का कम्बल दीजिए। नन्ही-नन्ही बूंदे बरसने लगी, जिससे कुसुमी रंग का वस्त्र भीगता है। बादलों की उमड़-घुमड़ देखकर राधा बार-बार आकुल हो गयी। हँस-हँस कर तथा रीझकर दोनों (एक साथ) पीतांबर ओढकर बैठ गये। शिव, सनकादि, नारद, शारद, और तुंवर (कृष्ण का) अंत नही पाते। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण की गति कुछ भी दिखाई नही देती जो कि ग्वालो के साथ रास्ते का भोजन खा रहे हैं ॥८४॥

कान्ह कह्यौ बन रैनि न कीजै, सुनहु राधिका प्यारी।
अति हित सौं उर लाइ कह्यौ, अब भवन आपनैं जा री।
मातु-पिता जिय जानै न कोऊ, गुप्त-प्रीति रस भारी।
कर तैं कौर डारि मैं आयौ, देखत दोउ महतारी।
तुम जैसी मोहिँ प्यारी लागति, चंद चकोर कहा री।
सूरदास स्वामी इन बातनि, नागरि रिझई भारी ॥८५॥

अर्थ—अत्यन्त प्रेम से हृदय से लगाकर कृष्ण ने कहा कि (हे) राधिका प्यारी सुनो वन मे रात मत करो। अब अपने घर चली जाओ। गुप्त प्रीति के बड़े रस को माता-पिता कोई मन मे जानने न पावे। दोनों माताओ को देखते मैं हाथ से कौर डालकर चल दिया। तुम जैसे मुझे प्रिय लगती हो (उसके आगे) चकोर, और चन्द्रमा क्या है। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण ने इन बातो से राधा को बहुत रिझा लिया ॥८५॥

मैं बलि जाउँ कन्हैया की।
करतैं कौर डारि उठि धायौ, बात सुनी बन गैया की।
धौरी गाय आपनी जानी, उपजी प्रीति लवैया की।
तातैं जल समोइ पग धोवति, स्याम देखि हित मैया की।
जो अनुराग जसोदा कैं उर, मुख की कहनि कन्हैया की।
यह सुख सूर और कहुँ नाहीं, सौंह करत बल भैया की ॥८६॥

अर्थ—मैं कृष्ण पर निछावर जाती हूँ। (जब उन्होने) वन मे गाय (के व्याने) की बात सुनी तो वे हाथ से कौर डालकर उठकर दौड़े। अपनी धौरी गाय जानकर लाने वाले के प्रति प्रीति पैदा हुई। उसी से गर्म और ठडा पानी मिलाकर पैर धोती है। कृष्ण माता के हित को देखकर अपने मुख से यह कहते हैं कि जो प्रेम यशोदा के हृदय मे हैं वह सुख और कही नही है। (यह मैं) बलभद्र की सौगंध करके कहता हूँ ॥८६॥

राधा अतिहिं चतुर प्रवीन।
कृष्न कौं सुख दै चली हँसि, हँस-गति कटि छीन।
हार कैं मिस इहाँ आई, स्याम मनि-कैं काज।
भयौ सब पूरन मनोरथ, मिले श्रीब्रजराज।
गाँठि-आँचर छोरि कै, मोतिसरी लीन्ही हाथ।
सखी अवति देखि राधा, लई ताकौं साथ।
जुबति बूझति कहाँ नागरि, निसि गई इक जाम।
सूर ब्यौरौ कहि सुनायौ, मैं गई तिहिं काम ॥८७॥

अर्थ—राधा अत्यधिक चतुर तथा प्रवीण है। कृष्ण को सुख देकर क्षीण कमर वाली (राधा) हँसकर, हँस की चाल से चली। श्याम रूपी मणि के लिए हार का बहाना करके यहां आई थी। कृष्ण के मिलने पर उसकी सब मनोकामना पूरी हो गयी। आंचल की गाँठ छोड़कर मोतियों की माला हाथ मे ले ली। सखी को आती हुई देखकर उसको साथ मे ले लिया। युवतियां पूँछती है कि एक पहर रात गये कहाँ गयी थी ? सूरदास कहते है कि राधा ने सब ब्योरा कह सुनाया (और कहा कि) मैं उसी काम से गई थी ॥८७॥

करति अवसेर वृषभानु-नारी ।
प्रात तैं गई, वासर गयौ बीति सब, जाम निसि गई, धौं कहाँ वारी ।
हार कैं त्रास मैं कुँवरि त्रासी बहुत, तिहिं डरनि अजहूँ नहिं सदन आई ।
कहाँ मैं जाउँ, कह धौं रही रूसि कैं, सखिनि सौं कहति कहूँ मिलि माई ।
हार बहि जाइ, अति गइ अकुलाइ कैं, सुता कैं नाउँ इक वहै मेरैं ।
सूर यह बात जो सुनैं अबहीं महर, कहैं मोहिं ये ढंग तेरैं ॥८८॥

अर्थ—वृषभानु की स्त्री चिन्ता करती हैं। राधा प्रात.काल से गयी है। दिन बीत गया, एक पहर रात भी बीत गयी, बेटी पता नही कहाँ है। हार के खोने के भय से मैंने बेटी को बहुत डराया, उसी के डर से अब तक घर नही आयी। मैं कहाँ जाऊँ, पता नही कहाँ रूठकर चली गयी। सखियो से पूछती हैं कि वह कही मिली थी ? हार बह जाय। वह अत्यधिक आकुल होकर गयी है। लड़की के नाम पर मेरे वही अकेली (ही तो) है। सूरदास कहते हैं कि (राधा की माँ कहती हैं) यह बात अभी महर सुनेगे तो कहेगे कि तेरा यही ढंग है ॥८८॥

राधा डर डराति घर आई ।
देखति हीं कीरति महतारी, हरषि कुँवरि उर लाई ।
धीरज भयौ सुता-माता जिय, दूरि गयौ तनु-सोच ।
मेरी कौं मैं काहैं त्रासी, कहा कियौ यह पोच ।
लै री मैया हार मोतिसरी, जा कारन मोहिं त्रासी ।
सूर राधिका के गुन ऐसे, मिलि आई अविनासी ॥८९॥

अर्थ—राधा डरती-डरती घर आई। देखते ही कीर्ति माँ ने खुशी होकर राधा को हृदय से लगा लिया। बेटी और माता के (दोनो के) जी मे धीरज हुआ। मैंने (अपनी) लडकी को क्यो डराया और इसने क्या बुरा कार्य किया ? (राधा कहती है) मैया यह मोतियो का हार लो जिसके कारण तुमने मुझे डराया था। सूरदास कहते है कि राधा के गुण ऐसे है (जो कि) अविनाशी (कृष्ण) से मिलकर चली आयी ॥८९॥

परम चतुर वृषभानु-दुलारी ।
यह मति रची कृष्न मिलिबे की, परम पुनीत महा री ।
उत सुख दियौ नंद-नंदन कौं, इतहिं हरष महतारी ।
हार इतौ उपकार करायौ, कबहूँ न उर तैं टारी ।
जे सिव-सनक-सनातन दुर्लभ, ते बस किये कुमारी ।
सूरदास-प्रभु-कृपा अगोचर, निगमनि हू तैं न्यारी ॥९०॥

अर्थ—वृषभानु की दुलारी (राधा) परम चतुर है। कृष्ण से मिलने के लिए उसने यह परम पवित्र युक्ति (चाल) रची। उधर कृष्ण को सुख दिया, इधर माता को हर्ष दिया। हार ने इतना उपकार किया, इसलिए उसे कभी वक्षस्थल से नही टालती। जो शिव, सनक तथा सनातन को दुर्लभ हैं उन्हे राधा ने वश में कर लिया है। सूरदास कहते हैं कि प्रभु की कृपा अगोचर है तथा वेदो से भी न्यारी है ॥६०॥

प्रीति के बस्य ये हैं मुरारी।
प्रीति के बस्य नटवर सुभेषहिं धरयौ, प्रीति बस करज गिरिराज धारी।
प्रीति के बस्य ब्रज भए माखन चोर, प्रीति बस्य दाँवरि बँधाई।
प्रीति के बस्य गोपी-रमन नाम प्रिय, प्रीति बस्य जमल तरु मोच्छदाई।
प्रीति-बस नंद-बंधन बरुन-गृह गए, प्रीति के वस्य वन-धाम कामी।
प्रीति के बस्य प्रभु सूर त्रिभुवन बिदित, प्रीति बस सदा राधिका स्वामी ॥६१॥

अर्थ—कृष्ण प्रेम के वश मे हैं। उन्होंने प्रेम के वश मे होकर नटवर वेष धारण किया, प्रेम के वश होकर गोवर्द्धन पर्वत को धारण किया है। प्रेम के वश मे होकर ब्रज मे माखन चोर हुए। प्रेम के वश होकर अपने को रस्सी में बँधाया। प्रेम के वश मे होने के कारण गोपी-रमण नाम प्रिय हो गया है। प्रेम के वश मे होकर यमलार्जुन को मोक्ष दिया। प्रीति के वश में होकर नन्द के बन्धन तथा वरुण के घर गये। प्रीति वश वन और घर मे कामी बने। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण प्रेम के वश में हैं, यह तीन लोक मे प्रसिद्ध है। राधिका के स्वामी सदा प्रेम के वश मे हैं ॥६१॥

भ्रम

आजु सखी अरुनोदय मेरे, नैननि कौं धोख भयौ।
की हरि आजु पंथ गहिं गवने, स्याम जलद की उनयौ।
की बग पाँति भाँति, उर पर की, मुकुत-माल बहु मोल।
कीधौं मोर मुदित ह्वै नाचत, की बरह-मुकुट की डोल।
की घनघोर गम्भीर प्रात उठि, की ग्वालनि की टेरनि।
की दामिनी कौंधति चहुँ दिसि, की सुभग पीत पट फेरनि।
की बनमाल लाल-उर राजति, की, सुरपति-धनु चारु।
सूरदास-प्रभु-रस भरि उमँगी, राधा कहति बिचारु ॥६२॥

अर्थ—सखी आज सूर्य निकलने के समय मेरी आँखो को धोखा हो गया। मेरे इस रास्ते से कृष्ण गुजरे कि श्याम बादल झुक गये। बगुले की पंक्ति की तरह कि वक्ष पर बहुमूल्य मोती की माला है। पता नही प्रसन्न होकर मोर नाचते हैं कि मोर मुकुट डोल रहा है। न जाने प्रातः घनघोर बादल की गरज उठती है कि ग्वालो की पुकार

है। चारों ओर विजली कौधती है कि सुन्दर पीताम्वर फहर रहा है। हृदय पर सुन्दर वनमाला विराज रही है कि सुन्दर इन्द्र धनुष हैं। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण के रस से उमँगकर राधा विचार कर कहती है ॥८२॥

राधिका हृदय तै धोख टारौ।
नंद के लाल देखे प्रात-काल तैं, मेघ नहिँ स्याम तनु-छवि बिचारौ।
इंद्र-धनु नहीं बन दाम बहु सुमन के, नहीं बग पाँति बर मोति माला।
सिखी वह नहीं सिर मुकुट सीखंड पछ, तड़ित नहिं पीत पट-छवि रसाला।
मंद गरजन नहीं चरन नूपुर-सबद, भोरही आजु हरि गवन कीन्हौ।
सूर-प्रभु भामिनी भवन करि गवन, मन रवन दुख के दवन जानि लीन्हौ ॥८३॥

अर्थ—राधा हृदय से धोखा मिटा दो। तुमने प्रातःकाल कृष्ण को देखा था, मेघ को नही। कृष्ण के शरीर की शोभा के विषय मे विचार तो करो। इन्द्र का धनुष नही है बहुत से फूलो वाली वनमाला है। बगुलों की पक्ति नही है बल्कि श्रेष्ठ मोती की माला है। वह मोर नही बल्कि सिर पर मोर के पंखों का मुकुट है। बिजली नही पीताम्बर की सुन्दर छवि है। मन्द गरजन नही चरण के नूपुरो का शब्द है। आज प्रातः ही कृष्ण ने गमन किया। सूरदास कहते है कि भामिनी अपने घर जाओ, तुमने मन को आकर्षित करने वाले, दुःख को दमन करने वाले कृष्ण को जान लिया है ॥८३॥

एक निष्ठा

धन्य धन्य वृषभानु-कुमारी।
धनि माता, धनि पिता तिहारे, तोसी जाई बारी।
धन्य दिवस, धनि निसा तबहिँ की, धन्य घरी, धनि जाम।
धन्य कान्ह तेरैं बस जे हैं, धनि कीन्हे बस स्याम।
धनि मति, धनि रति, धनि तेरौ हित, धन्य भक्ति, धनि भाउ।
सूर स्याम पति धन्य नारि तू, धनि-धनि एक सुभाउ ॥८४॥

अर्थ—वृषभानु की वेटी (राधा) धन्य-धन्य है। तुम्हारे माता और पिता धन्य है जिन्होने तुम्हारी जैसी वेटी पैदा की। वह दिन धन्य है, तब की रात धन्य है, घड़ी पहर (सब) धन्य है (जब तेरा जन्म हुआ)। कृष्ण धन्य हैं जो तुम्हारे वश मे हैं। तुम धन्य हो जिसने कि कृष्ण को वश मे किया है। तेरी बुद्धि, रति, हित, भक्ति भाव सब धन्य हैं। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण पति तू नारी (दोनो) धन्य हो। एक स्वभाव वाले (तुम दोनों) धन्य हो ॥८४॥

तोहिँ स्याम हम कहाँ दिखावैं।
तुमतैं न्यारे रहत कहूँ न वै, नैकुं नहीं बिसरावैं।

एक जीव देही द्वै राची, यह कहि कहि जु सुनावैं।
उनकी पटतर तुमकौं दीजैं, तुम पटतर वै पावैं।
अमृत कहा अमृत-गुन प्रगटै, सो हम कहा बतावैं।
सूरदास गूँगे कौ गुर ज्यौं, बूझति कहा बुझावैं ॥९५॥

अर्थ—हम तुमको कृष्ण कहाँ दिखावें। वे कहीं भी तुमसे अलग नही रहते और (तुम्हें) तनिक भी नही भुलाते। एक जीव तथा दो शरीर की रचना की है, यह कह-कह कर सुनाते है। उनकी उपमा तुमको दी जाय तथा तुम्हारी उपमा उनको प्राप्त हो। अमृत कैसे अमृत गुण प्रकट करता है, उसे हम कैसे बताये। सूरदास कहते हैं कि गूँगे के गुड़ के समान पूछने पर कैसे समझाया जाय ॥९५॥

सुनि राधा यह कहा बिचारै।
वै तेरैं तू उनकैं रंग, अपनो मुख क्यौं न निहारै।
जो देखौ तौ छाँह आपनी, स्याम-हृदै ह्याँ छाया।
ऐसी दशा नंद-नंदन की, तुम दोउ निर्मल काया।
नीलांबर स्यामल तनु की छबि, तुम छबि पीत सुबास।
घन-भीतर दामिनी प्रकाशित, दामिनि घन-चहुँ पास।
सुन री सखी बिलख कहौं तोसौं, चाहति हरि कौ रूप।
सूर सुनहु तुम दोउ सम जोरी, एक स्वरूप अनूप ॥९६॥

अर्थ—सुनो राधा यह विचार क्यों करती हो। वह तुम्हारे रंग मे तुम उनके रंग में (रंग गयी हो), अपने मुख को क्यों नही निहारती हो। जो देखो तो अपनी छाया (देखो), कृष्ण का हृदय यहाँ छाया है। ऐसी दशा श्रीकृष्ण की है। तुम दोनों निर्मल शरीर (वाले) हो। नीले आकाश के समान श्यामल कृष्ण का शरीर है और तुम्हारी पीली सुगन्धित छवि है। बादल के भीतर (जैसे) बिजली प्रकाशित हो या बिजली बादल के चारों तरफ (छायी) हो। सुनो री सखी ताड़ करके तुमसे बात कहती हूँ (तुम) कृष्ण के रूप को चाहती हो। सूरदास कहते है कि (सखी कहती है) तुम दोनों समान जोड़ी तथा एक अनुपम स्वरूप वाले हो ॥९६॥

पिय तेरैं बस यौं री माई।
ज्यौं संगहिं सँग छाँह देह-बस, प्रेम कह्यौ नहिं जाई।
ज्यौं चकोर बस सरद चंद्र कैं, चक्रवात बस-भान।
जैसैं मधुकर कोमल कोस-बस, त्यौं बस स्याम सुजान।
ज्यौं चातक बस स्वाँति बूँद कैं, तन कैं बस ज्यौं जीय।
सूरदास-प्रभु अति बस तेरैं, समुझ देखि धौं हीय ॥९७॥

अर्थ—सखी! प्रिय कृष्ण यों तुम्हारे वश मे हैं जैसे साथ-ही-साथ रहने वाली छाया शरीर के वश में रहती है। (तुम दोनों का) प्रेम कहा नही जा सकता। (अकथनीय है)। जैसे चकोर शरद् ऋतु के चन्द्रमा के वश मे रहता है, चक्रवाक सूर्य

के वश में है और भ्रमर कमल के फूलों (बँधी हुई कली) के वश में रहता है वैसे ही कृष्ण (तुम्हारे) वश मे हैं। जैसे चातक स्वांती नक्षत्र के (बादलो के) बूंद के वश मे रहता है तथा शरीर के वश मे प्राण है। सूरदास कहते हैं कि (वैसे) कृष्ण तुम्हारे अत्यधिक वश मे है, निश्चय ही यह हृदय को देखकर समझ लो ॥९७॥

लघुमान लीला

मैँ अपनैँ जिय गर्व कियौ।
वै अंतरजामी सब जानत, देखत ही उन चरचि लियौ।
कासौँ कहौँ मिलावै को अब, नैँकु न धीरज धरत जियौ।
वै तौ निठुर भये या बुधि सौँ, अहंकार फल यहै दियौ।
तब आपुन कौँ निठुर कराबति, प्रीति सुमिरि भरि लेति हियौ।
सूर स्याम प्रभु वै वहु नायक, मो सी उनकैँ कोटि तियौ ॥९८॥

अर्थ—मैंने अपने मन मे गर्व किया। वे अन्तर्यामी सब जानते हैं, देखते ही उन्होंने अनुमान कर लिया। किससे कहूँ अब कौन मिलाये, हृदय तनिक भी धैर्य नही धरता। वे तो इस बुद्धि से निष्ठुर हो गये और अहंकार का यही फल दिया। तब अपने को निष्ठुर कहती हूँ, जब उनका प्रेम से स्मरण करके हृदय भर आता है। सूरदास कहते है (राधा कहती है) वे बहुत सी स्त्रियो के नायक हैं हमारे समान उनकी हजारो स्त्रियाँ हैं ॥९८॥

महा बिरह-वन माँझ परी।
चकित भई ज्यौं चित्र-पूतरी, हरि मारग विसरी।
सँग बटपार गर्व जब देख्यौ, साथी छोड़ि पराने।
स्याम-सहर-अँग-अंग-माधुरी, तहँ वै जाइ लुकाने।
यह बन माँझ अकेली व्याकुल, सम्पति गर्व छँड़ायौ।
सूर स्याम-सुधि टरति न उर तैँ, यह मनु जीव बचायौ ॥९९॥

अर्थ—(मैं) महान विरह वन के बीच पड गयी। चित्र की पुतली के समान (मैं) चकित हो गयी और कृष्ण रूपी मार्ग भूल गयी। संग मे बटपार रूपी गर्व को देखकर साथी छोडकर भाग गये। श्याम रूपी शहर की अग-अंग की मधुरिमा मे वे जाकर छिप गये। इस वन मे अकेली व्याकुल हूँ। गर्व ने सम्पत्ति को छीन लिया। सूरदास कहते है कि (राधा कहती है) हृदय से स्मृति टलती नही, मानो इसी ने जीव बचा दिया ॥९९॥

राधा-भवन सखी मिलि आईं।
अति ब्याकुल सुधि-बुधि कछु नाहीं, देह दसा बिसराईं।
बाँह गही तिहिँ बूझन लागीं, कहा भयौ री माई।
ऐसी बिबस भईं तू काहैं, कहौ न हमहिँ सुनाई।
कालिहिँ और बरन तोहिँ देखी, आजु गई मुरझाई।
सूर स्याम देखे की बहुरौ, उनहिँ ठगौरी लायी ॥१००॥

अर्थ—राधा के घर सखियाँ मिलने आईं। (राधा) अत्यन्त व्याकुल है तथा उसके होश-हवास कुछ नही है, (यहाँ तक कि) अपने शरीर की दशा (भी) भूल गयी है। (सखियाँ) बाँह पकड़ कर पूछने लगी—सखी तुम्हें क्या हुआ ? ऐसी विवश तुम क्यों हो गयी हो ? मुझे सुनाकर कहो ! कल तेरा और ही रंग देखा था, आज (क्यो) मुरझा गयी हो ? सूरदास कहते हैं कि (सखियाँ कहती है) क्या कृष्ण को देखा है, कि फिर उन्होने जादू कर दिया ॥१००॥

अब मैं तोसौं कहा दुराऊँ।
अपनी कथा, स्याम की करनी, तो आगैं कहि प्रगट सुनाऊँ।
मैं बैठी ही भवन आपनैं, आपुन द्वार दियौ दरसाऊँ।
जानि लई मेरे जिय की उन, गर्व-प्रहारन उनकौं नाऊँ।
तबहीं तैं व्याकुल भई डोलति, चित्त न रहै कितनौ समुझाऊँ।
सुनहु सूर ग्रह वन भयो मोकौं, अब कैसें हरि दरसन पाऊँ ॥१०१॥

अर्थ—अब मैं तुमसे क्या छिपाऊँ। अपनी कथा और कृष्ण की करतूत तुम्हारे आगे प्रत्यक्ष सुनाती हूँ। मैं अपने घर बैठी थी, वे स्वयं द्वार पर दिखाई दिये। उन्होने मेरे मन की बात जान ली। 'गर्व के प्रहारक' उनका नाम (ही) है। तभी से व्याकुल होकर फिरती हूँ, कितना ही मन को समझाती हूँ वह नही मानता (चैन नही मिलता)। सूरदास कहते हैं कि (राधा सखियो से कहती है) घर मेरे लिए वन हो गया है अब कैसे कृष्ण का दर्शन प्राप्त करूँ ॥१०१॥

हमरी सुरति बिसारी बनवारी, हम सरवस दै हारी।
पै न भए अपने सनेह वस, सपने हूँ गिरधारी।
वै मोहन मधुकर समान सखि, अनवन बेली-चारी।
व्याकुल बिरह व्यापी दिन-दिन हम, नीर जु नैननि ढारी।
हम तन मन दै हाथ बिकानी, वै अति निठुर मुरारी।
सूर स्याम बहु रमनि रमन, हम इक व्रत, मदन-प्रजारी ॥१०२॥

अर्थ—हमारी स्मृति कृष्ण ने भुला दी। मैं सर्वस्व देकर हार गयी। तब भी कृष्ण स्वप्न में भी अपने स्नेह के वश नही हुए। सखी वह मोहन भ्रमर के समान हैं जो असंख्य लताओं पर विचरण करने वाले हैं। व्याकुल हो मैं दिन-प्रति-दिन विरह से व्याप्त हो रही हूँ और आंखो से आँसू ढुलकाती हूँ। मैं तन-मन (उनके) हाथ देकर बिक गयी। वे कृष्ण अत्यधिक निष्ठुर हैं। सूरदास कहते हैं (राधा कहती है) कि वह बहुत-सी स्त्रियो के साथ रमण करने वाले हैं, मैं एकव्रता काम की अग्नि से जली हुई हूँ ॥१०२॥

मैं अपनी सी बहुत करी री।
मोसौं कहा कहति तू माई, मन कैं सँग मैं बहुत लरी री।
राखौं हटकि, उतहिं कौ धावत, वाकी ऐसियै परनि परी री।
मोसौं बैर करै रति उनसौं, मोकौं राख्यौ द्वार खरी री।

अजहूँ मान करौं, मन पाऊँ, यह कहि इत-उत चितै डरी री।
सुनहु सूर पाँचनि मत एकै, मैं री मोही रही परी री ॥१०३॥

अर्थ—मैंने अपना सा बहुत (कुछ) किया। सखी मुझसे तू क्या कहती है, मन के साथ मैंने बहुत लड़ाई लडी। हठ करके उसे रोकती हूँ, वह उधर ही दौड़ता है फिर उसकी ऐसी आदत पड गयी है। मुझसे शत्रुता करता है उनसे प्रेम करता है, मुझे द्वार पर खडी रखता है। अब भी मान करूँ यदि मन को पा जाऊँ। यह कहकर इधर-उधर देखकर भयभीत हुई। सूरदास कहते है (राधा कहती है) (सखियों) सुनो ये पांचों इन्द्रियाँ एक ही विचार रखती हैं। मैं ही मोह मे पड़ कर खडी रह गयी अथवा मोह से आविर्भूत होकर पडी रहती हूँ ॥१०३॥

भूलि नहीं अब मान करौं री।
जातैं होइ अकाज आपनौ, कहैं वृथा मरौं री।
ऐसे तन मैं गर्व न राखौं, चिंतामनि बिसरौं री।
ऐसी बात कहै जो कोऊ, ताकैं संग लरौं री।
आरजपंथ चलैं कह सरिहै, स्यामहिं संग फिरौं री।
सूर स्याम जउ आपु, स्वारथी, दरसन नैन भरौं री ॥१०४॥

अर्थ—अब भूल कर भी मान नही करूंगी। जिससे अपना अनिष्ट होता है, क्यो व्यर्थ मरूँ। ऐसे शरीर मे गर्व नही रखूँगी, (न तो) चिंतामणि को भूलूंगी। ऐसी बात जो कोई करेगा उसके साथ लडूंगी। आर्य पथ (श्रेष्ठ मार्ग) पर चलने से क्या कल्याण होगा ? (इससे) कृष्ण के साथ घूमूंगी। सूरदास कहते हैं (राधा कहती है) कि कृष्ण भले ही स्वयं स्वार्थी हों किन्तु उनका दर्शन करके नेत्रो को (रस से) भर लूंगी ॥१०४॥

माई मेरौ मन पिय सौं यौं लाग्यौ, ज्यौं सँग लागी छाँहि।
मेरौ मन पिय जीव बसत हैं, पिय जिय मो मैं नाहि।
ज्यौं चकोर चंदा कौं निरखत, इत-उत दृष्टि न जाइ।
सूर स्याम बिनु छिन-छिन जुग सम, क्यों करि रैन बिहाइ ॥१०५॥

अर्थ—सखी, मेरा मन प्रिय (कृष्ण) से ऐसा लगा है जैसे साथ में छाया लगी रहती है। मेरा मन प्रिय के प्राण में बसता है, लेकिन प्रियतम का जीव मुझमे नही (बसता है)। जैसे चकोर चन्द्रमा को देखता है, उसकी इधर-उधर दृष्टि नही जाती। सूरदास कहते हैं कि (राधा कहती है) कृष्ण के बिना क्षण-क्षण युग के समान लगता है फिर (वियोग) की रात कैसे बीते ॥१०५॥

अद्‌भुत एक अनूपम बाग।
जुगल कमल पर गज बर क्रीड़त, तापर सिंह करत अनुराग।
हरि पर सरवर, सर पर गिरिवर, गिर पर फूले कंज-पराग।
रुचिर कपोत बसत ता ऊपर, ता ऊपर अमृत फल लाग।

फल पर पुहुप, पुहुप पर पल्लव, ता पर सुक, पिक, मृद मद काग।
खंजन, धनुष, चंद्रमा ऊपर, ता ऊपर एक मनिधर नाग।
अंग-अंग प्रति और-और छवि, उपमा ताकौं करत न त्याग।
सूरदास प्रभु पियौ सुधा-रस, मानौ अधरनिँ के बड़ भाग ।।१०६।।

अर्थ—एक अद्भुत तथा अनुपम बाग है। दो कमलो (चरणों) के ऊपर श्रेष्ठ-हाथी (जाँघ) खेलते हैं। उस पर सिंह (कमर) अनुराग करता है। सिंह पर सरोवर (नाभि प्रदेश) है, सरोवर के ऊपर पहाड (पयोधर) हैं, उस पर पराग युक्त कमल (कंचुकी के बेल-बूटे) फूले हैं। उसके ऊपर रुचिकर कबूतर (गला) बसता है, उसमे अमृत का फल (ठुड्ढी) लगा है। फल के ऊपर फूल (तिल) है, फूल के ऊपर पल्लव (अधर) हैं। उस पर तोता (नाक), कोयल (वाणी), मृग (कस्तूरी वेदी), कौआ (बालो के पट्टे) (शोभित) है। खंजन (नेत्र), धनुष (भौहे), चन्द्रमा (मस्तक) उसके ऊपर एक मणिधर सर्प (मणि जटित आभूषण सहित वेणी) है। प्रति अंग में अधिक-से-अधिक शोभा है, उपमा उनका त्याग नही करती। सूरदास कहते है कि हे कृष्ण, अमृत रस पान करो, मानो (तुम्हारे) ओठो का बड़ा सौभाग्य है ।।१०६।।

भुज भरि लई हिरदय लाइ।
बिरह व्याकुल देखि बाला, नैन दोउ भरि आइ।
रैनि बासर बँच मैँ, दोऊ गए मुरझाइ।
मनौ बृच्छ तमाल बेली, कनक सुधा सिंचाइ।
हरष डहडह मुसुकि फूले, प्रेम फलनि लगाइ।
काम मुरझनि बेली तरु की, तुरत ही बिसराइ।
देखि ललिता मिलन वह, आनंद उर न समाइ।
सूर के प्रभु स्याम स्यामा, त्रिबिध ताप नसाइ ।।१०७।।

अर्थ—भुजा से भरकर हृदय से लगा लिया। विरह से व्याकुल स्त्री को देखकर दोनो नेत्र (आंसू से) भर आये। रात-दिन के बीच मे ही दोनो मुरझा गये। मानों तमाल के वृक्ष की स्वर्ण लता अमृत से सिंचकर, हर्ष से हरी भरी होकर, मुस्करा कर फूल गयी और उसमें प्रेम के फल लग गये। काम-पीड़ा से मुरझाई हुई तरु-लता ने तुरन्त अपनी आकुलता (मुरझनि) को भुला दिया। उस मिलन को देखकर ललिता के हृदय मे आनन्द नही समाता। सूरदास कहते हैं कृष्ण ने प्रिया के त्रिविध ताप को नष्ट कर दिया ।।१०७।।

ललित प्रेम-बिबस भई भारी।
वह चितवनि, वह मिलनि परस्पर, अति सोभा वर नारी।
इकटक अंग-अंग अवलोकति, उत बस भए बिहारी।
वह आतुर छबि लेत देत वै, इक तैं इक अधिकारी।

ललिता संग सखिनि सों भापति, देखौ छवि पिय-प्यारी।
सुनहु सूर ज्यौं होम अगिनि घृत, ताहूँ तैं यह न्यारी ॥१०८॥

अर्थ – ललिता अत्यधिक प्रेम से विवश हो गयी। वह दृष्टिपात, वह परस्पर का मिलन, (वह) श्रेष्ठ नारी की अत्यधिक शोभा (सब सराहनीय है)। एक निगाह से (कृष्ण के) अग-अंग को देखती है, उधर कृष्ण वश मे हो गये हैं। वे आतुर होकर शोभा का आदान-प्रदान करते है। वे एक-से-एक बढकर हैं। ललिता सखियो के साथ बातचीत करती है कि प्रिय और प्यारी की शोभा देखो। सूरदास कहेते हैं कि (ललिता कहती है) ज्यो होम की अग्नि मे घी हो, उससे भी यह निराली है ॥१०८॥

राधहिं मिलेहुँ प्रतीति न आवति।
जदपि नाथ बिधु वदन बिलोकत, दरसन कौ सुख पावति।
भरि-भरि लोचन रूप-परम-निधि, उरमैं आनि दुरावति।
बिरह-बिकल मति दृष्टि दुहूँ दिसि, सँचि सरघा ज्यौं धावति।
चितवत चकित रहत चित अंतर, नैन निमेप न लावति।
सपनौ आहि कि सत्य ईस यह, बुद्धि वितर्क वनावति।
कबहुँक करति विचार कौन हौं, को हरि कैं हिय भावति।
सूर प्रेम की बात अटपटी, मन तरंग उपजावति ॥१०९॥

अर्थ—राधा को (कृष्ण से) मिलने पर भी विश्वास नही आता है। यद्यपि वह कृष्ण के चन्द्र वदन को देखकर दर्शन का सुख पाती है। आंखो से रूप की परम निधि भरकर हृदय मे ले आकर छिपाती है। विरह से व्याकुल बुद्धि (वाली राधा) की दृष्टि दोनों दिशाओ मे है, जैसे मधु इकट्ठा करके मधुमक्खी दौड़ती है। चकित दृष्टि से चित्र के अन्तर मे देखती रहती है क्षण भर भी आंख नही लगाती। बुद्धि मे तर्क-वितर्क करती है कि हे ईश्वर यह सत्य है या स्वप्न है। कभी विचार करती है कि मैं कौन हूं, और कौन कृष्ण के हृदय को भाती है। सूरदास कहते हैं कि प्रेम की अटपटी बात मन मे तरंग उत्पन्न करती है ॥१०९॥

स्याम भए राधा वस ऐसें।
चातक स्वाँति, चकोर चंद ज्यौं, चक्रवाक रवि जैसें।
नाद कुरंग, मीन जल की गति, ज्यौं तनु कैं वस छाया।
इकटक नैन अंग-छवि मोहे, थकित भए पति जाया।
उठैं उठत बैठैं बैठत हैं, चलैं चलत सुधि नाहीं।
सूरदास बड़भागिनि राधा, समुझि मनहिं मुसुकाहीं ॥११०॥

अर्थ—कृष्ण ऐसे राधा के वश मे हो गये है जैसे चातक स्वांति (के बूंद) के चकोर चन्द्रमा के, चक्रवाक सूर्य के वश मे रहता है। जैसे शब्द के वश में मृग, जल की गति के वश मे मछली और शरीर के वश मे छाया रहती है। एकटक नेत्र अंग की छवि पर मोहित हो गये हैं, वे पति (के नेत्र) पत्नी (की छवि) देखते-देखते थकित

हो गये। (राधा के) उठने पर उठते है, बैठने पर बैठते हैं, चलने पर चलते हैं, (उन्हें) कुछ स्मरण नहीं रहता। सूरदास कहते हैं कि राधा बड़ी भाग्यवाली है, (यह) समझ कर मन ही (मन) मुस्कराती है ॥११०॥

निरखि पिय-रूप तिय चकित भारी।
किधौं वै पुरुष मैं नारि, की वै नारि मैं ही हौं तन सुधि बिसारी।
आपु तन चितै सिर मुकुट कुंडल स्रवन, अधर मुरली, मालबन बिराजै।
उतहिं पिय-रूप सिर माँग बेनी सुभग, भाल बेंदी-बिंदु महा छाजै।
नागरी हठ तजौ, कृपा मरि मोहिं भजौ; परी कह चूक सो कहौ प्यारी।
सूर नागरी प्रभु-बिरह-रस मगन भई, देखि छवि हँसत गिरिराजधारी ॥१११॥

अर्थ—प्रिय के रूप को देखकर स्त्री (राधा) चकित हो गयी। (वह सोचती है) वह पुरुष हैं, मैं नारी हूँ कि वे नारी हैं, मैं (पुरुष) हूँ; मैं अपने शरीर की स्मृति भूल चुकी हूँ। अपने शरीर को देखकर उसे लगता है, उसके सिर पर मुकुट, कानो में कुंडल, ओठ मे मुरली, (उर पर) वनमाल विराजती है। उधर प्रिय इस रूप मे दिखाई देते हैं—सिर पर माँग, सुन्दर वेणी, मस्तक पर बेंदी का बिन्दु बहुत सुशोभित है। (राधा कहती है) नागरी हठ छोडो, कृपा करके मुझको भजो, कहो प्यारी किस चूक में पड गयी हो। सूरदास कहते हैं कि (राधा) प्रभु के विरह रस मे मग्न हो गयी, (इस) छवि को देखकर कृष्ण हँसते है ॥१११॥

कृष्ण गोपिका

नँद-नंदन तिय-छवि तनु काछे।
मनु गोरी साँवरी नारि दोउ, जाति सहज मैं आछे।
स्याम अंग कुसुमी नई सारी, फल गुजा की भाँति।
इत नागरि नीलांबर पहिरे, जनु दामिनी घन काँति।
आतुर चले जात बन धामहिं, मन अति हरष बढ़ाए।
सूर स्याम वा छवि कौं नागरि, निरखति नैन चुराए ॥११२॥

अर्थ—कृष्ण अपने शरीर पर स्त्री का रूप सँवारे हैं। मानो गोरी और साँवली दोनो स्त्रियाँ अच्छी तरह से सहजता से चली जा रही है। गुंजा फल की तरह कृष्ण के शरीर पर कुसुमी रंग की साड़ी है। इधर राधा नीलाम्बर पहने है, जैसे बादलो में बिजली की कांति हो। मन मे अत्यन्त हर्ष बढ़ाकर, आतुर होकर वन के कुंज-गृह

में चले जा रहे हैं। सूरदास कहते हैं कि उस छवि को नागरि (राधा) नैन चुराकर देखती जाती है ॥११२॥

स्याम स्यामा कुंज वन आवत।
भुज भुज कण्ठ परस्पर दीन्हँ, यह छवि उनहीं पावत।
इततैं चन्द्रावली जाति ब्रज, उततैं ये दोउ आए।
दूरिहिं तैं चितवति उनहीं तन, इक टक नैन लगाए।
एक राधिका दूसरि को है, याकौं नहिं पहिचानौं।
ब्रज-वृषभानु-पुरा-जुवतिनि कौं, इक-इक करि मैं जानौं।
यह आई कहूँ और गाँव तैं, छवि सांवरी सलोनी।
सूर आजु यह नई वतानी, एकौ अँग न विलोनी ॥११३॥

अर्थ—राधा और कृष्ण कुंज वन मे आते हैं। परस्पर भुजा एक दूसरे के कठ से लगाये हुए हैं। यह शोभा वे ही पाते हैं (अन्यत्र उपमा नही है)। इधर से चन्द्रावली ब्रज को जा रही थी, उधर से ये दोनो आ गये। दूर ही से उन्ही की ओर एकटक लगाकर नैनों से निहारती है। एक तो राधिका है दूसरी कौन है, इसे पहचानती नही हूं। (क्योकि) मैं तो ब्रज और वृषभानु नगर की एक-एक युवती को जानती हूं। यह सांवरी सलोनी छवि वाली किसी और गांव से आई है (क्या)? सूरदास कहते हैं (चन्द्रावली कहती है) यह नई (स्त्री) दिखलाई दी जिसका एक भी अंग लावण्यविहीन नही है ॥११३॥

यह वृषभानु-सुता वह को है।
याकी सरि जुवती कोउ नाहीं, यह त्रिभुवन-मन मोहै।
अति आतुर देखन कौं आवति, निकट जाइ पहिचानौं।
ब्रज मैं रहति किधौं कहुँ औरै, बूझे तैं तव जानौं।
यह मोहिनी कहाँ तैं आई, परम सलोनी नारी।
सूर स्याम देखत मुसुक्यानी, करी चतुरई भारी ॥११४॥

अर्थ—यह वृषभानु की वेटी (राधा) है, परन्तु वह कौन है। इसके समान और कोई स्त्री नही है, यह तीनो लोक के मन को मोहने वाली है (त्रिभुवन मोहनी है)। अत्यन्त आतुर होकर इसे देखने के लिए आ रही हूँ, निकट जाकर पहचानूं। ब्रज में रहती है कि कही और पूछने पर जानूंगी। यह परम सलोनी मोहनी स्त्री कहाँ से आ गई। सूरदास कहते हैं कि (राधा) कृष्ण को देखकर मुसकरायी और (कहा) कि भारी चतुरता की है ॥११४॥

कहि राधा ये को है री।
अति सुदरी सॉवरी सलोनी, त्रिभुवन-जन-मन-मोहै री।
और नारि इनकी सरि नाहीं, कहीं न हम-तन जोहै री।
काकी सुता, वधू है काकी, जुवती धौं है री।

जैसी तुम तैसी है येऊ, भली बनी तुमसी री।
सुनहु सूर अति चतुर राधिका, येइ चतुरनि की गौ है री ।।११५।।

अर्थ—कहो राधा यह कौन है। (यह) अत्यधिक सुन्दर, सांवली, सलोनी तीनों लोक के मन को मोहती है और कोई स्त्री इसके समान नही है। इससे कह दो हमारी ओर न देखे, (यह) किसकी पुत्री है, किसी की स्त्री है अथवा यह नवयुवती है। जैसी तुम हो वैसे ही यह भी है। तुम्हारे समान अच्छी बनी हुई है। सूरदास कहते हैं कि (सखी कहती है) राधिका अत्यधिक चतुर है, यही चतुरो की चाल है ।।११५।।

मथुरा तैं ये आई है।
कछु सम्बन्ध हमारौ इनसौं, तातैं इनहिं बुलाई है।
ललिता सग गई दधि बेंचन, उनहीं इनहिं चिन्हाई है।
उहै सनेह जानि री सजनी, आजु मिलन हम आई है।
तब ही की पहिचानि हमारी, ऐसी सहज सुभाई है।
सूरदास मोहिं आवत देखी, आपु संग उठि धाई है ।।११६।।

अर्थ—(यह) मथुरा से आई है। हमारा इसका कुछ सम्बन्ध है, इसी से इसे बुलाया है। ललिता के साथ दही बेचने गयी थी, उसने ही इसे पहचनवा दिया। उसी स्नेह को जानकर सखी; यह हमसे मिलने आई है। तभी की हमारी इसकी पहचान है। यह ऐसे ही सहज स्वभाव वाली है। सूरदास कहते हैं कि (राधा कहती है) मुझे देखकर स्वयं उठकर साथ दौड़ी चली आई ।।११६।।

इनकौं ब्रजहीं क्यौं न बुलावहु।
की वृषभानु पुरा, की गोकुल, निकटहिं आनि बसावहु।
येऊ नवल नवल तुमहूँ हौ, मोहन कौं दोउ भावहु।
मोकौं देखि कियौ अति घूँघट, काहैं न लाज छुड़ावहु।
यह अचरज देख्यौ नहिं कबहूँ, जुवतिहिं जुहुति दुरावहू।
सूर सखी राधा सौं पुनि पुनि, कहति जु हमहिं मिलावहु ।।११७।।

अर्थ—इनको ब्रज मे क्यों नही बुला लेती हो। वृषभानुपुर या गोकुल (कही) निकट लाकर बसा लो। यह भी नवल है और तुम भी, दोनो मोहन (कृष्ण) को अच्छी लगोगी। मुझे देखकर इसने अत्यधिक घूंघट कर लिया, इसकी लाज क्यो नही दूर करती हो। यह आश्चर्य कभी नही देखा कि युवती ही युवती को छिपाये। सूरदास कहते हैं कि सखी राधा से बार-बार कहती है कि हमे (इससे) मिलाओ ।।११७।।

मथुरा मैं बस वास तुम्हारौ ?
राधा तैं उपकार भयौ यह, दुर्लभ दरसन भयौ तुम्हारौ।
बार-बार कर गहि निरखति, घूँघट-ओट करौ किन न्यारौ।
कबहुँक पर परसति कपोल छुइ, चुटकि लेति ह्या हमहिं निहारौ।

कछु मैं हूँ पहिचानति तुमकौं, तुमहिं मिलाऊँ नंद-दुलारी ।
काहे कौं तुम सकुचति हौ जू, कहौ काह है नाम तुम्हारी ।
ऐसो सखी मिली तोहिं राधा, तौ हमकौं काहै न बिसारी ।
सूरदास दम्पति मन जान्यौ, यातैं कैसें होत उबारी ।।११८।।

अर्थ— बस मथुरा मे ही तुम्हारा निवास है । राधा के द्वारा यह उपकार हुआ कि तुम्हारा दुर्लभ दर्शन हो गया । बार-बार हाथ पकड कर देखती है (और कहती है) घूंघट की ओट को दूर क्यो नही करती हो। कभी कपोल (गाल) छूकर हाथ छूती है फिर चुटकी लेती है कि मेरी तरफ देखो । मैं तुमको कुछ पहचान रही हूँ, तुम्हे कृष्ण से मिला दूँगी । तुम क्यो संकोच करती हो, कहो तुम्हारा क्या नाम है ? राधा तुम ऐसी सखी पाकर हम जैसी सखियो को क्यो न भूल जाओ । सूरदास कहते है कि कृष्ण और राधा दोनों मन मे जान गये कि अब इससे कैसे उबार हो ।।११८।।

ऐसी कुँवरि कहाँ तुम पाई ।
राधा हूँ तें नख-सिख सुंदरि, अब लौं कहाँ दुराई ।
काकी नारि, कौन की बेटी, कौन गाउँ तैं आई ।
देखी सुनी न ब्रज, वृन्दावन, सुधि-बुधि हरति पराई ।
धन्य सुहाग भाग याकौ, यह जुवतिनि की मनभाई ।
सूरदास-प्रभु हरिषि मिले हँसि, लै उर कठ लगाई ।।११९।।

अर्थ—थंतुम ऐसी कुमारी (कुँवरि) कहाँ पा गई । राधा से भी इसके नख-शिख सुन्दर है, (ऐसे अंगो को) अब तक कहाँ छिपाये थी । किसकी स्त्री है, किसकी बेटी है और किस गाँव से आई है । ब्रज और वृन्दावन मे (तुम्हे) न तो देखा है न सुना है । (तुम) दूसरे की स्मृति और बुद्धि दोनों हरती हो । इसका सुहाग और भाग्य दोनो धन्य है जो कि इन युवतियो के मन को भा गयी । सूरदास कहते है कि कृष्ण हँसकर गले से लगाकर मिल गये ।।११९।।

नँद-नंदन हँसे नागरी-मुख चितै, हरिषि चंद्रावलि कंठ लाई ।
बाम भुज रवनि, दच्छिन भुज सखी पर, चले बन धाम सुख
कहि न जाई ।
मनौ बिबि दामिनि, बीच नव घन सुभग, देखि छवि काम रति-
सहित लाजै ।
किधौं कंचन-लता, बीच सुतमाल तरु, भामिनिनि बीच
गिरिधर बिराजै ।
गए गृहकुंज,अलिगुंज,सुमननि पुंज, देखि आनंद भरे सूर स्वामी ।
राधिका-रवन, जुवती-रवन, मन-रवन निरखि छवि होत मन-
काम कामी ।।१२०।।

अर्थ— कृष्ण नागरि के मुख को देखकर हँसे और हर्षित होकर उन्होंने चंद्रावली को गले से लगा लिया। बायी भुजा राधा पर और दाहिनी सखी पर रखकर वन की ओर चले। (यह) शोभा कही नही जा सकती (अकथनीय है)। कृष्ण मानो दो बिजलियों के बीच सुन्दर नवीन बादल हों। इस छवि को देखकर रति सहित काम लज्जित होते हैं। मानो कंचन की लताओं के बीच सुन्दर तमाल का वृक्ष हो, ऐसे ही (दोनो) स्त्रियों के बोच कृष्ण शोभित हैं। वे कुंज-गृह मे गये और भ्रमर के गुंजार तथा पुष्पों के पुंज को देखकर आनन्द से भर गये। सूरदास कहते हैं कि राधिका-रमण, युवती-रमण, मनरमण (कृष्ण) की छवि को देखकर काम के मन में भी कामेच्छा उत्पन्न हो गयी ॥१२०॥

मान लीला

मोहिँ छुवौ जनि दूर रहौ जू।
जाकौँ हृदय लगाइ लयौ है, ताकौँ बाँह गहौ जू।
तुम सर्वज्ञ और सब मूरख, सो रानी अरु दासी।
मैँ देखत हिरदय वह बैठी, हम तुमकौँ भइ हाँसी।
बाँह गहत कछु सरम न आवति, सुख पावति मन माहीँ।
सुनहु सूर मो तन यह इकटक, चितवति, डरपति नाहीँ ॥१२१॥

अर्थ—मुझे छुओ मत दूर रहो। जिसको हृदय से लगाया हो उसी की बाँह पकड़ो। तुम सर्वज्ञ हो और सब मूर्ख हैं? वह रानी है और सब दासी हैं? मैं देखती हूँ कि वह हृदय में बैठी है, मैं तुम्हारे लिए हँसी की पात्री हूँ। बाँह पकड़ते कुछ लाज नही आती, (ऊपर से) मन में सुख पाती है। सूरदास कहते हैं कि (राधा कहती है) यह मेरी ओर एकटक देखती है और डरती नही ॥१२१॥

कहा भई धनि बावरी, कहि तुमहिँ सुनाऊँ।
तुम तैँ को है भावती, जिहिँ हृदय बसाऊँ।
तुमहिँ स्रवन, तुम नैन हौ, तुम प्रान-अधारा।
वृथा क्रोध तिय क्यौँ करौ, कहि बारम्बारा।
भुज गहि ताहि बतावहू, जेहि हृदय बतावति।
सूरज प्रभु कहै नागरी, तुम तैँ को भावति ॥१२२॥

अर्थ—प्रिया तुम क्या पागल हो गयी हो, तुम्हे कैसे कहकर सुनाऊँ। तुमसे अधिक प्रिय लगने वाली और कौन है जिसे (अपने) हृदय मे बसा लूँ। तुम ही श्रवण हो, तुम ही नेत्र हो और तुम ही प्राण की आधार हो। बार-बार कहकर, हे स्त्री, क्रोध क्यो करती हो। भुजा पकड़कर उसे बताओ जिसे हृदय मे बताती हो। सूरदास कहते है कि कृष्ण नागरि (राधा) से कहते है कि तुमसे अधिक कौन मुझे अच्छी लगती है ॥१२२॥

पियहिँ निरखि प्यारी हँसि दीन्हौ।
रीझे स्याम अंग-अँग निरखत, हँसि नागरि उर लीन्हौ।

आलिंगन दै अधर दसत खँडि, कर गहि चिबुक उठावत।
नासा सौं नासा लै जोरत, नैन नैन परसावत।
इहिं अंतर प्यारी उर निरख्यौ, झझकि भई तव न्यारी।
सूर स्याम मोकौं दिखरावत, उर ल्याए धरि प्यारी ॥१२३॥

अर्थ—प्रिय को देखकर प्यारी ने हँस दिया। कृष्ण अंग-अंग देखकर रीझ गये, हँसकर उन्होने नागरि (राधा) को हृदय से लगा लिया। आलिंगन देकर, अधरो पर दाँतो के चिह्न देकर, हाथ से ठुड्ढी पकड़कर उठाते हैं। नाक से नाक जोड़ते हैं, नेत्र से नेत्र स्पर्श कराते हैं। इसी बीच प्यारी ने वक्षःस्थल को देखा और तब झिझककर अलग हो गयी। सूरदास कहते हैं कि मुझे दिखाते हुए कृष्ण ने प्यारी को पकड़कर हृदय से लगा लिया ॥१२३॥

मान करौ तुम और सवाई।
कोटि करौ एकै पुनि ह्वै हौ, तुम अरु मोहन माई।
मोहन सो सुनि नाम स्रवनहीं, मगन भई सुकुमारी।
मान गयौ, रिस गई तुरतहीं, लज्जित भई मन भारी।
धाइ मिली दूतिका कंठ सौं, धन्य-धन्य कहि बानी।
सूर स्याम बन धाम जानिकै, दरसन कौं अतुरानी ॥१२४॥

अर्थ—अब तुम सवाया (और अधिक) मान करो। हजारों यत्न करो, तुम और मोहन अन्ततः एक ही होगे। मोहन का नाम कान से सुनकर सुकुमारी राधा प्रसन्न हो गयी। मान समाप्त हो गया, तुरन्त ही क्रोध चला गया, मन मे अत्यधिक लज्जित हुई। धन्य-धन्य की वाणी कहकर, दौड़कर दूती के गले से लिपट गयी। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण को कुन्ज वन मे जानकर (राधा) दर्शन के लिए आतुर हो गयी ॥१२४॥

चलौ किन मानिनि कुंज-कुटीर।
तुव बिनु कुँवर कोटि बनिता तजि, सहत मदन की पीर।
गदगद स्वर संभ्रम अति आतुर, स्रवत सुलोचन नीर।
क्वासि क्वासि वृषभानु नंदिनी, बिलपत बिपिन अधीर।
बंसी बिसिष, माल ब्यालावलि, पंचानन पिक कीर।
मलयज गरल, हुतासन मारुत, साखामृगरिपु चीर।
हिय मैं हरषि प्रेम अति आतुर, चतुर चली पिय तीर।
सुनि भयभीत बज्र के पिंजर, सूर सुरति-रनधीर ॥१२५॥

अर्थ—मानिनी कुन्ज-कुटीर क्यों नही चलती। तुम्हारे बिना कृष्ण हजारो स्त्रियो को छोड़कर काम-पीड़ा सह रहे हैं। गदगद् स्वर तथा भ्रम के साथ आतुर होकर आँखो से आँसू गिराते हैं। वृषभानु की बेटी (राधा) कहाँ है, कहाँ है (कहकर) वे वन में विलाप कर रहे हैं ? (उनके लिए) वंशी वाण, माला सर्प, कोयल तथा तोता सिंह, मलयज विष, वायु अग्नि, चीर शाखामृग (बन्दर) के शत्रु (काँटा) के समान हो गए

हैं। यह सुनकर काम क्रीडा में धैर्य धारण करने वाली राधा का कठोर मन भय विह्वल हो गया और वे चतुर (राधा) हिय में हर्षित तथा प्रेम से आतुर होकर प्रिय के पास चली ॥१२५॥

स्याम नारि कैं बिरह भरे।
कबहुँक बैठन कुंज द्रुमनि तर, कबहुँक रहत खरे।
कबहुँक तनु की सुरति बिसारत, कबहुँक तनु सुधि आवत।
तब नागरि के गुनहिं बिचारत, तेई गुन गनि गावत।
कहूँ मुकुट, कहुँ मुरलि रही गिरि, कहुँ कटि पीत पिछौरी।
सूर स्याम ऐसी गति भीतर, आइ दूतिका दौरी ॥१२६॥

अर्थ—कृष्ण नारी (राधा) के विरह से आकुल हैं। कभी कुन्ज के वृक्षों के नीचे बैठते हैं, कभी खड़े रहते हैं। कभी उन्हे शरीर की स्मृति भूल जाती है, कभी शरीर की स्मृति आ जाती है। तब नागरि (राधा) के गुणो का विचार करते हैं, उसी के गुणों का गुणगान करते हैं। कही मुकुट, कही मुरली तथा कही पीताम्बर तथा पिछौरी गिर गयी है। सूरदास कहते हैं कि ऐसी अवस्था मे दूती दौडती हुई आई ॥१२६॥

धनि वृषभानु-सुता बड़ भागिनि।
कहा निहारति अंग-अंग-छबि, धन्य स्याम-अनुरागिनि।
और त्रिया नख-शिख सिंगार सजि, तेरैं सहज न पूरैं।
रति, रम्भा, उरवसी, रमा सो, तोहिं निरखि मन झूरैं।
ये सब कंत सुहागिनि नाहीं, तू है कंत-पियारी।
सूर धन्य तेरी सुन्दरता, तोसी और न नारी ॥१२७॥

अर्थ—बडे भाग्य वाली वृषभानु की बेटी (राधा) धन्य हो। अंग-अंग की शोभा को क्या देखती हो। श्याम की अनुरागिनी (तुम) धन्य हो। अन्य स्त्रियां नख से शिख तक शृंगार करके तुम्हारे सहज (सौदर्य) की बराबरी नही कर सकती। तुम रति, रंभा, उर्वशी के समान हो, तुम्हे देखकर मन झुलस जाता है। ये सब कंत (कृष्ण) की सुहागिनी नही है तुम्हो कृष्ण को प्यारी हो। सूरदास कहते हैं कि तुम्हारी सुन्दरता धन्य है, तुम्हारे समान और कोई नही है ॥१२७॥

सँग राजति वृषभानु कुमारी।
कुंज सदन कुसुमनि सेज्या पर, दम्पति सोभा भारी।
आलस भरे मगन रस दोऊ, अंग-अंग प्रति जोहत।
मनहुँ गौर स्यामल ससि नव तन, बैठे संमुख सोहत।
कुंज भवन राधा-मनमोहन, चहूँ पास ब्रजनारी।
सूर रहीं लोचन इकटक करि, डारतिँ तन मन वारी ॥१२८॥

अर्थ—कृष्ण के साथ राधा शोभित है। कुन्ज-सदन में कुसुम की शय्या पर दम्पति की अत्यधिक शोभा है। आलस्य से भरे दोनो रस मग्न है, तथा एक-दूसरे के

अंग की ओर देखते हैं। मानों गोरे और श्याम चन्द्रमा नवीन शरीर धारण कर सम्मुख बैठे हैं। सूरदास कहते हैं कि वे निर्निमेष नेत्रो से उन पर अपना तन मन न्योछावर कर डालती है ॥१२८॥

खण्डिता प्रकरण

काहे कौं कहि गए आइहैं, काहैं झूठी सौंहैं खाए।
ऐसे मैं नहिं जाने तुमकौं, जे गुन करि तुम प्रकट दिखाए।
भली करी यह दरसन दीन्हे, जनम जनम के ताप नसाए।
तब चितए हरि नैंकु तिया-तन, इतनैहिं सब अपराध छमाए।
सूरदास सुन्दरी सयानी, हँसि लीन्हे पिय अंकम लाए ॥१२९॥

अर्थ—क्यो कहा था कि आयेगे और क्यो झूठी सौगंध खाई थी। मैं तुम्हे ऐसा नही जानती थी, (मेरे लिए ये अपरिचित थे) जिन गुणो को तुमने प्रत्यक्ष दिखाया। अच्छा किया कि यह दर्शन दिया और जन्म-जन्म के ताप को नष्ट कर दिया। तब कृष्ण ने तनिक प्रिया की ओर देखा, इतने मे ही सब अपराधो की क्षमा माँग ली। सूरदास कहते है कि सुन्दर सयानी राधा ने हँसकर प्रिय को अक में ले लिया ॥१२९॥

धीर धरहु फल पावहुगे।
अपनेहीं सुख के पिय चाँड़े, कबहूँ तौ बस आवहुगे।
हम सौं कहत और की औरै, इन बातनि मन भावहुगे।
कबहुँ राधिका मान करैगी, अन्तर बिरह जनावहुगे।
तब चरित्र हमहीं देखैंगी, जैसैं नाच नचावहुगे।
सूर स्याम अति चतुर कहावत, चतुराई बिसरावहुगे ॥१३०॥

अर्थ—धीरज धरो, फल पाओगे। अपने ही सुख से प्रबल लालसा वाले कभी तो वश मे आओगे। हमसे और का और कहते हो, इन्ही बातो से मन को अच्छे लगोगे। कभी राधा मान करेगी तथा विरह का अन्तर जताओगे। तब जैसा नाच नचाओगे उस चरित्र को हम ही देखेगी। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण तुम बहुत चतुर हो, उस समय चतुरता भुला दोगे ॥१३०॥

मैं हरि सौं हो मान कियौ री।
आवत देखि आन बनिता-रत, द्वार कपाट दियौ री।
अपनैं हीं कर साँकर सारी, संधिहिँ सन्धि सियौ री।
जौ देखौं तो सेज सुमूरति, काँप्यौ रिसनि हियौ री।
जब झुकि चली भवन तैं बाहरि, तब हठि लौटि लियौ री।
कहा कहौं कछु कहत न आवै, तहँ गोविंद बियौ री।
विसरि गई सब रोष, हरष मन, पुनि फिरि मदन जियौ री।
सूरदास प्रभु अति रति नागर, छलि मुख अमृत पियौ री ॥१३१॥

अर्थ—मैंने कृष्ण से मान किया। दूसरी स्त्री मे रत कृष्ण को आते देखकर द्वार के किवाड बन्द कर-दिये। अपने ही हाथ से सभी जंजीरों को तथा छिद्रों को बन्द कर दिया। पर जब देखती हूँ तो सेज पर सुन्दर मूर्ति वाले कृष्ण दिखाई दिये। क्रोध से मेरा हृदय कांप गया। जब क्रुद्ध होकर भवन से बाहर चली तब हठकर (अपने को) लौटा लिया। क्या कहूँ कुछ कहा नही जाता। वहाँ दूसरे गोविन्द थे। सब क्रोध भूल गयी, मन हर्षित हो गया। फिर काम की इच्छा जी गयी। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण रति क्रीडा मे अत्यधिक चतुर हैं, छलकर उन्होने सुख का अमृत पी लिया ॥१३१॥

नंद-नंदन सुखदायक हैं।
नैन सैन दै हरत नारि मन, काम काम-तनु दायक हैं।
कबहूँ रैनि बसत काहू कैं, कबहुं भोर उठि आवत हैं।
काहू कौ मन आपु चुरावत, काहू कैं मन भावत हैं।
काहू कै जागत सगरी निसि, काहूँ बिरह जगावत हैं।
सुनहु सूर जोइ जोइ मन भावै, सोइ सोइ रँग उपजावत हैं ॥१३२॥

अर्थ—कृष्ण सुख देने वाले है। नेत्रों का संकेत देकर स्त्रियो के मन को हर लेते हैं। कामातुर शरीर मे (और) इच्छा पैदा करते है। कभी (किसी के यहाँ) रात मे बसते है, कभी प्रातः उठकर आते है। किसी के मन को स्वयं चुराते है और किसी के मन को स्वयं भा जाते हैं। किसी (के साथ) सारी रात जागते हैं, किसी के विरह को जगा देते है। सूरदास कहते हैं कि जो मन को अच्छा लगता है वही रङ्ग उत्पन्न करते हैं ॥१३२॥

नाना रँग उपजावत स्याम। कोउ रीझति कोउ खीझति बाम ॥
काहू कैं निसि बसत बनाइ। काहू मुख छ्वै आवत जाइ ॥
बहु नायक ह्वै बिलसत आपु। जाकौ सिव पावत नहिं जापु ॥
ताकौं ब्रजनारी पति जानैं। कोउ आदरैं, कोउ अपमानैं ॥
काहू सौं कहि आवन साँझ। रहत और नागरि घर माँझ ॥
कबहुँ रैन सब सग बिहात। सुनहु सूर ऐसे नँद-तात ॥१३३॥

अर्थ—कृष्ण अनेक रंग उत्पन्न करते हैं, जिससे कोई स्त्री प्रसन्न होती है और कोई खीझती है। किसी के यहां रात मे अच्छी तरह बसते हैं, आते-जाते किसी के मुख को छूते हैं। बहुत से नायक का रूप धर के आप विलास करते हैं। जिसे शिव तप करके नही पाते, उसे ब्रज की स्त्रियां पति रूप में जानती है। कोई (उनका) आदर करती है कोई अपमान करती है। सन्ध्या समय किसी से आने के लिए कह आते हैं और रहते है किसी और स्त्री के घर। कभी उनकी रात सबके साथ व्यतीत होती है। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण ऐसे ही हैं ॥१३३॥

अब जुवतिनि सौं प्रगटे स्याम।
अरस-परस सबहिनि यह जानी, हरि लुब्धे सबहिनि कैं धाम।

जा दिन जाकै भवन न आवत, सो मन मैं यह करति विचार।
आजु गए औरहिं काहू कैं, रिस पावति, कहि बड़े लबार।
यह लीला हरि कैं मन भावत, खंडित बचन कहत सुख होत।
साँझ बोल दै जात सूर-प्रभु, ताकैं आवत होत उदोत ॥१३४॥

अर्थ—अब युवतियों के साथ कृष्ण प्रकट हुए। मिल-जुल कर सब ने यह जाना कि कृष्ण सब ही के घर पर लुब्ध हैं। जिस दिन जिसके घर नही आते उस दिन वह मन में यही विचार करती है कि आज कृष्ण (किसी) और के घर गये है। (वह) क्रोधित होती है और कहती है कि वह बहुत धूर्त हैं। यह लीला कृष्ण के मन को अच्छी लगने वाली है। खंडित वचन कहने पर उन्हे सुख मिलता है। सूरदास कहते है कि सन्ध्या समय आने को कह जाते हैं पर आते-आते सवेरा हो जाता है ॥१३४॥

राधिका गेह हरि-देह-बासी। और तिय घरनि घर तनु-प्रकासी ॥
ब्रह्म पूरन द्वितीय नहिं कोऊ। राधिका सबै हरि सबै वोऊ ॥
दीप सौं दीप जैसैं उजारी। तैसैं हौ ब्रह्म घर-घर बिहारी ॥
खंडिता बचन हित यह उपाई। कबहुँ कहुँ जात, कहुँ नहिँ कन्हाई ॥
जन्म कौ सुफल हरि यहै पावैं। नारि रस-वचन स्रवननि सुनावैं ॥
सूर-प्रभु अनतहीं गमन कीन्हौ। तहाँ नहिँ गए जहँ बचन दीन्हौ ॥१३५॥

अर्थ—राधिका का निवास-स्थान कृष्ण के शरीर मे स्थित उनका हृदय है, जबकि और गोपियां अपने शरीर के घर-घर को प्रकाशित करती हैं। ब्रह्म पूर्ण रूप से व्याप्त है, दूसरा कोई नही है। राधिका सब कुछ है वही कृष्ण की सब कुछ है। दीपक से जैसे दीपक जलाया जाता है, वैसे ही ब्रह्म घर-घर विहार करने वाला है। खंडित (खण्डिता नायिका के उपालम्भ) वचन (सुनने) के हित से कृष्ण (ऐसा) व्यवहार करते है कि कभी कही जाते हैं (कभी) कही नही जाते। जन्म की सफलता कृष्ण को इसी मे मिलती है कि स्त्रियां रस युक्त वचन कानो को सुनाये। सूरदास कहने हैं कि प्रभु ने अन्यत्र गमन किया, वहां नही गये जहां के लिए वचन दिया था ॥१३५॥

मध्यम मान

स्याम पिया सन्मुख नहिँ जोवत।
कबहुँ नैन की कोर निहारत, कबहुँ बदन पुनि गोवत।
मन-मन हँसत त्रसत तनु परगट, सुनत भावती बात।
खंडित वचन सुनत प्यारी के, पुलक होत सब गात।
यह सुख सूरदास कछु जानै, प्रभु अपने कौं भाव।
श्री राधा रिस करति, निरखि मुख, तिहिँ छवि पर ललचाव ॥१३६॥

अर्थ—कृष्ण प्रिया (राधा) के सम्मुख नही देखते। कभी नेत्रो की कोर को देखते है, कभी फिर मुख छिपाते है। मन-ही-मन हँसते हैं, शरीर प्रकट करने से डरते हैं। मन को अच्छी लगने वाली बात सुनते है। प्यारी (राधा) की खंडित वाणी

सुनकर उनका समस्त शरीर पुलकित होता है। सूरदास प्रभु के भावों को अपनाकर यह सुख कुछ-कुछ जानते है। श्रीराधा क्रोध करती है, उस (क्रोधित मुख) की छवि (भक्त तथा कृष्ण को) ललचा देने वाली है ॥१३६॥

नैन चपलता कहाँ गँवाई।
मोसौं कहा दुरावत नागर, नागरि रैन जगाई।
ताही कैं रँग अरुन भए हैं, धनि यह सुन्दरताई।
मनौ अरुन अंबुज पर बैठे, मत्त भृंग रस पाई।
उड़ि न सकत ऐसे मतवारे, लागत पलक जम्हाई।
सुनहु सूर यह अंग माधुरी, आलस भरे कन्हाई ॥१३७॥

अर्थ—नेत्रों की चंचलता कहाँ गँवा दी। नागर कृष्ण मुझसे क्यों छिपाते हो? रात में नागरि (अन्य स्त्री) ने (तुम्हे) जगाया है। उसी के रंग से (नेत्र) लाल हो गये हैं। यह सुन्दरता धन्य है। मानों लाल कमल पर बैठे मतवाले भ्रमर रस पी रहे हो। ऐसे मतवाले हो गये हैं कि उड़ नहीं सकते। पलकों मे आलस (जम्हाई) लग रहा है। सूरदास कहते हैं कि (राधा कहती है) यह आलस भरे कृष्ण के अंग की मधुरिमा है ॥१३७॥

यह कहि कै तिय धाम गई।
रिसनि भरी नख-सिख लौं प्यारी, जोबन-गर्ब-भई।
सखी चलीं गृह देखि दसा यह, हठ करि बैठी जाइ।
बोलति नहीं मान करि हरि सौं, हरि अंतर रहे आइ।
इहिं अंतर जुबती सब आईं, जहाँ स्याम घर-द्वारैं।
प्रिया मान करि बैठि रही है, रिस करि क्रोध तुम्हारैं।
तुम आवत अतिहीं झहरानी, कहा करी चतुराई।
सुनत सूर यह बात चकित पिय, अतिहिं गए मुरझाई ॥१३८॥

अर्थ—यह कहकर प्रिया (राधा) घर गयी। यौवन गर्व से युक्त प्यारी नख से शिख तक क्रोध से भर गयी। सखियाँ इस दशा को देखकर अपने घर चली। राधा हठ करके बैठ गयी, कृष्ण से मान करके किसी से बोलती नही, इसी बीच कृष्ण आ गये। इसके बाद सभी युवतियाँ वहाँ आईं (जहाँ) कृष्ण घर के द्वार पर खड़े थे। (फिर कहने लगी) प्रिया तुम्हारे ऊपर क्रोध कर मान करके बैठी है। तुम्हारे आते ही अत्यधिक झल्लाई, तुमने (इस समय) क्या चतुरता की। सूरदास कहते हैं यह सुनते ही चकित प्रिय कृष्ण अत्यधिक मुरझा गये ॥१३८॥

नैंकु निकुंज कृपा करि आइयै।
अति रिस कृस ह्वै रही किसोरी, करि मनुहार मनाइयै।
कर कपोल अन्तर नहिं पावत, अति उसास तन ताइयै।
छूटे चिहुर बदन कुम्हिलानो, सुहथ सँवारि बनाइयै।

इतनी कहा गाँठि कौ लागत, जौ बातनि सुख पाइयै।
रूठेहिँ आदर देत सयाने, यहै सूर जस गाइयै ॥१३९॥

अर्थ—कृपा करके तनिक निकुंज मे आइये। अत्यधिक क्रोध से किशोरी (राधा) दुर्बल हो रही है, उसे विनय पूर्वक मान लीजिए। हाथ और कपोल दोनों का अन्तर नही होता (अर्थात् हाथ पर कपोल रखे रहती है), अत्यधिक उच्छ्वास से शरीर को तपाती है। अपने सुन्दर हाथों से सँवारे उसके बाल छूट गये है, मुख कुम्हला गया है। जो बातों से ही सुख पाया जा सकता है, तो इसमे गाँठ का क्या लगता है अर्थात् क्या खर्च होता है। रूठे हुए व्यक्ति को सज्जन (श्रेष्ठ लोग) आदर देते हैं। सूरदास इसका यश गाते है ॥१३९॥

बैठि मानिनी गहि मौन।
मनौ सिद्ध समाधि सेवत, सुरनि साधे पौन।
अचल आसन, पलक तारी, गुफा घूँघट-भौन।
रोषही कौ ध्यान धारै, टेक टारै कौन।
अबहिँ जाइ मनाइ लीजै, अबसि कीजै गौन।
सूर के प्रभु जाइ देखौ, चित्त चौंधी जौन ॥१४०॥

अर्थ—मानिनी मौन धारण करके बैठी है। मानो सिद्ध समाधि का सेवन कर रही है और देवता प्राण वायु सिद्ध (अवरुद्ध) किए हुए हैं। वह अचल आसन पर बैठी है, पलक को लगातार रोके है (ध्यान लगाये है)। घूंघट के बीच का स्थान गुफा के समान है। क्रोध पर ही ध्यान धारण किये हुए है, उसे हठ करके कौन टाल सकता है। अभी जाकर उसे मना लीजिए। (उसके पास) अवश्य गमन कीजिए। सूरदास कहते हैं कि (सखी कहती है) कृष्ण जाकर उस चिन्ता से तिलमिलायी (राधा) को अवश्य देखो ॥१४०॥

स्यामा तू अति स्यामहिँ भावै।
बैठत-उठट, चलत, गौ चारत, तेरौ लीला गावै।
पीत बरन लखि पीत बसन उर, पीत धातु अँग लावै।
चन्द्राननि सुनि, मोर चन्द्रिका, माथैँ मुकुट बनावै।
अति अनुरागि सैनि संभ्रम मिलि, संग परम सुख पावै।
बिछुरत तोहिँ क्वासि राधा कहि, कुज-कुंज प्रति धावै।
तेरौ चित्र लिखैँ, अरु निरखैँ, बासर-बिरह नसावै।
सूरदास रस-रासि-रसिक सौँ, अन्तर क्यौँ करि आवै ॥१४१॥

अर्थ—श्यामा (राधा) तू कृष्ण को अत्यधिक प्रिय है। बैठते, उठते, चलते, गाय चराते तुम्हारी ही लीला गाते है। (तुम्हारे) पीले रंग को (शरीर को) देखकर पीताम्बर हृदय से लगाते है, तथा पीली धातु का (शरीर पर) लेप करते है। (तुझे) चन्द्रमा के समान मुख वाली जानकर मोर चन्द्रिका से मस्तक का मुकुट बनाते हैं।

अत्यधिक अनुराग पूर्ण इशारे तथा संभ्रम से मिलकर साथ में परम सुख प्राप्त करते हैं। तुमसे बिछुड़ते ही 'राधा कहाँ हो' कहकर कुंज-कुंज में दौड़ते हैं। तेरा चित्र बनाते है और देखते हैं, इस प्रकार दिवस का विरह दूर करते हैं। सूरदास कहते है कि रस की राशि कृष्ण से भेद-भाव क्यों करती हो ॥१४१॥

राधे हरि तेरौ नाम विचारैं।
तुम्हरेइ गुन ग्रन्थित करि माला, रसनाकर सौं टारैं।
लोचन-मूँदि ध्यान धरि, दृढ़ करि, पलकन नैंकु उघारैं।
अंग अंग प्रति रूप माधुरी, उर तैं नहीं बिसारैं।
ऐसो नेम तिहारे पिय कैं, कह जिय निठुर तिहारैं।
सूर स्याम मनकाम पुरावहु, उठि चलि कहैं हमारैं ॥१४२॥

अर्थ—हे राधा कृष्ण तेरे नाम का ही विचार करते रहते है। तुम्हारे गुणो की माला गूंथकर वाणी रूपी हाथ से घुमाते रहते हैं। आँख मूंदकर, दृढ़ करके पलको को तनिक भी नहीं उघाड़ते। अंग-अंग के रूप माधुर्य को तनिक भी हृदय से विस्मृत नही होने देते। तुम्हारे प्रिय का ऐसा नियम है, और दूसरी ओर तुम्हारा मन कितना कठोर है। सूरदास कहते हैं कि (सखी कहती है) कृष्ण की मनोकामना पूर्ण करो और हमारे कहने से उठ कर चलो ॥१४२॥

कहा तुम इतनैंहि कौं गरबानी।
जीवन रूप दिवस दसही कौ, जल अँजुरी कौ जानी।
तृन की अगिनि, धूम कौ मदिर, ज्यौं तुषार-कन-पानी।
रिसहीं जरति पतंग ज्योति ज्यौं, जानत लाभ न हानी।
नरि कछु ज्ञानऽभिमान जाव दै, हैऽब कौन मति ठानी।
तन धन जानि जाम जुग छाया, भूलति कहा अयानी।
नवसै नदी चलति मरजादा, सुधियै सिन्धु समानी।
सूर इतर ऊसर के बरषैं, थोरैंहि जल इतरानी ॥१४३॥

अर्थ—इतने ही पर तुम क्यों गर्वित हो गयी हो। यह जीवन का सौंदर्य केवल दस ही दिन (कुछ ही समय) के लिए है। यह अँजुली के जल के समान है। (यह) तृण की आग, धुएँ के मन्दिर तथा तुषारकण के पानी (की तरह क्षणिक है)। क्रोध से पतंग जैसे ज्योति (आग) मे जल जाता है, वह लाभ हानि नही जान पाता। (अतः) कुछ समझ-बूझ कर अभिमान छोड़ दे। अब कौन-सी बुद्धि ठान ली है। शरीर और धन को दो घड़ी की छाया समझो। अज्ञानी इसे क्यों भूलती हो। समतल पर प्रवाहित नदियाँ मर्यादा से चलकर सीधे समुद्र में समा जाती हैं। सूरदास कहते हैं कि (सखी कहती है) अन्यथा ऊसर मे बरसने पर थोड़े ही जल से नदियाँ इतरा जाती हैं ॥१४३॥

रहि री मानिनी मान न कीजै।
यह जोबन अँजुरी कौ जल है, ज्यौं गुपाल माँगै त्यौं दीजै।
छिनु छिनु घटति, बढ़ति नहिं रजनी, ज्यौं ज्यौं कलाचंद्र की छीजै।
पूरब पुन्य सुकृत फल तेरौ, काहै न रूप नैन भरि पीजै।
सौंह करति तेरे पाँइनि की, ऐसी जियनि दसौ दिन जीजै।
सूर सु जीवन सफल जगत कौ, वैरी वाँधि बिबस करि लीजै ।।१४४।।

अर्थ—हे मानिनी, मान मत करो और रुककर विचार करो। यह यौवन अँजुली के जल के समान है, जैसे इसे कृष्ण माँगे उसी प्रकार इसे दे दो। ज्यों-ज्यों चन्द्र की कला क्षीण होती है रात भी घटती है, बढ़ती नही। तेरे पूर्व पुण्य का फल है, क्यो रूप को नेत्र भरकर नही पीती। तेरे चरणों की सौगन्ध करती हूँ कि ऐसी जिन्दगी यदि दस दिन भी रहे तो उत्तम है। सूरदास कहते हैं कि (सखी कहती है) वही जगत का जीवन सफल है कि वैरी को बाँध कर विवश कर लिया जाय ।।१४४।।

राधा सखी देखि हरषानी।
आतुर स्याम पठाई याकौं, अन्तरगत की जानी।
वह सोभा निरखत अँग-अँग की, रही निहारि निहारि।
चकित देखि नागरि मुख वाकौ, तुरत सिँगारनि सारि।
ताहि कह्यौ सुख दै चलि हरि कौं, मैं आवति हौं पाछैं।
वैसैंहि फिरी सूर के प्रभु पैं, जहाँ कुंज गृह काछैं ।।१४५।।

अर्थ—राधा सखी को देखकर हर्षित हो गयी। आतुर कृष्ण ने इसे भेजा है, (वह) मन की बात जान गयी। निहार-निहार कर वह शोभा देखती रही। नागरि (राधा) चकित होकर उसके मुख को देखकर तुरन्त शृंगार से सजाकर उससे कहा कि आगे चल कर कृष्ण को सुख दो मैं पीछे आ रही हूँ। सूरदास कहते हैं तुरन्त ही कृष्ण के पास उसी स्थान को वापस चली जिस कुंज-भवन मे कृष्ण शोभित थे ।।१४५।।

हरषि स्याम तिय बाँह गही।
अपनैं कर सारी अँग साजत, यह इक साध कही।
सकुचति नारि बदन मुसुकानी, उतकौं चितै रही।
कोक-कला परिपूरन दोऊ, त्रिभुवन और नही।
कुंज-भवन सँग मिलि दोउ बैठे, सोभा एक चही।
सूर स्याम स्यामा सिर वेनी, अपनैं करनि गुही ।।१४६।।

अर्थ—हर्षित होकर कृष्ण ने प्रिया की बाँह पकड ली। वे अपने ही हाथ से साड़ी से अंग सजाते हैं, यह (उनकी) एक अभिलाषा थी। सकुचाती हुई राधा मुख से मुस्करायी और उधर (कृष्ण) की ओर देखती रही। दोनों काम कला से परिपूर्ण हैं। तीनों लोक में और कोई ऐसा नही है। कुंज-भवन मे दोनो साथ मिलाकर बैठे थे और

एक मात्र शोभा को देखते थे। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण ने राधा की वेणी अपने हाथ से गूँथी ॥१४६॥

खंजन नैन सुरँग रस माते।
अतिसय चारु विमल, चंचल ये, पल पिंजरा न समाते।
बसे कहूँ सोइ बात सखी कहि, रहे इहाँ किहिं नातै ?
सोइ संज्ञा देखति औरासी, विकल उदास कला तैं।
चलि-चलि जात निकट स्रवननि के, सकि ताटंक फँदाते।
सूरदास अंजन गुन अटके, नतरु कबै उड़ि जाते ॥१४७॥

अर्थ—खंजन रूपी नेत्र सुन्दर रूप रस मे मद मस्त है। अत्यधिक सुन्दर तथा विमल ये (चंचल) नेत्र पलक रूपी पिंजड़े मे नही समाते। सखी यह नेत्र (रात) मे कही दूसरी जगह बसे है। फिर बता, यहाँ ये किस नाते रहें ? अपनी चंचलता के कारण ये नेत्र उसी विचित्र संकेत (विशिष्ट मुद्रा) को देखते रहते है तथा (अन्य) कलाओ (सौंदर्य) से सर्वथा व्याकुल एवं उदासीन रहते है। जान पड़ता है कि कानों में पहने हुए ताटंक को फाँद कर चले जायेगे। सूरदास कहते हैं कि अंजन (कृष्ण के श्याम रंग) के गुण (रस्सी) से अटके हुए हैं नही तो कभी के उड गये होते ॥१४७॥

धन्य धन्य बृषभानु-कुमारी, गिरिवरधर, बस कीन्हे (री)।
जोइ जोइ साध करी पिय रस की, सो सब उनकौं दीन्हे (री)।
तोसी तिया और त्रिभुवन मैं, पुरुष स्याम से नाहीं (री)।
कोक-कला पूरन तुम दोऊ, अब न कहूँ हरि जाहीं (री)।
ऐसे बस तुम भए परस्पर, मोसौं प्रेम दुरावै (री)।
सूर सखी आनँद न सम्हारति, नागरि कंठ लगावै (री) ॥१४८॥

अर्थ—वृषभानु कुमारी (राधा) तुम धन्य हो, (क्योकि) तुमने गिरिधर कृष्ण को वश में कर लिया। जो प्रिय के साथ किया वह सब उनको समर्पण कर दिया। तुम्हारे समान स्त्री और कृष्ण के समान पुरुष त्रिभुवन मे कोई और नही है। तुम दोनो काम कला से पूर्ण हो, अब कृष्ण कही और नही जायेंगे। तुम दोनों ऐसे प्रेम के वश में हो गये हो, (किन्तु) मुझसे प्रेम छिपाती हो। सूरदास कहते हैं कि सखी आनन्द नही सम्हाल पाती और राधा को गले से लगा लेती है ॥१४८॥

राधेहिं स्याम देखी आइ।
महा मान दृढ़ाइ बैठी, चितै कापैं जाइ।
रिसहिं रिस भइ मगन सुन्दरि, स्याम अति अकुलात।
चकित ह्वै जकि रहे ठाढ़े, कहि न आवै बात।
देखि ब्याकुल नंद-नंदन, सखी करति बिचार।
सूर दोऊ मिलैं जैसैं, करौं सोइ उपचार ॥१४९॥

अर्थ—कृष्ण ने आकर राधा को देखा। वह महामान दृढ़ करके बैठी है (उस मान को) कौन देख सकता है ? सुन्दरी क्रोध-ही-क्रोध मे मग्न हो गई है, (इसे देखकर) कृष्ण अत्यधिक अकुलाते हे। वे चकित होकर खड़े रहे। उनके मुख से बात नही निकलती है। कृष्ण को व्याकुल देखकर सखी विचार करती है कि ऐसा कोई उपचार करूँ कि कृष्ण और राधा दोनो मिल जाएँ ॥१४९॥

यह ऋतु रूसिवे की नाहीँ।
बरषत मेघ मेदिनी कैँ हित, प्रीतम हरषि मिलाहीँ।
जेती बेलि ग्रीष्म ऋतु डाहीँ, ते तरवर लपटाहीँ।
जे जल बिनु सरिता ते पूरन, मिलन समुद्रहिं जाहीँ।
जोबन धन है दिवस चारि कौ, ज्यौं, वदरी की छाहीँ।
मैँ, दंपति-रस-रीति कही है, समुझि चतुर मन माहीँ।
यह चित धरि री सखी राधिका, दै दूती कौँ वाहीँ।
सूरदास उठि चलि री प्यारी, मेरैँ सँग पिय पाहीँ ॥१५०॥

अर्थ—यह रूठने की ऋतु नही है। वादल पृथ्वी के हित मे वरस रहे हैं, (स्त्रियाँ) प्रियतम से हर्षित होकर मिल रही हैं। जितनी लताये ग्रीष्म ऋतु मे झुलस गयी थी, वे वृक्ष से लिपट रही हैं। जो नदियाँ विना जल की हो गयी थी, वे जल से पूर्ण होकर समुद्र से मिलने जा रही हैं। यौवन धन केवल चार दिन का (क्षणिक) है, जैसे वादल की छाया। मैंने दम्पति के रस की रीति कह दी, हे चतुर मन मे समझो और अपने चित्त मे रख लो। सोच समझ कर दूती का अवलम्वन ग्रहण करो। सूरदास कहते हैं कि (सखी कहती है) हे प्यारी, मेरे साथ उठकर प्रिय के पास चलो ॥१५०॥

तोहि किन रूठन सिखई प्यारी।
नवल बैस नव नागरि स्यामा, वे नागर गिरिधारी।
सिगरी रैनि मनावति बीती, हा हा करि हौँ हारी।
एते पर हठ छाँड़ति नाहीँ, तू वृषभानुदुलारी।
सरद-समय-ससि-दरस समर सर, लागै उन तन भारी।
मेटहु त्रास दिखाइ बदन-बिधु, सूर स्याम हितकारी ॥१५१॥

अर्थ—प्यारी तुम्हे रूठना किसने सिखा दिया। राधा नयी उम्र की नवीन चतुर सभ्य (कृष्ण की) प्रिया है। वे (कृष्ण) नागर गिरधारी है। सारी रात मनाते हुए बीत गयी, विनती करके मै हार गयी। इतने पर तू वृषभानु की लाड़िली (राधा) हठ नही छोडती। शरद के समय चन्द्र को देखकर काम का बाण उनके शरीर मे जोर से लग गया है। अपने चन्द्रमा के समान मुख को दिखा कर कृष्ण के भय को मिटा दो। (यह तेरा मुख ही) कृष्ण का हित करने वाला है ॥१५१॥

हरि-मुख राधा-राधा बानी।
धरिनी परे अचेत नहीँ सुधि, सखी देखि अकुलानी।

बासर गयौ, रैनि इक बीती, बिनु भोजन बिनु पानी।
बाँह पकरि तब सखिनि जगायौ, धनि-धनि सारँगपानी।
ह्याँ तुम बिबस भए हौ ऐसे, ह्वाँ तौ वै बिबसानी।
सूर बने दोउ नारि पुरुष तुम, दुहुँ की अकथ कहानी ।।१५२।।

अर्थ—कृष्ण के मुख मे 'राधा-राधा' की (ही) वाणी है। वे धरणी पर अचेत पडे हैं। उन्हे (कुछ) स्मरण नही है। (ऐसी दशा देखकर) सखी आकुल हो गयी। दिन बीत गया, एक रात भी बीत गयी, (किन्तु) वे बिना भोजन तथा पानी के पड़े हैं। बाँह पकड़कर सखियो ने उन्हें जगाया (और कहा) सारँगपाणि तुम धन्य हो। यहाँ तुम इतने विवश हुए हो, वहाँ वे विवश है। सूरदास कहते है कि (सखियाँ कहती हैं) तुम दोनो (अनोखे) स्त्री-पुरुष बने हो, दोनों की कहानी अकथनीय है ।।१५२।।

सुनि री सयानी तिय, रूसिबे कौ नेम लियौ, पावस दिननि
कोऊ ऐसौ है करत री।
दिसि-दिसि घटा उठी, मिलि री पिया सौं रूठी, निडर हियौ है
तेरौ नैंकु न डरत री।
चलिए री मेरी प्यारी, मोकौं मान देन हारी, प्रानहुँ तैं प्यारे पति
धीर न धरत री।
सूरदास प्रभु तोहिं, दियौ चाहै हित-बित, हँस क्यौं न मिलै तेरौ
नेम है टरत री ।।१५३।।

अर्थ—सुनो सयानी स्त्री तुमने रूठने का व्रत ले लिया है। पावस के दिनों में कोई ऐसा करता है ? हर दिशा में घटाएँ उठती हैं, हे रूठी प्रिय से मिलो, तुम्हारा हृदय निडर है तनिक भी नही डरता। मेरी प्यारी चलो, मुझे मान देने वाली (राधा) प्राणों से भी प्रिय (कृष्ण) धैर्य नही धारण करते। सूरदास कहते हैं (सखी कहती है) कि कृष्ण तुम्हें हित-वित सब देना चाहते हैं। हँस कर तू क्यों नही मिलती, तुम्हारा नियम टलता जा रहा है ।।१५३।।

बेरस कीजै नाहिं भामिनी, रस मैं रिस की बात।
हौं पठई तोहिं लेन साँवरैं, तोहिं बिनु कछु न सुहात।
हा हा करि तेरे पाइँ परति हौं, छिनु छिनु निसि घटि जात।
सूर स्याम तेरौ मग जोवत, अति आतुर अकुलात ।।१५४।।

अर्थ—हे स्त्री, क्रोध की बातो से प्रेम के प्रसंग को नीरस मत करो। मुझे कृष्ण ने तुम्हे बुलाने को भेजा है। तुम्हारे बिना (उन्हे) कुछ नही सुहाता है। विनती करके मैं तुम्हारे पैरों पर पड़ती हूँ। क्षण-क्षण रात घटती जा रही है। सूरदास कहते हैं कि (सखी कहती है) कृष्ण तेरा ही रास्ता ताक रहे हैं और (वह) अत्यधिक आतुर होकर अकुलाते हैं ।।१५४।।

माधौ तहाँ बुलाई राधे, जमुना निकट सुसीतल छहियाँ।
आछी नीकी कुसुँभी सारी, गोरैं तन चलि हरि पिय पहियाँ।
दूती एक गई मोहिनि पै, जाइ कह्यौ यह प्यारी कहियाँ।
सूरदास सुनि चतुर राधिका, स्याम रैनि वृन्दावन महियाँ ।।१५५।।

अर्थ—कृष्ण ने राधा को यमुना के किनारे वहीं बुलाया जहाँ शीतल छाया थी। तुम अच्छी, कुसुंभी रंग की साडी पहनकर कृष्ण के पास चलो। एक दूती ने राधा के पास जाकर यही बात कही। सूरदास कहते हैं कि चतुर राधिका ने सुनकर (जान लिया) कृष्ण रात मे वृन्दावन मे हैं ।।१५५।।

झूँमक सारी तन गोरैं हो।
जगमग रह्यौ जराइ कौ टीकौ, छवि की उठतिं झकोरैं हो।
रत्न जटित कै सुभग तरचौना, मनहुँ जात रवि भोरैं हो।
दुलरी कंठ निरखि पिय इक टक, दृग भए रहैं चकोरैं हो।
सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन कौं, रीझि-रीझि तृन तोरैं हो ।।१५६।।

अर्थ—झब्बेदार साडी गोरे शरीर पर (शोभित) है। जडे हुए टीके जगमगा रहे है, छवि का झकोरा उठ रहा है। रत्न से जडा हुआ सुन्दर तरौना मानो प्रातः काल का सूर्य हो। दो-लड़ी की माला कण्ठ पर देखकर कृष्ण की आँखे चकोर की तरह हो गयी हैं। सूरदास कहते है कि तुम्हारे (राधा के) मिलन के लिए कृष्ण रीझ-रीझकर (मगल कामना से कि कही नजर न लग जाय) तृण तोडते है ।।१५६।।

राधिका बस्य करि स्याम पाए।
विरह गयौ दूरि, जिय हरष हरि कै भयौ, सहस मुख निगम जिहिं नेति गाए।
मान तजि मानिनी मैन कौ वल हरचौ, करत तनु कंत जो त्रास भारी।
कोक विद्या निपुन, स्याम स्यामा बिपुल, कुंज-गृह द्वार ठाढे मुरारी।
भक्त-हित-हेत अवतारि लीला करत, रहत प्रभु तहाँ निजु ध्यान जाकैं।
प्रगट प्रभु सूर ब्रजनारि कैं हित बँधे, देत मन-काम-फल सग ताकैं ।।१५७।।

अर्थ—कृष्ण ने राधा को वश मे कर लिया। विरह दूर चला गया मन में हर्ष हुआ। ये वे ही कृष्ण हैं जिन्हे सहस्रों मुख से निगम नेति-नेति कहकर गाते हैं। मान त्यागकर मानिनी (राधा) ने कामदेव के बल को हर लिया जो कृष्ण के शरीर को त्रसित कर रहा था। काम-कला मे निपुण कृष्ण और राधा बार-बार (मिलते हैं)। कृष्ण कुंज-गृह के द्वार पर खडे है। भक्तो के हित के लिए जो अवतार लेकर लीला करते हैं,

ओर उन्ही का प्रभु ध्यान रखते हैं। सूरदास कहते हैं वही कृष्ण ब्रजनारियों के हित से बँधकर, उनके साथ उन्हें विभिन्न मनोवांछित फल दे रहे हैं ॥१५७॥

वसंतोत्सव

झूलत स्याम स्यामा संग।
निरखि दंपति अंग सोभा, लजत कोटि अनंग।
मंद त्रिविध समीर सीतल, अंग अंग सुगंध।
मचत उड़त सुवास सँग, मन रहे मधुकर बंध।
तैसियै जमुना सुभग जहँ, रच्यौ रंग हिडोल।
तैसियै बृज-बधू बनि, हरि चितै लोचन कोर।
तैसोई वृन्दा-विपिन-घन-कुंज-द्वार-बिहार।
बिपुल गोपी, बिपुल बन गृह, रवन नंदकुमार।
नित्य लीला, नित्य आनँद, नित्य मंगल गान्ह।
सूर सुर-मुनि मुखनि अस्तुति, धन्य गोपी कान्ह ॥१५८॥

अर्थ—कृष्ण प्रिया के साथ झूलते हैं। दम्पति के अंगो की शोभा देखकर हजार कामदेव लज्जित होते हैं। अंग-अंग को सुगन्धित करने वाली मन्द शीतल त्रिविध समीर (वायु) चल रही है। साथ में सुगन्धित पराग उड़ रहा है जिस पर मन रूपी भ्रमर मुग्ध हो गया है। वैसे ही यहाँ सुन्दर यमुना तट पर हिंडोला झूलने की क्रीड़ा रचायी गयी है। वैसे ही ब्रज की वधुएँ सज-धजकर कृष्ण की ओर तिरछे नेत्रो से देखती है, वैसे ही वृन्दावन के कुन्जो के द्वारों का विहार है। बहुत सी गोपियाँ, विशाल वन-गृह तथा रमण करने वाले कृष्ण है। (वहाँ) नित्य लीला, नित्य आनन्द तथा नित्य मंगल-गान होता है। सूरदास कहते है कि देवता तथा मुनियो के मुख में नित्य स्तुति रहती है कि गोपी तथा कृष्ण धन्य हो ॥१५८॥

नित्य धाम वृन्दावन स्याम। नित्य रूप राधा ब्रज-वाम॥
नित्य रास, जल नित्य बिहार। नित्य मान, खंडिताऽभिसार॥
ब्रह्म-रूप येई करतार। करन हरन त्रिभुवन येइ सार॥
नित्य कुंज-सुख नित्य हिँडोर। नित्यहिं त्रिविध-समीर झकोर॥
सदा बसंत रहत जहँ बास। सदा हर्ष, जहँ नहीँ उदास॥
कोकिल कीर सदा तहँ रोर। सदा रूप मन्मथ चितचोर॥
बिबिध सुमन बन फूले डार। उन्मत मधुकर भ्रमर अपार॥
नव पल्लव बन सोभा एक। विहरत हरि सँग सखी अनेक॥
कुहू कुहू कोकिला सुनाई। सुनि सुनि नारि परम हरपाईं॥
वार वार सो हरिहिँ सुनावतिँ। ऋतु बसंत आयौ समुझावतिँ॥
फाग-चरित रस साध हमारैँ। खेलहिँ सब मिलि सग तुम्हारैँ॥
सुनि सुनि सूर स्याम मुसुकाने। ऋतु बसंत आयौ हरषाने ॥१५९॥

अर्थ—वृन्दावन का धाम तथा कृष्ण नित्य हैं। व्रज की स्त्रियाँ तथा राधा का रूप नित्य है। रास, जल विहार, मान, खंडित (नायिका), अभिसार सब नित्य हैं। ब्रह्मा रूप में ये ही कर्त्ता हैं, कर्त्ता और हर्त्ता यही त्रिभुवन के सार हैं। कुन्ज का सुख तथा हिंडोला क्रीड़ा नित्य हैं। त्रिविधि समीर का झकोरा शाश्वत है। जहाँ सदा वसंत रहता है, सदा हर्ष रहता है, जहाँ उदासी नही है। वहाँ कोयला तथा तोते का शब्द सदैव गूंजता रहता है, चित्तचोर कामदेव तथा रूप सदा रहते हैं। वन की डालो में रंग रंग के फूल फूलते हैं और बहुत से भ्रमर मस्त होकर घूमते रहते हैं। नव पल्लवो की एक ही शोभा रहती है और कृष्ण के साथ अनेक सखियाँ विहार करती रहती हैं। कोकिल ने कू-कू का शब्द सुनाया, सुन-सुनकर स्त्रियाँ परम हर्षित हुईं। बार-बार वे कृष्ण को सुनाती है और समझती हैं कि वसन्त ऋतु आ गयी। हमारे मन मे फाग चरित की साध है कि हम सब मिलकर तुम्हारे साथ खेले। सूरदास कहते हैं कि सुन-सुनकर कृष्ण मुस्कराये, वे वसन्त ऋतु (आया हुआ जानकर) हर्षित हुए ॥१५९॥

पिय प्यारी खेलैं जमुन तीर। भरि केसरि कुमकुम अरु अबीर ॥
घसि मृगमद चंदन अरु गुलाल। रँग भीने अरगज वस्त्र माल ॥
कूजत कोकिल कल हंस मोर। ललितादिक स्यामा एक ओर ॥
वृन्दादिक मोहन लई जोर। बाजै ताल मृदंग रवाव घोर ॥
प्रभु हँसि कै गेंदुक दइ चलाइ। मुख पट दै राधा गइ बचाइ ॥
ललिता पट-मोहन गह्यौ धाइ। पीतावर मुरली लइ छिंड़ाइ ॥
हौं सपथ करौं छाँड़ौं न तोहिं। स्यामा जू आज्ञा दई मोहिं ॥
इक निज सहचरि आई बसीठि। सुनी री ललिता तू भई ढीठि ॥
पट छाँड़ि दियौ तब नव किसोर। छवि रीझि सूर तृन दियौ तोर ॥१६०॥

अर्थ—प्रिय और प्यारी यमुना के किनारे कुमकुम केसर और अबीर भरकर खेलते हैं। मृग के मद, गुलाल और चन्दन का लेप किये हुए है तथा अंगराग के रंग से भीगे है तथा वस्त्र और माला (पहने हैं)। कोयल, हस तथा मोर कूंज रहे हैं। ललिता आदि कृष्ण की प्रेमिकाएँ एक ओर हैं। वृन्दादि ने कृष्ण को जोर से ले (पकड) लिया। मृदग, रवाब (सारंगी) की घोर आवाज हो रही है। कृष्ण ने हँसकर गेद चला दी, मुख पर (घूंघट) कपड़ा देकर राधा ने अपना मुख बचा लिया। ललिता ने दौड़कर मोहन के वस्त्र को पकड़ लिया, उसने पीतांबर तथा मुरली छीन ली। मैं शपथ करती हूँ कि तुम्हे छोड़ूंगी नही, क्योकि राधा ने मुझे आज्ञा दी है। इतने मे एक सहचरी दूतो आ गयी और बोली कि सुना है ललिता तू ढीठ हो गयी है। तब ललित ने कृष्ण के वस्त्र छोड़ दिया और रीझकर भक्त सूर ने तृण तोड़ दिया ॥१६०॥

तेरैं आवैंगे आजु सखी हरि, खेलन कौं फाग (री)।
सगुन सँदेसी हौं सुन्यौं, तेरैं आँगन बोलै काग (री)।

मदनमोहन तेरैं बस माई, सुनि राधे बड़भाग (री)।
बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ, का सोवै, उठि जाग (री)।
चोवा चंदन लै कुमकुम अरु, केसरि पैयाँ लाग (री)।
सूरदास-प्रभु तुम्हारे दरस कौं, राधा अचल सुहाग (री) ।।१६१।।

अर्थ—आज सखी तुम्हारे यहाँ कृष्ण फाग खेलने आयेगे। मैंने सगुन का संदेशा सुना है। देखो तुम्हारे आँगन में कौवा बोल रहा है। मदनमोहन तुम्हारे वश में हैं, बडभागिनी राधा सुनो। मृदङ्ग, झांझ, डफ की ताल बज रही है, तुम क्यों सोती हो, उठो, जागो। चोवा, चन्दन, कुमकुम तथा केसर लेकर उनके पैरों को छुओ। सूरदास कहते हैं कृष्ण तुम्हारे दर्शन को पाने के लिए व्याकुल हैं। राधा अचल सुहागवती हो ।।१६१।।

हरि सँग खेलति हैं सब फाग।
इहिं मिस करति प्रगट गोपी, उर-अंतर कौ अनुराग।
सारी पहिरि सुरँग, कसि कंचुकि, काजर दै दै नैन।
बनि बनि निकसि-निकसि भईं ठाढ़ी, सुनि माधौ के बैन।
डफ, बाँसुरी रुंज अरु महुअरि, बाजत ताल मृदंग।
अति आनंद मनोहर बानी, गावत उठति तरंग।
एक कोध गोविंद ग्वाल सब, एक कोध ब्रज-नारि।
छाँड़ि सकुच सब देति परस्पर, अपनी भाई गारि।
मिलि दस पाँच अली कृष्णहिं, गहि लावतिँ अचकाइ।
भरि अरगजा अबीर कनक-घट, देति सीस तैं नाइ।
छिरकतिँ सखी कुमकुमा केसरि, भुरकतिँ बंदन धूरि।
सोभित है तनु साँझ-समै-घन, आए हैं मनु पूरि।
दसहूँ दिसा भयौ परिपूरन, सूर सुरंग प्रमोद।
सुर-बिमान कौतूहल भूले, निरखत स्याम-बिनोद ।।१६२।।

अर्थ—कृष्ण के साथ सब गोपियां फाग खेलती है। इसी के बहाने सब गोपियां हृदय के अनुराग को प्रकट करती हैं। अच्छे रंग की साड़ी पहनकर, चोली कसकर तथा नेत्रों में काजल दे-देकर सजधज कर, कृष्ण की वाणी सुनकर निकल पडी। डफ, बाँसुरी, रुंज, मधुकर, मृदंग का ताल बज रहा है। अत्यधिक आनद तथा मनोहर वाणी से गाये जाते हुए गीतों की तरंग उठ रही है। एक ओर गोविन्द तथा सभी ग्वाल है तथा एक ओर व्रज की स्त्रियां हैं। सभी संकोच छोड़कर परस्पर अपने मन को अच्छी लगने वाली गाली दे रहे हैं। दस-पाँच सखियाँ मिलकर कृष्ण को अचानक पकड़ लाती हैं। सोने के घड़े मे अंगराज तथा अबीर भरकर सिर से डाल देती हैं। सखियां कुमकुम, केसर तथा सिंदूर की धूल झोंकती है। शरीर ऐसे शोभित हैं, मानो सन्ध्या के समय

आकाश मे बादल फैल गये हो। सूरदास कहते हैं सुन्दर रंग दशों दिशाओ मे परिपूर्ण हो गया। देवतागण विमान मे विस्मृत हो कृष्ण के विनोद को देखते हैं ॥१६२॥

नंद नँदन बृषभानु किसोरी, मोहन राधा खेलत होरी।
श्रीवृन्दावन अतिहिँ उजागर, वरद बरन नव दंपति भोरी।
एकनि कर है अगरु कुमकुमा, एकनि कर केसरि लै घोरी।
एक अर्थ सौँ भाव दिखावति, नाचति तरुनि वाल वृध भोरी।
स्यामा उतहिँ सकल व्रज-वनिता, इतहिँ स्याम रस रूप लही री।
कंचन की पिचकारी छूटति, छिरकत ज्यौँ सचुपावैँ गोरी।
अतिहिँ ग्वाल दधि गोरस माते, गारी देत कहौ न करी री।
करत दुहाई नंदराइ की, लै जु गयौ कल वल छल जोरी।
झुंडनि जोरि रही चंद्रावलि, गोकुल मैँ कछु खेल मच्चौ री।
सूरदास-प्रभु फगुआ दीजै, चिरजीवौ राधा वर जोरी ॥१६३॥

अर्थ—कृष्ण तथा राधा होली खेलते हैं। वृन्दावन अत्यधिक प्रकाशित (चहल-पहलमय) है। रंग-रंग के नवीन दम्पति विभोर खड़े हैं। एक (के) हाथ मे अगरु और कुमकुम है, तो एक हाथ मे लेकर केसर घोलता है। (सब) एक ही तरह का भाव दिखाते हैं। बाल, वृद्ध तथा तरुण सभी विभोर होकर नाचते हैं। उधर राधा तथा समस्त व्रजवनितायें हैं, इधर कृष्ण रूप लाभ कर रहे हैं। सोने की पिचकारी छूट रही है, छिरकने पर सखियाँ सुखी होती हैं। ग्वाल अत्यधिक दूध तथा दही से मस्त हैं, गाली देते हुए कहना नही करते। नंदराय (कृष्ण) की दुहाई देते हैं जो उपाय, बल तथा छल से जोडी लेकर चले। चन्द्रावली आदि झुण्ड बनाकर बोली कि गोकुल मे कुछ खेल मचा है। सूरदास कहते हैं (चन्द्रावली कहती है) प्रभु अब फगुआ (इनाम) दीजिये, राधा की श्रेष्ठ जोड़ी अनन्त काल तक जिये ॥१६३॥

गोकुलनाथ विराजत डोल।
संग लिये वृषभानु-नंदिनी, पहिरे नील निचोल।
कंचन खचित लालमनि मोती, हीरा जटित अमोल।
झुलवहिँ जूथ मिलै व्रजसुंदरि, हरषित करतिँ कलोल।
खेलतिँ, हँसतिँ परस्पर गावतिँ, बोलतिँ मीठे बोल।
सूरदास स्वामी, पिय-प्यारी, झूलत हैँ झकझोल ॥१६४॥

अर्थ—कृष्ण झूले पर शोभित है। नीले रंग की ओढनी पहने हुए राधा को साथ लिये हुए है। (राधा) सोने से खचित लाल मणि, मोती तथा हीरे से जड़ा अमूल्य हार पहने है। व्रज की सुन्दरियाँ मिलकर उन्हे झुलाती हैं तथा हर्षित होकर कल्लोल करती हैं। खेलती हैं, हँसती हैं तथा परस्पर मीठी बोली बोलती है। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण और प्यारी राधा झूले पर झोके के साथ झूलते हैं ॥१६४॥

———

मथुरा गमन

अक्रूर ब्रज आगमन

कंस नृपति अक्रूर बुलाये।
बैठि इकंत मंत्र दृढ़ कीन्हौ, दोऊ बंधु मंगाये।
कहूँ मल्ल, कहुँ गज दै राखे, कहूँ धनुष कहुँ वीर।
नंद महर के बालक मेरैं, करषत रहत सरीर।
उनहिं बुलाइ बीच ही मारौं, नगर न आवन पावैं।
सूर सुनत अक्रूर कहत, नृप मन-मन मौज बढ़ावैं ॥१॥

अर्थ—राजा कंस ने अक्रूर को बुलाया। एकात मे बैठकर दृढ मंत्रणा करके दोनों भाइयो (कृष्ण और बलराम) को मंगाया। कही पर मल्ल (योद्धा), कही हाथी, कही धनुष तथा कही वीरो को तैनात करके रखा। (कंस ने कहा) नंद महर के पुत्र मेरे शरीर में चुभते रहते हैं; उन्हे बुलाकर बीच मे ही मार डालूं, नगर तक आने ही न पावें। सूरदास कहते हैं कि अक्रूर कंस की बातों को सुनते हैं तथा राजा कंस कहते हुए मन-ही-मन आनन्द बढ़ाते हैं ॥१॥

उत नंदहिं सपनौ भयौ, हरि कहूँ हिराने।
बल-मोहन कोउ लै गयौ, सुनि कै बिलखाने।
ग्वाल सखा रोवत कहैं, हरि तौ कहुँ नाहीं।
संगहि सँग खेलत रहे, यह कहि पछिताहीं।
दूत एक सँग लै गयौ, बलराम कन्हाई।
कहा ठगौरी सी करी, मोहिनी लगाई।
वाही के दोउ ह्वै गए, हम देखत ठाढ़े।
सूरज प्रभु वै निठुर ह्वै, अतिहीं गए गाढे ॥२॥

अर्थ—उधर (मथुरा मे) नन्द को स्वप्न हुआ कि कृष्ण कही खो गये। बलराम और मोहन को कोई ले गया यह सुनकर (सब) बिलखने लगे। ग्वाल सखा रोते हुए कहते है कि कृष्ण तो कही नही हैं। (हम) साथ-साथ खेलते रहे यह कह कहकर पछताते हैं। बलराम और कृष्ण को कोई दूत साथ ले गया। मोहनी लगाकर पता नही क्या जादू सा कर दिया कि दोनों उसी के हो गये, हम खड़े देखते रहे। सूरदास कहते हैं कि (ग्वाल कहते हैं) वे कृष्ण निष्ठुर होकर अत्यधिक कष्ट देकर चले गये ॥२॥

सुफलक-सुत हरि दरसन पायौ।
रहि न सक्यौ रथ पर सुख-व्याकुल, भयौ वहै मन भायौ।

भू पर दौरि निकट हरि आयौ, चरननि चित्त लगायौ।
पुलक अंग, लोचन जल-धारा, श्रीपद सिर परसायौ।
कृपासिंधु करि कृपा मिले हँसि, लियौ भक्त उर लाइ।
सूरदास यह सुख सोइ जानै, कहौं कहा मैं गाइ ॥३॥

अर्थ—सुफलक पुत्र (अक्रूर) ने कृष्ण का दर्शन पाया। सुख से व्याकुल होकर रथ पर (बैठे) नही रह सके, वही मन को भाने वाली (बात) हुई। पृथ्वी पर दौड़कर कृष्ण के निकट आये और चरणो मे चित्त लगाया। पुलकित अंगो तथा आँख मे आँसू भरकर श्रीचरणो मे सिर को स्पर्श कराया। कृपासिंधु कृपा करके हँसकर मिले और भक्त को हृदय से लगा लिया। सूरदास कहते हैं कि इस सुख को वही (अक्रूर) जान सकते हैं, मैं उसे गाकर क्या कहूँ ॥३॥

चलन चलन स्याम कहत, लैन कोउ आयौ।
नंद-भवन भनक सुनी, कंस कहि पठायौ।
ब्रज की नारि गृह बिसारि, ब्याकुल उठि धाईं।
समाचार बूझन कौं, आतुर ह्वै आईं।
प्रीति जानि, हेत मानि, बिलखि बदन ठाढीं।
मानहु वै अति विचित्र, चित्र लिखी काढ़ीं।
ऐसी गति ठौर-ठौर, कहत न बनि आवै।
सूर स्याम बिछुरैं, दुख-बिरह काहि भावै ॥४॥

अर्थ—कोई सखी किसी सखी से कह रही है कि हे सखी, कृष्ण बारम्बार जाने की बात कह रहे है और उन्हे लेने के लिए मथुरा से कोई आया है। नन्द के घर मे यह भनक पहुँची कि कस ने कहकर भेजा है। ब्रज की स्त्रियाँ घर भुलाकर व्याकुल होकर दौड पड़ी। समाचार जानने के लिए आतुर होकर आयी। प्रीति जानकर, हित को मानकर बिलखते शरीर से खडी रह गयीं। मानो वे विचित्र चित्र मे लिखी गयी हों, ब्रज मे जगह-जगह ऐसी गति है कि कहते नही बनता। सूरदास कहते है कि श्याम से बिछुडने पर विरह का दुख किसे अच्छा लगता है ॥४॥

चलत जानि चितवहिँ ब्रज-जुवती, मानहुँ लिखीं चितेरैं।
जहाँ सु तहाँ एकटक रहि गईं, फिरत न लोचन फेरैं।
बिसरि गईं गति भाँति देह की, सुनतिँ न स्रवननि टेरैं।
मिलि जु गईं मानौ पै पानी, निबरहिँ नहीं निबेरैं।
लागीं संग मतंग मत्त ज्यौं, घिरतिँ न कैसेँहु घेरैं।
सूर प्रेम-आसा अंकुस जिय, वै नहिँ इत-उत हेरैं ॥५॥

अर्थ—चलता हुआ जानकर ब्रज की युवतियाँ देखती हैं मानो चितेरे ने तस्वीर बना दी हो। जो जहाँ थी वही रह गयी, घुमाने पर भी नेत्र घूमते ही नही (दूसरी ओर देखती ही नही)। शरीर की गति को भूल गयी, पुकारने पर भी कानो से नही

सुनतीं। मानों दूध और पानी की तरह मिल गयी और विलग करने पर भी नही होती। साथ मे मतवाले हाथी की तरह लग गयी, किसी प्रकार घेरने पर भी नही घिरती। सूरदास कहते हैं कि प्रेम का आशा अंकुश (जिनके) हृदय में (चुभा रहता है) वे इधर-उधर नही देखती हैं ।।५।।

(मेरे) कमलनैन प्राननि तैं प्यारे।
इन्हैं कहा मधुपुरी पठाऊँ, राम कृष्न दोऊ जन बारे।
जसुदा कहै सुनौ सुफलक-सुत, मैं इन बहुत दुषनि सौं पारे।
ये कहा जानैं राज सभा कौं, ये गुरुजन बिप्रहुँ न जुहारे।
मथुरा असुर समूह बसत हैं, कर-कृपान, जोधा हत्यारे।
सूरदास ये लरिका दोऊ, इन कब देखे मल्ल-अखारे ।।६।।

अर्थ—मेरे कमल नैन, मुझे प्राणो से भी अधिक प्रिय है। बलराम-कृष्ण दोनों अभी कम उम्र के बालक है, इन्हें मथुरा कैसे भेजूं ? यशोदा कहती हैं हे सुफलक के पुत्र ! सुनो, मैंने इन्हे बहुत कष्ट से पाला है; ये राजसभा (की रीति) को क्या जाने, इन्हे गुरुजनो तथा विप्रो से प्रणाम करने का अभ्यास भी नही है। मथुरा मे राक्षसो का समूह, तथा हाथ में तलवार लेने वाले, हत्यारे योद्धा बसते हैं। सूरदास कहते हैं कि ये दोनों ही लड़के हैं, इन्होंने अखाड़े के मल्ल को कब देखा है ।।६।।

जसुमति अति हीं भई बिहाल।
सुफलक सुत यह तुमहिं बूझियत, हरत हमारे बाल।
ये दोउ भैया जीवन हमरे, कहति रोहिनी रोइ।
धरनी गिरति, उठति अति ब्याकुल, कहि राखत नहिँ कोइ।
निठुर भए जब तैं यह आयौ, घरहूँ आवत नाहिँ।
सूर कहा नृप पास तुम्हारौ, हम तुम बिनु मरि जाहिँ ।।७।।

अर्थ—यशोदा अत्यधिक व्याकुल हो गयी। सुफलक के पुत्र क्या हमारे बालकों का हरण करना, तुम्हारे लिए उचित है ? रोहिनी रोकर कहती है कि ये दोनों भाई हमारे जीवन है। पृथ्वी पर गिरकर अत्यधिक व्याकुल हो उठती हैं, (सोचती हैं) कि इन्हे कहकर कोई (क्यो नही) रख लेता। जब से यह (अक्रूर) आये हैं तब से (दोनो बालक) और निष्ठुर हो गये है, घर भी नही आते। सूरदास कहते है (रोहिणी कहती है) कि नृप के पास तुम्हारा क्या काम है, हम (तो) तुम्हारे बिना मर जायेगे ।।७।।

सुने हैं स्याम मधुपुरी जात।
सकुचनि कहि न सकत काहू सौं, गुप्त हृदय की बात।
संकित बचन अनागत कोऊ, कहि जु गयौ अधरात।
नीँद न परै, घटै नहिँ रजनी, कब उठि देखौं प्रात।

नंद नँदन तौ ऐसे लागै, ज्यौं जल पुरइनि पात।
सूर स्याम सँग तैं बिछुरत हैं, कब ऐहैं कुसलात ।।८।।

अर्थ—सुना है कि कृष्ण मधुपुरी जा रहे हैं। संकोचवश किसी से हृदय की गुप्त बात कहती नही है। आधी रात को कोई आने वाली (अनागत) शंकायुक्त बात कह गया। (फलस्वरूप) नीद आती, तथा रात घटती ही नही, प्रातः उठकर कब (कृष्ण को) देखूँगी। कृष्ण तो ऐसे उदासीन लग रहे हैं जैसे पुरइन (कमल) के पत्ते पर जल की बूंद। सूरदास कहते हैं कि (कृष्ण) साथ से बिछुड रहे है, कब सकुशल लौट आयेगे ।।८।।

मथुरा प्रयाण

अब नँद गाइ लेहु सँभारि।
जो तुम्हारै आनि बिलमे, दिन चराई चारि।
दूध दही खवाइ कीन्हे, बड़े अति प्रतिपारि।
ये तुम्हारे गुन हृदय तैं, डारिहौं न बिसारि।
मातु जसुदा द्वार ठाढ़ी, चलै आँसू ढारि।
कह्यौ रहियौ सुचित सौं, यह ज्ञान गुर उर धारि।
कौन सुत, को पिता-माता, देखि हृदै बिचारि।
सूर के प्रभु गवन कीन्हौ, कपट कागद फारि ।।९।।

अर्थ—नन्द अब गाय सम्हाल लो। जो तुम्हारे यहां आकर ठहरे, चार दिन गाय चरा दिया। आपने दूध, दही खिलाकर अत्यधिक प्रेम से पालन किया। तुम्हारे ये गुण हृदय से विस्मृत नही करूँगा। माता यशोदा द्वार पर खडी है, आँखो से आँसू ढुलक रहे हैं (कृष्ण ने) कहा यह महान् ज्ञान हृदय मे धारण करके स्वस्थ चित्त से रहना। कौन पुत्र है, कौन माता-पिता है इसे हृदय मे विचार कर देखना। सूरदास कहते है कि कपट के कागज को फाड़कर कृष्ण ने प्रस्थान किया ।।९।।

जबहीं रथ अक्रूर चढ़े।
तब रसना हरि नाम भाषि कै, लोचन नीर बढे।
महरि पुत्र कहि सोर लगायौ, तरु ज्यौं धरनि लुटाइ।
देखतिं नारि चित्र सी ठाढ़ीं, चितये कुँवर कन्हाइ।
इतनैहि मैं सुख दियौ सबनि कौं, दीन्हीं अवधि बताइ।
तनक हँसे, हरि मन जुवतिन कौं, निठुर ठगौरी लाइ।
बोलतिं नहीं रहीं सब ठाढ़ी, स्याम-ठगीं ब्रज नारी।
सूर तुरत मधुबन पग धारे, धरनी के हितकारी ।।१०।।

अर्थ—जैसे ही अक्रूर रथ पर चढ़े, (उन्होंने) वाणी से कृष्ण का नामोच्चारण किया और (उनकी) आँखो मे आँसू बढ गये। महरि (यशोदा) ने 'पुत्र-पुत्र' कहकर शोर मचाया, (वह) वृक्ष के समान पृथ्वी पर गिर पड़ी। नारियाँ चित्रवत् खड़ी होकर

देखती हैं, कृष्ण ने (भी उनकी ओर) देखा। इतने मे ही सब को सुख प्रदान किया और (लौटने की) अवधि बात दी। कृष्ण युवतियों के मन पर निष्ठुर जादू डालकर थोड़ा हँसे। कृष्ण से ठगी हुई स्त्रियाँ बोलती नही, सभी खड़ी रह गयी। सूरदास कहते हैं कि पृथ्वी के हितकारी (कृष्ण) ने मधुपुर की ओर कदम बढाये ॥१०॥

रहीं जहाँ सो तहाँ सब ठाढ़ीं।
हरि के चलत देखियत ऐसी, मनहु चित्र लिखि काढ़ी।
सूखे बदन, स्रवति नैननि तैं, जल-धारा उर बाढ़ी।
कंधनि बाँह धरे चितवतिं मनु, द्रुमनि बेलि दव दाढ़ी।
नीरस करि छाँड़ी सुफलक सुत, जैसें दूध बिनु साढ़ी।
सूरदास अक्रूर कृपा तैं, सहीं बिपति तन गाढ़ी ॥११॥

अर्थ—जो जहाँ थी वे वही खड़ी रह गयी। कृष्ण के चलते समय ऐसी जान पड़ती है मानो (वे) चित्र की तस्वीरे हो। सूखे मुख, नेत्रो के स्रवित होने से हृदय पर जल की धारा बढ़ गयी। कन्धे पर बाँह रखे हुए (वे) ऐसी जान पड़ती हैं मानों दावाग्नि से दग्ध वृक्षो पर लता हो। सुफलक के सुत ने उन्हे रसहीन करके छोड दिया जैसे मलाई-रहित दूध हो। सूरदास कहते है कि अक्रूर की कृपा से उन्होने गहन दुख सहन किया ॥११॥

बिछुरत श्री ब्रजराज आजु, इनि नैननि की परतीति गई।
उड़ि न गए हरि संग तबहिं तैं, ह्वै न गए सखि स्याममई।
रूप रसिक लालची कहावत, सो करनी कछुवै न भई।
साँचे क्रूर कुटिल ये लोचन, वृथा मीन-छवि छीन लई।
अब काहैं जल-मोचत, सोचत, समौ गए तैं सूल नई।
सूरदास याही तैं जड़ भए, पलकनिहूँ हठि दगा दई ॥१२॥

अर्थ—कृष्ण से बिछुड़ते ही इन नेत्रो का विश्वास नही रह गया। तब ये कृष्ण के साथ उड़ नही गये और न श्याममय ही हो गये। ये रूप रस से लालची कहे जाते थे, किन्तु उस (प्रकार की) करणी कुछ नही दिखाई पड़ी। सचमुच ये नेत्र क्रूर और कुटिल हैं, व्यर्थ ही (इन नेत्रो ने) मछली की शोभा छीन ली है। अब (ये नेत्र) क्यो जल छोड़ते हैं तथा चिन्तित होते हैं। (संयोग का) समय बीत जाने के कारण (इन्हे) नई पीड़ा (हो रही है)। सूरदास कहते हैं कि इसी से ये जड़ हो गये हैं, पलको ने भी हठ करके धोखा दे दिया (गिरना बन्द कर दिया) ॥१२॥

आजु रैनि नहिँ नींद परी।
जागत गिनत गगन के तारे, रसना रटत गोबिंद हरी।
वह चितवनि, वह रथ की बैठनि, जब अक्रूर की बाँह गही।
चितवति रही ठगी सी ठाढ़ी, कहि न सकति कछु काम दही।

इते मान व्याकुल भइ सजनी, आरज पंथहुँ तैं बिडरी।
सूरदास-प्रभु जहाँ सिधारे, कितिक दूर मथुरा नगरी ॥१३॥

अर्थ—आज रात में नीद नही आयी। जागती हुई आकाश के तारे गिनती रही, जीभ गोविंद कृष्ण रटती रही। जब अक्रूर की बाँह (कृष्ण ने) पकड़ी, (उस समय की) वह दृष्टि, वह रथ पर बैठना, (कितना निष्ठुर था)। (तब) हम ठगी सी खडी रही, तथा काम से दग्ध कुछ कह न सकी। हे सखी! इतना अधिक व्याकुल हो गयी कि आर्यपथ से भी अलग हो गयी। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण जहाँ गये वहाँ से मथुरा नगरी कितनी दूर है ॥१३॥

री मोहिं भवन भयानक लागै, माई स्याम बिना।
काहि जाइ देखौं भरि लोचन, जसुमति कैं अँगना।
को सकट सहाइ करिबै कौं, मेटै बिघन घना।
लै गयौ क्रूर अक्रूर साँवरौ, ब्रज कौ प्रानधना।
काहि उठाइ गोद करि लीजै, करि करि मन मगना।
सूरदास मोहन दरसन बिनु, सुख सम्पति सपना ॥१४॥

अर्थ—हे सखी! कृष्ण के बिना मुझे घर भयानक लगता है। यशोदा के आँगन जाकर किसे भर-निगाह (जी भर कर) देखूँ। सकट (के समय) कौन सहायता करे (तथा) घने विघ्नों को मिटा दे। निर्दयी अक्रूर व्रज के प्राणधन को लेकर चला गया। किसे उठाकर मन को प्रसन्न कर करके गोद मे ले ले। सूरदास कहते हैं कि मोहन के दर्शन के बिना सुख-सम्पत्ति स्वप्न के समान (है) ॥१४॥

कहा हौं ऐसे ही मरि जैहौं।
इहिं आँगन गोपाल लाल कौं, कबहुँ कि कनिया लैहौं।
कब वह मुख बहुरी देखौंगी, कह वैसो सचुपैहौं।
कब मोपै माखन माँगैंगे, कब रोटी धरि दैहौं।
मिलन आस तन-प्रान रहत हैं, दिन दस मारग ज्वैहौं।
जौ न सूर अइहैं इते पर, जाइ जमुन धँसि लैहौं ॥१५॥

अर्थ—क्या मैं ऐसे ही मर जाऊँगी? इस आँगन मे गोपाल लाल को कभी गोद मे लूँगी? वह मुख फिर कब देखूँगी, वह सुख कहाँ पाऊँगी? कब मुझसे मक्खन मागेगे, कब रोटी पर (मक्खन) रखकर दूँगी। मिलने की आशा से शरीर मे प्राण रुके है। दस दिन तक रास्ता देखूँगी। सूरदास कहते है कि इस बीच यदि नही आयेगे तो (हम गोपियाँ) जाकर यमुना मे धँस जायेगी ॥१५॥

मथुरा प्रवेश तथा कस-वध

बूझत हैं अक्रूरहिं स्याम।
तरनि किरनि महलनि पर झाईं, इहै मधुपुरी नाम।

स्रवननि सुनत रहत है जाकौ, सो दरसन भए नैन।
कंचन कोटि कँगूरनि की छबि, मानी बैठे मैन।
उपवन बन्यौ चहूँधा पुर के, अतिहीं मोकौं भावत।
सूर स्याम बलरामहिं पुनि पुनि, कर पल्लवनि दिखावत ॥१६॥

अर्थ—अक्रूर से कृष्ण पूछते हैं। (जहां) महलों पर सूर्य की किरणे छायी हैं (क्या) इसी का नाम मधुपुरी है। कानो से जिसे सुनता रहा उसका नेत्रो से दर्शन हो गया। सोने के महल के कगूरो की शोभा ऐसी है मानों कामदेव बैठे हों। पुर के चारो ओर बने उपवन मुझे अत्यधिक रुचिकर लगते हैं। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण कर-पल्लवो से बलराम को बार-बार दिखाते हैं ॥१६॥

मथुरा हरषित आजु भई।
ज्यौं जुवती पति आवत सुनि कै, पुलकित अंग मई।
नवसत साजि सिंगार सुदरी, आतुर पंथ निहारति।
उड़ति धुजा तनु सुरति बिसारे, अंचल नहीं सँभारति।
उरज प्रगट महमनि पर कलसा, लसति पास बन सारी।
ऊँचे अटनि छाज की सोभा, सीस उचाइ निहारी।
जालरंध्र इकटक मग जोवति, किंकिन कंचन दुर्ग।
बेनी लसति कहाँ छबि ऐसी, महलनि चित्रे उर्ग।
बाजत नगर बाजने जहँ तहँ, और बजत घरियार।
सूर स्याम बनिता ज्यौं चंचल, पग नूपुर झनकार ॥१७॥

अर्थ—मथुरा आज हर्षित हो गयी, जैसे पति को आता सुनकर युवती के अग पुलकित हो जाते हैं। सोलह शृंगार सजाकर सुन्दरी आतुर होकर पथ निहारती है। उड़ती हुई ध्वजा (ऐसी ज्ञात होती है) जैसे विस्मृत होकर अपने अंचल को नही सम्हालती। महलों पर रखे गये कलस (रूपी) स्तन प्रत्यक्ष हो गये तथा पास के वन (रूपी) साडी शोभित है। ऊँची छतो छज्जे शोभित हैं, (जैसे छज्जे के रूप में मथुरा रूपी नारी) सिर ऊँचा करके पथ निहार रही है। झरोखे की जालियो मे इकटक रास्ता देखती हैं। कंचन के दुर्ग (नगर सुन्दरी) की किंकिणी हैं। महलो पर के चित्रित सांप चोटी के समान शोभित हैं और जगह ऐसी छवि कहां है। नगर मे जहां-तहां वाजे तथा घड़ियाल बजते है, सूरदास कहते है मानो यह कृष्ण की चंचल पत्नी है जिसके पग के नूपुरों को झनकार हो रही है ॥१७॥

मथुरा पुर मैं सोर पर्‌यौ।
गरजत कंस बंस सब साजे, मुख कौ नीर हर्‌यौ।
पीरौ भयौ, फेफरी अधरनि, हिरदय अतिहि डर्‌यौ।
नंद महर के सुत दोउ सुनि कै, नारिनि हर्ष भर्‌यौ।

कोउ महलनि पर कोउ छज्जनि पर, कुल लज्जा न करयौ।
कोउ धाईं पुर गलिन गलिन ह्वै, काम-धाम विसरयौ।
इंदु वदन नव जलद सुभग तनु, दोउ खग नयन करयौ।
सूर स्याम देखत पुर-नारी, उर-उर प्रेम भरयौ ॥१८॥

अर्थ—मथुरा नगर मे शोर मच गया। अपने वश सहित सुसज्जित कंस गरज रहा है, किन्तु (उसका) मुख सूख गया है, (वह) (भय से) पीला पड गया, अधरों पर पपड़ी पड गयी, (और) (वह) हृदय से अत्यधिक डरा (है)। (दूसरी ओर) नन्द महर के दोनों पुत्रों के विषय मे सुनकर नारियो को हर्ष हुआ। कोई महलो पर, कोई छज्जो पर (आकर देखने लगी), उन्होंने कुल की लज्जा नही की। कोई पुर की गली-गली से होकर दौड पड़ी तथा धाम का काम सब कुछ भूल गया। नये बादल के समान सुन्दर शरीर वाले कृष्ण के चन्द्र-मुख हेतु पुर की नारियो ने अपने दोनो नेत्रो को (चकोर) पक्षी बना लिया। सूरदास कहते हैं कि अपने-अपने हृदय मे प्रेम भरकर पुर की नारियां कृष्ण को देखती हैं ॥१८॥

ढोटा नंद को यह री।
नाहिं जानति वसत व्रज मैं, प्रगट गोकुल री।
धरयौ गिरिवर वाम कर जिहिं, सोइ है यह री।
दैत्य सब इनहीं सँहारे, आपु-भुज-बल री।
व्रज-घरनि जो करत चोरी, खात माखन री।
नंद-घरनी जाहिं बाँध्यौ, अजिर ऊखल री।
सुरभि-ठान लिये वन तैं आवत, सबहिं गुन इन री।
सूर-प्रभु ये सबहि लायक, कंस डरै जिन री ॥१६॥

अर्थ—यही नन्द के पुत्र हैं। जानती नही कि (यही) व्रज में बसते हैं तथा गोकुल मे प्रकट हुए हैं। बाये हाथ से जिन्होने गिरवर को धारण किया यह वही है। अपनी भुजाओं के बल से इन्होने सारे दैत्यो का सहार किया। व्रज के घरो मे जो चोरी करते हैं तथा माखन खाते हैं। नन्द की स्त्री ने जिन्हे आंगन मे ऊखल से बांधा था। गायो का समूह लेकर वन से आते है, इनमे सभी गुण हैं। सूरदास कहते है कि ये सब (कुछ करने) योग्य हैं, और कंस जिनसे डरता है ॥१६॥

भए सखि नैन सनाथ हमारे।
मदनगोपाल देखतहिं सजनी, सब दुख सोक विसारे।
पठये हे सुफलक-सुत गोकुल, लैन सो इहाँ सिधारे।
मल्ल जुद्ध प्रति कंस कुटिल मति, छल करि इहाँ हँकारे।
मुष्टिक अरु चानूर सैल सम, सुनियत हैं अति भारे।
कोमल कमल समान देखियत ये जसुमति के बारे।

होवे जीति विधाता इनकी, करहु सहाइ सवारे।
सूरदास चिर जियहु दुष्ट दलि, दोऊ नंद-दुलारे ॥२०॥

अर्थ— हे सखि ! हमारे नेत्र सफल हो गये। मदन गोपाल को देखते ही (हमने) सारे दुख-शोक भुला दिये। इन्हे लेने के लिए अक्रूर को (कस ने) गोकुल भेजा था, इसी से यहाँ आये हैं। कुटिल-बुद्धि कंस ने मल्ल युद्ध के लिए छल करके (इन्हे) यहाँ बुलाया है। सुनती हूँ मुष्टिक और चाणूर पर्वत के समान अत्यन्त भारी है। ये यशोदा के बालक कोमल कमल के समान दिखाई देते हैं। हे विधाता ! शीघ्र सहायता करो ताकि इनकी ही जीत हो। सूरदास कहते है कि दुष्टो का नाश करके नन्द के दोनो पुत्र बहुत समय तक जिएँ ॥२०॥

धनुषसाला चले नँदलाला।
सखा लिए संग प्रभु रंग नाना करत, देव नर कोउ न लखि सकत ख्याल।।
नृपति के रजक सौं भेंट मग में भई, कह्यौ दै बसन हम पहिरि जाही।
वसन ये नृपति के जासु की प्रजा तुम, ये बचन कहत मन डरत नाहीं।
एक ही मुष्टिका प्रान ताके गए, लए सब बसन कछु सखनि दीन्हे।
आइ दरजी गयौ बोलि ताकौं लयौ, सुभग अँग साजि उन विनय कीन्हे।
सुनि सुदामा कह्यौ गेह मम अति निकट, कृपा करि तहाँ हरि चरन धारे।
धोइ पद-कमल पुनि हार आगैं धरे, भक्ति दै, तासु सब काज सारे।
लिए चदन बहुरि आनि कुबिजा मिली, स्याम अँग लेप कीन्हौ बनाई।
रीझि तिहिँ रूप दियौ, अंग सूधौ कियौ, बचन सुभ भाषि निज गृह पठाई।
पुनि गए तहाँ जहँ धनुष, बोले सुभट, हौंस जनि मन करौ बन-बिहारी।
सूर प्रभु छुवत धनु टूटि धरनी परयौ, सोर सुनि कंस भयौ भ्रमित भारी ॥२१॥

अर्थ—साथ मे मित्रो को लेकर अनेक क्रीडाएँ करते हुए कृष्ण धनुष-शाला को चले, देवता या मनुष्य कोई (उनके इस) खेल को देख (समझ) नहीं सकता। रास्ते में राजा (कंस के) धोबी से भेंट हुई। (कृष्ण ने उससे) कहा कि हमे वस्त्र दो (जिन्हे) पहनकर हम जाएं। (धोबी ने कहा) यह वस्त्र राजा के हैं जिनकी तुम प्रजा हो, यह वचन कहते हुए (तुम) डरते नही हो ! एक ही मुष्टिका (मुक्के) मे उसके-प्राण चले गये तथा उससे सब वस्त्र (कृष्ण ने) ले लिये, कुछ मित्रों को दे दिये। दरजी आया और (उसने) उनके सुन्दर अंग को सजाकर विनय की। फिर सुदामा ने कहा कि मेरा घर अत्यन्त निकट है, कृपा करके कृष्ण वहाँ गए। (सुदामा ने) चरण-कमल धोये (तथा) फिर हार (अहार) आगे रखा। (कृष्ण ने) अपनी भक्ति देकर उसके सब कार्य सिद्ध कर दिये। फिर आगे चंदन लिए कुब्जा मिली, उसने भली प्रकार कृष्ण के अंगों

पर लेप की। (कृष्ण ने) रीझ कर उसे रूप प्रदान किया तथा अंग सीधा कर दिया और शुभ वचन कहकर घर भेजा। फिर वहाँ गये जहाँ धनुष था। सुभटों ने कहा कि हे बनविहारी! (धनुष तोड़ने) का हौसला मत करो। सूरदास कहते हैं कि छूते ही धनुष टूटकर पृथ्वी पर जा पड़ा, शोर सुनकर कंस बहुत भ्रमित हुआ ॥२१॥

सुनिहि महावत बात हमारी।
बार-बार संकर्षन भाषत, लेत नाहिँ ह्याँ तैं गज टारी।
मेरौ कह्यौ मानि रे मूरख, गज समेत तोहिँ डारौं मारी।
द्वारैं खरे रहे हैं कबके, जनि रे गर्व करहि जिय भारी।
न्यारौ करि गयंद तू अजहूँ, जान देहि कै आपु सँभारी।
सूरदास प्रभु दुष्ट निकंदन, धरनी भार उतारनकारी ॥२२॥

अर्थ—महावत हमारी बात सुनो! बार-बार संकर्षण (बलराम) कहते हैं, यहाँ से (हाथी को) हटा क्यों नही लेता। मूर्ख! मेरा कहना मानो, नही तो हाथी सहित तुम्हें मार डालूँगा। कब से (कृष्ण) द्वार पर खड़े हैं, (यह) जानकर भी तू मन में अत्यधिक गर्व करता है। अभी तू हाथी को अलग कर, या तो जाने दे या प्राण देने के लिए सँभल जा। सूरदास कहते है कि (कृष्ण) दुष्टो के नाशक तथा पृथ्वी का भार उतारने वाले हैं ॥२२॥

तब रिस कियौ महावत भारि।
जौ नहिँ आज मारिहौं इनकौं, कंस डारिहै मारि।
आँकुस राखि कुम्भ पर करष्यौ, हलधर उठे हँकारि।
धायौ पवनहुँ तैं अति आतुर, धरनी दंत खँभारि।
तब हरि पूँछ गह्यौ दच्छिन कर, कँबुक फेरि सिर वारि।
पटक्यौ भूमि, फेरि नहिँ मटक्यौ, लीन्हौ दंत उपारि।
दुहुँ कर दुरद दसन इक इकछबि, सो निरखतिं पुरनारि।
सूरदास प्रभु सुर सुखदायक, मारचौ नाग पछारि ॥२३॥

अर्थ—तब महावत ने अत्यधिक क्रोध किया। जो इन्हे आज मार नही डालता, तो कंस (मुझे) मार डालेगा। (उसने) अंकुश दोनो कुंभों पर रखकर खीचा (चुभोया) (इस पर) बलराम ललकार उठे। (तब) दाँतो से पृथ्वी को कंपित करके (वह हाथी) पवन से भी अधिक तीव्रता से दौडा। तब कृष्ण ने दाहिने हाथ से पूँछ पकडी। हाथी को सिर के चारो ओर फिराकर पृथ्वी पर पटक दिया, फिर वह हिला-डुला नही तथा (तब) (कृष्ण ने) उसके दाँत उखाड़ लिये। दोनो दाँत एक-एक हाथ मे शोभित हैं जिन्हे नगर की स्त्रियाँ देख रही है। सूरदास कहते हैं कि प्रभु देवताओ को सुख देने वाले है। उन्होंने हाथी को पछाड़कर मारा ॥२३॥

एई सुत नंद अहीर के।
मारचौ रजक बसन सब लूटे, संग सखा बल बीर के।

काँधे धरि दोऊ जन आए, दंत कुंवलयापीर के।
पसुपति मंडल मध्य मनौ, मनि छीरधि नीरधि नीर के।
उड़ि आए तजि हंस मात्त मनु, मानसरोवर तीर के।
सूरदास प्रभु ताप निवारन, हरन संत दुःख पीर के ।।२४।।

अर्थ—नन्द अहीर के पुत्र ये ही हैं। बलराम तथा मित्रों के साथ धोबी को मारकर (इन्होने) सब वस्त्र लूट लिये। कुवलयापीड (हाथी) के दाँतो को कन्धे पर रखकर दोनो भाई आये। पशुपति मंडल के बीच मानों क्षीर सागर की मणि हो, मानों मतवाले हंस होकर मानसरोवर के तीर को छोडकर उड़ आये हों। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण ताप का निवारण करने वाले, (तथा) सन्तो के दुख और पीड़ा को हरने वाले हैं ।।२४।।

सुनौ हो बीर मुष्टिक चानूर सबै, हमहिं नृप पास नहिं जान दैहौ।
घरि राखे हमैं, नहीं बूझे तुम्हैं, जगत मैं कहा उपहास लैहौ।
सबै यहै कैहै भली मत तुम पै है, नंद के कुँवर दोउ मल्ल मारे।
यहै जस लेहुगे, जान नहिं देहुगे, खोजहीं परे अब तुम हमारे।
हम नहीं कहैं तुम मनहिं जौ यह बसी, कहत हौ कहा तौ करौ तैसी।
सूर हम तन निरखि देखियै आपुकौं, बात तुम मनहिं यह बसी नैसी ।।२५।।

अर्थ—मुष्टिक, चानूर, सभी वीरों सुनो! क्या मुझे राजा के पास नही जाने दोगे? मुझे घेरकर खडे हो, (मैं) तुम्हे (कुछ) नही समझता, (तुम) जगत में हँसे जाओगे। सभी, यही भली बात तुमसे कहेगे (कि) नन्द के पुत्रों ने दोनो मल्लो को मार डाला। (तुम) यही यश लोगे और जाने नही दोगे, तुम मेरे पीछे ही पड गये हो। तुम्हारे मन में जो यही वसा है तो हम (कुछ) नही कहेंगे। (मल्लो ने कहा) क्या कहते हो, जैसा करना हो करो। सूरदास कहते हैं (मल्ल कृष्ण से कहते हैं) कि हमारी तरफ देखकर अपने को देखो! तुम्हारे मन मे (हम से भिड़ने की) यह बुरी बात वस गयी है ।।२५।।

गह्यौ कर स्याम भुज मल्ल अपने धाइ, झटकि लीन्हौ तुरत पटकि धरनी।
भटकि अति सब्द भयौ, खटक नृप के हियैं, अटकि प्राननि परचौ चटक करनी।
लटकि निरखन लग्यौ, मटक सब भूलि गइ, हटक करि देउँ इहै लागी।
झटकि कुंडल निरखि, अटक ह्वै कै गयौ, गटकि सिल सौं रह्यौ मीच जागी।
मल्ल जे जे रहे सबै मारे तुरत, असुर जोधा सबै तेउ सँहारे।
धाइ दूतनि कह्यौ, मल्ल कोउ न रह्यौ, सूर बलराम हरि सब पछारे ।।२६।।

अर्थ—मल्ल ने दौडकर अपनी भुजा से कृष्ण का हाथ पकड़ लिया। (कृष्ण ने) तुरन्त झटककर (हाथ छुडा लिया), (और) (उसे) धरती पर पटक दिया। घोर शब्द से (राजा) भ्रमित हुआ, राजा (कंस) के हृदय मे खटका पैदा हुआ, चटक कर प्राण उलझ गये। लटक कर (झुककर) (वह मल्ल) देखने लगा, सारी गति भूल गई, यही

लगा कि (इन्हें) रोक दूं । (कृष्ण के) कुंडल की झटक (हिलना) देखकर वह अटक सा (स्तब्ध सा) रह गया, (मानों) शिला सी गटक गया हो, उसकी मृत्यु (मानो) जग गई हो । (कृष्ण ने) जो-जो मल्ल थे सभी को तुरन्त मारा, सभी असुर, योद्धाओ का संहार कर दिया । दौडकर दूतों ने (कंस से) कहा, (कि) कोई शेष नही रहा, शूरवीर बलराम, कृष्ण ने सभी को पछाड़ दिया ।।२६।।

नवल नंदनंदन रंगभूमि राजैं ।
स्याम तन, पीत पट मनौ घन मैं तड़ित, मोर के पंख माथैं विराजैं ।
स्रवन कुंडल झलक मनौ चपला चमक, दृग अरुन कमल दल से विसाला ।
भौंह सुंदर धनुप, वान सम सिर तिलक, केस कुंचित सोह भृंग माला ।
हृदय वनमाल, नूपुर चरन लाल, चलत गज चाल, अति बुधि विराजै ।
हंस मानौ मानसर अरुन अंवुज सुभग, निरखि आनंद करि हरपि गाजैं ।
कुवलया मारि चानूर मुष्टिक पटकि, वीर दोउ कंध गज-दंत धारे ।
जाइ पहुँचे तहाँ कंस बैठ्यौ जहाँ, गए अवसान प्रभु के निहारे ।
ढाल तरवारि आगैं धरी रहि गई, महल कौ पंथ खोजत न पावत ।
लात कैं लगत सिर तैं गयौ मुकुट गिरि, केस गहि लै चले हरि खसावत ।
चारि भुजा धारि तेहिं चारु दरसन दियौ, चारि आयुध चहूँ हाथ लीन्हे ।
असुर तजि प्रान निरवान पद कौं गयौ, विमल मति भई प्रभु रूप चीन्हे ।
देखि यह पुहुप वर्षा करी सुरनि मिलि, सिद्ध गधर्व जय धुनि सुनाई ।
सूर प्रभु अगम महिमा न कछु कहि परति, सुरनि की गति तुरत असुर पाई ।।२७।।

अर्थ—नवल कृष्ण रंग-भूमि मे सुशोभित हैं । श्याम शरीर पर पीताम्बर मानो वादल मे विजली हो, मोर के पंख मस्तक पर विराज रहे हैं । श्रवण के कुडल मानो विजली की चमक हो । आंखे लाल कमलदल के समान विशाल हैं । भौह सुन्दर धनुप के समान हैं । सिर का तिलक बाण के समान है । कुंचित वाल भौरों की माला (पक्ति) के समान है । हृदय पर वनमाला, लाल चरणो मे नूपूर, गज के समान चाल तथा अत्यधिक वुद्धि विराजित है (अत्यन्त वुद्धिमान हैं) । हंस मानों कमल से भरे मान-सरोवर को देखकर आनन्द से हर्षित होकर बोल रहे हैं । कुवलय (हाथी) को मारकर, मुष्टिक को पटककर दोनो वीर कंधे प[illegible] [illegible]रण किये हुये हैं । वहां जाकर पहुंचे जहां कंस बैठा था । दे[illegible] (कृष्ण ने) [illegible] ये । ढाल-तलवार आगे [illegible] रह गयी, महल का रास्ता [illegible] ही सिर से मुकुट खिसक [illegible] तथा (तव [illegible]पकड़कर कृष्ण घ[illegible] धारण करके, चारों हाथों हैं जिन्हें नग[illegible] तजकर निर्वाण पद को प्राप्त [illegible] ये उसे सुन्द[illegible] [illegible]विमल हो गयी । यह देखकर वाले है । उन्हो[illegible] का रूप [illegible] [illegible]र गंधर्वों ने जय-जयकार की

[illegible]था । घोर शब्द [illegible] चटक कर प्राण [illegible] गति भूल गई, यही [illegible] मार्‌यो ।

ध्वनि सुनाई। सूरदास कहते हैं कृष्ण की अगम महिमा के विषय में कुछ नही कहा जा सकता। देवताओं की स्थिति असुर पा गया ॥२७॥

उग्रसेन कौं दियौ हरि राज।
आनँद मगन सकल पुरबासी, चँवर डुलावत श्री ब्रजराज।
जहाँ तहाँ तैं जादव आए, कंस डरनि जे गए पराइ।
मागध सूत करत सब अस्तुति, जै जै जै श्री जादवराइ।
जुग जुग विरद यहै चलि आयौ, भए वलि के द्वारैं प्रतिहार।
सूरदास प्रभु अज अविनासी, भक्तन हेत लेत अवतार ॥२८॥

अर्थ—कृष्ण ने उग्रसेन को राज्य दे दिया। समस्त पुरवासी आनन्द से मग्न होकर कृष्ण के चामर डुलाते हैं। जो यादव कंस के डर से इधर-उधर भाग गये थे वे आ गये। मागध, बन्दी सभी स्तुति करते हैं कि श्री यादवराय की जय हो, जय हो। युग-युग से यही यश चला आया कि कृष्ण वलि के द्वार पर प्रतिहारी बने थे। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण अजन्मा अविनासी हैं तथा भक्तो के लिए अवतार लेते है ॥२८॥

तब बसुदेव हरषित गात।
स्याम रामहिं कंठ लाए, हरषि देवै मात।
अमर दिवि दुंदुभी दीन्ही, भयौ जै जैकार।
दुष्ट दलि सुख दियौ संतनि, ये वसुदेव कुमार।
दुख गयौ बहि हर्ष पूरन, नगर के नर-नारि।
भयौ पूरब फल सँपूरन, लह्यौ सुत दैत्यारि।
तुरति बिप्रनि बोलि पठये, धेनु कोटि मँगाइ।
सूर के प्रभु ब्रह्मपूरन, पाइ हरषै राइ ॥२९॥

अर्थ—तब वसुदेव ने हर्षित शरीर से कृष्ण और बलराम को गले से लगा लिया। देवकी माता हर्षित हो गयी। देवताओ ने आकाश मे जय-जयकार करके दुंदुभी बजायी। दुष्टों का नाश करके इन वसुदेव पुत्र (कृष्ण) ने सन्तो को सुख दिया। दुख बह गया, नगर के नर-नारी हर्ष से पूर्ण हो गये। (वसुदेव) के पूर्व जन्म का पुण्य फलित हुआ, दैत्यो के शत्रु कृष्ण को प्राप्त किया। हजारों गाय मँगाकर ब्राह्मणो को (देने के लिए) बुला भेजा। सूरदास कहते है कि पूर्ण ब्रह्म कृष्ण को पाकर (वसुदेव आदि) हर्षित हो गये ॥२९॥

बसुद्यौ कुल-ब्यौहार बिचारि।
हरि हलधर कौं दियौ जनेऊ, करि षटरस ज्यौनारि।
जाके स्वास-उसाँस लेत मैं, प्रगट भये श्रुति चार।
तिन गायत्री सुनी गर्ग सौं, प्रभु गति अगम अपार।
बिधि सौं धेनु दई बहु बिप्रनि, सहित सर्वऽलंकार।
जदकुल भयौ परम कौतूहल, जहँ तहँ गावतिं नार।

मातु देवकी परम मुदित ह्वै, देति निछावरि वारि।
सूरदास की यहै आसिषा, चिर जियौ नंदकुमार ॥३०॥

अर्थ—वसुदेव ने कुल के व्यवहार को विचार कर छह प्रकार के रसो से युक्त भोजन कराके कृष्ण और हलधर को जनेऊ दिया। जिनके साँस तथा उच्छवास लेने से चारो वेद प्रकट हुए उन्होने ही गर्ग से गायत्री (मंत्र) पढी। प्रभु की गति अगम तथा अपार है। सभी आभूषणों के साथ विधि-पूर्वक ब्राह्मणो को बहुत सी गायें प्रदान की गयी। यदुकुल अत्यधिक प्रसन्न हुआ, जहाँ-तहाँ स्त्रियाँ गाती हैं। माता देवकी अत्यधिक प्रसन्न होकर उतार कर (धन को कृष्ण-बलराम सिर के चारो ओर घुमाकर) निछावर देती हैं। सूरदास ने यही आशीष दी (कि) नद कुमार चिरकाल तक जीवित रहें ॥३०॥

कुबरी पूरब तप करि राख्यौ।
आए स्याम भवन ताही कैं, नृपति महल सब नाख्यौ।
प्रथमहिं धनुष तोरि आवत हे, बीच मिली यह धाइ।
तिहिं अनुराग वस्य भए ताकैं, सी हित कह्यो न जाइ।
देव काज हरि आवन कहि गए, दीन्हौ रूप अपार।
कृपा दृष्टि चितवतहीं श्री भइ, निगम न पावत पार।
हम तैं दूरि दीन के पाछैं, ऐसे दीनदयाल।
सूर सुरनि करि काज तुरतहीं, आवत तहाँ गोपाल ॥३१॥

अर्थ—कुबरी ने पूर्व जन्म में तप कर रखा था। कृष्ण ने राजा के समस्त महलो को नष्ट किया (और) उसी के भवन आये। प्रथम ही धनुष तोड़कर आते थे, (हे) (यह) बीच मे ही दौडकर मिल गयी। उसी अनुराग के कारण उसके वश मे हो गये, यह स्नेह कहते नही बनता। (कृष्ण जी) देव कार्य करके (उससे) आने के लिए कह गये थे, (उन्होने) उसे अपार रूप दे दिया। कृपा की दृष्टि से देखते ही शोभा छा गयी, निगम पार नही पाते। अहंकार से दूर तथा दीन के पीछे रहने वाले (कृष्ण) ऐसे ही दीन दयालु हैं! सूरदास कहते हैं कि देवताओं के कार्य को करके गोपाल वहाँ तुरन्त ही आये ॥३१॥

कियौ सुर-काज गृह चले ताकैं।
पुरुष औ नारि कौ भेद भेदा नहीं, कुलिन अकुलीन अवतर्यौ काकैं।
दास दासी कौन, प्रभु निप्रभु कौन हैं, अखिल ब्रह्मांड इक रोम जाकैं।
भाव साँचौ हृदय जहाँ, हरि तहाँ हैं, कृपा प्रभु की माथ भाग वाकैं।
दास दासी स्याम भजनहु तैं जिये, रमा सम भई सो कृष्नदासी।
मिली वह सूर प्रभु प्रेम चंदन चरचि, कियौ जप कोटि,तप कोटि कासी ॥३२॥

अर्थ—देवताओ का कार्य करके उसके घर चले उसके (कृष्ण-ब्रह्म) लिए पुरुष और स्त्री का भेद नही, कुलीन या अकुलीन किसके यहाँ अवतरित नही हुए हैं। दासी,

या दास कौन है, या प्रभु तथा दास निप्रभु कौन है (कृष्ण-ब्रह्म के लिए यह सब भेद-भाव कुछ महत्व नही रखता है)। जिसके एक रोम के बराबर अखिल ब्रह्माड है। जहाँ जिस हृदय में सच्चा भाव है कृष्ण जी वही है। जिसके मस्तक पर प्रभु की कृपा है वही भाग्यशाली है। दास-दासी कृष्ण के भजन से जीवित रहते हैं। वह कृष्ण दासी अब लक्ष्मी के समान हो गयी। सूरदास कहते हैं कि वह प्रेम रूपी चन्दन लगाकर सूर के प्रभु से मिली (उसके प्रेम से) उसने कोटि जप तथा काशी में किये जाने वाले कोटि तप को कर डाला (अर्थात् इतना फल प्राप्त कर लिया) ।।३२।।

मथुरा दिन-दिन अधिक बिराजै।
तेज प्रताप राइ केसौ कैँ, तीनि लोक पर गाजै।
पग पग तीरथ कोटिक राजैँ, मधि बिश्राति बिराजै।
करि अस्नान प्रात जमुना कौ, जनम मरन भय भाजै।
बिट्ठल बिपुल बिनोद बिहारन, ब्रज कौ बसिबौ छाजै।
सूरदास सेवक उनहीँ कौ, कृपा सु गिरिधर राजै ।।३३।।

अर्थ—मथुरा दिन प्रतिदिन अधिक शोभित हो रही है। राजा कृष्ण का तेज (तथा) प्रताप तीनो लोको मे घोषित हो रहा है। पग-पग पर करोड़ो तीर्थ शोभित है, (तथा) मध्य मे विश्राति विराज रही है। प्रातः यमुना का स्नान करने पर जन्म-मरण का भय भाग जाता है। विट्ठल की अनेक विनोद की क्रीड़ास्थलियो मे रहना अच्छा लगता है। सूरदास उन्ही के सेवक है, कृष्ण की कृपा (उन पर) राज कर रही है ।।३३।।

नन्द का ब्रज प्रत्यागमन

बेगि ब्रज कौँ फिरिए नँदराइ।
हमहिँ तुमहिँ सुत तात कौ नातौ, ओर परचौ है आइ।
बहुत कियौ प्रतिपाल हमारौ, सो नहिँ जी तैँ जाइ।
जहाँ रहैँ तहँ तहाँ तुम्हारे, डारचौ जनि बिसराइ।
जननि जसोदा भेँटि सखा सब, मिलियौ कण्ठ लगाइ।
साधु समाज निगम जिनके गुन, मेरैँ गनि न सिराइ।
माया मोह मिलन अरु बिछुरन, ऐसैँ ही जग छाइ।
सूर स्याम के निठुर बचन सुनि, रहे नैन जल छाइ ।।३४।।

अर्थ—नन्दराय! शीघ्र ही ब्रज को वापस चले जाइये। हमारा तुम्हारा पुत्र और पिता का सम्बन्ध अन्त को आ गया है। (तुमने) हमारा बहुत पोषण किया है, वह मन से नही जाता। जहाँ जहाँ रहूँगा वहाँ-वहाँ तुम्हारा ही रहूँगा, (इसे) भुला मत देना। माता यशोदा और सखाओं से भेंटकर कंठ लगाकर मिलना। जिनके गुणो को साधु-समाज तथा वेदों ने (बताया है) वे मेरे द्वारा गिनने से समाप्त होने वाले नहीं हैं।

१५

माया, मोह, मिलन और वियोग इन्ही मे संसार नष्ट होता है। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण के निष्ठुर वचन सुनकर (नन्द के) नेत्रो मे आँसू छा गये ।।३४।।

नद बिदा होइ घोष सिधारौ।
बिछुरन मिलन रच्यौ बिधि ऐसौ, यह सकोच निवारौ।
कहियौ जाइ जसोदा आगैं, नैंन नीर जनि ढारौ।
सेवा करी जानि सुत अपनौ, कियौ प्रतिपाल हमारौ।
हमैं तुम्हैं अन्तर कछु नाहीं, तुम जिय ज्ञान बिचारौ।
सूरदास प्रभु यह बिनती है, उर जनि प्रीति बिसारौ ।।३५।।

अर्थ—हे नन्द ! विदा होकर गाँव को प्रस्थान करो। वियोग और मिलन ब्रह्मा ने इसी तरह रचा है, इस संकोच का निवारण करो (भूल जाओ)। यशोदा के आगे जाकर कहना कि नेत्रों से जल न ढुलकाये। अपना पुत्र समझकर उन्होने हमारी सेवा की तथा हमारा प्रतिपालन किया। हममे तुममे कुछ भी अन्तर नही है, तुम मन मे ज्ञान का विचार करो। सूरदास के प्रभु की यह विनती है कि हृदय से प्रेम को भुला न देना ।।३५।।

गोपालराइ हौं न चरन तजि जैहौं।
तुमहिँ छाँड़ि मधुबन मेरे मोहन, कहा जाइ ब्रज लैहौं।
कैहौं कहा जाइ जसुमति सौं, जब सन्मुख उठि ऐहै।
प्रात समय दधि मथत छाँड़ि कै, काहि कलेऊ दैहै।
बारह बरस दियौ हम ढीठौ, यह प्रताप बिनु जाने।
अब तुम प्रगट भए बसुद्यौ-सुत, गर्ग बचन परमाने।
रिपु हति काज सबै कत कीन्हौ, कत आपदा विनासी।
डारि न दियौ कमल कर तैं गिरि, दबि मरते ब्रजवासी।
बासर सग सखा सब लीन्हे, टेरि न धेनु चरैहौ।
क्यौं रहिहैं मेरे प्रान दरस बिनु, जब संध्या नहिँ ऐहौ।
ऊरध स्वाँस चरन गति थाकी, नैन नीर भरआइ।
सूर नंद बिछुरत की वेदनि, मो पै कही न जाइ ।।३६।।

अर्थ—हे गोपाल राय ! मैं चरण तजकर नही जाऊँगा। मेरे मोहन तुम्हे मथुरा मे छोडकर ब्रज में जाकर क्या लूंगा। यशोदा जब सम्मुख उठकर आयेगी तो उनसे क्या कहूँगा। प्रातःकाल दही के मन्थन को छोड़कर किसे कलेवा देंगी। बारह वर्ष तक हमने (तुम्हारे) इस प्रताप को विना जाने तुमसे धृष्टता की। अब तुम वसुदेव के पुत्र के रूप मे प्रकट हुए हो, गर्ग के वचनों को (तुमने) (अपने असाधारण कृत्यों द्वारा) प्रमाणित कर दिया। शत्रुओ को मारकर सभी कार्यों को क्यों किया और आपदाएँ क्यों नष्ट की। कमल-कर से पर्वत को डाल क्यों न दिया। (जिससे) सब ब्रजवासी दबकर मर जाते। (अब) दिन मे सभी सखाओ को लेकर पुकार-पुकार कर गाये नही चराओगे। जब

शाम को नही आओगे तो दर्शन के बिना मेरे प्राण कैसे रहेंगे। (नन्द के) ऊर्ध्व उच्छ्वास (आने लगे), चरण की गति थकित हो गयी तथा नेत्रो में आँसू भर आये। आँखो मे पानी आ जाने के कारण धूमिल दिखने लगा। सूरदास कहते है कि नन्द के बिछुड़ते समय की वेदना मुझसे कही नही जाती ॥३६॥

(मेरे) मोहन तुमहिँ बिना नहिँ जैहौँ।
महरि दौरि आगे जब ऐहै, कहा ताहि मैं कैहौं।
माखन मथि राख्यौ ह्वै है, तुम हेत, चलौ मेरे बारे।
निठुर भए मधुपुरी आइ कै, काहैं असुरनि मारे।
सुख पायौ बसुदेव देवकी, अरु सुख सुरनि दियौ।
यहै कहत नँद गोप सखा सब, बिदरन चहत हियौ।
तव माया जड़ता उपजाई, निठुर भए जदुराइ।
सूर नंद परमोधि पठाए, निठुर ठगौरी लाइ ॥३७॥

अर्थ—(मेरे) मोहन! तुम्हारे बिना मैं नहीं जाऊँगा। यशोदा दौडकर जब आगे आयेगी तो उससे मैं क्या कहूँगा। माखन मथकर तुम्हारे लिए रखा होगा, मेरे बालक! (तुम) चलो। मधुपुरी आकर निष्ठुर हो गये हो; असुरो को (तुमने) क्यो मारा। वसुदेव देवकी ने सुख प्राप्त किया और देवताओं को (तुमने) सुख दिया। सब गोप सखा तथा नन्द यही कहते हैं कि अब हृदय फटना चाहता है। तब कृष्ण ने माया की जडता उत्पन्न कर दी (तथा) (वे) स्वयं निष्ठुर हो गये। सूरदास कहते है कि निष्ठुर जादू द्वारा नन्द को समझा कर भेज दिया ॥३७॥

उठे कहि माधौ इतनी बात।
जिते मान सेवा तुम कीन्हौ, बदलौ दयौ न जात।
पुत्र हेत प्रतिपार कियौ तुम, जैसैं जननी तात।
गोकुल बसत हँसत खेलत मोहिं, द्यौस न जान्यौ जात।
होहु विदा घर जाहु गुसाईं, माने रहियौ नात।
ठाढ़ौं थक्यौ उतर नहिँ आवै, लोचन जल न समात।
भए बल-हीन खोन तन कंपित, ज्यौं वयारि बस पात।
धकधकात हिय बहुत सूर उठि, चले नद पछितात ॥३८॥

अर्थ—कृष्ण ये बाते कह उठे। "तुमने जितनी अधिक (मेरी) सेवा की उसका बदला नही दिया जा सकता। पुत्र समझ कर तुमने माता-पिता की तरह पालन-पोपण किया। गोकुल मे रहते, हँसते-खेलते मुझे दिन (बीतता) नही जान पड़ता था। हे गोसाईं (पूज्य) विदा होकर घर जाइये, सम्बन्ध मानते रखियेगा।" खड़े-खडे (नन्द) थकित हो गये, कुछ उत्तर नही आता तथा आँखों में जल (आँसू) नही समाते थे, (नन्द) बलहीन तथा क्षीण हो गये। शरीर काँपने लगा जैसे हवा के वश मे पत्ता हो। सूरदास कहते हैं कि नन्द का हृदय बहुत धधकता है तथा वह पछताते हुए चल पड़े ॥३८॥

वार-वार मग जोवति माता। व्याकुल विनु मोहन वल-भ्राता ।।
आवत देखि गोप नँद साथा। विवि वालक विनु भई अनाथा ।।
धाई धेनु बच्छ ज्यौं ऐसैं। माखन विना रहे धौं कैसैं ।।
व्रज-नारी हरषित सब धाईं। महरि जहाँ-तहँ आतुर आईं ।।
हरषित मातु रोहिनी आई। उर भरि हलधर लेउँ कन्हाई ।।
देखे नन्द गोप सब देखे। वल मोहन कौं तहाँ न पेखे ।।
आतुर मिलन-काज व्रज नारी। सूर मधुपुरी रहे मुरारी ।।३९।।

अर्थ—वार-वार माता रास्ता निहारती है और मोहन तथा उनके भाई वलराम के विना व्याकुल होती है। गोपों को नन्द के साथ आते देखकर तथा (उनके साथ) दोनो बालकों को न (देख) अनाथ (असहाय) हो गयी। गाय जैसे वछडे को देखकर दौडती है, वैसे ही यशोदा दौडी और पूछा कि कृष्ण मक्खन के बिना कैसे रहते है? व्रज की स्त्रियाँ हर्षित होकर दौड़ी जहाँ-तहाँ से ग्वालिने आतुर होकर आयी। माता रोहिणी हर्षित होकर आयी कि कृष्ण और बलराम को हृदय से लगा लूं। उन्होने नन्द को देखा, सब गोपो को देखा, लेकिन कृष्ण और बलराम को वहाँ नही देखा। मिलने के लिये व्रज की नारियां आतुर है, (किन्तु) सूरदास कहते है कि कृष्ण तो मधुपुरी मे ही रुक गये ।।३९।।

उलटि पग कैसैं दीन्हौ नंद।
छाँड़े कहाँ उभै सुत मोहन, धिक जीवन मतिमंद।
कै तुम धन-जोबन-मद माते, कै तुम छूटे वंद।
सुफलक-सुत वैरी भयौ हमकौं, लै गयौ आनँदकंद।
राम कृष्न बिन कैसैं जीजै, कठिन प्रीति कै फंद।
सूरदास मैं भई अभागिन, तुम बिनु गोकुलकंद ।।४०।।

अर्थ—(यशोदा कहती हैं) हे नंद! तुमने उलट कर पग कैसे रखा (अर्थात् तु॰ प्रत्यावर्तित कैसे हुए)? दोनो मनमोहन-पुत्रो को कहाँ छोड़ दिया? मन्द बुद्धि वाले! तुम्हारा जीवन धिक्कार है! क्या तुम धन-योवन के मद से मत्त हो अथवा क्या तुम बन्दीगृह से छूटे हो। अक्रूर हमारे वैरी हो गये, जो आनन्दकंद कृष्ण को ले गये। बलराम और कृष्ण के बिना कैसे जीवित रहे, प्रीति का फंदा बहुत मजबूत है। सूरदास कहते है कि गोकुलचंद तुम्हारे बिना मैं अभागिन हो गयी हूं ।।४०।।

दोउ ढोटा गोकुल-नायक मेरे।
काहैं नद छाँड़ि तुम आए, प्रान-जिवन सब केरे।
तिनकैं जात बहुत दुख पायौ, रोर परो इहिं खेरे।
गोसुत गाइ फिरत हैं दहूँ दिसि, वै न चरैं तृन घेरे।

प्रीति न करी राम दसरथ की, प्रान तजे बिनु हेरैं।
सूर नंद सौं कहति जसोदा, प्रबल पाप सब मेरैं ।।४१।।

अर्थ—मेरे दोनो-लड़के गोकुल के नायक हैं। सबके प्राणो को जिलाने वाले (उन बालकों को) नन्द तुम क्यो छोड़कर चले आये। उनके जाते समय बहुत दुख हुआ, इस गाँव में कोलाहल मच गया था। गोकुल मे गाय और बछडे दसो दिशाओ मे घूम रहे है, वे घेर रखने पर भी तृण नही चरते। दशरथ तथा राम की प्रीति तुमने नही की, जिन्होंने (राम को) न देखकर प्राण ही त्याग दिया था। सूरदास कहते हैं कि नन्द से यशोदा कहती हैं कि यह सब मेरे प्रबल पाप का (परिणाम) है ।।४१।।

नंद कहौ हो कहँ छाँड़े हरि।
लै जु गए जैसैं तुम ह्याँतैं, ल्याए किन वैसहिं आगैं धरि।
पालि पोषि मैं किए सयाने, जिन मारे गज मल्ल कंस अरि।
अब भए तात देवकी वसुद्यौ, बाँह पकरि ल्याये न न्याव करि।
देखौ दूध दही घृत माखन, मैं राखे सब वैसैं ही धरि।
अब को खाइ नंदनंदन बिनु, गोकुल मनि मथुरा जु गए हरि।
श्रीमुख देखन कौ ब्रजवासी, रहे ते घर आँगन मेरैं भरि।
सूरदास प्रभु के जु सँदेसे, कहे महर आँसू गदगद करि ।।४२।।

अर्थ—नन्द, कहो! (तुमने) कृष्ण को कहाँ छोडा। जैसे तुम यहाँ से ले गये थे वैसे ही आगे करके क्यो नही लाये। पाल-पोसकर (मैंने) उन्हे बड़ा किया, जिन्होने हाथी, मल्ल, तथा शत्रु कंस को मारा। अब उनके माता-पिता देवकी और वसुदेव हो गये! न्याय करके तुम हाथ पकड़कर (उन्हे) क्यो नही लाये। देखो मैंने दूध, दही, घी तथा मक्खन सब वैसे ही रख छोड़ा है। अब कृष्ण के वियोग मे (उन्हे) कौन खाय क्योंकि गोकुलमणि कृष्ण मथुरा चले गये। श्रीमुख को देखने के लिए ब्रज के निवासी मेरे आँगन मे भरे हैं। सूरदास कहते हैं कि प्रभु (कृष्ण) के संदेश को नन्द ने आँसू भरकर गद्‌गद् स्वर मे कहा ।।४२।।

जसुदा कान्ह कान्ह कै बूझै।
फूटि न गईं तुम्हारी चारौं, कैसैं मारग सूझै।
इक तौ जरी जात बिनु देखैं, अब तुम दीन्हौ फूँकि।
यह छतिया मेरे कान्ह कुँवर बिनु, फटि न भई द्वै टूक।
धिक तुम धिक ये चरन अहो पति, अध बोलत उठि धाए।
सूर स्याम बिछुरन की हम पै, दैन बधाई आए ।।४३।।

अर्थ—यशोदा 'कृष्ण-कृष्ण' कहकर पूछती हैं। तुम्हारी चारों आँखें (चर्मचक्षु तथा ज्ञानचक्षु) फूट क्यो नही गईं, तुम्हे मार्ग कैसे दिखाई दिया। एक तो विना देखे जली जा रही हूँ, अब तुमने और भी संतप्त कर दिया। यह छाती मेरे कुँवर कृष्ण के बिना फटकर दो टूक क्यों नही हो गयी। अहो पति! तुम धिक् हो तथा तुम्हारे चरणों

को धिक्कार है, जो आधा कहते ही उठकर दौड़ पड़े। (जल्दी वापस चल पडे)। सूरदास कहते हैं (यशोदा कहती हैं) कि कृष्ण के बिछुड़ने पर हमे बधाई देने चले आये ॥४३॥

नंद हरि तुमसौं कहा कह्यौ।
सुनि सुनि निठुर बचन मोहन के, कैसैं हृदय रह्यौ।
छाँड़ि सनेह चले मंदिर कत, दौरि न चरन गह्यौ।
दरकि न गई बज्र की छाती, कत यह सूल सह्यौ।
सुरति करत मोहन की बातैं, नैननि नीर बह्यौ।
सुधि न रही अति गलित गात भयौ, मन डसि गयौ अह्यौ।
उन्हैं छाँड़ि गोकुल कत आए, चाखन दूध दह्यौ।
तजे न प्रान सूर दसरथ लौं, हुतौ जन्म निबह्यौ ॥४४॥

अर्थ—हे नन्द! कृष्ण ने तुमसे क्या कहा। मोहन के निष्ठुर वचन सुनकर (तुम्हारा) हृदय कैसे (सुरक्षित) रहा। स्नेह छोड़कर घर की ओर कैसे चल पडे, दौड कर (कृष्ण के) चरण क्यो नही पकड़े। तुम्हारी वज्र जैसी छाती दरक (फट) नही गयी, इस शूल को कैसे सहन किया। मोहन की बाते स्मरण करने से (यशोदा) के नेत्रो से आंसू बहने लगे। उन्हे कुछ स्मरण न रहा, शरीर अत्यधिक गलित (क्षीण) हो गया, मानो सांप डस गया हो। (यशोदा कहती है) उन्हें छोड़कर गोकुल मे दूध, दही चखने क्यो चले आये। दशरथ की तरह प्राण क्यों नही छोड़ दिये। अगर ऐसा किया होता तो (तुम्हारे) जीवन का निर्वाह हो गया होता ॥४४॥

कहाँ रह्यौ मेरौ मनमोहन।
वह मूरति जिय तैं नहिँ बिसरति, अंग अंग सब सोहन।
कान्ह बिना गौवैं सब ब्याकुल, को ल्यावै भरि दोहन।
माखन खात खवावत ग्वालनि, सखा लिए सब गोहन।
जब वै लीला सुरति करति हौं, चित चाहत उठि जोहन।
सूरदास-प्रभु के बिछुरे तैं, मरियत है अति छोहन ॥४५॥

अर्थ—मेरा मनमोहन कहाँ रह गया। वह मूर्ति प्राण से विस्मृत नही होती, उसके अंग-अंग सुशोभित थे। कृष्ण के बिना सभी गाये व्याकुल है, दोहनी भरकर कौन ले आये। सब सखाओं को साथ लेकर मक्खन खाते और खिलाते थे। जब उन लीलाओ को याद करती हूँ तो चित्त कहता है कि उठकर देखूँ। सूरदास कहते हैं कि यशोदा कहती हैं कि मैं तो कृष्ण के वियोग के उत्पन्न होने से उनके अत्यधिक स्नेह से मरी जा रही हूँ ॥४५॥

गोपी वचन तथा ब्रजदशा

ग्वारनि कही ऐसी जाइ।
भए हरि मधुपुरी राजा, बड़े बंस कहाइ।

कोमल चरन-कमल कंटक कुस, हम उन पै बन गाइ चराई।
रंचक दधि कै काज जसोदा, बाँधे कान्ह उलूखल लाई।
इंद्र-प्रकोप जानि ब्रज राखे, बरुन फाँस तैं मोहिं मुकराई।
अपने तन-धन-लोभ कंस-डर, आगैं कै दीन्हे दोउ भाई।
निकट बसत कबहुँ न मिलि आयौ, इतै मान मेरी निठुराई।
सूर अजहुँ नातौ मानत हैं, प्रेम सहित करैं नंद-दुहाई ॥५४॥

अर्थ—कृष्ण की सेवा मे चूक हो गयी। इस अपराध का कहाँ तक वर्णन करूँ; ऐसा कह कहकर महर नंद पछताते हैं। कोमल चरण-कमल (वाले कृष्ण) से हमने कुश, कंटक से युक्त वन मे गाय चरवाया। तनिक से दही के कारण यशोदा ने उन्हे ओखली से लाकर बाँधा। इन्द्र के प्रकोप को जानकर (कृष्ण ने) व्रज की रक्षा की, वरुण के फन्दे से मुक्त किया। अपने तन-धन के लोभ से तथा कंस के डर से दोनो भाइयों को (कंस के) आगे कर दिया। निकट ही तो थे, (किन्तु) इतनी बड़ी निष्ठुरता हममे थी कि कभी मिल नही आया। सूरदास कहते हैं कि (कृष्ण) अभी भी नाता मानते है, प्रेम सहित नन्द की दुहाई देते (रहते) है ॥५४॥

लै आवहु गोकुल गोपालहिं।
पाइँनि परि क्यौं हूँ बिनती करि, छल बल बाहु बिसालहिं।
अब की बार नैंकु दिखरावहु, नंद आपने लालहिं।
गाइनि गनत ग्वार गोसुत सँग, सिखवत बैन रसालहिं।
जद्यपि महाराज सुख सपति, कौन गनै मनि लालहिं।
तदपि सूर वै छिन न तजत हैं, वा घुँघची की मालहिं ॥५५॥

अर्थ—कृष्ण को गोकुल ले जाओ। पाँव पड़कर, विनती करके, छल से (या) बल-पूर्वक किसी प्रकार विशाल भुजाओं (वाले) (कृष्ण को) (ले जाओ)। अब की वार हे नन्द ! तनिक अपने लाल को दिखा दो। ग्वाल-बछड़ों के साथ गाय की गिनती करते थे तथा रस-युक्त वाणी (सबको) सिखाते थे। यद्यपि वे सुख सम्पत्ति के महाराज है, (उनके यहाँ) मणि और लालों की गिनती कौन करे; फिर भी वे (कृष्ण) घुँघची की माला कभी नही त्यागते ॥५५॥

हौं तौ माई मथुरा ही पै जैहौं।
दासी ह्वै बसुदेव राइ की, दरसन देखत रैहौं।
राखि राखि एते दिवसनि मोहिं, कहा कियौ तुम नीकौ।
सोऊ तौ अक्रूर गए लै, तनक खिलौना जी कौ।
मोहिं देखि कै लोग हसैंगे, अरु किन कान्ह हँसै।
सूर असीस जाइ दैहौं, जनि न्हातहु बार खसै ॥५६॥

अर्थ—सखी ! मैं तो मथुरा ही जाऊँगी। वसुदेव राजा की दासी होकर (कृष्ण) को देखती रहूँगी। इतने दिनो मुझे रख-रखकर मेरी कौन सी भलाई तुमने की। उन्हे

तो अक्रूर लेकर गये, जो तनिक प्राणों के लिए खिलौने (बहलाने वाले) थे। मुझे देखकर लोग हँसी करेंगे और कृष्ण (ही) क्यो न हँसें। सूरदास कहते है (गोपी कहती है) कि जाकर कृष्ण को आशीर्वाद दूँगी कि नहाते समय भी उनका (कोई) बाल बाँका न हो ॥५६॥

पंथी इतनी कहियौ बात।
तुम बिनु इहाँ कुँवर वर मेरे, होत जिते उतपात।
बकी अघासुर टरत न टारे, बालक बनहिँ न जात।
ब्रज पिँजरी रुधि मानौ राखे, निकसन कौँ अकुलात।
गोपी गाइ सकल लघु दीरघ, पीत बरन कृस गात।
परम अनाथ देखियत तुम बिनु, केहिँ अवलंबै तात।
कान्ह कान्ह कै टेरत तब धौँ, अब कैसैँ जिय मानत।
यह व्यवहार आजु लौँ है ब्रज, कपट नाट छल ठानत।
दसहूँ दिसि तैँ उदित होत हैँ, दावानल के कोट।
आखिनि मूँदि रहत सनमुख ह्वै, नाम-कवच दै ओट।
ए सब दुष्ट हते हरि जेते, भए एकहीँ पेट।
सत्वर सूर सहाइ करौ अब, समुझि पुरातन हेट ॥५७॥

अर्थ—पथिक! जाकर इतनी (बात) कहना कि हे श्रेष्ठ कुंवर। तुम्हारे बिना यहाँ बडा उत्पात होता है। बकासुर तथा अघासुर टाले नही टलते, (जिसके कारण) बालक वन नही जाते। ब्रज रूपी पिंजडे मे मानो (वे) घेर कर रखे गये हैं तथा निकलने के लिए अकुलाते है। गोपी-गाय सभी छोटे-बडे पीले वर्ण के (तथा) दुबले हो गये है। तुम्हारे बिना सब परम अनाथ जान पड़ते हैं; हे तात! (वे) किसका अवलंब ग्रहण करे। तब तो कान्ह-कान्ह कहकर पुकारते थे, अब जी कैसे माने। यह व्यवहार आज तक ब्रज में है, (शत्रु) कपट तथा छल का नाटक ठानते हैं। दशों दिशाओ से दावाग्नि का समूह उदित होता है। सम्मुख होकर नाम रूपी कवच का ओट ग्रहण करके, आँखे बन्द करके (सब) रह जाते है। एक ही पेट से ये सब दुष्ट उत्पन्न (हुए थे) जिन्हे हरि ने नष्ट किया था। सूरदास कहते है कि (गोपी कहती है) पुराने प्रेम का स्मरण कर कृष्ण शीघ्र सहायता करो ॥५७॥

सँदेसौ देवकी सौँ कहियौ।
हौँ तौ धाइ तिहारे सुत की, मया करत ही रहियौ।
जदपि टेव तुम जानतिँ उनकी, तऊ मोहिँ कहि आवै।
प्रात होत मेरे लाल लड़ैतैँ, माखन रोटी भावै।
तेल उबटनौ अरु तातौ जल, ताहि देखि भजि जाते।
जोइ जोइ माँगत सोइ सोइ देती, क्रम क्रम करि कै न्हाते।

सूर पथिक सुनि मोहिँ रैनि दिन, बढ़्यौ रहत उर सोच।
मेरौ अलक लड़ैतौ मोहन, ह्वैहै करत सँकोच ॥५८॥

अर्थ—देवकी से यह संदेश कहना। मैं तो तुम्हारे पुत्र की धाय ही हूँ, किन्तु (तुम) प्रेम करते ही रहना। यद्यपि तुम उनकी जिद जानती हो तो भी मुझे कहना ही पड़ रहा है कि प्रातः होते ही मेरे लाल को माखन-रोटी ही अच्छी लगती है। तेल उबटन तथा गर्म जल देखकर भाग जाते थे। जो-जो माँगते थे वही-वही देती थी, (तब कही) क्रम-क्रम (कठिनाई) से नहलाती थी। सूरदास कहते हैं (यशोदा कहती हैं) कि पथिक, सुनो ! मेरे हृदय मे दिन-रात (इस बात का) सोच बढता है कि मेरा दुलारा पुत्र सकोच करता होगा ॥५८॥

मेरे कुँवर कान्ह बिनु सब कुछ, वैसैहिँ धर्‌यौ रहै।
को उठि प्रात होत लै माखन, को कर नेति गहै।
सूने भवन जसोदा सुत के, गुन गुनि सूल सहै।
दिन उठि घर घेरत ही ग्वारिनि, उरहन कोउ न कहै।
जो ब्रज मैं आनंद हुतौ, मुनि मनसा हू न गहै।
सूरदासी स्वामी बिनु गोकुल, कौड़ी हू न लहै ॥५९॥

अर्थ—मेरे कुँवर कृष्ण के बिना सब कुछ वैसे ही रखा रहता है। प्रातः उठकर कौन माखन ले और हाथ मे रई की रस्सी ग्रहण करे। पुत्र से शून्य घर में (पुत्र की) याद करके यशोदा दुख सहती हैं। दिन मे उठकर ग्वालिनियाँ घर घेरती थी, (किन्तु) अब कोई शिकायत नही करता। ब्रज मे जो आनन्द था उसे मुनि मन में भी नही सोच पाते। सूरदास कहते है (यशोदा कहती हैं) कि कृष्ण के बिना गोकुल कोडी के बराबर आनन्द भी नही देता ॥५९॥

गोपी विरह

चलत गुपाल के सब चले।
यह प्रीतम सौं प्रीति निरंतर, रहे न अर्ध पले।
धीरज पहिल करी चलिबैं की, जैसी करत भले।
धीर चलत मेरे नैननि देखे, तिहिँ छिनि आँसु हले।
आँसु चलत मेरी वलयनि देखे, भए अंग सिथिले।
मन चलि रह्यौ हुतौ पहिलैं ही, चले सबै बिमले।
एक न चलै प्रान सूरज प्रभु, अस लेहु साल सले ॥६०॥

अर्थ—कृष्ण के चलते समय सभी (अंग) चल पड़े। प्रीतम से निरंतर प्रीति के कारण (कोई) आधे पल भी नही रुके। चलने के लिए धैर्य ने पहल की; जैसे भले आदमी करते है नेत्रो ने धैर्य को जाते देखा तो उसी क्षण (नेत्रो से) आँसू बहने लगे। आँसुओ के चलते ही मेरे वलयों (चूडियो) ने देखा, और (वे भी) अंग मे शिथिल हो गये (कलाइयो के पतली पड़ जाने के कारण चूड़ियाँ भी हाथ से गिर गईं !)। मन तो पहले ही चल

चुका था; (इस प्रकार) सभी पवित्र लोग चले गये । सूरदास कहते है (कि) (यद्यपि) बिना छेद किए हुए (अ-सलेह्) (अर्थात् अत्यन्त कठोर जड पदार्थ भी) (कृष्ण के विरह की) पीड़ा (साल) से बिंध गए (द्रवी-भूत हो गए), (किन्तु) अकेले प्राण ही (अभी तक) नही चले (अर्थात् प्राणो का अन्त अभी नही हुआ !) ॥६०॥

करि गए थोरे दिन की प्रीति ।

कहँ वह प्रीति कहाँ यह बिछुरनि, कहँ मधुबन की रीति ।
अब की बेर मिलौ मनमोहन, बहुत भई विपरीति ।
कैसैं प्रान रहत दरसन बिनु, मनहु गए जुग बीति ।
कृपा करहु गिरिधर हम ऊपर, प्रेम रह्यौ तन जीति ।
सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन बिनु, भईं भुस पर की भीति ।।६१॥

अर्थ—(कृष्ण) थोड़े दिन का प्रेम करके चले गये । कहाँ वह प्रेम और कहाँ यह वियोग, और कहाँ मधुवन का व्यवहार (ये सब आश्चर्य उत्पन्न करने वाले है) । अब की वार कृष्ण फिर मिलो क्योंकि हमारी (दशा) बहुत विपरीत हो गयी । प्राण दर्शन के बिना कैसे रहते हैं, (लगता है) मानो युग बीत गया हो । कृष्ण हम पर कृपा करो क्योकि प्रेम ने (हमारे शरीर पर) विजय पा ली है । सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती हैं) कि कृष्ण ! तुम्हारे मिलन के विना हम भूसेपर की दीवाल के समान हो गयी है ॥६१॥

प्रीति करि दीन्ही गरैं छुरी ।

जैसैं बधिक चुगाइ कपट-कन, पाछैं करत बुरी ।
मुरली मधुर चेप काँपा करि, मोर चंद्र फँदवारि ।
बंक विलोकनि लगी, लोभ बस, सकी न पंख पसारि ।
तरफत छाँड़ि गए मधुबन कौं, बहुरि न कीन्ही सार ।
सूरदास प्रभु संग कल्पतरु, उलटि न बैठी डार ॥६२॥

अर्थ—प्रेम करके गले में छूरी लगा दी । जिस प्रकार वधिक कपट रूपी दाने चुगाकर (पकड़ लेने) के बाद बुरी (गत) बनाता है । (वैसे ही कृष्ण ने) मुरली तथा मधुर ध्वनि को क्रमशः लासा तथा बाँस की तीली बनाकर, (मुकुट के) मोर-चन्द्र के फंदे को डाल दिया । (हम लोग) लोभ-वश टेढी चितवन रूपी लग्गी (के कारण) पखों को फैला न सकी (अर्थात् हिल डुल न सकी) । फिर (कृष्ण) (हमे फँसाकर) तड़फती हुई छोड़कर मथुरा चले गये और फिर स्मरण नही किया । सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती है) कि प्रभु संग रूपी कल्पतरु को छोड़कर हम उलटकर उस डाल पर न बैठ सकी ॥६२॥

नाथ अनाथनि की सुधि लीजै ।

गोपी, ग्वाल, गाइ, गोसुत सब, दीन मलीन दिनहिं दिन छीजै ।
नैननि जलधारा बाढ़ी अति, बूड़त ब्रज किन कर गहि लीजै ।
इतनी बिनती सुनहु हमारी, बारक हूँ पतिया लिखि दीजै ।

चरन कमल दरसन नव नवका, करुनासिंधु जगत जस लीजै ।
सूरदास प्रभु आस मिलन की, एक बार आवन ब्रज कीजै ।।६३।।

अर्थ—स्वामी ! (हम) अनाथों की याद कीजिए । गोपी, ग्वाल, गाय बछड़े सभी दीन, मलिन हो गये हैं तथा दिन प्रतिदिन क्षीण होते जा रहे हैं । नैनों में जल-धारा इतनी बढ़ गयी है कि डूबते हुये ब्रज का हाथ पकड़ कर क्यों नहीं रक्षा कर लेते ? इतनी ही हमारी विनती सुन लो, (कम से कम) एक बार पत्र तो लिख दीजिए । नवीन चरण कमल के दर्शन रूपी नयी नौका देकर हे करुणा के सागर ! जग में यश लीजिए । सूरदास कहते है (गोपियाँ कहती हैं) कि मिलने की आशा (अभी विद्यमान है) । एक बार ब्रज आगमन तो कीजिए ।।६३।।

देखियत कालिंदी अति कारी ।
अहो पथिक कहियौ उन हरि सौं, भयी विरह जुर जारी ।
गिरि-प्रजक तैं गिरति धरनि धसि, तरँग तरफ तन भारी ।
तट बारू उपचार चूर, जल-पूर प्रस्वेद पनारी ।
बिगलित कच कुस काँस कुल पर, पक जू काजल सारी ।
भौंर भ्रमत अति फिरति भ्रमित गति, निसि दिन दीन दुखारी ।
निसि दिन चकई पिय जु रटति है, भई मनौ अनुहारी ।
सूरदास-प्रभु जो जमुना गति, सो गति भई हमारी ।।६४।।

अर्थ—यमुना अत्यन्त काली दिखाई देती है । हे पथिक ! उन हरि से कहना कि (यमुना) विरह के ज्वर से जल गयी है । पर्वत रूपी पलग से (यह) पृथ्वी पर गिरती है तथा इसके तन मे तरंग रूपी भारी तड़पन होती है । तट की बालू का चूर्ण ही उपचार का चूर्ण है, (यमुना की) जल-धारा ही निकलने वाला पसीना है । तट पर के कुस तथा कांस उसके बिखरे हुए केश है । पंक (कीचड़) ही (काली) मैली साड़ी है । भौंरे भ्रमित होकर इधर-उधर फिरते रहते है । (यही यमुना की) भ्रमित मति की दशा है; (वह) दुखी होकर इधर-उधर (घूमती) है दिवा-रात्रि चकई जो 'पी-पी' की रट लगाती रहती है, वही माना उसकी अन्तर्व्यथा सूचित करती है (प्रियतम-प्रियतम की रट लगाने वाली मुद्रा द्योतित कर रही है) । सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती है) कि जो यमुना की दशा है वैसी ही हमारी भी दशा हो गई है ।।६४।।

परेखौ कौन बोल कौ कीजै ।
ना हरि जाति न पाँति हमारी, कहा मानि दुख लीजै ।
नाहिंन मोर-चन्द्रिका माथैं, नाहिंन उर बरमाल ।
नहिँ सोभित पहुँपनि के भूपन, सुन्दर स्याम तमाल ।
नद-नँदन गोपी-जन-वल्लभ, अब नहिँ कान्ह कहावत ।
वासुदेव, जादवकुल-दीपक, बन्दी जन बरनावत ।

विसरयो सुख नातौ गोकुल को, और हमारे अंग ।
सूर स्याम वह गई सगाई, वा मुरली कैं संग ॥६५॥

अर्थ—उनकी किस बात का पश्चाताप किया जाये । कृष्ण हमारी जाति-पांति के तो है नही, (हम) क्या समझकर दुखी हो । न तो उनके सिर पर मयूर-चन्द्रिका वाला मुकुट है, न हृदय पर वनमाल है । तमाल (वृक्ष) (जैसे) श्यामसुन्दर पर पुष्पों के आभूषण शोभित नही है । अब कृष्ण नन्द-नन्दन तथा गोपीजन-वल्लभ नही कहे जाते है । (अब वे) बन्दीजनो से वासुदेव (वसुदेव के पुत्र) तथा यादव-कुल के दीपक के रूप मे वर्णित किये जाते है । उन्होने गोकुल के सुख-सम्बन्धो को तथा हमारे अंगो को भुला दिया । सूरदास कहते है (गोपियां कहती है) कि मुरली के साथ हमारी श्याम से सगाई समाप्त हो गई ॥६५॥

अब वै बातैं उलटि गईं ।
जिन बातनि लागत सुख आली, तेऊ दुसह भईं ।
रजनी स्याम स्याम सुन्दर सँग, अरु पावस की गरजनि ।
सुख समूह की अवधि माधुरी, पिय रस बस की तरजनि ।
मोर पुकार गुहार कोकिला, अलि गुंजार सुहाई ।
अब लागति पुकार दादुर सम, बिनही कुँवर कन्हाई ।
चन्दन चन्द समीर अगिन सम, तनहिं देत दव लाई ।
कालिन्दी अरु कमल कुसुम सब, दरसन ही दुखदाई ।
सरद वसंत सिसिर अरु ग्रीषम, हिम-रितु की अधिकाई ।
पावस जरैं सूर के प्रभु बिनु, तरफत रैन बिहाई ॥६६॥

अर्थ—(गोपियां कहती हैं) अब वे सभी बातें उलटी हो गईं । हे सखी ! जिन बातो से सुख मिलता था वे भी दुःसह हो गयी । पावस की गरज तथा श्याम सुन्दर के साथ काली रात (अब तो भयावह है), प्रेमाभिभूत (होकर) प्रिय की डांट मधुर सुख-पुंज की सीमा (थी) । (उस समय की) मोर की पुकार तथा कोयल की कूक तथा भ्रमर का गुंजन अब कृष्ण के विरह मे मेढक की (कर्कश) आवाज के समान जान पड़ती है । चदन, चन्द्रमा (तथा) (शीतल) समीर आग के समान तन मे दावाग्नि लगा देते है । यमुना और कमल पुष्प सर्व दर्शन से ही दुखदायी लगते है । शरद, वसंत, शिशिर और ग्रीष्म (आदि मे) हिम ऋतु की ही अधिकता है । पावस भी कृष्ण के बिना जलता हुआ प्रतीत होता है, तड़पते हुए ही रात बिताती हूं ॥६६॥

मिलि बिछुरन की बेद न न्यारी ।
जाहि लगै सोई पै जानै, विरह-पीर अति भारी ।
जब यह रचना रची विधाता, तबहीं क्यौं न सँभारी ।
सूरदास-प्रभु काहैं जिवाई, जनमत ही किन मारी ॥६७॥

अर्थ—उद्धव ! पत्र लेकर क्या करे ? जब तक कृष्ण को नही देखती, विरह छाती को जलाता है। (कृष्ण मुझे) पल-पल नही भूलते, (न तो) वह शरद ज्योत्सना की रात भूलती है। तुम कृष्ण के साथी होकर हमारी पीड़ा नही जानते हो। यह पत्र लेकर मधुपुर जाओ जहाँ वे अपने स्वजातियो के साथ रहते है। जो मेरा मन वहाँ लेकर चले गये, हम काम के कठिन बाण से घायल हो गयी। सूरदास कहते है (गोपियाँ कहती हैं)कृष्ण क्या अब भी पूर्व जैसी अच्छी लगने वाली करोड़ो प्रेम चर्चाये सुनना चाहते है ? एक बार फिर मुख दिखा दो क्योकि हम चरण की रज मे अनुरक्त रहती है ॥४५॥

भ्रमर गीत

इहिँ अन्तर मधुकर इक आयौ।
निज स्वभाव अनुसार निकट ह्वै, सुन्दर शब्द सुनायौ।
पूछन लागीँ ताहि गोपिका, कुबिजा तोहिँ पठायौ।
कीधौँ सूर स्याम सुन्दर कौँ, हमैँ सँदेसौँ लायौ॥४६॥

अर्थ—इसी बीच एक भ्रमर आया। अपने स्वभाव के अनुसार निकट होकर सुन्दर शब्द सुनाया। गोपियाँ उससे पूछने लगी कि कुबरी ने तुमको भेजा है (क्या), या तुम हमारे लिए श्याम सुन्दर का सन्देश ले आये हो ॥४६॥

(मधुप तुम) कहौ कहाँ तैँ आए हौ।
जानति हौँ अनुमान आपनै, तुम जदुनाथ पठाए हौ।
वैसेइ बसन, बरन तन सुंदर, वेइ भूषन सजि ल्याए हौ।
लै सरबसु सँग स्याम सिधारे, अब का पर पहिराए हौ।
अहो मधुप एकै मन सबकौ, सु तौ उहाँ लै छाए हौ।
अब यह कौन सयान बहुरि ब्रज, ता कारन उठि धाए हौ।
मधुबन की मानिनी मनोहर, तहीँ जात जहँ भाए हौ।
सूर जहाँ लौँ स्याम गात हैँ, जानि भले करि पाए हौ॥४७॥

अर्थ—भ्रमर, कहो तुम कहाँ से आये हो। अपने अनुमान से जानती हूँ कि तुम कृष्ण के द्वारा भेजे गये हो। वैसे ही वस्त्र है, शरीर का रंग भी सुन्दर है तथा उन्ही आभूषण से सजाए गए हो। सर्वस्व लेकर कृष्ण चले गये, अब किसे ले जाने के लिए भेजे गए हो। मधुप, सबके एक ही मन है जिसको (कृष्ण) लेकर वहाँ छाए हैं। अब यह कौन चतुराई है कि उनके (कृष्ण के) कारण पुनः ब्रज मे उठकर दौड़े आए हो। मधुबन की नारियाँ सुंदर हैं, आप वही क्यों नही चले जाते जहाँ अच्छे लगते हैं (प्रिय हो)। सूरदास कहते है जहाँ तक श्याम शरीर वाले हैं, उन्हे हमने अच्छी तरह से जान लिया है ॥४७॥

रहु रे मधुकर मधु मतवारे।
कौन काज या निरगुन सौँ, चिर जीवहु कान्ह हमारे।
लोटत पीत पराग कीच मैँ, बीच न अंग सम्हारे।
बारम्बार सरक मदिरा की, अपरस रटत उघारे।

तुम जानत हौ वैसी ग्वारिनि, जैसे कुसुम तिहारे।
घरी पहर सबहिनि बिरमावत, जेते आवत कारे।
सुदर बदन कमल-दल लोचन, जसुमति नंद-दुलारे।
तन मन सूर अरपि रहीं स्यामहिं, का पै लेहिं उधारे। ४८॥

अर्थ—मधु (शराब) मे मस्त रहने वाले हे मधुकर ! इस निर्गुण से क्या मतलब है, हमारे कृष्ण बहुत समय तक जीवित रहे। पीले मकरंद के कीचड़ मे लोटते हो तथा बीच में अंग नही सम्हालते। बार-बार मदिरा के नशे में रस-विरुद्ध बातें बकते हो। तुम जानते हो कि ग्वालिनियाँ वैसी ही है, जैसे तुम्हारे कुसुम हैं। जो घड़ी-पहर के लिए सभी काले लोगो (भ्रमरों) को बिरमाते है। हम सुन्दर मुख, कमल के समान नेत्र वाले कृष्ण को तन-मन अर्पित कर चुकी है। अब पुनः निर्गुण को अर्पण करने के के लिए तन-मन किससे उधार ले ॥४८॥

मधुकर हम न होहिं वै बेलि।
जिन भजि तजि तुम फिरत और रँग, करन कुसुम-रस केलि।
बारे तैं बर बारि बढ़ी हैं, अरु पोषी पिय पानि।
बिनु पिय परस प्रात उठि फूलत, होति सदा हित हानि।
ये बेली बिरहीं बृंदावन, उरझीं स्याम तमाल।
प्रेम-पुहुप-रस-बास हमारे, बिलसत मधुप गोपाल।
जोग समीर धीर नहिं डोलतिं, रूप डार दृढ़ लागीं।
सूर पराग न तजतिं हिए तैं, श्री गुपाल अनुरागीं ॥४९॥

अर्थ—मधुकर हम उन लताओ के समान नही है; जिन्हे छोड़कर भाग जाते हो और दूसरे रंग में रँगकर अन्य कुसुम के साथ केलि (क्रीडा) करने के लिए फिर जाते हो। बचपन से ही उपवन मे पानी पीकर पुष्ट हुई हैं, और (प्रियतम) के हाथो द्वारा पोषित हुई हैं। ये प्रिय के बिना स्पर्श के प्रातः फूल उठती है, जिसमे सदा हित की हानि होती है ! वृन्दावन की ये विरहिणी लताएँ (गोपिकाएँ) श्याम तमाल से उलझ गयी है। प्रेम रूपी पुष्प के रस से हमारे (भ्रमर) गोपाल कृष्ण बिलसते हैं। रूप की डालियों मे दृढ़ता पूर्वक लगी है (उलझ गई है), जो योग की हवा से हिलती नहीं हैं। सूरदास कहते है (गोपियाँ कहती है) निरन्तर श्री गोपालकृष्ण में अनुरक्त हम हृदय से पराग नही त्यागती हैं ॥४९॥

उद्धव गोपी संवाद

पहला संवाद

सुनौ गोपी हरि कौ संदेस।
करि समाधि अंतरगति ध्यावहु, यह उनकौ उपदेस।
वै अविगत अविनासी पूरन, सब-घट रहे समाइ।
तत्व ज्ञान बिनु मुक्ति नहीं है, वेद पुराननि गाइ।

सगुन रूप तजि निरगुन ध्यावहु,इक चित इक मन लाइ।
वह उपाइ करि बिरह तरौ तुम, मिलै ब्रह्म तब आइ।
दुसह सँदेस सुनत माधौ कौ, गोपी जन बिलखानी।
सूर बिरह की कौन चलावै, बूड़तिं मनु बिनु पानी ।।५०।।

अर्थ—गोपियो, कृष्ण का संवाद सुनो ! समाधि लगाकर अन्तर मे ध्यान करो, यही उनका संदेश है। वे अविगत, अविनाशी, पूर्ण तथा सभी घट मे व्याप्त है। वेद तथा पुराणो में गाया गया है कि तत्व-ज्ञान के बिना मुक्ति नही मिलती। चित्त मे (एकाग्र मन से) यह (विचार) लाकर, सगुण रूप को त्यागकर, निर्गुण का ध्यान करो। वही उपाय करो जिससे विरह को तर जाओ, तब ब्रह्म आकर मिल जायेगा। कृष्ण के दुसह संदेश को सुनकर गोपियां बिलखने लगी। सूरदास कहते है कि विरह को कौन चलाये वे मानो बिना पानी के डूब रही हों ।।५०।।

परी पुकार द्वार गृह-गृह तैं, सुनौ सखी इक जोगी आयौ।
पवन सधावन, भवन छुड़ावन, रवन-रसाल, गोपाल पठायौ।
आसन बाँधि, परम ऊरध चित, बनत न तिनिहिं कहा हित ल्यायौ।
कनक बेलि, कामिनी ब्रजबाला, जोग जगिनि दहिबे कौं धायौ।
भव-भय हरन, असुर मारन हित, कारन कान्ह मधुपुरी छायौ।
ब्रज मैं जादव एकौ नाहीं, काहैं उलटौ जस बिथरायौ।
सुथल जु स्याम धाम मैं बैठैं, अबलनि प्रति अधिकार जनायौ।
सूर बिसारी प्रीति साँवरे, भली चतुरता जगत हँसायौ ।।५१।।

अर्थ—घर-घर के द्वार से पुकार मच गयी कि सखियो सुनो ! एक योगी आया है। पवन (प्राणायाम) सिद्ध करने के लिए तथा भवन छुडाने के लिए रमण करने वाले रसाल कृष्ण ने भेजा है। आसन लगाकर, चित्त को ऊर्ध्वमुख करना उन्हे (श्रीकृष्ण को) शोभा नही देता; उन्हें योग से क्यों इस प्रकार का प्रेम हो गया ? सोने की लता (के समान) ब्रजबालाओ को योग की अग्नि पर दग्ध करने के लिए दौड़कर (आये है)। संसार के दुख को हरने वाले, असुरो को मारने के लिए कृष्ण मधुपुरी मे रह गए। ब्रज मे एक भी यादव नही, उलटे यश को क्यों बिखरा दिये। सुन्दर स्थल तथा भवन मे बैठे कृष्ण अबलाओ के प्रति अपना अधिकार जमा दिये। सूरदास कहते है कि (गोपियां कहती है) सांवले कृष्ण प्रीति को विस्मृत कर गए, अपने इस भले चातुर्य से संसार मे परिहास करा दिया ।।५१।।

देन आए ऊधौ मत नीकौ।
आवहु री मिलि सुनहु सयानी, लेहु सुजस कौ टीकौ।
तजन कहत अंबर आभूषन, गेह नेह सुत ही कौ।
अंग भस्म करि सीस जटा धरि, सिखवत निरगुन फीकौ।

मेरे जान यहै जुवतिनि कौ, देत फिरत दुख पी कौ।
ता सराप तैं भयौ स्याम तन, तउ न गहत डर जी कौ।
जाकी प्रकृति परी जिय जैसी, सोच न भली बुरी कौ।
जैसैं सूर ब्याल रस चाखैं, मुख नहिँ होत अमी कौ ॥५२॥

अर्थ—उद्धव सुन्दर मत देने को आये है। चतुर सखियों आओ, सब मिलकर सुनो तथा सुयश का टीका लो। (ऊधो) वस्त्र, आभूषण तथा घर, स्नेह और पुत्र को भी छोडने को कहते है। अंग मे भस्म लगाने की, सिर पर जटा धारण करने की तथा फीके निर्गुण की सीख देते है। मेरी समझ में ये युवतियों को इसी प्रकार दुख देते फिरते हैं। उसी शाप से ये काले शरीर वाले हो गये हैं, तब भी हृदय मे डर नही ग्रहण करते। जिसका जैसा स्वभाव होता है, वह भी वैसा ही हो जाता है, उसे भले बुरे की सोच नही रहती है। सूरदास कहते हैं कि (गोपियाँ कहती हैं) सर्प अमृत रस को कितना भी चखे किन्तु उसका मुख अमृतमय नही होता ॥५२॥

प्रकृति जो जाकैं अंग परी।
स्वान पूँछ कोउ कोटिक लागै, सूधी कहूँ न करी।
जैसैं काग भच्छ नहिँ छाँड़ै, जनमत जौन घरी।
धोए रंग जात नहिँ कैसेहुँ, ज्यौं कारी कमरी।
ज्यौं अहि डसत उदर नहिँ पूरत, ऐसी धरनिँ धरी।
सूर होइ सो होइ सोच नहिँ, तैसेइ एऊ री ॥५३॥

अर्थ— जिसके शरीर का जैसा स्वभाव हो गया है, (वह) वैसा ही रहता है। कुत्ते की पूँछ को कोई लाख प्रयत्न करे लेकिन उसे सीधी नही कर सकता। जैसे कौवा जिस घड़ी जन्म लेता है, उसी घड़ी से अभच्छ्य नही त्यागता। जैसे काली कमरी का रंग धोने से नही जाता है। जैसे साँप के डसने से कभी उसकी उदरपूर्ति (संतोष) नही होती, किन्तु डसने की उसने ऐसी टेक पकड़ ली है। सूरदास कहते है कि (गोपियाँ कहती है) जो होना हो उसकी चिंता नही, वैसे ही ये (उद्धव) भी है ॥५३॥

समुझि न परति तिहारी ऊधौ।
ज्यौं त्रिदोष उपजैं जक लागत, बोलत बचन न सूधौ।
आपुन कौ उपचार करौ अति, तब औरनि सिख देहु।
बड़ौ रोग उपज्यौ है तुमकौं, भवन सबारैं लेहु।
ह्वाँ भेषज नाना भाँतिन के, अरु मधु-रिपु से बैद।
हम कातर डरपतिँ अपनैं सिर, यह कलंक है खेद।
साँची बात छाँड़ि अलि तेरी, झूठी को अब सुनिहै।
सूरदास मुक्ताहल भोगी, हंस ज्वारि क्यौं चुनिहै ॥५४॥

अर्थ—उद्धव ! तुम्हारी (बात) समझ में नही आती। जैसे बात-पित्त तथा कफ के समन्वय से एक जक उत्पन्न हो जाती है, वैसे ही तुम शुद्ध (सीधी) बात नही

बोलते हो। (पहले) अपना उपचार करो, तब औरो को सीख दो। तुमको कोई बड़ा रोग उत्पन्न हो गया है, शीघ्र ही घर के लिए रवाना हो जाओ; वहाँ अनेक प्रकार की दवाइयाँ तथा कृष्ण जैसा वैद्य है। हम कातर होकर डरती हैं कि कहीं अनिष्ट का कलंक हमारे सिर पर न मढा जाय, इसका हमें खेद (भी) है। सच्ची बात को छोड कर भ्रमर तुम्हारी बात कौन सुनेगा ? सूरदास कहते है कि (गोपियाँ कहती है) मुक्ताफल का भोगी हंस ज्वार (अन्न) को क्यों चुनेगा ॥५४॥

उधौ हम आजु भईं बड़ भागी।
जिन अँखियन तुम स्याम बिलोके, ते अँखिया हम लागीं।
जैसें सुमन बास लै आवत, पवन मधुप अनुरागी।
अति आनंद होत है तैसें, अंग-अंग सुख रागी।
ज्यौं दरपन मैं दरस देखियत, दृष्टि परम रुचि लागी।
तैसें सूर मिले हरि हमकौं, विरह-विथा तन त्यागी ॥५५॥

अर्थ—उद्धव ! आज हम बड़ी भाग्यशालिनी हो गयी, क्योकि जिन आँखों से तुमने कृष्ण को देखा था, वे आँखे हमारे शरीर को लग गयी (देखा)। जैसे भौरे के प्रिय सुमन की गंध की हवा ले आती है, वैसे ही तुम्हें देखकर अत्यधिक आनंद हो रहा है तथा अंग-अंग सुख मे रँग गया (है)। जैसे शीशे मे दर्शन करने से दृष्टि परम रुचिकर लगती है, वैसे ही कृष्ण हमको मिले, हमारे शरीर ने विरह की व्यथा को त्याग दिया ॥५५॥

(अलि हौं) कैसें कहौं हरि के रूप रसहिं।
अपने तन मैं भेद बहुत विधि, रसना जानै न नैन दसहिं।
जिन देखे ते आहिं बचन बिनु, जिनहिं बचन दरसन न तिसहिं।
बिनु बानी ये उमँगि प्रेम जल, सुमिरि-सुमिरि वा रूप जसहिं।
बार-बार पछितात यहै कहि, कहा करौं जो विधि न बसहिं।
सूर सकल अगनि की यह गति, क्यौं समुझावैं छपद पसुहिं ॥५६॥

अर्थ—(भ्रमर हम) कृष्ण के रूप रस को कैसे कहे ? अपने (ही) शरीर मे अनेक प्रकार के भेद है, क्योकि जीभ, नेत्रो की दशा को नही जानती। जिसने देखा वे वचन (वाणी) रहित हैं, जिनके वचन है उन्हे दृष्टि नही है (देखने मे असमर्थ हैं)। बिना वाणी (के नेत्रो मे) उस रूप-यश का स्मरण कर-कर के प्रेम जल उमडता रहता है। बार-बार यही कहकर पछताती हूँ, क्या करूँ विधाता से वश नही है। सूरदास कहते है कि (गोपियाँ कहती है) समस्त अंगो की यही गति है, इस मूर्ख (पशु) भ्रमर को कैसे समझाये ॥५६॥

हम तौ सब बातनि सचु पायौ।
गोद खिलाइ पिवाइ देह पय, पुनि पालनै झुलायौ।
देखति रही फनिग की मनि ज्यौं, गुरुजन ज्यौं न भुलायौ।
अब नहिं समुझति कौन पाप तैं, बिधना सो उलटायौ।

बिनु देखैं पल-पल नहिं छन-छन, ये ही चित ही चायौ।
अबहिं कठोर भए ब्रजपति-सुत, रोवत मुँह न धुवायौ।
तब हम दूध दही के कारन, घर-घर बहुत खिझायौ।
सो अब सूर प्रगट ही लाग्यौ, योगऽरु ज्ञान पठायौ ।।५७।।

अर्थ—हमने तो सभी बातो मे सुख प्राप्त किया। (कृष्ण को) गोद मे खिलाकर, अपने शरीर का (स्व-स्तन का) दूध पिलाकर, फिर झूले पर झुलाया। सर्प की मणि की तरह (उन्हे) देखती रही तथा अभिभावक की तरह उपेक्षित नही किया। अब नही समझती हूँ कि किस पाप से विधाता ने वह (सब कुछ) उलट दिया। बिना देखे पल-पल, क्षण-क्षण नही (बीतता); यही (देखने की) इच्छा (चित्त में) बनी रहती है। अब कृष्ण कठोर हो गये है तथा रोते हुए हमें मुँह नही धुवाते (आश्वस्त नही करते)। तब तो हमे दूध-दही के कारण घर-घर मे बहुत खिझाया, वह सब अब प्रत्यक्ष ही हो गया (उन्होने) योग और ज्ञान भेज दिया ।।५७।।

मधुकर कहिऐ काहि सुनाइ।
हरि बिछुरत हम जिते सहे दुख, जिते बिरह के घाइ।
बरु माधौ मधुबन ही रहते, कत जसुदा कैं आए।
कत प्रभु गोप-बेष ब्रज धरि कैं, कत ये सुख उपजाए।
कत गिरि धर्यौ, इंद्र मद मेट्यौ, कत बन रास बनाए।
अब कहा निठुर भए अबलनि कौं, लिखि लिखि जोग पठाए।
तुम परबीन सबै जानत हौ, तातैं यह कहि आई।
अपनी को चालै सुनि सूरज, पिता जननि बिसराई ।।५८।।

अर्थ—मधुकर किसको सुनाकर कहें। हरि के बिछुड़ते हुए हमने जितना दुख सहा तथा जितने विरह के घाव हुए (वे सब अकथनीय) है। अच्छा होता कृष्ण मधुवन मे ही रहते, यशोदा के यहाँ क्यों आये। कृष्ण क्यों गोप का वेष धारण कर के ब्रज मे इतने सुखो को उपजाया। किसलिए उन्होंने पर्वत को धारण किया तथा इन्द्र के गर्व को मिटाया तथा किसलिए रास रचाया। अब अबलाओ के प्रति कैसे निष्ठुर हो गये और लिख-लिखकर योग भेजा है। तुम प्रवीण हो, उसी से यह कह दिया। सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती है) कि हमारी कौन चलाये (कृष्ण ने) अपने पिता-माता को ही भुला दिया ।।५८।।

दूसरा संवाद

जानि करि बावरो जनि होहु।
तत्व भजे वैसी ह्वै जैहौ, पारस परसैं लोहु।
मेरौ बचन सत्य करि मानौ, छाँड़ौ सबकौ मोहु।
तौ लगि सब पानी की चुपरी, जौ लगि अस्थित दोहु।

अरे मधुप ! बातैं ये ऐसी, क्यौं कहि आवतिं तोह।
सूर सुवस्ती छाड़ि परम सुख, हमैं बतावत खोह ॥५६॥

अर्थ—जानकर पागल मत बनो। तत्व का भजन करने से वैसी (तत्ववद्) हो जाओगी जैसे पारस पत्थर को स्पर्श करके लोहा सोना हो जाता है। मेरी बात को सत्य मानो तथा सभी मोह को छोड़ दो। तब तक सब पानी की चुपड़ी है जब तक द्वैत भाव स्थित है। (गोपियां उत्तर देती हैं) अरे मधुप ऐसी बाते तुमसे कैसे कही जा रही हैं। तुम सुन्दर निवास तथा परम सुख को छोड़कर हमे कन्दरा में योगासन के लिए स्थान बता रहे हो ॥५६॥

ऊधौ हरि गुन हम चकडोर।
गुन सौं ज्यौं भावै त्यौं फेरौ, यहै बात कौ ओर।
पैंड़ पैंड़ चलियै तो चलियै, ऊबट रपट पाइ।
चकडोरी की रीति यहै फिरि, गुन हीं सौं लपटाइ।
सूर सहज गुन ग्रन्थि हमारैं, दई स्याम उर माहिँ।
हरि के हाथ परै तौ छूटै, और जतन कछु नाहिँ ॥६०॥

अर्थ—उद्धव हम कृष्ण (के गुण) रूपी डोर के साथ घूमने वाली लट्टू हैं। उस गुण (डोरी) से जैसे चाहो वैसा फिरा दो, यही इस बात का अन्त है। रास्ते-रास्ते चलिये तो ठीक है, कुराह चलने से पद छिल जाते हैं। लट्टू का यही गुण है कि नाचने के बाद वह फिर गुण (डोरी) से ही लिपट जाता है। सूरदास कहते हैं कि (गोपियां कहती हैं) कृष्ण ने हमारे हृदय में गुण (की डोरी) की सहज-गांठ लगा दी है। कृष्ण के हाथ मे पड़ने पर ही छूट सकती है और अन्य कोई उपाय नही है ॥६०॥

उलटी रीति तिहारी ऊधौ, सुनै सो ऐसी को है।
अलप वयस अबला अहीरि सठ, तिनहिँ जोग कत सोहै।
बूचो खुभी, आँधरी काजर, नकटी पहिरै वेसरि।
मुड़ली पटिया पारौ चाहै, कोढ़ी लावै केसरि।
बहिरी पति सौं मतौ करै तौ, तैसोइ उत्तर पावै।
सो गति होइ सबै ताकी जो, ग्वारिनि जोग सिखावै।
सिखई कहत स्याम की बतियाँ, तुमकौं नाहीं दोष।
राज काज तुम तैं न सरैगो, काया अपनी पोष।
जाते भूलि सबै मारग मैं, इहाँ आनि का कहते।
भली भई सुधि रही सूर, नतु मोह धार मैं बहते ॥६१॥

अर्थ—उद्धव तुम्हारी उल्टी रीति को यहां कौन (गोपी) है जो सुन सकती है। अल्प आयु वाली, बुद्धिहीन, अबला अहीर की स्त्रियो को योग कैसे शोभित होगा। बूची (कान रहित) को खुभी (कान का आभूषण), अन्धी को काजल तथा नकटी बेसर पहने (यह ठीक नही है)। बाल रहित स्त्री मांग काढ़ना चाहे तथा कोढ़ी केसर का लेप

करे तथा बहरी स्त्री पति से यदि परामर्श करे तो उसे उत्तर भी उसी प्रकार मिलेगा (उसे निराश होना पड़ेगा)। उसकी ये सभी गतियाँ होंगी जो ग्वालिनो को योग सिखाता है। (तुम) कृष्ण की सिखायी बात कर रहे हो इसलिए तुम्हे दोष नही है। (कृष्ण तुमसे) राज्य-कार्य नही चलेगा, अपने शरीर का पालन करो। सूरदास कहते है (गोपियाँ कहती हैं) (कृष्ण) मार्ग में सब कुछ भूल जाते, यहाँ आकर क्या कहते ! अच्छा ही हुआ ख्याल बना रहा नही तो मोह की धारा में बह जाते ॥६१॥

अँखियाँ हरि दरसन की प्यासी।
देख्यौ चाहतिं कमलनैन कौं, निसि-दिन रहतिं उदासी।
आए ऊधौ फिरि गए आँगन, डारि गए गर फाँसी।
केसरि तिलक मोतिनि की माला, वृन्दावन के वासी।
काहू के मन की कोउ जानत, लोगनि के मन हाँसी।
सूरदास-प्रभु तुम्हरे दरस कौं, करवट लैहौं कासी ॥६२॥

अर्थ—आंखे कृष्ण के दर्शन के लिए प्यासी हैं। कमल नयन (कृष्ण को) देखना चाहती हैं इसीलिए दिन-रात उदास रहती हैं। हे उद्धव, वृन्दावन के वासी (श्री कृष्ण) केसर का तिलक लगाए हुए और मोतियों की माला पहने हुए एक दिन हमारे आंगन मे आए और गले मे फांसी देकर (वियोग की असह्य पीड़ा देकर) चले गये। किसी के मन को कोई जानता है ? लोगों के मन मे हँसी ही रहती है। सूरदास कहते हैं कि (गोपियाँ कहती हैं) कृष्ण तुम्हारे दर्शन के लिए काशी मे करवट (व्रत) ले लूंगी ॥६२॥

जब तैं सुंदर वदन निहार्यौ।
ता दिन तैं मधुकर मन अटक्यौ, बहुत करी निकरै न निकारचौ।
मातु, पिता, पति, बंधु, सुजन नहिं, तिन्हूँ कौ कहिबौ सिर धारचौ।
रही न लोक लाज मुख निरखत, दुसह क्रोध फीकौ करि डारचौ।
ह्वै वौ होइ सु होइ कर्मबस, अब जी कौ सब सोच निबारचौ।
दासी भई जु सूरदास प्रभु, भलौ पोच अपनौ न बिचारचौ ॥६३॥

अर्थ—जब से सुन्दर मुख को निहारा, उसी दिन से (हे) भ्रमर मन उलझ गया, निकालने का बहुत प्रयास किया, लेकिन निकला नही। माता, पिता, भाई तथा स्वजनों का भी कहना स्वीकार नही किया। कृष्ण का मुख देखते ही लोक-लज्जा नही रही (नष्ट हो गई), दुःसह क्रोध ने फीका कर डाला। कर्म के अनुसार जो होना होगा होगा, अब मन की सभी चिन्ताएँ दूर कर दी क्योकि कृष्ण की जो दासी हो गयी उसने अपना अच्छा-बुरा कुछ भी विचार नही किया ॥६३॥

और सकल अंगनि तैं ऊधौ, अँखियाँ अधिक दुखारी।
अतिहिं पिरातिं सिरातिं न कबहूँ, बहुत जतन करि हारी।
मग जोवत पलकौ नहिं लावतिं, बिरह बिकल भईं भारी।
भरि गइ बिरह बयारि दरस बिनु, निसि दिन रहतिं उघारी।

ते अलि अब ये ज्ञान सलाकैं, क्यौं सहि सकतिं तिहारी।
सूर सु अंजन आँजि रूप रस, आरति हरहु हमारी ॥६४॥

अर्थ—उद्धव समस्त अंगों की अपेक्षा आँखे अधिक दुखी हैं। वे अत्यधिक पीड़ा करती है। बहुत यत्न करके हार गयी लेकिन वे शीतल नही होती। रास्ता देखते हुए पलके भी नही लगती तथा विरह से अत्यधिक व्याकुल हो गईं। दर्शन के बिना उनमें विरह की हवा भर गयी है इसलिए रात-दिन खुली रहती हैं। हे भ्रमर! (उद्धव) अब तुम्हारे ज्ञान की शलाका ये कैसे सह सकती है। सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती हैं) सुन्दर रूप रस के अंजन को इनमें आँजकर हमारे दुख को दूर करो ॥६४॥

उपमा नैन एक न रही।
कवि जन कहत कहत सब आये, सुधि कर नाहि कही।
कहि चकोर बिधु मुख बिनु जीवत, भ्रमर नहीं उड़ि जात।
हरि-मुख कमल कोष बिछुरे तैं, ठाले कत ठहरात।
ऊधौ बधिक ब्याध ह्वै आए, मृग सम क्यौं न पलात।
भागि जाहिं बन सघन स्याम मैं, जहाँ न कोऊ घात।
खंजन मन-रंजन न होहिं ये, कबहुँ नहीं अकुलात।
पंख पसारि न होत चपल गति, हरि समीप मुकुलात।
प्रेम न होइ कौन बिधि कहियै, झूठैं हीं तन आड़त।
सूरदास मीनता कछू इक, जल भरि कबहुँ न छाँड़त ॥६५॥

अर्थ—आंखो की किसी से समानता नही रह गयी। कवि लोग कहते आये लेकिन (किसी ने) सोच कर नही कहा। (इन्हे) चकोर कहा जाय (किन्तु यह भी उचित नही है (क्योकि ये) कृष्ण मुख रूपी चन्द्रमा को देखे बिना जीवित रहती हैं। भ्रमर भी नही है नही तो उड जाते क्योकि कृष्ण रूपी कमल कोश के बिछुड़ जाने पर व्यर्थ क्यो ठहरे रहते? उद्धव वधिक तथा व्याध के समान आये हैं, ये मृग के समान भाग क्यों नही जाते? श्याम रूपी सघन बन मे भाग जांय, जहां कोई भय नही है। ये मन के अच्छे लगने वाले खंजन पक्षी भी नही हैं क्योकि ये कभी आकुल नही होते तथा पंख पसार कर ये चंचल गति नही होते, और न ही कृष्ण के आगे मुकुलित ही होते हैं। किस तरह कहा जाय इन्हे प्रेम नही है, ये व्यर्थ शरीर को रोके हैं। सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती हैं) इनमे मछली के गुण कुछ मात्रा मे हैं। क्योकि जल-भरना कभी नही छोडते ॥६५॥

ऊधौ अँखियाँ अति अनुरागी।
इकटक मग जोवतिं अरु रोवतिं, भूलेहुँ पलक न लागी।
बिनु पावस पावस करि राखी, देखत हौ बिदमान।
अब धौं कहा कियौ चाहत हौ, छाँड़ौ निरगुन ज्ञान।

तुम हौ सखा स्याम सुंदर के, जानत सकल सुभाइ ।
जैसैं मिलैं सूर के स्वामी, सोई करहु उपाइ ।।६६।।

अर्थ—उद्धव, आंखें अत्यन्त अनुरक्त हैं। टकटकी लगाकर रास्ता देखती हैं, भूल से भी पलक नही लगती। पावस ऋतु के बिना ही (आंसू की वर्षा करके) पावस बना दिया है (तुम) इसे प्रत्यक्ष देख रहे हो। अब क्या करना चाहते हो। निर्गुण ज्ञान को छोड़ दो। तुम श्याम सुन्दर के मित्र हो, समस्त स्वभाव को जानते हो। सूरदास कहते हैं (गोपी कहती है) कि कृष्ण जैसे भी मिल जायँ, वैसा उपाय करो ।।६६।।

सब खोटे मधुबन के लोग ।
जिनके संग स्याम सुंदर सखि, सीखे हैं अपजोग ।
आए हैं ब्रज के हित ऊधौ, जुवतिनि कौ लै जोग ।
आसन, ध्यान नैन मूँदे सखि, कैसैं कढ़ै बियोग ।
हम अहीरि इतनी का जानैं, कुबिजा सौं संजोग ।
सूर सुवैद कहा लै कीजै, कहैं न जानै रोग ।।६७।।

अर्थ—मधुवन के सभी लोग खोटे (बुरे, दुष्ट) है, सखी जिनके साथ कृष्ण ने बुरा योग (दुखद योग शास्त्र की बाते) सीखा है। उद्धव ब्रज मे युवतियो को योग लेकर आए हैं। आसन, ध्यान तथा आंखे बन्द करने से वियोग कैसे दूर हो (निकल) सकता है। हम अहीर की लड़कियां इतना क्या जाने कि (कृष्ण का) कुबरी से संयोग हुआ है। सूरदास कहते हैं (गोपियां कहती हैं) सुन्दर वैद्य कहां तक (प्रयास करे) बिना कहे रोग को नही जानता ।।६७।।

मधुबन लोगनि को पतियाइ ।
मुख औरै अंतरगति औरै, पतियाँ लिखि पठवत जु बनाइ ।
ज्यौं कोइल सुत-काग जियावै, भाव भगति भोजन जु खवाइ ।
कुहुकि कुहुकि आऐं बसत रितु, अंत मिलै अपने कुल जाइ ।
ज्यौं मधुकर अंबुज-रस चाख्यौ, बहुरि न बूझे बातैं आइ ।
सूर जहाँ लगि स्याम गात हैं, तिनसौं कीजै कहा सगाइ ।।६८।।

अर्थ—मधुबन के लोगों पर कौन विश्वास करे ? मुख में (कुछ) और है, हृदय मे कुछ और तथा पत्र मे कुछ और (बनाकर) लिखकर भेजते है। जैसे कोयल के पुत्र को भाव, भक्ति तथा भोजन कराके कौआ जिलाता है, किन्तु बसन्त ऋतु आने पर अन्त मे कुहुक-कुहुक कर जाकर अपने कुल से मिल जाता है। जैसे भ्रमर कमल रस को चखकर फिर आकर बाते नही पूछता है। सूरदास कहते हैं (गोपियां कहती हैं) जहां तक सांवले शरीर वाले हैं, उनसे कैसे [illegible] जाय ।।६८।।

आए जोग सिख

परमारथी पुराननि ला[illegible]

हमरे गति-पति कमल-नयन की, जोग सिखैं ते राँड़े।
कहौ मधुप कैसे समाहिंगे, एक म्यान दो खाँड़े।
कहु षट्पद कैसैं खैयतु है, हाथिन के सँग गाँड़े।
काकी भूख गई बयारि भषि, विना दूध घृत माँडे।
काहे कौं झाला लै मिलवत, कौन चोर तुम डाँड़े।
सूरदास तीनौ नहिं उपजत, धनिया, धान कुम्हाँड़े ॥६९॥

अर्थ—आज पाण्डेय (पंडित) योग सिखाने आये है। (व्यावसायिक) सामग्रियो से लदे हुए बैल की तरह परामर्श तथा पुराणो को लादे हैं। हमारी गति (सम्बन्ध) कमल-नेत्र (कृष्ण) पति से है योग सीखने वाली (कुब्जा जैसी कोई अन्य पतिहीन) वेश्याये ही है। मधुप कहो, एक म्यान मे दो तलवार कैसे समा सकती है। हे भ्रमर, बताओ, हाथियो के साथ ईख के टुकडे कैसे खाये जा सकते हैं? दूध-घृत और मीठी रोटी के बिना किसकी भूख हवा खाकर पूरी हुई है। क्यो अनर्गल बकवास करते हो, तुम कौन ऐसे चोर हो जिसे (झूठ बोलने के कारण) दण्डित किया जायेगा। सूरदास कहते हैं (गोपियां कहती हैं) कि धनिया, धान और कुम्हडा तीनों एक समान भूमि पर नही उत्पन्न होते ॥६९॥

तीसरा संवाद

ज्ञान बिना कहुँवै सुख नाहीं।
घट घट व्यापक दारु अगिनि ज्यौं, सदा बसै उर माहीं।
निरगुन छाँड़ि सगुन कौं दौरतिं, सुधौं कहौ किहिं पाहीं।
तत्व भजौ जो निकट न छूटै, ज्यौं तनु तैं परछाहीं।
तिहि तैं कहौ कौंन सुख पायौ, जिहिं अब लौं अवगाहीं।
सूरदास ऐसैं करि लागत, ज्यौं कृषि कीन्हे पाहीं ॥७०॥

अर्थ—ज्ञान के बिना कही भी सुख नही है। काठ मे गुप्त अग्नि की भाँति वह घट-घट मे व्याप्त है तथा हृदय में सदा निवास करता है। निर्गुण को छोडकर सगुण की ओर दौडती हो वह तो, कहो किसके पास है। शरीर से निकट परछाईं की भाँति उस निकटतम (आत्मब्रह्म) की उपासना करो, वह (सन्निकट) छूटने (योग्य) नही है। उनसे क्या-क्या सुख पाया जिनका (जिन कृष्ण का) अब तक अवगाहन (अनुगमन) किया। सूरदास कहते है कि (उद्धव कहते हैं) यह ऐसे ही लगता है, जैसे पाही (जोत से दूर बाहर की हुई खेती) मे की गई खेती ॥७०॥

ऊधौ कही सु फेरि न कहिऐ।
जौ तुम हमैं जिवायौ चाहत, अनबोले ह्वै रहिऐ।
प्रान हमारे घात होत है, तुम्हरे भाऐं हाँसी।
या जीवन तैं मरन भलौ है, करवट लैहैं कासी।

पूरब प्रीति सँभारि हमारी, तुमकौं कहन पठायौ।
हम तौ जरि बरि भस्म भई तुम, आनि मसान जगायौ।
कै हरि हमकौं आनि मिलावहु, कै लै चलिये साथैं।
सूर स्याम विनु प्रान तजति हैं, दोष तुम्हारे माथैं ।।७१।।

अर्थ—उद्धव, (जो तुमने) कहा (उसे) फिर न कहिए। यदि हमे जिलाना चाहते हो तो विना बोले ही रहिए। हमारे प्राण पर आघात हो रहा है, तुम्हारे लिये परिहास है। इस जीवन से मरना ही अच्छा है (अतः) काशी मे करवट व्रत ले लेंगी। हमारी पूर्व प्रीति को सम्हालकर तुम्हे (कृष्ण ने) कहने भेजा है। हम तो जल बलकर भस्म हो गयी और तुम श्मशान (पर बैठकर मृत व्यक्ति की) सिद्धि कर रहे हो। या तो कृष्ण को हमसे मिला दीजिए या हमे साथ ले चलिए। सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती हैं) कृष्ण के विना प्राण छोडती हूँ, दोष तुम्हारे मस्तक पर है ।।७१।।

घर ही के बाढ़े रावरे।
नाहिन मीत-वियोग बस परे, अनब्यौंगे अलि बावरे।
बरु मरि जाइ चरैं नहिं तिनुका, सिंह को यहै स्वभाव रे।
स्रवन सुधा-मुरली के पोषे, जोग जहर न खवाब रे।
ऊधौ हमहिं सीख कह दैहौ, हरि बिनु अनत न ठाँव रे।
सूरदास कहा लै कीजै, थाही नदिया नाव रे ।।७२।।

अर्थ—आप घर ही में शेखी मारने वाले हैं। मित्रता और वियोग के वश मे नही पडे हो अतः मूर्ख अलि (उद्धव) अभी अनुभवहीन हो। चाहे मर जाय, लेकिन तिनका नही चरता, सिंह का यही स्वभाव है। मुरली के अमृत रस से पोषित कानों को योग का जहर न खिलाओ। उद्धव! हमे क्या शिक्षा दोगे, कृष्ण के विना अन्यत्र स्थान नही है। सूरदास कहते है (गोपियाँ कहती हैं) कि थाही हुई नदी (ऐसी नदी पैदल पार किया जा सकता है) के लिये नाव लेकर क्या किया जाय ।।७२।।

हमकौं हरि की कथा सुनाउ।
ये आपनी ज्ञान गाथा अलि, मथुरा ही लै जाउ।
नागरि नारि भलैं समझैंगी, तेरौ वचन बनाउ।
पा लागौं ऐसी इन बातनि, उनही जाइ रिझाउ।
जौ सुचि सखा स्याम सुंदर कौ, अरु जिय मैं सति भाउ।
तौ बारक आतुर इन नैननि, हरि मुख आनि दिखाउ।
जौ कोउ कोटि करै कैसिहुँ विधि, बल विद्या व्यवसाउ।
तउ सुनि सूर मीन कौं जल विनु, नाहिं न और उपाउ ।।७३।।

अर्थ—हमको कृष्ण की कथा सुनाओ। अलि (उद्धव) ये अपनी ज्ञान गाथा मथुरा ही ले जाओ। सभ्य स्त्रियां तुम्हारे वचन की बनावट (भंगिमा) को अच्छी

तरह समझेंगी। (हम) तुम्हारे चरण लगती हैं, इस प्रकार की बातों से उन्हें ही रिझाओ। यदि कृष्ण के पवित्र मित्र हो तथा मन मे सत्य भाव है तो बेचारे इन आतुर नेत्रों को कृष्ण का मुख लाकर दिखाओ। सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती हैं) बल, विधि, विद्या तथा व्यवसाय से कोई हजार प्रयत्न करे तब भी मछली के लिए जल के अलावा कोई अन्य उपाय नही है॥७३॥

ऊधौ बानी कौन ढरैगी, तोसौं उत्तर कौन करैगी।
या पाती के देखत हीं अब, जल सावन कौ नैन ढरैगी।
बिरह-अगिनि तन जरत निसा-दिन, करहिं छुवत तुव जोग जरैगी।
नैन हमारे सजल हैं तारे, निरखत ही तेरौ ज्ञान गरैगी।
हमहिं वियोगऽरु सोग स्याम कौ, जोग रोग सौं कौन अरैगौ।
दिन दस रहौ जु गोकुल महियाँ, तब तेरौ सब ज्ञान मरैगौ।
सिंगी सेल्ही भसमऽरु कंथा, कहि अलि काके गरैं परैगौ।
जे ये लट हरि सुमननि गूँधी, सीस जटा अब कौन धरैगौ।
जोग सगुन लै जाहु मधुपुरी, ऐसै निरगुन कौन तरैगौ।
हमहिं ध्यान पल छिन मोहन कौं, बिन दरसन कछुवै न सरैगौ।
निसि दिन सुमिरन रहत स्याम कौ, जोग अगिनि मैं कौन जरैगौ।
कैसहुं प्रेम नेम मोहन कौं, हित चित तैं हमरैं न टरैगौ।
नित उठि आवत जोग सिखावन, ऐसी बातनि कौन भरैगौ।
कथा तुम्हारी सुनत न कोऊ, ठाढे ही अब आप ररैगौ।
बादिहिं रटत उठत अपने जिय, को तोसौं बेकाज लरैगौ।
हम अँग अंग स्याम रँग भीनी, को इन बातनि सूर डरैगौ॥७४॥

अर्थ—उद्धव! (तुम्हारी) बात से कौन ढलेगा तथा तुमसे उत्तर (प्रत्युत्तर) कौन करेगा। इस पत्री को देखते ही नेत्र सावन के जल (की तरह पर्याप्त आँसू) बहायेंगे। रात-दिन विरह की अग्नि से शरीर जल रहा है, हाथ से छूते ही तुम्हारा योग जल जायेगा। हमारे नेत्र के तारे जल से भरे हैं, देखते ही तुम्हारा ज्ञान गल जायेगा। हमें वियोग तथा कृष्ण के बिछोह का दुख है, योग रोग मे कौन अडेगा। यदि दस दिन (कुछ दिन) गोकुल मे रहो तो तुम्हारा सारा ज्ञान मृत हो जायेगा। शृङ्गी, योगी की माला, भस्म, कथरी (गुदड़ी) ये सब किसके गले लगेगा। जिनके इन बालो को कृष्ण ने फूलों से गूँथा था, वे अब सिर पर जटा कैसे धरेगी। अपने सुन्दर (गुण से भरे) योग को मथुरा ले जाओ, ऐसे निर्गुण से कौन तरेगा। हमे हमेशा कृष्ण का ध्यान रहता है, बिना दर्शन के कुछ भी सिद्ध नही होगा। रात दिन कृष्ण का स्मरण रहता है, योग अग्नि में कौन जलेगा। किसी भी प्रकार से कृष्ण का प्रेम, नियम तथा स्नेह मेरे चित्त से नही टलेगा। नित्य उठकर योग सिखाने आते हो, ऐसी बातो से कौन प्रसन्न होगा। तुम्हारी कथा को कोई सुनता नही, खडे (खडे) आप व्यर्थ बकोगे। अपने मन से तुम

व्यर्थ ही रटते हो, बिना कार्य तुमसे कौन लड़ेगा। हम अंग-अंग से कृष्ण रङ्ग मे डूबी हैं, सूरदास (कहते हैं) तुम्हारी इन बातो से कौन डरेगा ।।७४।।

ऊधौ तुम ब्रज की दसा बिचारौ।
ता पाछैं यह सिद्ध आपनी, जोग कथा बिस्तारौ।
जा कारण तुम पठए माधौ, सो सोचौ जिय माहीं।
केतिक बीच बिरह परमारथ, जानत हौ किधौं नाहीं।
तुम परवीन चतुर कहियत हौ, सतत निकट रहत हौ।
जल बूड़त अवलंब फेन कौ, फिरि फिर कहा गहत हौ।
वह मुसकान मनोहर चितवनि, कैसैं उर तैं टारौं।
जोग जुक्ति अरु मुक्ति परम निधि, वा मुरली पर वारौं।
जिहिं उर कमल-नयन जु बसत हैं, तिहिं निरगुन क्यौं आवै।
सूरदास सो भजन बहाऊँ, जाहि दूसरौ भावै ।।७५।।

अर्थ—उद्धव, तुम ब्रज की दशा का विचार करो। उसके बाद अपनी इस सिद्ध योग कथा का विस्तार करो जिसलिए कृष्ण ने तुमको, भेजा है उसे मन में सोचो। विरह और परमार्थ मे कितना अन्तर है शायद उसे तुम नही जानते। तुम प्रवीण तथा चतुर कहलाते हो, संतो के निकट रहते हो। जल मे डूबते हुए फेन का सहारा कैसे लिया जा सकता है। वह मुस्कान तथा मनोहर चितवन हृदय से कैसे टालूं। योग की युक्ति तथा मुक्ति की परम निधि को उस मुरली पर न्योछावर करती हूँ। जिसके हृदय मे कमल के समान नेत्र वाले (कृष्ण) वसते हैं उसे निर्गुण क्यो आये। सूरदास कहते है (गोपियां कहती हैं) उस भजन को वहा दूँ (नष्ट कर दूँ), जिसे दूसरा अच्छा लगता (जिस भजन मे दूसरे का गुण-गान हो) है ।।७५।।

ऊधौ हरि काहे के अंतरजामी।
अजहुँ न आइ मिलत इहिं अवसर, अवधि बतावत लामी।
अपनी चोप आइ उड़ि बैठत, अलि ज्यौं रस के कामी।
तिनकौ कौन परेखौ कीजै, जे हैं गरुड़ के गामी।
आई उघरि प्रीति कलई सी, जैसी खाटी आमी।
सूर इते पर अनखनि मरियत, ऊधौ पीवत मामी ।।७६।।

अर्थ—उद्धव ! कृष्ण किसलिए अन्तर्यामी है। आज भी इस अवसर पर आकर नही मिलते और लम्बी अवधि वताते है। अपनी इच्छा से रस का लोभी भ्रमर उड़कर आ बैठता है, वैसे ही कृष्ण का क्या भरोसा किया जाय जो गरुड पर चलने वाले हैं। जैसे खट्टी अमिया के संसर्ग से कलई उघर आती है, उसी प्रकार (तुम्हारे सदेश भिजवाने से) कृष्ण की प्रीति का रङ्ग उद्घाटित हा गया है। सूरदास कहते है कि इतने पर भी हम दुख से मरती हैं और उद्धव तुम इसे स्वीकार नही करते हो ! ।।७६।।

निरगुन कौन देस कौ बासी ?
मधुकर कहि समुझाइ सौंह दै, बूझतिं साँचि न हाँसी।
को है जनक, कौन है जननी, कौन नारि, को दासी ?
कैसौ बरन भेप है कैसौ, किहिं रस मैं अभिलाषी ?
पावैगौ पुनि कियौ आपनौ, जो रे करैगौ गाँसी।
सुनत मौन ह्वै रह्यौ वावरौ, सूर सबै मति नासी ।।७७।।

अर्थ—निर्गुण किस देश का निवासी है ? मधुकर (उद्धव) सौगंध देकर कहकर समझाओ, मैं सच्चाई से पूछती हूँ, हँसी नहीं है। (उसका) कौन पिता है; कौन माता है; कौन स्त्री है तथा कौन दासी है। कैसा रङ्ग है, कैसा वेष है, किस रस की अभिलाषा करता है। यदि छल-छंद करते हो तो अपने किये का फल पाओगे। सूरदास कहते हैं, बावले से उद्धव सुनते ही चुप रह गये, उनकी सभी बुद्धि नष्ट हो गयी ।।७७।।

कहियौ ठकुराइति हम जानी।
अब दिन चारि चलहु गोकुल मैं, सेवहु आइ बहुरि रजधानी।
हमकौं हौंस बहुत देखन की, संग लियैं कुबिजा पटरानी।
पहुनाई ब्रज कौ दधि माखन, बड़ौ पलँग अरु तातौ पानी।
तुम जनि डरौ उखल तौ तोरचौ, दाँवरिहू अब भई पुरानी।
वह बल कहाँ जसोमति कैं कर, देह रावरैं सोच बुढ़ानी।
सुरभी बाँटि दई ग्वालनि कौं, मोर-चन्द्रिका सबै उड़ानी।
सूर नद जू के पालागौं, देखहु आइ राधिका स्यानी ।।७८।।

अर्थ—(उद्धव उनसे) कहना कि हमने (तुम्हारा) प्रभुत्व जान लिया। अब (दो) चार दिन के लिए गोकुल चलो फिर आकर राजधानी का सेवन करना। हमको साथ मे कुब्जा रानी को लिए हुए (कृष्ण को) देखने की बड़ी इच्छा है। ब्रज के दही-मक्खन का आतिथ्य, बड़ा पलंग और गर्म पानी (तुम्हें प्राप्त होगा)। तुम डरना मत ऊखल तो तोड दिया और उसकी रस्सी भी पुरानी हो गयी है। यशोदा के शरीर में वह बल कहाँ है और साथ ही, (क्योंकि) तुम्हारे सोच मे बुड्ढी भी हो गयी हैं। गायो को ग्वालो को बाट दिया तथा सभी मोर चन्द्रिकाएँ उड़ गयी। सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती हैं) (कृष्ण आकर) नद के चरण लगे तथा आकर सयानी राधा को देखे ।।७८।।

सुनि सुनि ऊधौ आवति हाँसी।
कहँ वै ब्रह्मादिक के ठाकुर, कहाँ कस की दासी।
इंद्रादिक की कौन चलावै, संकर करत खवासी।
निगम आदि वंदीजन जाके, सेष सीस के बासी।
जाकैं रमा रहति चरननि तर, कौन गनै कुबिजा सी।
सूरदास-प्रभु दृढ़ करि बाँधे, प्रेम-पुंज की पासी ।।७९।।

अर्थ—उद्धव ! सुन सुनकर हँसी आती है। कहाँ वे (कृष्ण) ब्रह्मादि के स्वामी

कहाँ वह कंस की दासी (कुब्जा)। इन्द्रादि की कौन चलाये शंकर भी (कृष्ण की) चाकरी करते है। निगम आदि जिसके वन्दीजन है तथा शेष के सिर के नीचे निवास है। लक्ष्मी जिनके चरणो के नीचे रहती हैं, कुब्जा जैसी (स्त्री) की गणना कौन करे? सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती हैं) प्रेम पुज के पाश मे उसने (कृष्ण को) दृढ़ता से बाँध लिया ।।७६।।

काहे कौं गोपीनाथ कहावत।
जौ मधुकर वै स्याम हमारे, क्यौं न इहाँ लौं आवत।
सपने कौ पहिचानि मानि जिय, हमहिं कलंक लगावत।
जो पै कृष्न कूबरी रीझे, सोइ किन बिरद बुलावत।
ज्यौं गजराज काज के औरै, औरै दसन दिखावत।
ऐसैं हम कहिबे सुनिबे कौं, सूर अनत बिरमावत ।।८०।।

अर्थ—(कृष्ण) क्यों गोपीनाथ कहलाते हैं? यदि वे कृष्ण हमारे है तो उद्धव उन्हे यहाँ क्यों नही ले आते। मन मे स्वप्न का परिचय मानकर हमे कलक लगाते है। (यदि) कृष्ण कुबरी से रीझ गये है, तो उन्हे इस विरद से क्यो बुलाया जाता है? जैसे हाथी के दांत काम के लिए और होते हैं, दिखाने के लिए और, वैसे ही हम कहने-सुनने के लिए हैं (कृष्ण तो) अन्यत्र (कुब्जादि के पास) रमते है ।।८०।।

साँवरौ साँवरी रैनि कौ जायौ।
आधी राति कंस के त्रासनि, वसुद्यौ गोकुल ल्यायौ।
नंद पिता अरु मातु जसोदा, माखन नही खवायौ।
हाथ लकुट कामरि काँधे पर, बछरुन साथ डुलायौ।
कहा भयौ मधुपुरी अवतरे, गोपीनाथ कहायौ।
ब्रज बधुअनि मिलि साँट कटीली, कपि ज्यौं नाच नचायौ।
अब लौं कहाँ रहे हो ऊधौ, लिखि-लिखि जोग पठायौ।
सूरदास हम यहै परेखौ, कुबरी हाथ बिकायौ ।।८१।।

अर्थ—श्याम काली रात के पैदा हैं। कंस के भय से आधी रात मे वसुदेव के द्वारा गोकुल ले आये गये। पिता नन्द तथा माता यशोदा ने माखन तथा मट्ठा खिलाया। उन्होंने हाथ मे लाठी तथा कंधे पर कमरी रखकर बछडो के साथ घुमाया। मधुपुरी मे जन्म लेने से तथा गोपीनाथ कहलाने से क्या होता है? ब्रज की वधुओं ने कँटीली सांटी लेकर (कृष्ण को) बंदर की तरह नाच नचाया। अब तक उद्धव तुम कहाँ थे (जो आज कृष्ण ने) लिख-लिखकर योग भेजा है। सूरदास कहते है (गोपियाँ कहती है) अब तो हमे यही पश्चाताप है कि (कृष्ण) कुबरी के हाथ बिक गये ।।८१।।

जोग ठगौरी ब्रज न बिकैहै।
मूरी के पातनि के बदलैं, को मुक्ताहल दैहै।

यह ब्यौपार तुम्हारौ ऊधौ, ऐसैं ही धरयौ रैहै ।
जिन पै तैं लै आए ऊधौ, तिनहिं के पेट समैहै ।
दाख छाँड़ि कै कटुक निबौरी, को अपने मुख खैहै ।
गुन करि मोही सूर साँवरैं, को निरगुन निरवैहै ।।८२।।

अर्थ—योग की ठगमाया यहाँ नही बिकेगी । मूली के पत्तो के बदले, मुक्ताहल कौन देगा । उद्धव ! तुम्हारी यह व्यापार (की सामग्री) ऐसे ही रखी रह जायेगी । जिनसे लाये हो उन्ही के पेट मे यह समायेगी । द्राक्ष (अगूर) छोडकर कटु निम्न फल कौन अपने मुख मे डालेगा । सूरदास कहते है (गोपियाँ कहती है) हम कृष्ण के गुणो को समझ कर उन पर मोहित हुई हैं अतः हम निर्गुण से निर्वाह कैसे कर सकती हैं ? ।।८२।।

मीठी बातनि मैं कहा लीजै ।
जौ पै वै हरि होहिं हमारे, करन कहैं सोइ कीजै ।
जिन मोहन अपनैं कर काननि, करनफूल पहिराए ।
तिन मोहन माटी के मुद्रा, मधुकर हाथ पठाए ।
एक दिवस बेनी बृन्दावन, रचि पचि बिबिध बनाइ ।
ते अब कहत जटा माथे पर, बदलौ नाम कन्हाइ ।
लाइ सुगन्ध बनाइ आभूषन, अरु कीन्ही अरधंग ।
सो वै अब कहि-कहि पठवत हैं, भसम चढ़ावन अग ।
हम कहा करैं दूरि नँद-नंदन, तुम जु मधुप मधुपाती ।
सूर न होहिं स्याम के मुख की, जाहु न जारहु छाती ।।८३।।

अर्थ—मीठी बातों मे क्या (मजा) लिया जाय । जो यदि वे कृष्ण हमारे (ही) हैं तो (जो) करने के लिए कहते है वही कीजिये । जिन मोहन ने अपने हाथो से कान मे कर्णफूल पहनाये, उन्ही मोहन ने उद्धव के हाथ से मिट्टी की मुद्रा भेजी है । जिन्होंने एक दिन वृन्दावन में विविध प्रकार से रच-रचकर वेणी गूँथी, वही अब मस्तक पर जटा धारण करने को कहते हैं, (इस तरह) उनका 'कन्हाइ' नाम बदल दो । कृष्ण सुगंधित (पुष्प) लाकर, आभूषण बनाकर (हमे) अर्धांगिनी (पत्नी) बनाया । वही अब अंगो पर भस्म चढ़ाने के लिए कह-कह भेजते हैं । हम क्या करे कृष्ण दूर हैं तुम मधु पर गिरने (पतित होने) वाले भ्रमर ठहरे ! ये बाते कृष्ण के मुख की नही हैं, जाओ (हमारी) छाती न जलाओ ।।८३।।

ऊधौ तुम हौ निकट के बासी ।
यह निरगुन लै तिनहिं सुनावहु, जे मुड़िया बसैं कासी ।
मुरलीधरन सकल अंग सुन्दर, रूप सिंधु की रासी ।
जोग बटोरे लिए फिरत हौ, ब्रजवासिन की फाँसी ।

राजकुमार भलैं हम जाने, घर मैं कंस की दासी।
सूरदास जदुकुलहिं लजावत, ब्रज मैं होति है हाँसी ।।८४।।

अर्थ—उद्धव, तुम पास के रहने वाले हो। यह निर्गुण लेकर उन्हें सुनाओ जो सिर मुड़ाये हुए (संन्यासी) काशी में बसते हैं। मुरली धरने वाले (कृष्ण के) समस्त अंग सुन्दर है (वह) रूप-सिंधु की राशि है। (तुम) योग बटोरकर लिए फिरते हो, (जो) व्रजवासियो के लिए फांसी के समान है। राजकुमार (कृष्ण) को हम भली-भाँति जानती हैं, (तथा उनके) घर में (जो) कंस की दासी (कुबरी) है (वह भी ज्ञात है)। सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती हैं) (कृष्ण) यदुकुल को लज्जित करते हैं, तथा ब्रज में हँसी होती है ।।८४।।

जा दिन तैं गोपाल चले।
ता दिन तैं ऊधौ या ब्रज के, सब स्वभाव बदले।
घटे अहार बिहार हरष हित, सुख सोभा गुन गान।
ओज तेज सब रहित सकल बिधि, आरति असम समान।
बाढ़ी निसा, बलय आभूषन, उर-कंचुकी उसास।
नैननि जल अंजन अंचल प्रति, आवन अवधि की आस।
अब यह दसा प्रगट या तन की, कहियौ जाइ सुनाइ।
सूरदास प्रभु सो कीजौ जिहिं, बेगि मिलहिं अब आइ ।।८५।।

अर्थ—जिस दिन से गोपाल गये, उसी दिन से उद्धव, इस ब्रज का सब स्वभाव बदल गया। आहार, विहार, हर्ष, स्नेह, सुख, शोभा, गुणगान (सब कुछ) घट गया। सब तरह से' ओज-तेज सबसे रहित हो गये तथा सभी समान रूप से आर्त्त तथा अव्यवस्थित है। रात बढ़ गयी, केयूर-कंकण आदि तथा अन्य आभूषण (बडे पड गये)। वक्ष पर कंचुकियाँ और उसासें बढ़ गईं। नेत्रो का जल अंजन को आँचल की ओर (बहा ले जाता है) केवल आने की अवधि की आशा है। प्रत्यक्ष ही इस शरीर की दशा को जाकर सुनाकर कहना। सूरदास कहते हैं (गोपियाँ ऊधो से कहती हैं) कृष्ण से कुछ ऐसा उपाय कीजिएगा ताकि अब तो शीघ्र आकर मिल जाएँ ।।८५।।

हम तौ कान्ह केलि की भूखी।
कहा करैं लै निगुन तुम्हरौ, बिरहिनि बिरह बिदूषी।
कहियै कहा यहै नहिं जानत, कहौ जोग किहि जोग।
पालगौं तुमहीं सेवा पुर, बसत बावरे लोग।
चंदन, अभरन, चीर चारु बर, नेकु आप तन कीजै।
दंड, कमंडल, भसम, अधारी, तब जुवतिनि कौं दीजै।
सूर देखि दृढ़ता गोपिन की, ऊधौ दृढ़ ब्रत पायौ।
करी कृपा जदुनाथ मधुप कौं, प्रेमहिं पढ़न पठायौ ।।८६।।

अर्थ—हम तो कृष्ण के (साथ) कीडा (करने) की भूखी हैं। (हम) विरहिणियाँ विरह से दुखी होकर तुम्हारे निर्गुण को लेकर क्या करे ? क्या कहे हम यही नही जानती; बताइए योग किस योग्य है। तुम्हारे पैर पकडकर कहती हूँ, कि तुम्हारे ही समान उस पुरी में बावरे लोग बसते है। यदि आप तनिक चन्दन, आभूषण, श्रेष्ठ सुन्दर चीर अपने शरीर पर धारण करे तो, तब युवतियो को दंड-कमंडल, भस्म तथा अधारी (काठ के डंडे मे लगे हाथ टेकने की हत्थी) आदि दीजिये। सूरदास कहते है गोंपियों की दृढता देखकर उद्धव ने दृढ व्रत प्राप्त किया। कृष्ण ने कृपा की जो कि मधुप (उद्धव) को प्रेम (का पाठ) पढने को भेजा ॥८६॥

चौथा संवाद

गोपी सुनहु हरि सदेस।
कह्यौ पूरन ब्रह्म ध्यावहु, त्रिगुन मिथ्या भेष।
मैं कहौं सो सत्य मानहु, सगुन डारहु नाखि।
पच त्रय-गुन सकल देही, जगत ऐसौ भाषि।
ज्ञान बिनु नर-मुक्ति नाहीं, यह विषय ससार।
रूप-रेख, न नाम जल-थल, बरन अबरन सार।
मातु-पितु कोउ नाहिँ नारी, जगत मिथ्या लाइ।
सूर सुख-दुख नहीं जाकैं, भजो ताकौं जाइ ॥८७॥

अर्थ—गोपी कृष्ण का सदेश सुनो ! (उन्होने) कहा है, पूर्ण ब्रह्म का ध्यान करो, त्रिगुणात्मक सृष्टि का रूप मिथ्या है। मैं जो कहता हूं उसे सत्य मानो, सगुण को नष्ट कर डालो। समस्त जीव पाँच तत्व तथा तीन गुण (से बने है), संसार को ऐसा कहो। ज्ञान के बिना मनुष्य की इस विषय युक्त संसार से मुक्ति नही है। जिसकी रूप-रेखा नही है तथा जल-थल मे न तो नाम है, वर्ण-अवर्ण ही सार तत्व है (उसके) माता, पिता तथा कोई स्त्री नही (वह) संसार को मिथ्या बनाया है। सूरदास कहते है (ऊधो कहते है) जिसके सुख-दुःख दोनो नही है उसे जाकर भजो ॥८७॥

ऐसी बात कहौ जनि ऊधौ।
कमलनैन की कानि करति हैं, आवत बचन न सूधौ।
बातनि ही उड़ि जाहिँ और ज्यौं, त्यौं नाहीं हम काँची।
मन, बच, कर्म सोधि एकै मत, नंद-नँदन रँग राँची।
सो कछु जतन करौ पालागौं, मिटै हियै की सूल।
मुरलीधरहिँ आनि दिखरावहु, ओढ़े पीत दुकूल।
इनहीं बातनि भए स्याम तनु, मिलवत हौ गढ़ि छोलि।
सूर बचन सुनि रह्यौ ठगौसौ, बहुरि न आयौ बोलि ॥८८॥

अर्थ—ऊद्धव, ऐसी बात मत कहो। कमल नेत्र कृष्ण की मर्यादा रखती हूँ, नही तो मुँह से सीधी बात न निकलती (गाली आती)। बातों से जो उड़ जाते है, वैसे हम

कच्चो नहीं हैं। मन-वचन, कर्म से शोधकर (जांचकर) एक मत से कृष्ण के रंग मे रँगी हैं। पैर पड़ती हूं, तुम कुछ ऐसा यत्न करो जिससे हृदय का दु.ख मिट जाय। पीताम्बर ओढ़े हुए कृष्ण को लाकर दिखा दो। इन्ही बातो से (उद्धव तुम) सांवले शरीर वाले हो गये जो बना सँवारकर झूठी बात मिलाते हो। सूरदास कहते हैं उद्धव, इन वचनो को सुनकर ठगे से रह गये फिर बात नही फूटी ॥८८॥

फिरि फिरि कहा बनावत बात।
प्रातकाल उठि खेलत ऊधौ, घर-घर माखन खात।
जिनकी बात कहत तुम हमसौं, सो है हमसौं दूरि।
ह्याँ हैं निकट जसोदा-नंदन, प्रान सजीवन मूरि।
बालक संग लिऐं दधि चोरत, खात खवावत डोलत।
सूर सीस नीचौ कत नावत, अब काहैं नहिं बोलत ॥८९॥

अर्थ—बार-बार क्यो बात बनाते हो। हे उद्धव! (कृष्ण) (हमारी समझ से वहां है) जो प्रातःकाल उठकर खेलते है तथा घर-घर माखन खाते है। जिन (निर्गुण) की बात हमसे कहते हो, वे हमसे बहुत दूर है। यहां तो प्राणो की संजीवनी मूल यशोदा-नंदन निकट हैं। वे बालकों को साथ लिए दही चुराते है, खाते-खिलाते घूमते हैं। सूरदास कहते है (गोपियां कहती है) उद्धव, सिर नीचे क्यों नमित करते हो, अब क्यो बोलते नही? ॥८९॥

फिरि-फिरि कहा सिखावत मौन।
बचन दुसह लागत अलि तेरे, ज्यौं पजरे पर लौन।
सृंगी, मुद्रा, भस्म, त्वचा-मृग, अरु अवराधन पौन।
हम अबला अहीरि सठ मधुकर, धरि जानहिं कहि कौन।
यह मत जाइ तिनहिं तुम सिखवहु, जिनहिं आजु सब सोहत।
सूरदास कहुँ सुनी न देखी, पोत सूतरी पोहत ॥९०॥

अर्थ—बार-बार क्यो मौन (साधने की) शिक्षा देते हो। भ्रमर (उद्धव) तुम्हारे वचन दुसह लगते हैं जैसे जले पर नमक। शृंगी, मुद्रा, भस्म, मृग-छाला और प्राणायाम की आराधना हम अहीर की निर्बुद्ध अबलाये इसे धारण करना क्या जाने, तुम्ही बताओ। यह मत तुम उन्हें सिखाओ, जिन्हें आज सब अच्छा लगता है। सूरदास कहते है (गोपियां कहती है) सुतली से मोती पिरोते हुए, न तो हमने कही सुना है, न देखा है ॥९०॥

ऊधौ हमहिं न जोग सिखैयै।
जिहिं उपदेस मिलैं हरि हमकौं, सो ब्रत नेम बतैयै।
मुक्ति रहौ घर बैठि आपने, निर्गुन सुनि दुख पैयै।
जिहिं सिर केस कुसुम भरि गूंदे, कैसैं भस्म चढ़ैयै।

जानि जानि सब मगन भई हैं, आपुन आपु लखैयै।
सूरदास-प्रभु सुनहु नवौ निधि, बहुरि कि इहिं ब्रज अइयै ॥६१॥

अर्थ—उद्धव ! हमें योग न सिखाइये। जिस उपदेश से कृष्ण हमको मिलें, वही व्रत तथा नियम बताइए। मुक्ति अपने घर बैठी रहे तथा निर्गुण को सुनकर दुःख पाती हूँ। जिस सिर पर के बालो को फूलो से गूँथा उसमें भस्म कैसे चढाया जाय। जान-जानकर सब मग्न हुई है, (कृष्ण) अपने आप को दिखाइए। सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती है) हे नवों निधि (कृष्ण) सुनो, लौटकर फिर क्या इस ब्रज में आइयेगा ॥६१॥

मधुकर स्याम हमारे ईस।
तिनकौ ध्यान धरैं निसि बासर, औरहिं नवै न सीस।
जोगिनि जाइ जोग उपदेसहु, जिनके मन दस-बीस।
एकै चित एकै वह मूरति, तिन चितवतिँ दिन तीस।
काहे निरगुन ग्यान आपनो, जित कित डारत खीस।
सूरदास प्रभु नंद-नँदन बिनु, हमरे को जगदीस ॥६२॥

अर्थ—भ्रमर (उद्धव) ! कृष्ण हमारे ईश्वर हैं। उनका रात-दिन ध्यान करती हूँ अन्य के आगे सिर नही झुकाती। जाकर योगिनियो को उपदेश दीजिए, जिनके दस-बीस मन हैं। हमारे एक ही चित्त है वह कृष्ण की (अद्वितीय) एक मूर्ति है, उसे ही तीसो दिन (सदा) (मन) देखता रहता है। तुम अपने निर्गुण ज्ञान को इधर-उधर क्यो नष्ट किये देते हो। सूरदास कहते हैं (गोपियां कहती हैं) कृष्ण के बिना हमारे कौन जगदीश हैं ॥६२॥

सतगुरु चरन भजे बिनु विद्या, कह कैसैं कोउ पावै।
उपदेसक हरि दूरि रहे तैं, क्यौं हमरे मन आवै।
जो हित कियौ तौ अधिक करहिँ किन, आपुन आनि सिखावैं।
जोग बोझ तैं चलि न सकैं तौ, हमहीं क्यौं न बुलावैं।
जोग ज्ञान मुनि नगर तजे बरु, सघन गहन बन धावैं।
आसन मौन नेम मन सजम, बिपिन मध्य बनि आवैं।
आपुन कहैं करैं कछु औरै, हम सबहिनि डहकावैं।
सूरदास ऊधौ सौं स्यामा, अति संकेत जनावैं ॥६३॥

अर्थ—सतगुरु के चरण की सेवा के बिना कहो, कोई कैसे विद्या प्राप्त करता है। उपदेशक कृष्ण के दूर रहने से उपदेश क्यों कर (उपदेश) मेरे मन मे आवे। जैसा हित (उन्होने) किया वैसा कौन करेगा, (किन्तु यदि वास्तव मे सीख देना ही हो तो) स्वयं आकर सिखा दे। योग के बोझ से यदि चल नही सकते तो हमें ही क्यो नही बुला लेते। योग के ज्ञान के लिए मुनियो द्वारा नगर छोड़कर वनो मे ध्यान किया जाता है। आसन, मौन, नियम, मन का संयम वन के बीच ही सिद्ध होते है। आप (कृष्ण) की कथनी-करनी

में भिन्नता है, वे हम सबको बहका रहे है। सूरदास कहते है कि राधा उद्धव को (यह तथ्य) अत्यधिक संकेत से समझाती है ॥९३॥

ऊधौ मन नहिं हाथ हमारे।
रथ चढ़ाइ हरि संग गए लै, मथुरा जबहिं सिधारे।
नातरु कहा जोग हम छाँड़हिं, अति रुचि कै तुम ल्याए।
हम तौ झँखति स्याम की करनी, मन लै जोग पठाए।
अजहूँ मन अपनौ हम पावैं, तुम तैं होइ तो होइ।
सूर सपथ हमैं कोटि तिहारी, कही करैंगी सोइ ॥९४॥

अर्थ—उद्धव ! मन हमारे (हाथ) वश में नही है। कृष्ण ने जब मथुरा के लिए प्रस्थान किया तो रथ पर चढ़ाकर उसे भी (मन को भी) साथ लेते गये, नही तो हम योग को कैसे छोड़ती, जिसे तुम अत्यधिक चाव से लाये हो। हम तो कृष्ण की करनी पर झुंझलाती हैं जो कि मन को लेकर बदले में योग भेज दिया। अब भी यदि हम अपना मन पा जायँ, यदि आपसे कुछ सम्भव हो सके तो सूरदास कहते है (गोपियाँ कहती हैं) हमें तुम्हारी हजारो सौगन्ध है, (उसके बाद) जो कहोगे वही करूँगी ॥९४॥

ऊधौ मन न भए दस बीस।
एक हुतौ सो गयौ स्याम सँग, को अवराधै ईस।
इंद्री सिथिल भई केसव बिनु, ज्यौं देही बिनु सीस।
आसा लागि रहति तन स्वासा, जीवहिं कोटि बरीस।
तुम तौ सखा स्याम सुंदर के, सकल जोग के ईस।
सूर हमारैं नंद-नँदन बिनु, और नहीं जगदीस ॥९५॥

अर्थ—उद्धव ! हमारे दस बीस (अनेक) मन नही हुए। एक था वह कृष्ण के साथ चला गया, अब (निर्गुण) ईश्वर की आराधना कौन करे। कृष्ण के बिना इन्द्रियाँ शिथिल हो गयी, जैसे बिना सिर के देह। आशा से ही शरीर मे श्वास आती जाती है (साँस लगी है), (आशा में ही) सैकडों वर्ष जीवित रहूँगी। तुम तो कृष्ण के मित्र हो तथा समस्त योग के स्वामी हो। सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती हैं) कि कृष्ण के सिवाय हमारे कोई जगदीश (आराध्य) नही हैं ॥९५॥

इहिं उर माखन चोर गड़े।
अब कैसैं निकसत सुनि ऊधो, तिरछें ह्वै जु अडे।
जदपि अहीर जसोदा-नंदन, कैसैं जात छँड़े।
ह्वाँ जादौपति प्रभु कहियत हैं, हमैं न लगत बडे।
को बसुदेव देवकी नंदन, को जानै को बूझै।
सूर नंद-नंदन के देखत, और न कोऊ सूझै ॥९६॥

अर्थ—यहां हृदय में माखन चोर कृष्ण गडे हैं। ऊधो, अब वे कैसे निकल सकते है क्योंकि (वे) तिरछे होकर अड़ गये है। यद्यपि कृष्ण अहीर हैं (फिर भी) कैसे छोड़े

जा सकते है। वहाँ ये यादव पति स्वामी कहलाते हैं लेकिन हमे बटे नही लगते। कौन देवकी वसुदेव (की बात करे), कौन जाने तथा कौन समझे। सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती है) कृष्ण को देखते और मुझे अन्य कोई नही सूझता ॥८६॥

मन मैं रह्यौ नाहिं न ठौर।
नंद-नंदन अछत कैसैं, आनियै उर और।
चलत चितवत दिवस जागत, स्वप्न सोवत राति।
हृदय तैं वह मदन मूरति, छिन न इत उत जाति।
कहत कथा अनेक ऊधौ, लोग लोभ दिखाइ।
कह करौं मन प्रेम पूरन, घट न सिंधु समाइ।
स्याम गात सरोज आनन, ललित मृदु मुख हास।
सूर इनकैं दरस कारन, मरत लोचन प्यास ॥८७॥

अर्थ—मन मे स्थान अवशिष्ट (बचा) नही है। कृष्ण के रहते हुए हृदय मे किसी और को कैसे लाया जाय ? चलते, देखते, दिन मे जागते, स्वप्न तथा रात मे सोते हृदय से वह कामदेव तुल्य (कृष्ण की) मूर्ति क्षण भर भी इधर-उधर नही जाती। उद्धव ! लोग लालच दिखाकर अनेक कथाये कहते है लेकिन क्या करूँ, मन प्रेम से पूर्ण है और घडे मे सागर समा (भी) नही सकता। श्याम शरीर, कमलमुख, ललित तथा मधुर हँसी के दर्शन के लिए नेत्र प्यासे मरते हैं ॥८७॥

मधुकर स्याम हमारे चोर।
मन हरि लियौ तनक चितवनि मैं, चपल नैन की कोर।
पकरे हुते हृदय उर अंतर, प्रेम प्रीत कैं जोर।
गए छँड़ाइ तोरि सब बंधन, दै गए हँसनि अँकोर।
चौंकि परीं जागत निसि बीती, दूर मिल्यौ इक भौंर।
सूरदास प्रभु सरबस लूट्यौ, नागर नवल-किसोर ॥८८॥

अर्थ—मधुकर (उद्धव) ! कृष्ण हमारे (मन) को चुराने वाले हैं। चंचल नयनो के कोर से, क्षणिक निगाह से मेरे मन को चुरा लिया। हृदय के अन्दर प्रेम के बल से उन्हे पकड रखा था। हँसी का घूस (अस्थायी सुख) देकर, सारे बधनों को छुड़ाकर तथा (बधनो को) तोड़कर मुक्त हो गए। इसके बाद चौक कर जग पडी तथा रात जागते ही बीत गयी, बाद मे दूर पर एक भ्रमर (उद्धव) मिला। सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती हैं) चतुर नवल किशोर कृष्ण सर्वस्व लूट ले गये ॥८८॥

सब दिन एकहिं से नहिं होतैं।
तब अलि ससि सीरौ अब तातौ, भयो बिरह जरि मो तैं।
तब षट मास रास-रस-अंतर, एकहु निमिष न जाने।
अब औरै गति भई कान्ह बिनु, पल पूरन जुग माने।

कह मति जोग ज्ञान साखा श्रुति, ते किन कहे घनेरे।
अब कछु और सुहाइ सूर नहिँ, सुमिरि स्याम गुनि केरे ।।९९।।

अर्थ—'सभी दिन एक से नही होते। उद्धव! तब चन्द्रमा शीतल लगता था, अब विरह-ज्वर में तप्त हो गया है। छह महीना रास रस के बीच (साथ) एक क्षण के समान भी नही लगता था, अब कृष्ण के बिना और ही दशा हो गयी। एक पल पूर्ण युग के समान मानती हूँ। (इस समय) योग, ज्ञान, वेद की शाखाओ में बुद्धि लगाने से क्या होता है तथा उनका घना उपदेश भी व्यर्थ है। सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती हैं) कृष्ण के गुणो का स्मरण करने के सिवाय कुछ सुझाता नही है ।।९९।।

सखी री स्याम सबै इक सार।
मीठे बचन सुहाए बोलत, अंतर जारनहार।
भँवर कुरंग काक अरु कोकिल, कपटिन की चटसार।
कमलनैन मधुपुरी सिधारे, मिटि गयौ मङ्गलचार।
सुनहु सखी री दोष न काहू, जो बिधि लिख्यौ लिलार।
यह करतूति उनहिँ की नाहीँ, पूरब बिबिध बिचार।
कारी घटा देखि बादर की, सोभा देति अपार।
सूरदास सरिता सर पोषत, चातक करत पुकार ।।१००।।

अर्थ—सखी सभी साँवले (लोग) एक समान हैं। (ऊपर से) सुहाने वाला मीठा वचन बोलते हैं, किन्तु अतर मे जलाने वाले होते हैं। भँवर, कुरंग (मृग), कौवा और कोयर, सब कपटियो की पाठशाला (के सदस्य) हैं। कमल के समान आँख वाले कृष्ण मथुरा चले गये, सारे मगलाचार मिट गये। सखी सुनो! किसी का दोष नही है जो भाग्य मे लिखा होता है (वही होता है)। यह कार्य उन्ही का हो नही है, विविध प्रकार से पूर्व निर्धारित विचार है। बादल की काली घटा देखो तो वह अपार शोभा देती है। सूरदास कहते है (गोपियाँ कहती हैं) कि वह घटा नदी तथा तालाब को तो (जल से) पोषित (पूर्ण) करती है। लेकिन पपीहा पुकार ही करता रह जाता है ।।१००।।

बिलग जनि मानौ ऊधौ कारे।
वह मथुरा काजर की ओबरि, जे आवैँ ते कारे।
तुम कारे सुफलक सुत कारे, कारे कुटिल सँवारे।
कमलनैन को कौन चलावै, सबहिनि मैँ मनियारे।
मानौ नील माट तैँ काढे, जमुना आइ पखारे।
तातैँ स्याम भई कालिंदी, सूर स्याम गुन न्यारे ।।१०१।।

अर्थ—उद्धव! काले लोगों को अलग मत मानो। वह मथुरा काजल की कोठरी है, (वहाँ) से जो आता है वही काला होता है। तुम काले हो, सुफलक के पुत्र अक्रूर काले थे तथा कुटिल साँवले (कृष्ण काले हैं)। कमल नेत्र (कृष्ण) के लिए क्या कहा जाय, सभी में चमकीले है (बढकर हैं)। मानो वे (कृष्ण) नील के घडे से काढे

गये हैं तथा यमुना में आकर (शरीर) को धो लिया, इसी से यमुना काली हो गयी। सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती हैं) कृष्ण के गुण अनोखे हैं ॥१०१॥

ऊधौ भली भई ब्रज आए।
बिधि कुलाल कीन्हे काँचे घट, ते तुम आनि पकाए।
रँग दीन्हौ हो कान्ह साँवरैं, अँग-अँग चित्र बनाए।
यातैं गरे न नैन नेह तैं, अवधि अटा पर छाए।
ब्रज करि अँवा जोग ईंधन करि, सुरति आनि सुलगाए।
फूँक उसास बिरह प्रजरनि संग, ध्यान दरस सियराए।
भरे संपूरन सकल प्रेम-जल, छुवन न काहू पाए।
राज काज तैं गए सूर प्रभु, नंद-नँदन कर लाए ॥१०२॥

अर्थ—अच्छा हुआ उद्धव ! ब्रज चले आये। तुमने ब्रह्मा रूपी कुम्हार से बनाये गये कच्चे (शरीर रूपी) घडे को आकर पका दिया तथा कृष्ण के सांवले रंग मे रंग दिया तथा अंग-अंग मे चित्र (कृष्ण के रूप चित्र) का निर्माण कर दिया। अवधि-रूपी अटारी के छाये हुए होने के कारण नेत्राश्रुओं के प्रवाह से गलने नही पाते। ब्रज को आंवा बनाकर, योग का इंधन लगाकर स्मृति की आग सुलगा दी। विरह की ज्वालाओं के साथ उछ्वास (रूपी) हवा से फूंक दिया तथा दर्शन के ध्यान से शीतल कर दिया। सब (सम्पूर्ण घट) प्रेम के जल से भर गया है उसे कोई छूने नही पाता। सूरदास कहते हैं (गोपियां कहती हैं) कृष्ण राज्य कार्य से चले गये। उद्धव ने कृष्ण के समान हाथ लगाकर (संवार) दिया ॥१०२॥

जौ पै हिरदै माँझ हरी।
तौ कहि इती अवज्ञा उनपै, कैसैं सही परी।
तब दावानल दहन न पायौ, अब इहिँ बिरह जरी।
तब तैं निकसि नंद-नंदन हम, सीतल क्यौं न करी।
दिन प्रति नैन इंद्र जल बरषत, घटत न एक घरी।
अति ही सीत भीत तन भींजत, गिरि अंचल न धरी।
कर-कंकन दरपन लै देखौ, इहिँ अति अनख मरी।
क्यौं अब जियहिँ जोग सुनि सूरज, बिरहिनि बिरह भरी ॥१०३॥

अर्थ—जो (यदि) कृष्ण हृदय के अन्दर हैं, तो कहो उन पर इतनी अवज्ञा कैसे सही जाती। तब दावानल से नही जलने पाए, अब विरह से जली (जा रही हूं), हृदय से निकल कर कृष्ण ने हमे शीतल क्यो नही किया। दिन प्रति दिन नेत्र रूपी इन्द्र जल बरसाते हैं, एक भी घडी घटते नही; अत्यधिक शीतलता से भय युक्त शरीर भीगता है लेकिन (कृष्ण) अचल रूपी पर्वत को धारण नही करते। हाथ के कंकण को दर्पण लेकर देखा, यह शरीर झुंझलाहट से मृत हो गया है। सूरदास कहते हैं (गोपियां कहती हैं) विरह से भरी विरहिणियां योग को सुनकर कैसे जीवित रहे ॥१०३॥

ऐसौ जोग न हम पै होइ।
आँखि मूँदि कह पावैं ढूँढे, अँधरे ज्यौं टकटोइ।
भसम लगावन कहत जु हमकौ, अंग कुकमा धोइ।
सुनि कै बचन तुम्हारे ऊधौ, नैना आवत रोइ।
कुंतल कुटिल मुकुट कुंडल छबि, रही जु चित मैं पोइ।
सूरज प्रभु बिनु प्रान रहैं नहिं, कोटि करौ किन कोइ।।१०४।।

अर्थ—हमसे ऐसा योग नहीं हो सकता। आंख मूंदकर अन्धे की तरह टटोल कर किसे ढूंढकर प्राप्त करूँ। अंग के कुंकुम को धोकर जो हमको भस्म लगाने को कहते हो तो उद्धव तुम्हारे वचन को सुनकर हमारे नेत्र रो-रोकर रक्तिम हो गए है। कृष्ण के घुंघराले बालो की लट तथा मुकुट और कुंडल की शोभा चित्त में पिरोयी है। सूरदास कहते हैं (गोपियां कहती हैं) कृष्ण के बिना प्राण नही रह सकते चाहे कोई सैकड़ो उपाय करे।।१०४।।

हमसौं उनसौं कौन सगाई।
हम अहीर अबला ब्रजवासी, वै जदुपति जदुराई।
कहा भयौ जु भए जदुनंदन, अब यह पदवी पाई।
सकुच न आवत घोष बसत की, तजि ब्रज गए पराई।
ऐसे भए उहाँ जादौपति, गए गोप बिसराई।
सूरदास यह ब्रज कौ नातौ, भूलि गए बलभाई।।१०५।।

अर्थ—हमसे और उन (कृष्ण) से क्या सम्बन्ध है? हम अहीर की लडकी ब्रजवासी अबला है वे यदुराय तथा यदुपति है। यदुनदन होने से क्या होता है, (उन्हें) यह पदवी (अभी हाल में) मिली है। उन्हे ब्रज छोडकर पराये गांव मे बसते संकोच नही आता। ऐसे ही वहां यादव पति हो गये और गोपों को भुलाकर चले गये। सूरदास कहते हैं कि (गोपियाँ कहती हैं) इस ब्रज के नाते को कृष्ण भूल गये।।१०५।।

तौ हम मानैं बात तुम्हारी।
अपनौ ब्रह्म दिखावहु ऊधौ, मुकुट पितांबर धारी।
मनिहैं तब ताकौ सब गोपी, सहि रहिहैं बरु गारी।
भूत समान बतावत हमकौं, डारहु स्याम बिसारी।
जे मुख सदा सुधा अँचवत हैं, ते विष क्यौं अधिकारी।
सूरदास-प्रभु एक अंग पर, रीझि रहीं ब्रजनारी।।१०६।।

अर्थ—उद्धव! हम तुम्हारी बात तभी मान सकती है, जब मुकुट तथा पीताम्बर को धारण किये हुये अपने ब्रह्म को दिखा दो। तब सभी गोपियां उसी के सम्बन्ध मे रहेगी बल्कि यहां तक कि गाली भी सह लेगी। भूत की तरह हमे ब्रह्म की बात बताते हो और कहते हो कि कृष्ण को भूल जाओ। जो मुँह सदा अमृत का पान करता है वह

विष का अधिकारी कैसे हो सकता है। सूरदास कहते हैं (गोपियां कहती हैं) कृष्ण के एक ही अंग पर ब्रज की स्त्रियाँ रीझ गयी हैं ॥३०६॥

ऊधौ जोग बिसरि जनि जाहु।
बाँधौ गाँठि छूटि परिहै कहुँ, फिरि पाछैं पछिताहु।
ऐसौ वहुत अनूपम मधुकर, मरम न जानै और।
ब्रज बनितनि के नहीं काम की, है तुम्हरेई ठौर।
जौ हित करि पठयौ मनमोहन, सो हम तुमकौं दीनौ।
सूरदास ज्यौं विप्र नारियर, करहीं बंदन कीनौ ॥१०७॥

अर्थ—उद्धव ! योग को भूल न जाओ। (योग की) बँधी हुई गांठ कहीं छूट न पड़े, जिससे फिर पीछे पछताना पडे। मधुकर (यह योग) ऐसा अनुपम है, जिसका मर्म कोई और नही जानता। यह ब्रज की स्त्रियों के लायक नही है इसके लिए तुम्हारे ही पास स्थान है। जिसे स्नेह-पूर्वक कृष्ण ने भेजा है उसे हमने तुमको दे दिया। सूरदास कहते है (गोपियाँ कहती हैं) ब्राह्मण के द्वारा दिये गये नारियल की तरह उसको वन्दना मैंने हाथ से ही कर ली ॥१०७॥

ऊधौ काहे कौं भक्त कहावत।
जु पै जोग लिखि पठयौ हमकौं, तुमहुँ न भस्म चढ़ावत।
शृङ्गी मुद्रा भस्म अधारी, हमहीं कहा सिखावत।
कुबिजा अधिक स्याम की प्यारी, ताहिं नहीं पहिरावत।
यह तौ हमकौं तवहिं न सिखयौ जब तैं गाइ चरावत।
सूरदास प्रभु कौं कहियौ अब, लिखि-लिखि कहा पठावत ॥१०८॥

अर्थ—ऊधो ! तुम किसलिए (कृष्ण के) भक्त कहलाते हो, जो (कृष्ण ने) हमको योग लिखकर भेजा है तथा तुम भी भस्म चढाते हो (भस्म चढाने की बात करते हो)। शृंगी, मुद्रा, भस्म तथा अधारी हम ही को क्यो सिखाते हो। कुबरी कृष्ण को अधिक प्यारी है उसे क्यो नही पहनाते हो (सिखाते हो)। यह बात कृष्ण ने हमे उस समय नही सिखायो जब गाय चराते थे। सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती हैं) कृष्ण से कहना (अब) लिख-लिखकर (योग) क्यो भेजते है ॥१०८॥

(ऊधौ) ना हम बिरहिनि ना तुम दास।
कहत सुनत घट प्रान रहत हैं, हरि तजि भजहु अकास।
बिरही मीन मरै जल बिछुरैं, छाँड़ि जियन की आस।
दास भाव नहिँ तजत पपीहा, बरषत मरत पियास।
पंकज परम कमल मैं विहरत, विधि कियौ नीर निरास।
राजिव रवि कौ दोष न मानत, ससि सौं सहज उदास।
प्रगट प्रीति दसरय प्रतिपाली, प्रीतम कैं बनवास।
सूर स्याम सौं दृढ़ ब्रत राख्यौ, मेटि जगत उपहास ॥१०९॥

अर्थ—उद्धव ! न तो हम विरहिणी हैं न तो तुम (कृष्ण) के दास हो। कहते सुनते शरीर मे प्राण रहता है, कृष्ण को छोड़कर शून्य को भजो। विरही मछली जल से बिछुड़ने पर जीने की आशा छोडकर मर जाती है। पपीहा दास भाव को नही छोड़ता, पानी बरसते हुए भी प्यास से मरता है। (यद्यपि) कमल (पंकज) अत्यधिक (परम) जल (कमल) मे विहार करता है (प्रस्फुटित होता है) और विधाता ने उसे जल (नीर) से निराश कर दिया अर्थात् किरणो से जल को सीख लेता है, (तथापि) कमल सूर्य का दोष नही मानता, किन्तु चन्द्रमा से सहज ही उदास हो जाता है। दशरथ ने प्रियतम राम को वनवास देकर (प्राण देकर) प्रत्यक्ष प्रेम का पालन किया (गोपियाँ कहती हैं) हमने जगत का उपहास मिटाकर कृष्ण से दृढ़ व्रत रखा ॥१०९॥

ऊधौ लै चल लै चल।
जहँ वै सुन्दर स्याम बिहारी, हमकौं तहँ लै चल।
आवन-आवन कहि गए ऊधौ, करि गए हमसौं छल।
हृदय की प्रीति स्याम जू जानत, कितिक दूरि गोकुल।
आपुन जाइ मधुपुरी छाए, उहाँ रहे हिलि मिल।
सूरदास स्वामी के बिछुरैं, नैननि नीर प्रबल ॥११०॥

अर्थ—जहाँ कृष्ण बिहारी है ऊधो वही हमको ले चलो। कृष्ण आने के लिये कह गये, किन्तु हम से छल ही कर गये। हृदय को प्रीति (यदि) कृष्ण जानते होते तो गोकुल कितनी दूर है (ही) (आ सकते थे)। स्वयं जाकर मथुरा मे छा गये वहाँ हिल-मिल कर रहने लगे। सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती है) कृष्ण के बिछुडने से नेत्रो से प्रबल आंसू वह रहे हैं ॥११०॥

गुप्त मते की बात कहौं, जो कहौ न काहू आगैं।
कै हम जानैं कै हरि तुमहूँ, इतनी पावहिं माँगैं।
एक बेर खेलत बृन्दावन, कंटक चुभि गयौ पाइ।
कंटक सौं कंटक लै काढ़यौ, अपनैं हाथ सुभाइ।
एक दिवस बिहरत बन भीतर, मैं जु सुनाई भूख।
पाके फल वै देखि मनोहर, चढ़े कृपा करि रूख।
ऐसी प्रीति हमारी उनकी, बसतैं गोकुल वास।
सूरदास प्रभु सब बिसराई, मधुबन कियौ निवास ॥१११॥

अर्थ—रहस्य की बात कहती हूँ, जिसे किसी के आगे मत कहना। या तो हम जाने या तुम यही (एक) हमारी माँग (हमे) मिले। एक बार वृन्दावन मे खेलते हुए पांव मे कटक चुभ गया। (कृष्ण ने) अपने सुन्दर हाथ से कंटक लेकर कंटक को काढा। एक दिन वन मे घूमते हुए मैंने जो भूख सुनाया तो (कृष्ण) पके हुए मनोहर फल को देखकर पेड़ पर चढ़ गये। गोकुल मे रहते हुए हमारी उनकी ऐसी प्रीति थी।

सूरदास कहते है (गोपियाँ कहती हैं) कृष्ण ने मधुवन में निवास करते ही सब कुछ भुला दिया ।।१११।।

ऊधौ जौ हरि हितू तुम्हारे ।
तौ तुम कहियौ जाइ कृपा करि, ए दुख सबै हमारे ।
तन तरिवर उर स्वास पवन मैं, बिरह दवा अति जारे ।
नहिं सिरात नहिं जात छार ह्वै, सुलगि-सुलगि भए कारे ।
जद्यपि प्रेम उमँगि जल सींचे, बरषि-बरषि घन हारे ।
जौ सींचे इहिं भाँति जतन करि, तौ एतैं प्रतिपारे ।
कीर कपोत कोकिला चातक, बधिक बियोग बिडारे ।
क्यौं जीवैं इहिं भाँति सूर प्रभु, ब्रज के लोग बिचारे ।।११२।।

अर्थ—उद्धव ! यदि कृष्ण तुम्हारे हितैषी हैं तो उनसे जाकर कृपा करके कहना हमारे दुख इस प्रकार हैं । शरीर रूपी वृक्ष मे साँस रूपी पवन ने विरह की दावाग्नि को अत्यधिक प्रज्वलित कर दिया । न तो (शरीर) शीतल होता है न जलकर राख हो जाता है बल्कि सुलग-सुलग कर काला हो गया है । यद्यपि प्रेम ने उमगकर जल बरसाया तथा (आँखें रूपी बादल) बरस-बरस कर हार गये । जो इतने यत्न पूर्वक इसे सीचा तो (किसी तरह से) बचा पायी । वियोग रूपी वधिक ने तोता, कबूतर, कोयल, चातक आदि को भगा दिया । सूरदास कहते है (गोपियाँ कहती हैं) इस प्रकार बेचारे ब्रज के लोग कैसे जीवित रहे ।।११२।।

बिलग हम मानैं ऊधौ काकौ ।
तरसत रहे बसुदेव देवकी, नहिं हित मातु पिता कौ ।
काके मातु पिता को काकौ, दूध पियौ हरि जाकौ ।
नंद जसोदा लाड़ लड़ायौ, नाहिं भयौ हरि ताकौ ।
कहियौ जाइ बनाइ बात यह, को हित है अबला कौ ।
सूरदास प्रभु प्रीति है कासौं, कुटिल मीत कुबिजा कौ ।।११३।।

अर्थ—उद्धव, हम किस-किस बात का बुरा माने । (कृष्ण) वसुदेव तथा देवकी के लिये तरसते रहे (यशोदा नन्द) माता-पिता के हित को नही माना । कौन उनका माता-पिता है (माता-पिता वही है) जिनका कृष्ण ने दूध पिया है । नन्द तथा यशोदा ने कृष्ण को लाड़-प्यार किया लेकिन कृष्ण उनके नही हुए । जाकर कृष्ण से बात बनाकर कहना (हम) अबलाओं का (उनके) क्या हित है । सूरदास कहते है (गोपियाँ कहती है) कुब्जा के कुटिल मित्र कृष्ण को किससे प्रेम है ।।११३।।

जीवन मुख देखे कौ नीकौ ।
दरस, परस दिन राति पाइयत, स्याम पियारे पी कौ ।
सूनौ जोग कहा लै कीजै, जहाँ ज्यान है जी कौ ।
नैननि मूँदि मूँदि कह देखौं, बँधौ ज्ञान पोथो कौ ।

आछे सुन्दर स्याम हमारे, और जगत सब फीको।
खाटे मही कहा रुचि मानै, सूर खवैया घी कौ ॥११४॥

अर्थ—जीवन (तुल्य कृष्ण का) सुन्दर मुख देखने के लिए है। प्यारे कृष्ण का दर्शन तथा स्पर्श दिन रात पाती हूँ। सुनो योग लेकर क्या करूँ जहाँ प्राण की भी हानि है। नैन मूँद-मूँदकर क्या देखूँ तथा ज्ञान की पोथी से कैसे बँधूँ। हमारे कृष्ण अच्छे तथा सुन्दर हैं और संसार में सभी फीके हैं। (गोपियाँ कहती हैं) घी के खाने वाले को खट्टा मट्ठा कैसे रुचिकर होगा ॥११४॥

अपने सगुन गोपालहिँ माई, इहिँ बिधि काहैं देति।
ऊधौ की इन मीठी बातनि, निर्गुन कैसैं लेति।
धर्म, अर्थ, कामना सुनावत, सब सुख मुक्ति समेति।
काकी भूख गई मन लाड़ू, सो देखहु चित चेति।
जाकौ मोक्ष बिचारत बरनत, निगम कहत हैं नेति।
सूर स्याम तजि को भुस फटकै, मधुप तुम्हारे हेति ॥११५॥

अर्थ—सखी अपने सगुण गोपाल को इस प्रकार कैसे दूँ। ऊधो की इन मीठी बातों से निर्गुण को कैसे लूँ! धर्म, अर्थ तथा सब सुखो सहित मुक्ति की इच्छा (की बात) सुनाते हैं। मन मे विचार करके देखो मन के लड्डू से किसकी भूख जाती है। जिस मोक्ष को विचारते तथा वर्णन करते निगम उसे नेति-नेति कहते हैं। सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती हैं) कृष्ण को छोड़कर (उद्धव) तुम्हारे लिये कौन भूसा फटके ॥११५॥

पाँचवाँ सवाव

वे हरि सकल ठौर के बासी।
पूरन ब्रह्म अखंडित मंडित, पंडित मुनिन बिलासी।
सप्त पताल ऊरध अध पृथ्वी, तल नभ बरुन बयारी।
अभ्यंतर दृष्टी देखन कौं, कारन रूप मुरारी।
मन, बुधि, चित, अहँकार दसेंद्रिय, प्रेरक थंभनकारी।
ताकैं काज वियोग बिचारत, ये अबला-ब्रजनारी।
जाकौं जैसौ रूप मन रुचै, सो अपबस करि लीजै।
आसन बैसन ध्यान धारना, मन आरोहन कीजै।
षट दल अठ द्वादस दल निरमल, अजपा जाप जपाली।
त्रिकुटी संगम ब्रह्म द्वार भिदि, यौं मिलिहैं बनमाली।
एकादस गीता श्रुति साखी, जिहिँ बिधि मुनि समुझाए।
ते सँदेस श्रीमुख गोपिनि कौ, सूर सु मधुप सुनाए ॥११६॥

अर्थ—वे कृष्ण सब जगह के निवासी (सर्वव्यापी) है। पूर्ण ब्रह्म अखड रूप से शोभित तथा पंडित तथा मुनि लोगों को विलसित करने वाला है। सात पाताल, पृथ्वी

के उर्ध्व और अध (ऊपर ओर नीचे) नभ, तल तथा वरुण (जल) और वायु के कारण रूप मुरारी (कृष्ण को) देखने के लिए अन्तर दृष्टि की आवश्यकता है। मन, बुद्धि, चित्त, अहकार तथा दसो इन्द्रियो को प्रेरित तथा स्तम्भित करने वाले कृष्ण के लिये ये अबला नारियां वियोग का विचार करती। जिसको जैसा रूप रुचिकर हो उसे ही अपने बस मे कर लो। आसन पर बैठो तथा ध्यान धारण करो तथा मन का आरोहण कीजिये। छः दल कमल, आठ दल कमल, निर्मल बारह दल (पर ध्यान) तथा अजपा जाप करो। त्रिकुटी के संगम तथा ब्रह्म द्वार को भेदकर वनमाली (कृष्ण से) मिलो। जिस तरह से सब मुनियो ने समझाया है, उसके लिये ग्यारह गीता साक्षी है। श्रीमुख (कृष्ण के) सदेश को ऊधो ने इस प्रकार गोपियो को सुनाया ॥११६॥

ऊधौ हमरी सौं तुम जाहु।
यह गोकुल पूनौ कौ चंदा, तुम ह्वै आए राहु।
ग्रह के ग्रसे गुसा परगास्यौ, अब लौं करि निरबाहु।
सब रस लै नँदलाल सिधारे, तुम पठए बड़ साहु।
जोग बेचि के तदुल लीजै, बीच बसेरे खाहु।
सूरदास जबहीं उठि जैहौ, मिटिहै मन कौ दाहु ॥११७॥

अर्थ—ऊधो हमारी कसम तुम चले जाओ। यह गोकुल पूर्णिमा की चन्द्रमा है तुम राहु होकर आये हो। ग्रह ग्रसे हम गोपियों को क्रोध दिलाते हो, अब तक उसका निर्वाह किया, सब रस लेकर कृष्ण चले गये फिर बड़े सज्जन ने तुमको भेजा। योग बेचकर चावल खरीद लो जिसे रास्ते के बसाव (टिकाव) मे खाना। सूरदास कहते हैं (गोपियां कहती हैं) जब तुम उठकर जाओगे तभी हृदय की दाह मिटेगी ॥११७॥

ऊधौ मौन साधि रहे।
जोग कहि पछितात मन-मन, बहुरि कछु न कहे।
स्याम कौं यह नहीं बूझै, अतिहि रहे खिसाइ।
कहा मैं कहि-कहि लजानौ, नार रह्यौ नवाइ।
प्रथम ही कहि बचन एकै, रह्यौ गुरु करि मानि।
सूर प्रभु मोकौं पठायौ, यहै कारन जानि ॥११८॥

अर्थ—उद्धव ने चुप्पी साध ली। योग कहकर मन-ही-मन मे पछताते हैं फिर कुछ नही कहा। कृष्ण के लिये यह उचित नही था, यह सोचकर क्रुद्ध हुये। पहले तो मैं व्यर्थ ही कह-कहकर लज्जित हुआ तथा (ऊधो) गर्दन झुका ली। सूरदास कहते है पहले एक ही वचन (सिद्धान्त अद्वैत) कहकर तथा मुझे गुरुवत् सम्मान देकर प्रभु ने मुझे भेजा, उसका यही कारण जान पड़ता है (मुझे मूर्ख बनाने के लिये ही इस प्रकार से कृष्ण ने भेजा यही रहस्य की बात मालूम पड़ती है) ॥११८॥

मधुकर भली करी तुम आए।
वै बातैं कहि कहि या दुख मैं, ब्रज के लोग हँसाए।

मोर मुकुट मुरली पीतांबर, पठवहु सौंज हमारी।
आपुन जटाजूट, मुद्रा धरि, लीजै भस्म अधारी।
कौन काज वृन्दावन कौ सुख, दही भात की छाक।
अब वै स्याम कूबरी दोऊ, वने एक ही ताक।
वै प्रभु बड़े सखा तुम उनके, जिनकैं सुगम अनीति।
या जमुना जल कौ सुभाव यह, सूर विरह की प्रीति ॥११९॥

अर्थ—उद्धव, तुम अच्छा किये जो चले आये। इस दुख में उन वातो को कह-कह कर ब्रज के लोगों को हँसाया। मोर पंख का मुकुट, मुरली पीतांबर आदि मेरे सामान को भेज दो। अपने जटा, जूट, मुद्रा, भस्म, अधारी आदि को अपने पास ही रखो। (कृष्ण को) वृन्दावन के सुख से तथा दही-भात के छाक से क्या मतलब है! अब वे कृष्ण तथा कुवरी दोनों एक समान है। वे स्वामी है तुम उनके वड़े मित्र हो जिनकी अनीति सुगम ही है। विरह का प्रेम यमुना के जल के समान (गत्यात्मक-अस्थिर) है ॥११९॥

काहे कौं रोकत मारग सूधौ।
सुनहु मधुप निरगुन कंटक तैं, राजपंथ क्यौं रूँधौ।
कै तुम सिखि पठए हौ कुबिजा, कह्यौ स्याम घनहूँ धौं।
वेद पुरान सुमृति सब ढूंढ़ौ, जुवतिनि जोग कहूँ धौं।
ताकौ कहा परेखौ कीजै, जानै छाँछ न दूधौ।
सूर मूर अक्रूर गयौ लै, व्याज निवेरत ऊधौ ॥१२०॥

अर्थ—सीधा मार्ग क्यो रोकते हो। उद्धव, सुनो निर्गुण कांटे से राजपथ क्यों अवरुद्ध करते हो। क्या तुम कुबरी के द्वारा सिखाकर भेजे गये हो या कृष्ण ने भी कहा है। वेद, पुराण, स्मृति सब कुछ ढूंढ डालो कही युवतियो के लिए योग (का विधान) है। उनकी बातो को कैसे बुरा माना जाय जो दूध तथा मट्ठा जानता ही नही है (जो इतना मूर्ख है कि दूध और मट्ठे का अन्तर नही जानता)। सूरदास कहते है (गोपियां कहती हैं) अक्रूर (कृष्णधन) ले गये तथा उद्धव, तुम व्याज वसूलने आये हो ॥१२०॥

ऊधौ कोउ नाहिंन अधिकारी।
लै न जाहु यह जोग आपनौ, कत तुम होत दुखारी।
यह तौ वेद उपनिषद मत है, महा पुरुष व्रतधारी।
हम अबला अहीरि व्रज-वासिनि, नाहीं परत सँभारी।
को है सुनत कहत हौ कासौं, कौन कथा विस्तारी।
सूर स्याम कैं संग गयौ मन, अहि काँचुली उतारी ॥१२१॥

अर्थ—उद्धव! यहां (योग) का कोई अधिकारी नही है। तुम अपने योग को (क्यो) ले नही जाते तुम दुखी क्यों होते हो। यह तो वेद तथा उपनिपदो का मत है तथा व्रतधारी महापुरुषो के लिए (उपयुक्त) है। हम व्रजनिवासिनियो तथा अवला अहीरिनो से (यह योग) सम्हाला नहीं जाता। किससे कहते हो तुम्हारे कथा के

विस्तार को कौन सुनाता है। सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती हैं) मन तो कृष्ण के साथ चला गया और साँप के केचुली की (तरह) इस शरीर को छोड गया ॥१२१॥

वै बातैं जमुना-तीर की।
कबहुँक सुरति करत हैं मधुकर, हरन हमारे चीर की।
लीन्हे बसन देखि ऊँचे द्रुम, रबकि चढ़न बलबीर की।
देखि-देखि सब सखी पुकारतिं, अधिक जुड़ाई नीर की।
दोऊ हाथ जोरि करि माँगैं, ध्वाई नंद अहीर की।
सूरदास प्रभु सब सुख दाता, जानत हैं पर पीर की ॥१२२॥

अर्थ—यमुना के किनारे की चीरहरण सम्बन्धी बातो की क्या कभी कृष्ण याद करते हैं ? वस्त्र को लेकर कृष्ण उत्साहपूर्वक ऊँचे वृक्ष पर चढ गये। जल से शीतल हुई सखियाँ (कृष्ण को) देख देखकर पुकारती थी। नन्द अहीर की दोहाई देकर तथा दोनो हाथ जोडकर अपने वस्त्र माँगती हूँ। सूर के प्रभु कृष्ण सब को सुख देने वाले है तथा वे पराई पीडा को जानने वाले हैं ॥१२२॥

प्रेम न रुकत हमारे बूतैं।
किहिं गयंद बाँध्यौ सुनि मधुकर, पदुम नाल के काँचे सूतैं ?
सोवत मनसिज आनि जगायौ, पठै सँदेस स्याम के दूतैं।
बिरह-समुद्र सुखाइ कौन बिधि, रंचक जोग अगिनि के लूतैं।
सुफलक सुत अरु तुम दोऊ मिलि, लीजै मुकुति हमारे हूतैं।
चाहतिं मिलन सूर के प्रभु कौं, क्यौं पतियाहिं तुम्हारे धूतैं ॥१२३॥

अर्थ—हमारे बल से प्रेम रुक नही सकता। ऊधो कहो कमल नाल के कच्चे धागे से किसने हाथी को बाँधा है। कृष्ण ने दूत भेजकर प्रसुप्त काम-व्यथा को जगा दिया। हम लोगो का विरह समुद्र आपकी थोडी-सी योगाग्नि की लपट से कैसे सूख सकता है ? अक्रूर तथा तुम दोनों मिलकर हमारी ओर से भी मुक्ति लीजिए। सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती है) हम कृष्ण से मिलना चाहती हैं तुम्हारे जैसे धूर्त पर कैसे विश्वास करे ॥१२३॥

ऊधौ सुनहु नैकु जो बात।
अबलनि कौं तुम जोग सिखावत, कहत नहीं पछितात।
ज्यौं ससि बिना मलीन कुमुदिनी, रवि बिनुहीं जलजात।
त्यौं हम कमलनैन बिनु देखे, तलफि-तलफि मुरझात।
जिन स्रवननि मुरली सुर आँचयौ, मुद्रा सुनत डरात।
जिन अधरनि अमृत फल चाख्यौ, ते क्यौं कटु फल खात।
कुंकुम चंदन घसि तन लावतिं, तिहिं न बिभूति सुहात।
सूरदास प्रभु बिनु हम यौं हैं, ज्यौं तरु जीरन पात ॥१२४॥

अर्थ—उद्धव! तनिक (हमारी) बात तो सुनो! अबलाओं को तुम योग सिखाते हो (यह कहते) तुम पश्चात्ताप नही करते हो। जैसे चन्द्रमा के बिना कुमुदिनी और सूर्य के बिना कमल वैसे ही हम कमल के समान नेत्र वाले कृष्ण को देखे बिना तड़प-तडप कर मुरझाती हैं। जिन कानो से मुरली के स्वर को सुना है (उन्ही कानो से) मुद्रा सुनते डर लगती है। जिन अधरों से मधुर फल चखा है वे क्यों कड़ुये फल को खायें। कुंकुम, चन्दन को घिस कर शरीर में लगाती थी। (उस) शरीर को भस्म नही सुहाती है। (गोपियाँ कहती हैं) हम कृष्ण के बिना वैसे ही हैं जैसे जीर्ण पत्तों वाला वृक्ष ॥१२४॥

ऊधौ जोग जोग हम नाहीं।
अबला सार-ज्ञान कह जानैं, कैसैं ध्यान धराहीं।
तेई मूँदन नैन कहत हौ, हरि मूरति जिन माहीं।
ऐसी कथा कपट की मधुकर, हमतैं सुनी न जाहीं।
स्रवन चीरि सिर जटा बँधावहु, ये दुख कौन समाहीं।
चंदन तजि अँग भस्म बतावत, बिरह-अनल अति दाहीं।
जोगी भ्रमत जाहि लगि भूले, सो तौ है अप माहीं।
सूरस्याम तैं न्यारी न पल छिन, ज्यौं घट तैं परछाहीं ॥१२५॥

अर्थ—उद्धव, योग के योग्य हम नही है। अबलाएँ तत्व ज्ञान क्या जाने तथा कैसे ध्यान धरें। (तुम) उन्ही नेत्रो को मूँदने को कहते हो जिनमे कृष्ण की मूर्ति है। मधुकर (ऊधो) ऐसी कपट कथा हमसे सुनी नही जाती। कानो को फाड़कर सिर पर जटा बँधाते हो यह दुख कहाँ समाये। विरह की अग्नि से अत्यधिक दग्ध शरीर में चन्दन को त्यागकर भस्म लगाने को कहते हो। योगी जिसके लिए भ्रमित है वह अपने ही भीतर है। सूरदास कहते है (गोपियाँ कहती हैं) कृष्ण से हम क्षण भर भी अलग नही है जैसे शरीर से परछायी अलग नही है ॥१२५॥

हम तौ नंद-घोष के बासी।
नाम गुपाल जाति कुल गोपक, गोप गुपाल उपासी।
गिरिवर धारी गोधन चारी, वृन्दावन अभिलाषी।
राजा नंद जसोदा रानी, सजल नदी जमुना सी।
मीत हमारे परम मनोहर, कमलनैन सुख रासी।
सूरदास-प्रभु कहौं कहाँ लौं, अष्ट महा-सिधि दासी ॥१२६॥

अर्थ—हम नन्द के गाँव की रहने वाली हैं। हम गिरिवर धारी, गाय चराने वाले, वृन्दावन के अभिलाषी ग्वाल जाति के गोपाल कृष्ण की उपासना करने वाली है। राजा नन्द तथा रानी यशोदा तथा यमुना के समान जल युक्त सुन्दर नदी से (यह स्थान शोभित है) सुख की राशि कमलवत् नेत्र वाले कृष्ण हमारे परम मनोहर मित्र

है। सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती हैं) कहाँ तक कहूँ (मैं अष्ट महासिद्ध (कृष्ण की) दासी हूँ ॥१२६॥

यह गोकुल गोपाल उपासी।
जे गाहक निगु न के ऊधौ, ते सब बसत ईस-पुर कासी।
जद्यपि हरि हम तजि अनाथ करि, तदपि रहतिं चरननि रस रासी।
अपनी सीतलता नहिँ छाँड़त, जद्यपि बिधु भयौ राहु-गरासी।
किहिँ अपराध जोग लिखि पठवत, प्रेम भगत तैं करत उदासी।
सूरदास ऐसी को बिरहिनि, माँगि मुक्ति छाँड़ै गुन रासी ॥१२७॥

अर्थ—उद्धव, यह गोकुल गोपाल का भक्त है। जो निर्गुण के ग्राहक है वे शकर की पुरी काशी मे वसते हैं। यद्यपि कृष्ण ने हमें अनाथ करके छोड दिया तो भी चरणो के रस मे अनुरक्त रहती हूँ। चन्द्रमा राहु से ग्रसित होने पर भी अपनी शीतलता को नही छोडता। किस अपराध के कारण योग लिखकर भेजते है और प्रेम-भक्ति से उदासीन करते हैं। सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती हैं) कि ऐसी कौन विरहिणी है जो मुक्ति माँग कर गुण-राशि (श्री कृष्ण चन्द्र) को त्याग दे ॥१२७॥

ऐसौं सुनियत द्वै बैसाख।
देखति नहीं ब्यौंत जीवे कौ, जतन करौ कोउ लाख।
मृगमद मलय कपूर कुमकुमा, केसर मलियै साख।
जरत अगिनि मैं ज्यौं घृत नायौ, तन जरि ह्वै है राख।
ता ऊपर लिखि जोग पठावत, खाहु नीम, तजि दाख।
सूरदास ऊधौ की बतियाँ, सब उड़ि बैठीं ताख ॥१२८॥

अर्थ—ऐसा सुना जाता है कि इस वार दो वैशाख (अतिरिक्त मास) पड़ गया है। जीने का कोई उपाय नही देखती हूँ चाहे कोई लाख प्रयत्न करे। मृगमद (कस्तूरी), मलय, कपूर तथा कुकुम और केशर जो मले गये वे सब इसके साक्षी है, लेकिन यह सब जलती हुई अग्नि मे जैसे घी डाल दिया गया हो, शरीर जलकर भस्म हो गया। उसके ऊपर योग लिख कर भेजते हैं और अंगूर को छोड़कर नीम खाने को (कहते हो)। सूरदास कहते है उद्धव की सभी बाते उड़कर ताख पर बैठ गयी ? ॥१२८॥

इहिँ विधि पावस सदा हमारैं।
पूरब पवन स्वास उर ऊरध, आनि मिले इकठारैं।
बादर स्याम सेत नैननि मैं, बरसि आँसु जल ढारै।
अरुन प्रकास पलक दुति दामिनि, गरजनि नाम पियारैं।
चातक दादुर मोर प्रकट ब्रज, बसत निरंतर धारैं।
ऊधव ये तब तैं अटके ब्रज, स्याम रहे हित टारैं।
कहिऐ काहि सुनै कत कोऊ, या ब्रज के ब्यौहारैं।
तुमही सौं कहि-कहि पछितानी, सूर बिरह के धारैं ॥१२९॥

अर्थ—इस प्रकार सदा हमारे (साथ) वर्षा ऋतु है। हृदय के ऊपर साँस रूपी पुरवा हवा आकर एक स्थान पर मिलती है। आँखों की काली तथा सफेद पुतलियो रूपी बादल आँसू जल बरसाते हैं। (आँखो की) ललाई का प्रकाश तथा पलक रूपी बिजली की चमक है तथा कृष्ण के नाम की गर्जना है। चातक, मेढक, मोर, ब्रज मे आकर निरन्तर बसते हैं। ऊधो, ये सब तभी से ब्रज मे अड़ गए है, किससे कहा जाय तथा ब्रज के इस व्यवहार को सुनता ही कौन है। सूरदास कहते है (गोपियाँ कहती हैं) कि तुम्ही से कहकर पछतायी (रूप) विरह को कौन धारण करे ।।१२९।।

ऊधौ कोकिल कूजत कानन।
तुम हमकौं उपदेश करत हौ, भस्म लगावन आनन।
औरौ सिखी सखा सँग लै लै, टेरत चढ़े पखानन।
बहुरौ आइ पपीहा कैं मिस, मदन हनत निज बानन।
हमतौ निपट अहीरि बावरी, जोग दीजिऐ जानन।
कहा कथत मौसी के आगैं, जानत नानी नानन।
तुम तौ हमैं सिखावन आए, जोग होइ निरवानन।
सूर मुक्ति कैसैं पूजति है, वा मुरली के तानन ।।१३०।।

अर्थ—उद्धव, जंगल में कोयल कूकती है। तुम हमको मुख पर भस्म लगाने का उपदेश करते हो। मोर अपने मित्रों को लेकर पहाड़ों पर चढ़कर टेरते हैं। फिर पपीहा के बहाने आकर कामदेव अपने बाणों से हनता है। हम तो बिल्कुल बावली अहीर की लड़कियाँ हैं अतः योग की शिक्षा ज्ञानियों को दीजिये। मौसी के आगे नानी-नाना की क्या बात करते हो (वह तो उन्हें जानती ही है)। तुम तो हमे सिखाने आये हो कि योग से निर्वाण होगा किन्तु मुक्ति मुरली की तानो से कैसे बराबरी कर सकती है ।।१३०।।

हमतैं हरि कबहूँ न उदास।
रास खिलाइ पिलाइ अधर रस, क्यौं बिसरत ब्रज बास।
तुमसौं प्रेम कथा कौं कहिबौ, मनौ काटिबौ घास।
बहिरौ तान-स्वाद कह जानै, गूँगौ बात मिठास।
सुनि री सखी बहुरि हरि ऐहैं, वह सुख वहै बिलास।
सूरदास ऊधौ अब हमकौं, भए तेरहौं मास ।।१३१।।

अर्थ—कृष्ण हमसे कभी भी उदास नही थे। रास खेला कर तथा ओठों का रस पिलाकर ब्रज का निवास क्यों भूलते हैं। तुमसे प्रेम कथा कहना मानो घास काटना है। बहरा तान के आस्वाद को क्या जाने तथा गूँगा बात की मिठास क्या जाने। सखी सुनो, कृष्ण फिर आयेगे; फिर वही सुख तथा विलास होगा। सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती हैं) अब हमको (कृष्ण को देखते-देखते) तेरह महीने हो गये। (कृष्ण के आने की अवधि बीत गई) ।।१३१।।

आयौ घोष बड़ौ ब्यौपारी।

खेप लादि गुरु ज्ञान जोग की, ब्रज मैं आनि उतारी।
फाटक दै कै हाटक माँगत, भोरौ निपट सुधारी।
धुरही तैं खोटौ खायौ है, लिये फिरत सिर भारी।
इनकैं कहे कौन डहकावै, ऐसी कौन अनारी।
अपनौ दूध छाँड़ि को पीवै, खारे कूप कौ बारी।
ऊधौ जाहु सबारैं ह्याँ तैं, वेगि गहरु जनि लावहु।
मुख माँगौ पैहौ सूरज प्रभु, साहुहिं आनि दिखावहु ।।१३२।।

अर्थ—गाँव मे एक बडा व्यापारी आया है। भारी ज्ञान रूपी खेप (सामान) लादकर ब्रज मे लाकर उतारा है। फटकन देकर सोना माँगता है, वह सीधा और भोला है। शुरू से ही व्यापार मे घाटा हुआ है। अतः वह सिर पर भारी बोझ लेकर घूम रहा है। इसके कहने से कौन बहकेगा ऐसा कौन मूर्ख है। अपने दूध को छोडकर खारे कुये का पानी कौन पियेगा। ऊधो यहाँ से शीघ्र ही चले जाओ, विलम्ब मत करो। कृष्ण रूपी साहू को ले आकर दिखा दो, मुँह माँगा मिलेगा ।।१३२।।

ऊधौ जोग कहा है कीजतु।

ओढ़ियत है, कि बिछैयत है, किधौं खैयत है किधौं पीजत।
कीधौं कछू खिलौना सुंदर, की कछु भूषन नीकौ।
हमरे नंद-नँदन जो चहियतु, मोहन जीवन जी कौ।
तुम जु कहत हरि निगुन निरंतर, निगम नेति है रीति।
प्रकट रूप की रासि मनोहर, क्यौं छाँड़े परतीति।
गाइ चरावन गए घोष तैं, अबहीं हैं फिरि आवत।
सोई सूर सहाइ हमारे, बेनु रसाल बजावत ।।१३३।।

अर्थ—उद्धव, योग का क्या किया जाय। ओढा जाय, या बिछाया जाय; खाया जाय कि पिया जाय। क्या यह कोई सुन्दर खिलौना है कि कोई सुन्दर आभूषण है? हम कृष्ण को चाहती हैं तथा मोहन प्राणो को जीवित रखने वाले हैं। तुम जो कहते हो कि ब्रह्म (कृष्ण) निर्गुण है तथा निगम उसके विषय मे नेति की रीति का (प्रतिपादन करते हैं)। (हमने) प्रत्यक्ष कृष्ण के रूप राशि को देखा है, इससे हमारा मन विश्वास क्यो छोडे। गांव (वह) गाय चराने गए है तथा अभी आते होगे। सूरदास कहते है (गोपियाँ कहती है) वही हमारे सहायक है, (वह) रसयुक्त वंशी बजाने वाले है ।।१३३।।

अपने स्वारथ के सब कोऊ।

चुप करि रहौ मधुप रस-लंपट, तुम देखे अरु ओऊ।
जो कछु कह्यौ कह्यौ चाहत हौ, कहि निरवारौ सोऊ।
अब मेरैं मन ऐसियै षटपद, होनी होउ सु होऊ।

तब कत रास रच्यौ बृन्दावन, जौ पै ज्ञान हुतोऊ।
लीन्हे जोग फिरत जुवतिनि मैं, बड़े सुपत तुम दोऊ।
छुटि गयौ मान परेखौ रे अलि, हृदै हुतौ वह जोऊ।
सूरदास प्रभु गोकुल बिसरयौ, चित चिंतामनि खोऊ ।।१३४।।

अर्थ—सब कोई अपने स्वार्थ के (साथी) हैं। रस के लंपट मधुप (भ्रमर) चुप रहो। तुम्हें और उन्हे (दोनो को) देख लिया। जो कुछ कहा तथा कहना चाहते हो उसे भी कहकर छुट्टी लो। भ्रमर (ऊधो) मेरे मन मे ऐसा है, जो होना हो, हो जाय। जब ज्ञान (की बात करना था) तो वृन्दावन मे रास क्यों रचाया ? युवतियो में योग लिये फिरते हो तुम दोनों बडे बुद्धिमान (प्रतिष्ठा सम्पन्न) हो। हृदय में जो भरोसा था, वह भी छूट गया। चित्त की कामना पूर्ति करने वाली मणि को खोकर कृष्ण ने गोकुल को भुला दिया ।।१३४।।

मधुकर प्रीति किये पछितानी।
हम जानी ऐसैहिं निबहैगी, उन कछु औरै ठानी।
वा मोहन कौं कौन पतीजै, बोलत मधुरी बानी।
हमकौं लिखि लिखि जोग पठावत, आपु करत रजधानी।
सूनी सेज सुहाइ न हरि बिनु, जागति रैनि बिहानी।
जब तैं गवन कियौ मधुबन कौं, नैननि बरषत पानी।
कहियौ जाइ स्याम सुंदर कौं, अन्तरगत की जानी।
सूरदास प्रभु मिलि कै बिछुरे, तातैं भईं दिवानी ।।१३५।।

अर्थ—मधुकर, प्रेम करके हमने पश्चात्ताप किया। हमने समझा कि ऐसे निर्वाह होगा लेकिन कृष्ण ने मन मे कुछ और ही ठान रखा था। उस कृष्ण का कौन विश्वास करे जो मधुर वाणी बोलने वाले है, हमको लिख लिखकर योग भेजते है तथा स्वयं राजधानी (का भोग) करते है। कृष्ण के बिना सूनी सेज अच्छी नहीं लगती तथा जागते हुए रात बीतती है। जब से कृष्ण मधुवन को गये, नेत्रो से जल बरसता रहता है। अन्तरगत की बात जाकर कृष्ण से कहना। सूरदास कहते है (गोपियाँ कहती हैं) कृष्ण से मिलकर बिछुड़ गयी, उसी से दीवानी हो गयी ।।१३५।।

हमारैं हरि हारिल की लकरी।
मनक्रम बचन नंद-नंदन उर, यह दृढ़ करि पकरी।
जागत सोवत स्वप्न दिवस-निसि, कान्ह-कान्ह जकरी।
सुनत जोग लागत है ऐसौ, ज्यौं करुई ककरी।
सु तौ ब्याधि हमकौं लै आए, देखी सुनी न करी।
यह तौ सूर तिनहिं लै सौंपौ, जिनके मन चकरी ।।१३६।।

अर्थ—कृष्ण हमारे लिए हारिल की लकड़ी से समान हैं। मन, कर्म, वचन तथा हृदय से मैंने कृष्ण को दृढ़तापूर्वक पकड़ा है। जागते, सोते, स्वप्न मे तथा दिन

रात कृष्ण-कृष्ण की रट (धुन) लगी रहती है। योग सुनते हुए ऐसा लगता है जैसे कडवी ककड़ी है। तुम ऐसी व्याधि ले आये जिसे हमने न तो देखा है, न सुना है, न किया है। सूरदास कहते है (गोपियाँ कहती हैं) यह तो उन्हें सौपो जिनके मन चंचल हैं ॥१३६॥

कहा होत जो हरि हित चित धरि, एक बार ब्रज आवते।
तरसत ब्रज के लोग दरस कौं, निरखि निरखि सुख पावते।
मुरली सब्द सुनाहत सबहिनि, हरते तन की पीर।
मधुरे बचन बोलि अमृत मुख, बिरहिनि देते धीर।
सब मिलि जग जस गावत उनकौ, हरष मानि उर आनत।
नासत चिन्ता ब्रज बनितनि की, जनम सुफल करि जानत।
दुरी दुरा कौ खेल न कोऊ, खेलत है ब्रज महियाँ।
बाल दसा लपटाइ गहत हे, हँसि-हँसि हमरी बहियाँ।
हम दासी बिनु मोल की उनकी, हमहिं जु चित्त बिसारी।
इत तैं उन हरि रमि रहे अब तौ, कुबिजा भई पियारी।
हिय मैं बातें समुझि-समुझि कै, लोचन भरि-भरि आए।
सूर सनेही स्याम प्रीति के, ते अब भए पराए ॥१३७॥

अर्थ—यदि कृष्ण स्नेह को चित्त मे धरकर ब्रज मे एक बार आ जाते तो क्या होता। ब्रज के लोग दर्शन के लिए तरसते हैं, (वे) उनके मुख को देख-देखकर सुख पाते। (कृष्ण) सब को मुरली का शब्द सुनाते तथा सभी की पीड़ा हरते। (कृष्ण आकर) मुख से अमृत तुल्य मधुर वचन बोलकर विरहिनियों को धीरज देते। सब संसार मिल कर उनका यश गाता तथा हर्षित होकर हृदय से लगाते। (कृष्ण आकर) ब्रज की स्त्रियो की चिन्ता का नाश करते (तो) वे अपने जन्म को सफल करके जानती। ब्रज के बीच कोई छिपा-छिपी का खेल नही खेलता। बालकपन मे हँस-हँस कर हमारी बाँह पकड़ते थे। हम उनकी बिना मूल्य की दासी हैं हमें क्यों भुला दिया। यहाँ से कृष्ण वहाँ रम रहे (अब) तो कुबरी प्यारी हो गयी। हृदय मे बाते समझ-समझकर आंख मे पानी भर-भर आता है। सूरदास कहते है (गोपियाँ कहती हैं) कृष्ण प्रेम के स्नेही थे, वे अब पराये हो गये ॥१३७॥

मधुकर आपुन होहिं बिराने।
बाहर हेतु हितू कहवावत, भीतर काज सयाने।
ज्यौं सुक पिंजर माहिं उचारत, ज्यौं ज्यौं कहत बखाने।
छूटत हीं उड़ि मिलै अपुन कुल, प्रीति न पल ठहराने।
जद्यपि मन नहिं तजत मनोहर, तद्यपि कपटी जाने।
सूरदास प्रभु कौन काज कौं, माखी मधु लपटाने ॥१३८॥

अर्थ—मधुकर, (वे) अपने बिराने हैं। बाहर से तो हितैषी कहलाते हैं किन्तु भीतर से (अपने कार्य) के लिए (काफी चतुर) श्रेष्ठ हैं। जैसे तोता जब पिंजड़े मे रहता है तो वही उच्चारण करता है, जो-जो कहने वाला (जिलाने वाला) कहता है, किन्तु वह छूटते ही उड़कर अपने परिवार मे मिल जाता है, उसमे (पुरानी) प्रीति पल भर भी नही ठहरती। यद्यपि मन उन मनोहर (कृष्ण को) नही त्यागता फिर भी जान गयी वे कपटी हैं। सूरदास कहते हैं (गोपियां कहती है) मक्खी मधु से किसलिए लिपटी रहती हैं ॥१३८॥

हरि तैं भली सुपति सीता कौ।
जाकैं बिरह जतन ए कीन्हे, सिंधु कियौ बीता कौ।
लंका जारि सकल रिपु मारे, देख्यौ मुख पुनि ताकौ।
दूत हाथ उन लिखि जु पठायौ, ज्ञान कह्यौ गीता कौ।
तिनकौ कहा परेखौ कीजै, कुबिजा के मीता कौ।
चढे सेज सातौं सुधि बिसरी, ज्यौं पीता चीता कौ।
करि अति कृपा जोग लिखि पठयौ, देखि डराईं ताकौ।
सूरजदास प्रीति कह जानैं, लोभी नवनीता कौ ॥१३९॥

अर्थ—कृष्ण से अच्छे तो सीता के सुन्दर पति (राम) थे। जिन्होने (सीता के विरह मे) ऐसा यत्न किया कि सिन्धु को एक बीता के अन्दर (शीघ्र ही नाप) कर डाला। उन्होने लंका को जलाकर समस्त शत्रुओ को मार डाला तथा फिर (सीता) उनके मुख को देखा। दूत के हाथ में जो (कृष्ण ने) गीता का ज्ञान लिखकर भेजा है, कुब्जा के मित्र कृष्ण का कैसे विश्वास किया जाय। सेज पर चढते ही शराबी (पीता) के चित्त (चीता) के समान सभी स्मृतियां भूल गयी। अत्यधिक कृपा करके योग लिख कर भेजा है कि उसे देखकर मैं डर गयी। सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती हैं) मक्खन के लोभी (श्री कृष्ण) प्रेम को क्या जानें ॥१३९॥

ऊधौ क्यौं बिसरत वह नेह।
हमरैं हृदय आनि नँद-नंदन, रचि रचि कीन्हे गेह।
एक दिवस गई गाइ दुहावन, वहाँ जु बरष्यौ मेह।
लिए उढ़ाइ कामरी मोहन, निज करि मानी देह।
जब हमकौं लिखि-लिखि पठवत हैं, जोग जुगुति तुम लेहु।
सूरदास बिरहिनि क्यौं जीवैं, कौन सयानप एहु ॥१४०॥

अर्थ—उद्धव, वह स्नेह कैसे भूले। कृष्ण ने हमारे हृदय मे आकर रच-रचकर (उसे अपना) घर बनाया। एक दिन गाय दुहाने गयी वहाँ जब बादल बरसा तो कृष्ण ने कमरी ओढ़ा दी तथा (हमारे) शरीरे को अपना करके जाना। अब हमें लिख लिख कर भेजते है कि तुम योग की युक्ति लो। सूरदास कहते हैं (गोपियां कहती हैं) इससे विरहिणी कैसे जिये तथा यह कौन सा सयानापन है ॥१४०॥

ऊधौ मन माने की बात।
दाख छुहारा छाँड़ि अमृत-फल, विषकीरा विष खात।
ज्यौं चकोर कौं देइ कपूर कोउ, तजि अगार अघात।
मधुप करत घर कोरि काठ मैं, बँधत कमल के पात।
ज्यौं पतंग हित जानि आपनौ, दीपक सौं लपटात।
सूरदास जाकौ मन जासौं, सोई ताहि सुहात ।।१४१।।

अर्थ—ऊधो मन की रुचि की बात है। विष खाने वाला (साँप) अंगूर तथा छोहारा छोड़कर विष खाता है। (जैसे) चकोर को यदि कोई कपूर दे तो उसे त्याग कर वह अंगार से ही तृप्त होता है। भ्रमर काठ मे छेद करता है तथा कमल के पंखुड़ियों मे बँधता है। जैसे पतंग अपना हित जानकर ही दीपक से लपटता है। सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती हैं) कि जिसका मन जिससे (लग गया है) वही उसको अच्छा लगता है ।।१४१।।

इहिं डर बहुरि न गोकुल आए।
सुनि री सखी हमारी करनी, समुझि मधुपुरी छाए।
अधरातक तैं उठि सब बालक, मोहिं टेरैंगे आइ।
मातु पिता मोकौं पठवैंगे, बनहिं चरावन गाइ।
सूने भवन आइ रोकेंगी, दधि चोरत नवनीत।
पकरि जसोदा पै लै जैहैं, नाचहु गावहु गीत।
ग्वारिनि मोहिं बहुरि बाँधैंगी, कै तव बचन सुनाइ।
वै दुख सूर सुमिरि मन ही मन, बहुरि सहै को जाइ ।।१४२।।

अर्थ—इस डर से फिर गोकुल नही आये। सखी सुनो हमारी करनी समझकर (कृष्ण) मधुपुरी मे छा गये। आधी रात के लगभग उठकर सभी बालक आकर मुझे पुकारेंगे। माता-पिता मुझे गाय चराने भेजेंगे। खाली घर मे मक्खन चुराते हुए मुझे स्त्रियाँ रोकेंगी। वे पकड़कर यशोदा के पास ले जायँगी तथा (कहेंगी) कि नाचो तथा गीत गाओ। छल के वचन सुनाकर ग्वालिनियाँ मुझे फिर बाँधेंगी। सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती हैं) उन दुखो को मन-ही-मन स्मरण कर (कृष्ण सोचते हैं) फिर उन्हे सहने कौन जाय ।।१४२।।

जौ कोउ बिरहिनि कौ दुख जानै।
तौ तजि सगुन साँवरी मूरति, कत उपदेसै ज्ञानै।
कुमुद चकोर मुदित बिधु निरखत, कहा करै लै भानै।
चातक सदा स्वाति कौ सेवक, दुखित होत बिनु पानै।
भौंर, कुरंग, काग, कोइल कौं, कबिजन कपट बखानैं।
सूरदास जौ सरबस दीजै, कारे कृतहि न मानैं ।।१४३।।

अर्थ—यदि कोई विरहिणी के दुख को समझे तो वह सगुण साँवली मूर्ति को छोडकर ज्ञान का उपदेश कैसे देगा। कमलिनी और चकोर चन्द्रमा को देखकर प्रसन्न होते हैं, वे सूर्य को लेकर क्या करे। चातक सदैव स्वाति के बूंद का सेवक है, वह (उसके) पान के बिना दुखी होता है। भौर, मृग, कौआ, कोयल आदि को कवि लोग कपटी कहते है। सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती हैं) यदि काले लोगों को सर्वस्व दे दिया जाय तो भी वे उपकार को नही मानते ॥१४३॥

ऊधौ सुधि नाहीं या तन की।
जाइ कहौ तुम कित ही भूले, हमऽब भईं बन-बन की।
इक बन ढूँढ़ि सकल बन ढूंढ़े, बन बेली मधुबन की।
हारि परीं बृन्दावन ढूँढ़त, सुधि न मिली मोहन की।
किए विचार उपचार न लागत, कठिन बिथा भई मन की।
सूरदास कोउ कहै स्याम सौं, सुरति करैं गोपिनि की ॥१४४॥

अर्थ—उद्धव, (हमें) इस शरीर का स्मरण नही है। तुम क्यों भूले हो, जाकर कृष्ण से कहो कि हम वन-वन की (ढूंढ़ने वाली) हो गयी है। इन समस्त वनो को ढूढ़ा तथा मधुवन की (समस्त) वन लताओ को ढूंढा। वृन्दावन में ढूंढते (ढूंढते) हार गयी किन्तु कृष्ण की कोई खबर नही मिली। विचार करने पर (भी) कुछ उपचार नही सूझता, जिससे मन मे कठिन पीड़ा हो गयी है। सूरदास कहते है (गोपियाँ कहती है) कोई कृष्ण से कहे कि (वह) गोपियों का ख्याल करे ॥१४४॥

लरिकाईं कौ प्रेम कहौ अलि कैसैं छूटत।
कहा कहौं ब्रजनाथ चरित, अंतरगति लूटत।
वह चितवनि वह चाल मनोहर, वह मुसकानि मंद-धुनि गावनि।
नटवर-भेष नंद-नंदन कौ, वह विनोद, वह बन तैं आवनि।
चरन कमल की सौहं करति हौं, यह सँदेस मोहिं विषसौं लागत।
सूरदास पल मोहिं न बिसरति, मोहन मूरति सोवत जागत ॥१४५॥

अर्थ—अलि (उद्धव) कहो बचपन की प्रीति कैसे छूटे। ब्रजनाथ (कृष्ण) के चरित्र को कैसे कहूँ वह (चरित्र) अन्तर को लूटने वाला है। वह दृष्टि, वह मनोहर चाल, वह मुस्कान, वह मंद ध्वनि से गाया जाने वाला गान, नटवर वेष, वह कृष्ण का विनोद तथा वन से वह आगमन (ये सब हृदयहारी हैं)। कृष्ण के चरण कमलों की कसम लेकर कहती हूँ यह संदेश मुझे विष जैसा लगता है। सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती हैं) (वह) मोहनी मूर्ति हमे सोते-जागते कभी नही भूलती ॥१४५॥

उद्धव हृदय परिवर्तन तथा गोपी संदेश

मैं ब्रजबासिन की बलिहारी।
जिनके सग सदा क्रीड़त हैं, श्री गोबरधन-धारी।

किनहूँ कैं घर माखन चोरत, किनहूँ कैं संग दानी।
किनहूँ कैं सँग धेनु चरावत, हरि की अकथ कहानी।
किनहूँ कैं सँग जमुना कैं तट, वंसी टेरि सुनावत।
सूरदास बलि-वलि चरननि की, यह सुख मोहिं नित भावत ॥१४६॥

अर्थ—मैं व्रजवासियो की वलि जाता हूँ जिनके साथ गोवर्धनधारी कृष्ण सदा खेलते है। (वह) किन्ही के साथ माखन चुराते है, किन्हीं के साथ दान (लोला) करते हैं। किन्ही के साथ (वह कृष्ण) गाय चराते हैं। इस प्रकार कृष्ण की कहानो अकथनीय है। किन्ही के साथ (कृष्ण) यमुना तट पर गाय चराते हैं तथा वंशो को टेर सुनाते है। सूरदास कहते है (ऊधो कहते है) कृष्ण के चरणों पर वलिहारी हूँ तथा यह सुख हमे सदैव भाता है ॥१४६॥

हौं इन मोरनि की वलिहारी।
जिनकी सुभग चंद्रिका माथै, धरति गोवरधनधारी।
वलिहारी वा वाँस-वंस की, वंसी सी सुकुमारी।
सदा रहति है कर जु स्याम कैं, नैकहुँ होति न न्यारी।
वलिहारी वा गुंज-जाति की, उपजी जगत उज्यारी।
सुन्दर हृदय रहत मोहन कैं, कवहूँ टरत न टारी।
वलिहारी कुल सैल सरित जिहिं, कहत कलिंद-दुलारी।
निसि-दिन कान्ह अंग आलिंगन, आपुनहूँ भई कारी।
वलिहारी वृन्दावन भूमिहिं, सुतौ भाग की सारी।
सूरदास प्रभु नाँगे पाइनि, दिन प्रति गैया चारी ॥१४७॥

अर्थ—मैं इन मोरो की वलिहारी (होता) हूँ जिनकी सुन्दर चन्द्रिका कृष्ण मस्तक पर धारण करते है। वाँस के कुल को वलिहारी है, जिसकी सुकुमारी वंशी सदा कृष्ण के हाथो मे रहती है तथा क्षण भर के लिए भी अलग नही होती। उस गुंज जाति को बलिहारी है जो कि उज्जवल संसार में उत्पन्न हुई है। (वह) कृष्ण के सुन्दर हृदय पर रहतो तथा कभी टाले नही टलतो। पर्वत समूह तथा 'सरिता' जिसे यमुना कहते है, उसकी वलिहारी है। रात-दिन कृष्ण के अंग आलिंगन से स्वयं भी काली हो गयी। वृन्दावन की भूमि को वलिहारी है क्योंकि वह भाग्य की भरी पूरी है, जहाँ कृष्ण ने नगे पांव प्रतिदिन गाय चराया ॥१४७॥

हम पर हेत किये रहिवी।
या व्रज कौ व्यौहार सखा तुम, हरि सौं सब कहिवौ।
देखे जात आपनी अँखियनि, या तन को दहिवौ।
तन की बिथा कहा कहौं तुमसौं, यह हमकौं सहिवौ।
तव न कियौ प्रहार प्राननि कौ, फिरि फिरि क्यौं चहिवौ।
अव न देह जरि जाइ सूर इनि, नैननि कौ वहिवौ ॥१४८॥

अर्थ—हम पर स्नेह किए रहना। सखा तुम इस ब्रज के सब व्यवहार को कृष्ण से कहना। (तुम) अपनी आँख से इस शरीर का जलना देखे जा रहे हो। तुमसे शरीर व्यथा क्या कहूँ यह हमको सहना होगा। तब तो प्राणों का प्रहार (त्याग) नही किया, अब बार-बार चाहने से क्या होता है। सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती है) अब तो इन नेत्रों के बहते रहने से शरीर भी नही जल जाता।।१४८।।

स्वामी पहिलौ प्रेम सँभारौ।
ऊधो जाइ चरन गहि कहियौ, जी तैं हित न उतारौ।
जो तुम मधुबन राज काज भए, गोकुल हम न अधारौ।
कमल नयन सो चैन न देखौ, नित उठि गोधन चारौ।
ये व्रज लोग मया के सेवक, तिनसौं क्यौं न बिहारौ।
सूरदास प्रभु एक बार मिलि, सकल बिरह दुख टारौ।।१४९।।

अर्थ—स्वामी (कृष्ण) पूर्व प्रेम (की प्रतिष्ठा) सम्हालो। उद्धव, जाकर चरण पकड़कर कहना कि हृदय से स्नेह दूर न करें। जो तुम मधुबन के राजकार्य को (धारण कर लिए) (अब) गोकुल में हमारे लिए (कोई) आश्रय नही है। कमल नयन को देखे विना चैन नही है, (निवेदन है) नित उठकर गाय चराओ। ये ब्रज के लोग प्रेम के सेवक हैं उनके साथ विहार क्यों नही करते। सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती हैं) एक बार मिलकर विरह के दुख को टाल दो।।१४९।।

इतनी बात अलि कहियौ हरि सौं, कब लगि यह मन दुख मैं गारैं।
पथ जोहत तन कोकिल बरन भइँ, निसि नींद पिय पियहिं पुकारैं।
जा दिन तैं बिछुरे नँद-नंदन, अति दुख दारुन क्यौं निरबारैं।
सूरदास प्रभु बिनु यह बिपदा, काकौ दरसन देखि बिसारैं।।१५०।।

अर्थ—अलि (उद्धव) कृष्ण से इतना कहना कि कब तक इस शरीर को विरह मे गलाऊँ (नष्ट करूँ)। पथ देखते (देखते) शरीर कोयल के रंग का हो गया। पिय-पिय पुकारते हुए हमें रात मे नीद नही आती। जिस दिन से कृष्ण बिछुड़े तभी से अत्यन्त दारुण दुख का निवारण नही होता। सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती है) प्रभु के विना यह विपत्ति किसके दर्शन से दूर करूँ।।१५०।।

ऊधौ जू, कहियौ तुम हरि सौं, जाइ हमारे हिय कौ दरद।
दिन नहिँ चैन, रैनि नहिँ सोवति, पावक भई जुन्हाई सरद।
जबतैं लै अक्रूर गए हैं, भई बिरह तन बाइ छरद।
काम प्रबल जाके अति ऊधौ, सोचत भइ जस पीत-हरद।
सखा प्रबीन निरतर हरि के, तातैं कहति हैं खोलि परद।
ध्यावतिँ रूप दरस तजि हरि कौ, सूर मूरि बिनु होतिँ मुरद।।१५१।।

अर्थ—उद्धव, तुम जाकर कृष्ण से हमारे हृदय के दर्द को कहना। दिन मे चैन नही है तथा रात मे नीद नही आती। शरद की ज्योत्सना अग्नि की तरह हो गयी।

जब से अक्रूर गये हैं, विरह की तप्त वायु से शरीर क्षरित हो गया है। उद्धव जिसके (शरीर मे) प्रवल काम (व्याप्त) है, सोचते हुए शरीर पीली हल्दी के समान हो गया है। आप कृष्ण के सदा के प्रवीण मित्र है इसलिए परदा खोलकर (बिना किसी रोक टोक के) कहती हूँ। कृष्ण के रूप के दर्शन को त्यागकर (पुनः उसी का) ध्यान करती हूँ अब, (कृष्ण रूपी) संजीवनी (जड़ी) के बिना हम मुर्दा हो गयी है ॥१५१॥

ऊधौ इक पतिया हमरी लीजै।
चरन लागि गोविंद सौं कहियौ, लिखौ हमारी दीजै।
हम तौ कौन रूप गुन आगरि, जिहिं गुपाल जू रीझैं।
निरखत नैन-नीर भरि आए, अरु कंचुकि पट भीजैं।
तलफत रहतिं मीन चातक ज्यौं, जल बिनु तृपा न छीजै।
अति ब्याकुल अकुलातिं बिरहिनी, सुरति हमारी कीजै।
अँखियाँ खरी निहाररतिं मधुबन, हरि-बिनु ब्रज विष पीजै।
सूरदास-प्रभु कबहिं मिलैंगे, देखि देखि मुख जीजै ॥१५२॥

अर्थ—उद्धव हमारा एक पत्र लीजिए। (कृष्ण के) चरण लगाकर कहना और हमारा लिखा हुआ देना। हम कौन रूप गुण मे अग्रणी है जो कि कृष्ण रीझे। देखते ही गोपियों के नेत्र मे आंसू भर आये और कंचुक का वस्त्र भीगता है। हम (गोपियां) मछली तथा चातक की तरह तलफती रहती हैं, जल के बिना (कृष्ण के रूप रस के बिना) प्यास नही बुझती। (हम) विरहिणियां व्याकुल होकर अकुलाती है (कृष्ण) हमारी स्मृति कीजिए। आंखे खड़ी (एकटक) मधुवन को निहारती हैं। कृष्ण के विना (हम) ब्रज मे विष पी लूंगी। सूरदास कहते है (गोपियां कहती हैं) कृष्ण कब मिलेगे जिनके मुख को देख-देख कर जिऊँगी ॥१५२॥

हम मति हीन कहा कछु जानैं, ब्रजवासिनी अहीर।
वै जु किसोर नवल नागर तन, वहुत भूप की भीर।
वचन की लाज सुरति करि राखौ, तुम अलि इतनी कहियौ।
भली भई जौ दूत पठायौ, इतनी वोल निवहियौ।
एक बार तौ मिलौ कृपा करि, जौ अपनौ ब्रज जानौ।
यहै रीति ससार सबनि की, कहा रंक कह रानौ।
हम अनाथ तुम नाथ गुसाईं, राखौ, क्यौं नहिं सोई।
षट रितु ब्रज पै आनि पुकारैं, सूरदास अब कोई ॥१५३॥

अर्थ—हम अहीर (जाति की) ब्रजवासिनियां हीन बुद्धि की होने के कारण कैसे कुछ समझे। वे तो किशोर तथा नवल सभ्य नागर (नागरिक हैं) तथा राजा के रूप मे बड़ी जिम्मेदारी को वहन करने वाले हैं, इसलिए हे भ्रमर (उद्धव) उनसे कहना कि वचन की लाज को स्मरण रखेगे। अच्छा हुआ जो कि आपने दूत भेजा (कम से कम) इतनी प्रतिज्ञा तो निभायी। यदि ब्रज को अपना समझो तो कम से कम एक बार तो

कृपा करके मिल जाओ। चाहे गरीब हो चाहे धनी सारी दुनियाँ की यही रीति है। हम अनाथ हैं तथा कृष्ण तुम नाथ हो इसलिए आप उस यश की रक्षा क्यों नही करते। छहो ऋतुये व्रज में आकर पुकारती है कि अब कोई (विरहिणियो को सहारा देने वाला) है ॥१५३॥

नंद-नँदन सौं इतनो कहियौ।
जद्यपि व्रज अनाथ करि डार्यौ, तद्यपि सुरति किये चित रहियौ।
तिनका तोर करहु जनि हम सौं, एक बास की लाज निबहियौ।
गुन औगुननि दोष नहिं कीजतु, हम दासिनि की इतनी सहियौ।
तुम बिनु प्रान कहा हम करिहैं, यह अवलंब न सुपनेहु लहियौ।
सूरदास पाती लिखि पठई, जहाँ प्रीति तहँ ओर निबहियौ ॥१५४॥

अर्थ—कृष्ण से इतना कहना यद्यपि व्रज को अनाथ कर डाले तब भी चित्त मे स्मरण रखिएगा। हमसे सम्बन्ध विच्छेद मत कीजिए। एक (साथ) निवास की लाज का निर्वाह करिए। गुण तथा अवगुण का दोष (ग्रहण न) करना, हम दासियों (के इतने अपराध को) सहना। तुम्हारे बिना हम प्राण को क्या करेगी यदि स्वप्न मे भी यह (प्राण) आपका अवलम्ब नही प्राप्त करेगा। सूरदास कहते हैं कि (गोपियो ने) पत्र लिखकर भेजा (तथा निवेदन किया) जहाँ प्रीति है (वहाँ) उसका अन्त तक निर्वाह भी होना चाहिए ॥१५४॥

बिनु गुपाल बैरिन भई कुंजैं।
तब वै लता लगति तन सीतल, अब भईं विषम ज्वाल की पुंजैं।
बृथा बहति जमुना, खग बोलत, बृथा कमल-फूलनि अलि गुंजैं।
पवन, पान, घनसार, सजीवन, दधि-सुत किरनि भानु भईं भुंजैं।
यह ऊधौ कहियौ माधौ सौं, मदन मारि कीन्हीं हम लुंजैं।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौं, मग-जोवत अँखियाँ भईं घुंजैं ॥१५५॥

अर्थ—कृष्ण के बिना सभी कुंज (वन) शत्रु हो गये। तब ये लताये अत्यधिक शीतल लगती थी अब विषम ज्वाला पुंज (के समान) हो गयी है। यमुना व्यर्थ बहती हैं, पक्षी (व्यर्थ) बोलते है तथा भ्रमर का गूँजना और कमल का खिलना सब व्यर्थ है। पवन, पानी, कपूर, सजीवन (सब दुखकर हो गये) तथा चन्द्रमा की किरणे सूर्य की किरणों के समान (तप्त होकर) भूनती हैं। हे उद्धव कृष्ण से कहना कि काम ने मार कर हमें लुंज कर दिया है। सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती हैं) कि कृष्ण तुम्हारे दर्शन के लिए रास्ता देखते-देखते आंखे घुंघची की भांति रक्त हो गयी हैं ॥१५५॥

ऊधौ इतनी कहियौ बात।
मदन गुपाल बिना या व्रज मैं, होन लगे उतपात।
तृनावर्त, बक, बकी, अघासुर, धैनुक फिरि-फिर जात।
व्योम, प्रलंब, कंस केसी इत, करत जिअनि की घात।

काली काल-रूप दिखियत है, जमुना जलहिँ अन्हात।
बरुन फाँस फाँस्यौ चाहत है, सुनियत अति मुरझात।
इंद्र आपने परिहँस कारन, बार-बार अनखात।
गोपी, गाइ, गोप, गोसुत सब, थर-थर काँपत गात।
अंचल फारति जननि जसोदा, पाग लिये कर तात।
लागौ बेगि गुहारि सूर प्रभु, गोकुल बैरिनि घात ॥१५६॥

अर्थ—उद्धव, इतनी बात कहना कि मदन गोपाल (कृष्ण) के बिना ब्रज मे उत्पात होने लगा। तृणावर्त, बक बकी, अघासुर तथा धेनुक (आदि राक्षस) घूम-घूम कर लौट जाते हैं। व्योमासुर, प्रलम्वन तथा कंस, केसी यहाँ जीने की घात लगाये है। यमुना के जल मे स्नान करते समय काली मृत्यु के समान दिखाई देता है। वरुण अपने पाश मे फँसाना चाहता है, सुनकर हम अत्यन्त मुरझाती हैं। इन्द्र अपने परिहास के कारण बार-बार क्रुद्ध होता है। गोपी, गाय, गोप, सभी बछड़े शरीर से थर-थर काँपते हैं। माता यशोदा अंचल फाड़ती है तथा पिता हाथ मे पाग लेकर (तुम्हारी आशा देखते हैं) गोकुल मे शत्रुओ का आघात हो रहा है इसलिए हे कृष्ण शीघ्र ही पुकार सुनो ॥१५६॥

ऊधौ इतनी कहियौ जाइ।
अति कृसगात भई ये तुम बिनु, परम दुखारी गाइ।
जल समूह बरषतिँ दोउ अँखियाँ, हूँकति लीन्हैं नाउँ।
जहाँ जहाँ गो दोहन कीन्हो, सूँघतिँ सोई ठाउँ।
परतिँ पछार खाइ छिन ही छिन, अति आतुर ह्वै दीन।
मानहु सूर काढ़ि डारी हैं, बारि मध्य तैं मीन ॥१५७॥

अर्थ—उद्धव, जाकर इतना कहना कि परम दुखी गाये तुम्हारे बिना अत्यधिक दुर्बल शरीर वाली हो गयी हैं। इनकी आँखो से बहुत जल बरसता रहता है तथा तुम्हारा नाम लेते हुँकारती हैं। (आपने) जहाँ-जहाँ गोदोहन किया था उन-उन स्थानो को सूँघती है। अत्यधिक आतुर तथा दीन होकर क्षण-क्षण वे (मूर्छा से) पछाड खा जाती हैं। (उनकी दशा ऐसी है) मानो जल के बीच से मछली निकाल ली गयी हो ॥१५७॥

अति मलीन बृषभानु-कुमारी।
हरि स्रम-जल भीँज्यौ उर-अंचल, तिहिँ लालच न धुवावति सारी।
अध मुख रहति अनत नहिँ चितवति, ज्यौं गथ हारे थकित जुवारी।
छूटे चिकुर बदन कुम्हिलाने, ज्यौं नलिनी हिमकर की मारी।
हरि सँदेस सुनि सहज मृतक भइ, इक बिरहिनि, दूजे अलि जारी।
सूरदास कैसैं करि जीवैं, ब्रज बनिता बिन स्याम दुखारी ॥१५८॥

अर्थ—राधा अत्यधिक मलिन हो गयी है। कृष्ण के सात्विक प्रेम जनित श्रम जल (पसीना) से हृदय स्थल का अंचल भीग गया था (उसे सुरक्षित रखने की) लालच से साडी को धुलाती नही हैं। वह सदैव मुख नीचे किये रहती हैं तथा दाँव मे हारे हुये

जुवारो की तरह अन्यत्र नही देखती हैं। उनके बाल छूट कर (बिखर) गये है शरीर हिम से आहत कमलिनी की तरह कुम्हला गया है। कृष्ण के संदेश को सुनकर वह सहज ही मृतक (तुल्य) हो गयी क्योंकि एक तो वह विरहिणी थी तथा दूसरे भ्रमर (उद्धव के) द्वारा जला दी गयी। सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती हैं) कि दुखी ब्रज बनितायें कृष्ण के बिना कैसे जीवित रहें ।।१५८।।

ऊधौ तिहारे पा लागति हौं, बहुरिहुँ इहिं ब्रज करबी भाँवरी।
निसि न नींद भोजन नहिं भावै, चितवत मग भइ दृष्टि झाँवरी।
वहै बृन्दावन, वहै कुंज-घन, वहै जमुना, वहै सुभग साँवरी।
एक स्याम बिनु कछू न भावै, रटति फिरतिँ ज्यौं बकति बावरी।
चलि न सकति मग डुलत धरत-पग, आवति बैठत उठत ताँवरी।
सूरदास-प्रभु आनि मिलावहु, जग मैं कीरति होइ रावरी ।।१५९।।

अर्थ—उद्धव, तुम्हारे पैर लगती हूँ, पुनः (कृष्ण का समाचार लेकर) इस ब्रज मे चक्कर लगाइएगा क्योकि उनके बिना रात मे नीद नही आती, खाना अच्छा नही लगता; रास्ता निहारते दृष्टि झुलस गयी। वही वृन्दावन है, वही घना कुंज, वही यमुना तथा वही सुन्दर राधा है किन्तु कृष्ण के बिना कुछ भी अच्छा नही लगता। बावली की तरह (कृष्ण का नाम) रटती फिरती हूँ। रास्ता नही चल पाती, कदम रखते पैर हिलता है। उठते बैठते चक्कर आता है। सूरदास कहते है (गोपियाँ कहती है) उद्धव कृष्ण को लाकर मिला दो, संसार मे तुम्हारा यश होगा ।।१५९।।

पूर्ण परिवर्तन तथा यशोदा संदेश

अब अति चकितवंत मन मेरौ।
आयौ हौं निरगुन उपदेसन, भयौ सगुन कौ चेरौ।
जो मैं ज्ञान कह्यौ गीता कौ, तुमहिं न परस्यौ नेरौ।
अति अज्ञान कछु कहत न आवै, दूत भयौ हरि केरौ।
निज जन जानि मानि जतननि तुम, कीन्हौ नेह घनेरौ।
सूर मधुप उठि चले मधुपुरी, बोरि जोग कौ बेरौ ।।१६०।।

अर्थ—अब मेरा मन अत्यधिक चकितवान् हो गया। निर्गुण का उपदेश देने आये थे किन्तु सगुण के सेवक हो गये। मैंने गीता का जो ज्ञान कहा उसने तुम्हे निकट से स्पर्श नही किया। कृष्ण के दूत होते हुए अत्यधिक अज्ञान के कारण मुझसे कुछ कहते नही बनता। अपना आदमी (स्वजन) जानकर तथा सयत्न आदर देकर तुम लोगो ने घना स्नेह किया। सूरदास कहते हैं कि योग का बेड़ा डुबाकर उद्धव मधुपुरी के लिए रवाना हुए ।।१६०।।

ऊधौ पा लागति हौं कहियौ, स्यामहिँ इतनी बात।
इतनी दूर बसत क्यौं बिसरे, अपने जननी-तात।

जा दिन तैं मधुपुरी सिधारे, स्याम मनोहर गात।
ता दिन तैं मेरे नैन पपीहा, दरस प्यास अकुलात।
जहँ खेलन के ठौर तुम्हारे, नन्द देखि मुरझात।
जौ कबहूँ उठि जात खरिक लौं, गाइ दुहावन प्रात।
दुहत देखि औरनि के लरिका, प्रान निकसि नहिँ जात।
सूरदास बहुरो कब देखौं, कोमल कर दधि-खात ।।१६१।।

अर्थ—उद्धव, तुम्हारे पैरों पर पडती हूँ कृष्ण से इतनी बात कहना। इतनी (ही) दूर पर रहते हुए अपने माता-पिता को क्यो भुला दिया। जिस दिन से सांवले मनोहर शरीर वाले कृष्ण ने मथुरा के लिए प्रस्थान किया उसी दिन से मेरे नेत्र रूपी पपीहा दर्शन की प्यास से अकुलाते है। तुम्हारे खेलने के जो स्थान हैं उन्हे देखकर नंद मुरझाते हैं। जब कभी उठकर प्रातः बाडे मे गाय दुहाने जाती हूँ तब दूसरो के लडको को गाय दुहाते हुए देखकर (सोचती हैं कि) मेरे प्राण निकल क्यो नही जाते। सूरदास कहते है (यशोदा कहती है) कोमल हाथो से दही खाते हुए फिर कब देखूंगी ।।१६१।।

तब तुम मेरैं काहे कौं आए।
मथुरा क्यौं न रहे जदुनंदन, जौ पै कान्ह देवकी जाए।
दूध, दही काहे कौं चोरयौ, काहे कौं बन बच्छ चराए।
अघ अरिष्ट, काली फनि काढ़यौ, बिष जलतैं सब सखा जिवाए।
पय पीवत हरे प्रान पूतना, सदा किए जसुमति के भाए।
सूरदास लोगनि के भुरए, काहैं कान्ह, अब होत पराए ।।१६२।।

अर्थ—तब तुम मेरे यहाँ क्यो आये। यदि तुम देवकी से उत्पन्न हुए (पुत्र) थे तो मथुरा ही मे क्यों नही रहे। (तुमने) दूध दही क्यों चुराया तथा वन मे बछड़ों को क्यो चराया। तुमने क्यो अघासुर, अरिष्ट और काली सर्प को निकालकर विषाक्त जल से सखाओ को जिलाया। दूध पीते हुए पूतना के प्राणो को हर लिया तथा सदैव यशोदा को भाने वाले (अभीष्ट) कार्यों को किया। सूरदास कहते हैं कि (यशोदा कहती है) लोगो के बहकाने से कृष्ण अब क्यों पराये हो रहे हो ।।१६२।।

(मोहन) अपनी गैयाँ घेरि लै।
बिडरी जातिँ काहु नहिँ मानतिँ, नैंकु मुरलि की टेर दै।
धौरी, धूमरि, पीरी, काजरि, बन-बन फिरती पीय।
अपनी जानि कै आनि सँभारहु, धरौ चेत अब जीय।
तुम हौ जग जीवनि प्रतिपालक, निठुराई नहिँ कीजै।
ग्वालऽरु बाल बच्छ गो बिलखत, सूर सु दरसन दीजै ।।१६३।।

अर्थ—मोहन अपनी गायो को घेर (एकत्रित कर) लो। सब बिखरी जा रही हैं कोई मानती नही, जरा मुरली की आवाज (टेर) तो करो। प्रिय कृष्ण धवली,

धुमली, पीली, काली गाये वन-वन घूमती हैं। अब अपनी समझ कर आकर सम्हालो तथा मन में चेतनता (जिम्मेदारी) धारण करो। तुम जग के जीवों के प्रतिपालक हो निष्ठुरता मत कीजिये। ग्वाल-बाल, बछड़े तथा गाये बिलखती हैं। सूरदास कहते हैं (यशोदा कहती है) कृष्ण उन्हे दर्शन दीजिए ।।१६३।।

तब तैं छीन सरीर सुबाहु।
आधौ भोजन सुबल करत हैं, सब ग्वालनि उर दाहु।
नंद गोप पिछवारे डोलत, नैननि नीर प्रवाहु।
आनँद मिट्यौ मिटी सब लीला, काहू मन न उछाहु।
एक बेर बहुरौ ब्रज आवहु, दूध पतूखी खाहु।
सूर सपथ गोकुल जौ पैठहु, उलटि मधुपुरी जाहु ।।१६४।।

अर्थ—तब से सुबाहु (नाम के तुम्हारे मित्र) का शरीर क्षीण हो रहा है। सुबल (नामक मित्र भी) आधा (पेट) भोजन करता है (इस तरह) सभी ग्वालों के हृदय मे पीडा (जलन) है। नंद तथा गोप नैनो से आंसू का प्रवाह लिये पिछवाड़े घूमते रहते हैं (तुम्हारे चले जाने से) सारा आनन्द तथा समस्त लीला मिट गयी, किसी के भी मन मे उत्साह नही है। एक बार फिर ब्रज आओ तथा पत्ते के दोने मे दूध पियो। सूरदास कहते हैं (यशोदा कहती है) कि सौगन्ध है जब कि तुम्हे गोकुल मे अधिक देर तक पैठना (रुकना) पडे (शीघ्र ही) लौटकर मधुपुरी चले जाना ।।१६४।।

कहियौ जसुमति की आसीस।
जहाँ रहौ तहँ नंद लाड़िलौ, जीवौ कोटि बरीस।
मुरली दई दोहनी घृत भरि, ऊधौ धरि लइ सीस।
यह तौ घृत उनही सुरभिनि कौ, जे प्यारी जगदीस।
ऊधौ चलत सखा मिलि आए, ग्वाल बाल दस-दीस।
अबकैं यह ब्रज फेरि बसावहु, सूरदास के ईस ।।१६५।।

अर्थ—यशोदा का अशीर्वाद कहियेगा। नंद के प्यारे (कृष्ण) जहाँ (भी) रहे वही हजारो वर्ष तक जीवित रहें। मुरली तथा दोहनी भर कर घृत दिया और ऊधो ने सिर पर रख लिया। यह घृत उन्ही गायो का है जो कृष्ण को प्रिय थी। ऊधो के चलते हुए दशों दिशाओ से ग्वाल तथा सखा मिलने आये। (यशोदा कहती है) कृष्ण एक बार इस ब्रज को फिर से बसाओ ।।१६५।।

उद्धव मथुरा प्रत्यागमन तथा कृष्ण उद्धव संवाद

ऊधौ जब ब्रज पहुँचे जाइ।
तबकी कथा कृपा करि कहियै, हम सुनिहैं मन लाइ।
बाबा नंद, जसोदा मैया, मिले कौन हित आइ?
कबहूँ सुरति करत माखन की, किधौं रहे बिसराइ।

गोप सखा दधि-भात खात वन, अरु चाखते चखाइ।
गऊ वच्छ मुरली सुनि उमड़त, अब जु रहत किहिं भाइ।
गोपिन गृह व्यवहार विसारे, मुख सन्मुख सुख पाइ।
पलट ओट निमि पर अनखातीं, यह दुख कहाँ समाइ।
एक सखी उनमैं जो राधा, लेति मनहिं जु चुराइ।
सूर स्याम यह बार बार कहि, मनहीं मन पछिताइ ॥१६६॥

अर्थ—उद्धव जब व्रज जा पहुँचे (तब कृष्ण ने कहा) तब की (गोकुल पहुँचने की) कथा कृपा करके कहिये हम मन लगाकर सुनेंगे। बाबा नंद तथा यशोदा माता किस तरह (कितने स्नेह से) आकर मिले। कभी माखन का स्मरण करते है कि भुला दिये। गोप मित्र वन मे दही-चावल खाते थे तथा चखाकर चखते थे। गाय तथा बछड़े मुरली (की ध्वनि) सुनकर उमडते थे अब किस तरह रहते है। मुख के सामने (दर्शन) सम्मुख सुख पाकर गोपियाँ घर के व्यवहार को भुला देती थी। क्षण भर के लिए पलक की ओट होने पर दुःखी होती थी अब यह दुख उनसे कैसे सहा जाता है। उनमे राधा नाम की जो एक सखी है जो मन को चुरा लेती थी (उसकी क्या दशा है)। सूरदास कहते है कि कृष्ण बार-बार यह कहकर मन-ही-मन पछताते हैं ॥१६६॥

जब मैं इहाँ तैं जु गयौ।
तब व्रजराज सकल गोपी जन, आगैं होइ लयौ।
उतरे जाइ नद बाबा कैं, सबहीं सोध लह्यौ।
मेरी सौं मोसौं साँची कहि, मैया कहा कह्यौ ?
बारंबार कुसल पूछी मोहिं, लै लै तुम्हरौ नाम।
ज्यौं जल तृषा बढ़ी चातक चित, कृष्न-कृष्न बलराम।
सुन्दर परम विचित्र मनोहर, यह मुरली दै घाली।
लई उठाइ सुख मानि सूर प्रभु, प्रीति आनि उर साली ॥१६७॥

अर्थ—(उद्धव उत्तर देते हैं) जब मैं यहाँ से गया तब व्रजराज (नंद) तथा समस्त गोपीजन आगे हो लिये। (हम) नंद बाबा (के घर जाकर) उतरे तथा सभी बातों को समझा (कृष्ण कहते है कि) मेरी सौगंध मुझसे सच कहो, माता ने क्या कहा। (ऊधव कहते हैं) (माता ने) तुम्हारा नाम ले लेकर बार-बार मुझसे कुशल पूछा। जैसे पपीहे के मन मे जल की तृष्णा होती है वैसे कृष्ण-कृष्ण तथा बलराम (रटती रहती हैं) उन्होने परम सुन्दर तथा विचित्र मनोहर मुरली दी है। सूरदास कहते हैं (कि कृष्ण ने) सुख मानकर मुरली उठा ली उनके मन मे प्रेम की भावना (चुभ) गयी ॥१६७॥

सुनियै व्रज की दसा गुसाईं।
रथ की धुजा पीत-पट भूषन, देखत ही उठि धाईं।
जो तुम कही जोग की बातैं, सो हम सबै बताईं।
श्रवन मूँदि गुन-कर्म तुम्हारे, प्रेम मगन मन गाईं।

औरौ कछू सँदेस सखी इक, कहत दूरि लौं आई।
हुती कछू हमहूँ सौं नातौ, निपट कहा बिसराई।
सूरदास प्रभु बन विनोद करि, जे तुम गाइ चराई।
ते गाई अब ग्वाल न घेरत, मानो भईं पराई।।१६८।।

अर्थ—गोस्वामी ब्रज की दशा सुनिये। (गोपियां) रथ की ध्वजा तथा पीला वस्त्र और भूषण देखकर उठकर दौड़ पड़ी। जो तुमने योग की बाते कही थी उन सबको हमने बताया। (उन्होने) कान मूंदकर मन को मग्न करके तुम्हारे गुण और कर्म का गान किया। एक सखी कुछ दूसरा ही संदेश कहते हुए दूर तक चली आई और कहा हमसे भी कुछ नाता था लेकिन हमें बिलकुल ही कैसे भुला दिया। सूरदास कहते हैं (ऊधो कहते है) वन मे विनोद करके तुमने जिन गायो को चराया था उन गायो को ग्वाल नही घेरते मानो वे पराई हो गई है।।१६८।।

ब्रज के बिरही लोग दुखारे।
बिन गोपाल ठगे से ठाढ़े, अति दुर्बल तन कारे।
नंद जसोदा मारग जोवति, निसि-दिन साँझ सकारे।
चहुँ-दिसि कान्ह-कान्ह कहि टेरत, अँसुवन बहत पनारे।
गोपी, ग्वाल, गाइ, गो सुत सब, अतिहीं दीन बिचारे।
सूरदास-प्रभु बिनु यौं देखियत, चंद बिना ज्यौं तारे।।१६९।।

अर्थ—ब्रज के विरही लोग दुखित हैं। बिना गोपाल के सब ठगे से खड़े रहे तथा वे शरीर से अत्यन्त दुर्बल तथा काले हो गये हैं। रात-दिन संध्या सबेरे नन्द और यशोदा मार्ग देखते है। चारों दिशाओं मे कान्ह-कान्ह कहकर पुकारती है तथा आंसुओ से परनाले वहते है। गोपी, ग्वाल, गाय तथा बछड़े (आदि) बेचारे अत्यन्त दीन हैं। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण के बिना वे वैसे ही हैं जैसे तारो के बिना चन्द्रमा।।१६९।।

सुनहु स्याम वै सब ब्रज-बनिता, बिरह तुम्हारैं भईं बावरी।
नाहीं बात और कहि आवति, छाँड़ि जहाँ लगि कथा रावरी।
कबहुँ कहतिं हरि माखन खायौ, कौन बसै या कठिन गाँव री।
कबहुँ कहतिं हरि ऊखल बाँधे, घर-घर ते लै चलौ दाँवरी।
कबहुँ कहतिं ब्रजनाथ बन गए, जोवत-मग भई दृष्टि झाँवरी।
कबहुँ कहतिं वा मुरली महियाँ, लै-लै बोलत हमरौ नाँवरी।
कबहुँ कहतिं ब्रजनाथ साथ तैं, चंद उयौ है इहै ठाँवरी।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु, अब वह मूरति भई साँवरी।।१७०।।

अर्थ—कृष्ण सुनो ब्रज की वे सब स्त्रियां तुम्हारे विरह से वावली हो गयी है। आपकी कथा छोडकर उन्हें कोई और बात नही सूझती। कभी कहती है कृष्ण मक्खन खा गये, इस कठिन गाँव मे कौन बसे। कभी कहती हैं कृष्ण ऊखल में बाँधे गये थे घर-घर से दांवरी ले चलो। कभी कहती हैं कि कृष्ण वन गये, रास्ता जोहते दृष्टि

झुलस गयी। कभी कहती हैं उस मुरली में हमारा नाम ले लेकर पुकारते है। कभी कहती हैं ब्रजनाथ के साथ चन्द्रमा इस स्थान पर उदित होता है। सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती हैं) कृष्ण तुम्हारे दर्शन के बिना, अब वह (राधा) साँवली मूर्ति जैसी हो गयी है ॥१७०॥

फिरि ब्रज बसौ नंदकुमार।
हरि तिहारे बिरह राधा, भई तन जरि छार।
बिनु अभूषन मैं जु देखी, परी है बिकरार।
एकई रट रटत भामिनि, पीव पीव पुकार।
सजल लोचन चुअत उनकैं, बहति जमुना धार।
बिरह अगिनि प्रचंड उनकैं, जरे हाथ लुहार।
दूसरी गति और नाहीं, रटति बारंबार।
सूर प्रभु कौ नाम उनकैं, लकुट अंध अधार ॥१७१॥

अर्थ—नन्द कुमार ब्रज मे फिर से बसो। कृष्ण, तुम्हारे विरह मे राधा जलकर राख हो गयी। मैंने उन्हे बिना आभूषण के देखा है वह व्याकुल पडी है (उस) स्त्री को एक ही रट लगी रहती है तथा पीव-पीव पुकारती है। उनके सजल नेत्रो से आँसू चूता है जो कि यमुना की (धारा के समान बहती है) विरह की प्रचंड अग्नि लोहार के हाथ पड़ी (लौह सामग्री की तरह) जलती है। उसकी और कोई दूसरी गति नही है। वह बार-बार (कृष्ण का नाम) रटती है। सूरदास कहते है (गोपियों ने कहा है) कि कृष्ण स्वामी हैं तथा उनकी लकुटी अन्धों का आधार है ॥१७१॥

ब्रज तैं द्वै रितु पै न गई।
ग्रीषम अरु पावस प्रवीन हरि, तुम बिनु अधिक भई।
ऊर्ध उसास समीर नैन घन, सब जल जोग जुरे।
बरषि प्रगट-कीन्हे दुख दादुर, हुते जो दूरि दुरे।
बिषम बियोग जु बृष दिनकर सम, हित अति उदौ करै।
हरि-पद बिमुख भए सुनि सूरज, को तन ताप हरै ॥१७२॥

अर्थ—ब्रज से दो ऋतुये नही गयी। हे चतुर कृष्ण तुम्हारे विना ग्रीष्म और वर्षा (की ऋतुये) संवर्धित (अधिक टिकाऊ) हो गयी हैं। ऊर्ध्व उच्छ्वास ही पवन है तथा नेत्र बादल है। जल की वर्षा के लिए सभी योग एकत्रित हो गये हैं। बरसकर (इसने) दुख रूपी मेढक को पैदा कर दिया जो कि दूर छिपे हुये थे। विषम वियोग जो ग्रीष्म ऋतु के वृष नक्षत्र के सूर्य के समान है। हृदय मे उदित कर दिया। सूरदास कहते है (ऊधो कहते है कि गोपियो ने कहा है) कृष्ण चरण विमुख हो गये हैं शरीर के ताप को कौन हरे ॥१७२॥

दिन दस घोष चलहु गोपाल।
गाइनि की अवसेरि मिटावहु, मिलहु आपने ग्वाल।

नाचत नहीं मोर ता दिन तैं, रटत न बरषा-काल।
मृग दुबरे तुम्हरे दरसन बिनु, सुनत न बेनु रसाल।
वृन्दावन हरचौ होत न भावत, देख्यौ स्याम तमाल।
सूरदास मैया अनाथ है, घर चलियै नँदलाल ॥१७३॥

अर्थ—कृष्ण दस दिन के लिए गाँव चलो। गायों की बेचैनी मिटाओ तथा (साथी) ग्वालों से मिलो। (जिस दिन से आप आये) उसकी दिन से मोर नही नाचते है। तथा वर्षा की ऋतु के लिए रट नही लगाते। तुम्हारे दर्शन के बिना हिरन दुर्बल हो गये हैं तथा रसयुक्त बंशी नही सुनते। वृन्दावन को हरा होना नही भाता मैंने श्यामल तमाल वृक्षो को देखा। सूरदास कहते हैं (ऊधो कहते हैं) माता यशोदा अनाथ हैं इसलिए हे नन्द लाल घर चलिए ॥१७३॥

ऊधौ भलौ ज्ञान समुझायौ।
तुम मोसौं अब कहा कहत हौ, मैं कहि कहा पठायौ।
कहवावत हौ बड़े चतुर पै, उहाँ न कछु कहि आयौ।
सूरदास ब्रजबासिन कौं हित, हरि हिय माहँ दुरायौ ॥१७४॥

अर्थ—उद्धव, तुमने अच्छा ज्ञान सिखाया। तुम मुझसे क्या कहते हो और मैंने तुम्हे क्या कहकर भेजा था। तुम बहुत चतुर कहलाते हो लेकिन वहाँ कुछ कहते नही बना। सूरदास कहते हैं (कृष्ण कहते हैं) ब्रजवासियो के लिए (तुमने) कृष्ण को हृदय में छिपा लिया ॥१७४॥

मैं समुझाई अति अपनौ सौ।
तदपि उन्हैं परतीति न उपजी, सबै लख्यौ सपनौ सौ।
कही तुम्हारी सबै कही मैं, और कही कछु अपनी।
स्रवननि बचन सुनत भइ उनकैं, ज्यौं घृत नाएँ अगनी।
कोऊ कहौ बनाइ पचासक, उनकी बात जु एक।
धन्य-धन्य ब्रजनारि बापुरी, जिनकी और न टेक।
देखत उमग्यौ प्रेम इहाँ कौ, धरै रहे सब ऊली।
सूर स्याम हौं रह्यौ थक्यौ सौ, ज्यौं मृग चौका भूली ॥१७५॥

अर्थ—मैंने अपना जैसा उन्हे खूब समझाया तिस पर भी उनमे विश्वास नही उत्पन्न हुआ। (उन्होंने) सब कुछ स्वप्न के समान देखा। तुम्हारे समस्त कथन को कहा तथा कुछ अपना भी कहा। कानों से वचन सुनते ही उनकी (क्रोधाग्नि या विरहाग्नि) वैसी ही हो गयी जैसे अग्नि में घी डाला जाय। कोई पचास बात बना कर कहो लेकिन उनकी टेक केवल एक बात पर है। बेचारी व्रज की स्त्रियाँ धन्य-धन्य हैं जिनकी (कृष्ण के सिवाय) कोई और टेक नही है। देखते ही यहाँ का प्रेम उमग गया किन्तु उमंग को धारण किये रही। सूरदास कहते हैं (ऊधो कहते हैं) मैं तो चकित सा खड़ा रहा जैसे मृग चौकड़ी भूल गया हो ॥१७५॥

बातैं सुनहु तौ स्याम सुनाऊँ ।
जुबतिनि सौं कहि कथा जोग की, क्यौं न इतौ दुख पाऊँ ।
हौं पचि एक कहौं निरगुन की, ताहू मैं अटकाऊँ ।
वै उमडैं बारिधि के जल ज्यौं, क्यौं हूँ थाह न पाऊँ ।
कौन कौन कौ उत्तर दीजै, तातैं भज्यौ अगाऊँ ।
वै मेरे सिर पटिया पारैं, कंथा काहि उढ़ाऊँ ।
एक आँधरौ, हिय की फूटी, दौरत पहिरि खराऊँ ।
सूर सकल षट दरसन वै, हौं बारहखरी पढ़ाऊँ ।।१७६।।

अर्थ—कृष्ण (यदि) बाते सुनो तो सुनाऊँ । युवतियो से योग की कथा कहकर क्यो न इतना दुख पाऊँ । मै फिर निर्गुण की एक कथा कहता तो उसी मे उलझ जाता । वे (गोपियाँ) समुद्र के जल की तरह उमडती हैं, उसका थाह कैसे पा सकता हूँ । किसके-किसके (प्रश्न का) उत्तर देता इसीलिए आगे ही भाग आया । वे (गोपियाँ) मेरे सिर मे पाटी (माँग) काढती है कंथा किसको उढाया जाय (मेरी तो वहाँ वैसी स्थिति थी) जैसे कोई एक तो अन्धा हो दूसरे हृदय की आँखे फूट गई हो तीसरे वह खड़ाऊँ पहन कर दौडे । सूरदास कहते है (ऊधो कहते है) वे गोपियाँ छहो दर्शन मे पारंगत हैं मैं उन्हे बारह खडी (कैसे) पढाऊँ ।।१७६।।

कहिबे मैं न कछू सक राखी ।
बुद्धि बिबेक अनुमान आपनैं, मुख आई सो भाषी ।
हौं मरि एक कहौं पहरक मैं, वै पल माहिँ अनेक ।
हारि मानि उठि चल्यौ दीन ह्वै, छाँड़ि आपनी टेक ।
हौं पठयौ कतहीं बे काजैं, सठ मूरख जु अयानौं ।
तुमहिं बूझ बहुतै बातनि की, उहाँ जाहु तौ जानौं ।
श्री मुख के सिखए ग्रंथादिक, ते सब भए कहानी ।
एक होइ तौ उत्तर दीजै, सूर सु मठी उफानी ।।१७७।।

अर्थ—कहने मे मैंने कुछ भी बाकी नही रखा । अपने बुद्धि, विवेक तथा अनुमान से जो कुछ आया मैंने कहा । मै (जर) मर कर एक प्रहर मे एक कहता लेकिन वे एक पल में अनेक कहती थी । (अन्ततः) हार मानकर अपनी टेक छोड़कर दीन होकर चल पड़े । शठ, मूर्ख, अज्ञानी हमको विना कार्य के वहाँ भेज दिया । तुम्हे बहुत बातों का ज्ञान (बूझ) है, किन्तु वहाँ जाओ तो समझे (कि तुम बुद्धिमान हो) श्री मुख आपके द्वारा ग्रंथादि की बताई बाते सब कहानी मात्र रह गयी । एक होती तो उत्तर भी देता वे एक समूह (मूठी) के रूप मे उमड़ पडी ।।१७७।।

कोऊ सुनत न बात हमारी ।
मानैं कहा जोग जादवपति, प्रगट प्रेम ब्रजनारी ।

कोऊ कहतिँ हरि गए कुंज बन, सैन धाम वै देत।
कोऊ कहतिँ इन्द्र वरषा तकि, गिरि गोबर्धन लेत।
कोऊ कहतिँ नाग काली सुनि, हरि गए जमुना तीर।
कोऊ कहतिँ अघासुर मारन, गए संग बलबीर।
कोऊ कहतिँ ग्वाल बालनि सँग, खेलत बनहिँ लुकाने।
सूर सुमिरि गुन नाथ तुम्हारे, कोऊ कह्यौ न माने ।।१७८।।

अर्थ—कोई हमारी बात नही सुनती। हे यादव पति वे योग को क्यो मान्यता दे क्योकि (कृष्ण) से ब्रजनारियो का प्रत्यक्ष (स्पष्ट) प्रेम है। कोई कहती हैं कि कृष्ण जंगल गये हैं, और घर से इशारा करते हैं। कोई कहती है कि इन्द्र की वर्षा को देख कर गोवर्धन पर्वत को लेते हैं। कोई कहती है काली नाग (की पुकार) सुनकर कृष्ण यमुना के तट पर गये हैं। कोई कहती हैं अघासुर को मारने के लिए बलराम के साथ गये हैं। कोई कहती हैं कि ग्वाल बालो के साथ वन मे छिपकर खेलते है। सूरदास कहते है (ऊधो कहते हैं) तुम्हारे गुणों का स्मरण करके कोई कहना नही मानती ।।१७८।।

माधौ जू कहा कहौँ उनकी गति।
देखत बनै कहत नहिँ आवै, अति प्रतीति तुम तैँ रति।
जद्यपि हौँ षट मास रह्यो ढिग, लही नहीँ उनकी मति।
तासौँ कहौँ सबै एकै बुधि, परमोधी नहिँ मानति।
तुम कृपालु करुनामय कहियत, तातैँ मिलत कहा छति।
सूरदास प्रभु सोई कीजै, जातैँ तुम पावहु पति ।।१७९।।

अर्थ—कृष्ण उनकी गति कैसे कहूँ। देखते बनता है किन्तु कहते नही बनता उनका तुममें अत्यधिक विश्वास और प्रेम है। यद्यपि मैं छह महीना आपके पास रहा लेकिन उन जैसी बुद्धि प्राप्त नही की। इसी से कहता हूँ कि वे सभी एक जैसी बुद्धि वाली हैं समझाने पर मानती नही। तुम कृपाल तथा करुणामय कहलाते हो इसलिए उनसे मिलने मे कोई हानि नही। सूरदास कहते हैं (ऊधो कहते हैं) कृष्ण आप वही कीजिए जिससे आपको प्रतिष्ठा मिले ।।१७९।।

ब्रज मैँ एकै धरम रह्यौ।
स्रुति सुमृति औ बेद पुराननि, सबै गोविंद कह्यौ।
बालक वृद्ध तरुन अबलनि कौं, एक प्रेम निबह्यौ।
सूरदास प्रभु छाँड़ि जमुन जल, हरि की सरन गह्यौ ।१८०।।

अर्थ – ब्रज मे एक ही धर्म व्याप्त था। श्रुति, स्मृति, वेद, पुराण सभी (उनके लिए) गोविंद की ही बात कहते। बालक, वृद्ध, तरुण तथा अबलाओ के एक प्रेम का एक समान निर्वाह हो रहा है। सूरदास कहते है (उद्धव कहते हैं) वे लोग यमुना जल छोडकर कृष्ण की शरण को ग्रहण किए है ।।१८०।।

तब तैं इन सबहिनि सचु पायौ।
जब तैं हरि संदेस तुम्हारौ, सुनत ताँवरौ आयौ।
फूले ब्याल दुरे ते प्रगटे, पवन पेट भरि खायौ।
खोले मृगनि चौक चरननि के, हुतौ जु जिय बिसरायौ।
ऊँचे बैठि बिहंग सभा मैं, सुक बनराइ कहायौ।
किलकि-किलकि कुल सहित आपनैं, कोकिल मंगल गायौ।
निकसि कंदराहू तैं केहरि, पूँछ मूड़ पर ल्यायौ।
गहवर तैं गजराज आइकै, अंगहिँ गर्व बढ़ायौ।
अब जनि गहरु करहु हो मोहन, जौ चाहत हौ ज्यायौ।
सूर बहुरि ह्वैहै राधा कौं, सब बैरिनि कौ भायौ ।।१८१।।

अर्थ—जब से कृष्ण (उन्होने) तुम्हारा संदेश (सुना) सुनते ही मूर्छा आ गई तब से इन सबों ने सन्तोष पाया। (राधा के अंग के सभी उपमानो को सुख प्राप्त हुआ) सर्प प्रफुल्लित होकर छिपाव से प्रकट हो गये तथा पेट भर कर पवन का भक्षण किया। मृगों ने चरणों की चौकड़ी जिसे भूल वैठे थे, शुरू कर दी। पक्षियो की सभा मे ऊँचे बैठा तोता वनराज कहलाया। अपने परिवार के साथ किलक-किलक कर कोयल ने मंगल गाया। कन्दरा से सिंह भी निकलकर पूँछ को सिर पर लगाने लगा। गह्वर से हाथी ने भी आकर अपने शरीर मे गर्व को बढ़ा लिया। अब यदि जिलाना चाहते हो तो कृष्ण देर मत करो नही तो फिर राधा की (वही दशा) होगी जैसा सभी वैरियो को इच्छित है ।।१८१।।

माधौ जू मैं अतिही सचु पायौ।
अपनौ जानि सँदेस ब्याज करि, ब्रज जन मिलन पठायौ।
छमा करौ तौ करौं बीनती, उनहिँ देखि जौ आयौ।
श्रीमुख ग्यान पंथ जौ उच्चरयौ, सो पै कछु न सुहायौ।
सकल निगम सिद्धांत जन्म क्रम, स्यामा सहज सुनायौ।
नहिँ स्रुति, सेष, महेस प्रजापति, जो रस गोपिनि गायौ।
कटुक-कथा लागी मोहिँ मेरी, वह रस सिंधु उम्हायौ।
उत तुम देखे और भाँति मैं, सकल तृषा जु बुझायौ।
तुम्हरी अकथ कथा तुम जानौ, हम जन नाहिँ बसायौ।
सूर स्याम सुन्दर यह सुनि कै, नैननि नीर बहायौ ।।१८२।।

अर्थ—माधव (कृष्ण) मैंने जो अत्यधिक सुख पाया (उसका कारण) आपने अपने माध्यम से सदेश के बहाने ब्रज के लोगों से मिलने भेजा था। क्षमा करो तो (वह सब) निवेदित करूं जिसे ब्रज मे देख आया हूँ। श्री मुख (आपने जो ज्ञान सिखाया था) उस ज्ञान पथ का उच्चारण किया लेकिन वह उन्हे अच्छा नही लगा। जन्मान्तरों के कर्म द्वारा प्राप्त होने वाले समस्त वेदो के सिद्धात (प्रेम और भक्ति) को राधा ने

सहज भाव से सुना दिया। किन्तु जिस रस का गान गोपियो ने किया उसे श्रुति, शेष, महेश, ब्रह्मा आदि किसी ने नही गाया। मुझे ही मेरी कथा कटु लगी। वहाँ रस की सिंधु में नहा लिया। वहाँ मैने तुम्हें और ही तरह देखा तथा अपनी समस्त प्यास बुझा ली। तुम्हारी अकथ कथा तुम्हारे द्वारा ही जानी जा सकती है हम लोगो के बस की नही है। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण ने यह सब सुनकर आँखों से आँसू बहा दिये ॥१८२॥

ब्रज मैं संभ्रम मोहिँ भयौ।
तुम्हरौ ज्ञान सँदेसौ प्रभु जू, सबै जू भूलि गयौ।
तुमही सौं बालक किसोर बपु, मैं घर-घर प्रति देख्यौ।
मुरलीधर घनस्याम मनोहर, अद्‌भुत नटवर पेख्यौ।
कौतुक रूप ग्वाल वृंदनि सँग, गाइ चरावन जात।
साँझ प्रभातहिँ गो दोहन मिस, चोरी माखन खात।
नँद-नंदन अनेक लीला करि, गोपिनि चित्त चुरावत।
वह सुख देखि जु नैन हमारे, ब्रह्म न देख्यौ भावत।
करि करुना उन दरसन दीन्हौं, मैं पचि जोग बह्यौ।
छन मानहु षट्‌मास सूर प्रभु, देखत भूलि रह्यौ ॥१८३॥

अर्थ—मुझे ब्रज मे भ्रम हो गया था (इसलिए) तुम्हारे समस्त ज्ञान सन्देश को भूल गया। तुम्हारे समान ही किशोर शरीर वाला बालक मैंने हर घर मे देखा। (वहाँ) मुरलीधर मनोहर घनश्याम तथा अद्‌भुत नटवर को देखा। ग्वालों के साथ क्रीड़ा करते तथा गाये चराते हुए (कृष्ण रूप) को देखा। सन्ध्या तथा प्रातः गाय दुहने के वहाने चोरी से मक्खन खाते (कृष्ण को) देखा। अनेक क्रीडा करके गोपियों के मन को चुराते हैं। उस सुख को देखने के बाद मेरे नेत्रो को ब्रह्म की ओर देखना अच्छा नही लगता। कृपा करके उन लोगों ने दर्शन दिया मैं तो योग मे ही बह गया। हे कृष्ण, उन्हे देखते मैं ऐसा भूल गया कि (मेरे लिए) छः मास मानो एक क्षण के समान हो गया हो (बीत गया हो) ॥१८३॥

ब्रज मैं एक अचंभौ देख्यौ।
मोर मुकुट पीताबर धारे, तुम गाइनि सँग पेख्यौ।
गोप बाल सँग धवत तुम्हरें, तुम घर घर प्रति जात।
दूध दहीऽरु मही लै डारत, चोरी माखन खात।
गोपी सब मिलि पकरतिँ तुमकौं, तुम छुड़ाइ कर भागत।
सूर स्याम नित प्रति यह लीला, देखि देखि मन लागत ॥१८४॥

अर्थ—मैंने ब्रज मे एक आश्चर्य देखा। (मैंने) मोर मुकुट और पीताम्बर धारण किये हुए तुम्हे गायो के साथ देखा। गोप बालक सामूहिक रूप मे तुम्हारी (तुम्हारे घर की ओर) ओर दौड़ते है (फिर) तुम (उनके साथ) प्रत्येक घर मे जाते हो। (तुम) दूध, और दही लेकर पृथ्वी पर ढरकाते हो, तथा चोरी का माखन खाते हो। सब गोपियाँ

मिलकर तुमको पकड़ती हैं, तुम छुड़ाकर भागते हो। सूरदास (उद्धव के शब्दो) में कहते हैं कि (व्रज मे) नित्य प्रति (तुम्हारी) सब लीला देख-देख करके मन रम जाता है ॥१८४॥

श्रीकृष्ण वचन

सुनि ऊधौ मोहिं नैकु न बिसरत, वै व्रजबासी लोग।
तुम उनकौं कछु भलौ न कीन्हौ, निसि दिन दियौ वियोग।
जउ बसुदेव-देवकी मथुरा, सकल राज-सुख भोग।
तद्यपि मनहिं बसत वंसी बट, बन जमुना संजोग।
वै उत रहत प्रेम अवलंबन, इत तें पठयौ जोग।
सूर उसाँस छाँड़ि भरि लोचन, बढ़्यौ बिरह ज्वर सोग ॥१८५॥

अर्थ—उद्धव, सुनो मुझे वे व्रजवासी जन तनिक भी नही भूलते। तुमने उनका कुछ भला नही किया रात-दिन वियोग (की शिक्षा) दिया। यद्यपि वसुदेव तथा देवकी के मथुरा मे समस्त राजभोग है फिर भी मन से वंशी वट वन और मथुरा से संयुक्त रहता हूँ। वे वहाँ प्रेम के आधार पर जीते हैं किन्तु (मैंने यहां) से योग भेजा। सूरदास कहते है कृष्ण ने उच्छ्वास छोड़कर आँखों को आंसू से भर लिया तथा (उनका) विरह ज्वर और बढ गया ॥१८५॥

ऊधौ मोहिं व्रज बिसरत नाहीं।
वृन्दावन गोकुल बन उपवन, सघन कुंज की छाहीं।
प्रात समय माता जसुमति अरु, नद देखि सुख पावत।
माखन रोटी दह्यौ सजायौ, अति हित साथ खवावत।
गोपी ग्वाल बाल सँग खेलत, सब दिन हँसत सिरात।
सूरदास धनि-धनि व्रजवासी, जिनसौं हित जदुनाथ ॥१८६॥

अर्थ—उद्धव, मुझे व्रज भूलता नही। वृन्दावन, गोकुल वन, उपवन तथा सघन कुजो की छाया (नही भूलती) प्रातः काल माता यशोदा तथा नंद को देखकर सुख पाता था। वे माखन रोटी तथा सजाव (थक्केदार) दही को अत्यधिक स्नेह से खिलाते थे। गोपी तथा ग्वाल-बाल के साथ खेलता था तथा सारा दिन हँसते हुए बीत जाता था। सूरदास कहते हैं कि व्रज के निवासी धन्य-धन्य हैं जिनसे कृष्ण का प्रेम है ॥१८६॥

ऊधौ मोहिं व्रज बिसरत नाहीं।
हस सुता की सुदर कगरी, अरु कुंजनि की छाहीं।
वै सुरभी, वै बच्छ दोहनी, खरिक दुहावन जाहीं।
ग्वाल-बाल मिलि करत कुलाहल, नाचत गहि गहि बाहीं।
यह मथुरा कचन की नगरी, मनि मुक्ताहल जाहीं।
जबहिं सुरति आवति वा सुख की, जिय उमगत तन नाहीं।
अनगन भाँति करी बहु लीला, जसुदा नंद निबाहीं।
सूरदास प्रभु रहै मौन ह्वै, यह कहि कहि पछिताहीं ॥१८७॥

अर्थ—ऊधो मुझे ब्रज भूलता नही। यमुना की सुन्दर कगार और कुंजो की छाया तथा वे गाये तथा वे बछडे, जिन्हे बाड़े मे दुहाने जाते थे हमें नही भूलते। ग्वाल बाल सब के साथ मिलकर कोलाहल करते थे तथा गला पकड़कर नाचते थे। यह मथुरा सोने की नगरी है जहाँ मणि तथा मुक्ताफल है किन्तु जब उस सुख की याद आती है तो मन उमगता है तथा शरीर (की चेत) नही रहती। ब्रज मे अनेक लीला की नद तथा यशोदा ने सब कुछ निबाहा। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण चुप हो गये और यह कहकर पछताते है ॥१८७॥

जो जन ऊधौ मोहिं न बिसारत, तिहिं न बिसारौं एक घरी।
मेटौं जनम जनम के संकट, राखौं सुख आनंद भरी।
जो मोहिं भजै भजौं मैं ताकौं, यह परिमिति मेरे पाइँ परी।
सदा सहाइ करौं वा जन की, गुप्त हुती सो प्रगट करी।
ज्यौं भारत भरुही के अंडा, राखे गज के घंट तरी।
सूरजदास ताहि डर काकौ, निसि बासर जो जपत हरी ॥१८८॥

अर्थ – उद्धव, जो लोग मुझे नही भुलाते उन्हे एक घडी भी नही भुलाता। (उनके) जन्म-जन्म के संकट को मिटा दूँगा तथा सुख और आनन्द से भरा रखूँगा। जो मुझे भजता है मैं उसे भजता हूँ यह मर्यादा मेरे पैर पड़ गयी है। उस आदमी की सदा सहायता करता हूँ जो बात गुप्त थी उसे प्रत्यक्ष कर देता हूँ। जैसे महाभारत में टिटहरी के अन्डे को हाथी के घण्टे के नीचे बाँधा (वैसी ही) सूरदास कहते हैं कि उसे किसका डर है जो दिन-रात कृष्ण को जपता है ॥१८८॥

———

द्वारिका चरित

द्वारिका प्रयाण

बार सत्तरह जरासंध, मथुरा चढ़ि आयौ।
गयौ सो सब दिन हारि, जात घर बहुत लजायौ।
तब खिस्याइ कै कालजवन, अपनैं सँग ल्यायौ।
हरि जु कियौ बिचार, सिंधु तट नगर बसायौ।
उग्रसेन सब लै कुटुंब, ता ठौर सिधायौ।
अमर पुरी तैं अधिक, तहाँ सुख लोगनि पायौ।
कालजवन मुचुकुंदहिं सौं, हरि भसम करायौ।
बहुरि आइ भरमाइ, अचल रिपु ताहि जरायौ।
जरासिंधु हू ह्याँ तैं पुनि, निज देस सिधायौ।
गए द्वारिका स्याम राम, जस सूरज गायौ ॥१॥

अर्थ—जरासंध सत्रह बार मथुरा पर चढ आया। लेकिन सब दिन (हर बार) हार गया और घर जाते हुए बहुत लजाया। तब खीझकर वह कालयवन को अपने साथ लाया। हरि ने विचार किया (और) उन्होंने समुद्र के किनारे (एक) नगर बसाया। उग्रसेन सारा परिवार लेकर उस स्थान को चले गये। वहाँ (पर) लोगो ने अमरपुरी से अधिक सुख पाया। मुचुकुंद के द्वारा हरि ने कालयवन को भस्म करा दिया। फिर आकर (और) भ्रमित करके उस अचल शत्रु को जलाया। जरासिंधु यहाँ से फिर अपने देश चला गया। श्याम और बलराम द्वारिका गये। सूरदास ने (उनके) यश का गान किया है ॥१॥

रुक्मिणी परिणय

हरि हरि हरि सुमिरन करौ। हरि चरनाबिद उर धरौ।
हरि सुमिरन जब रुक्मिनि कर्‌यौ। हरि करि कृपा ताहि तब बर्‌यौ।
कहौं सो कथा सुनौ चित लाइ। कहै सुनै सो रहै सुख पाइ।
कुंडिनपुर को भीषम राइ। बिश्नु भक्ति कौ तिहिं चित चाइ।
रुक्म आदि ताके सुत पाँच। रुकमिनि पुत्री हरि रँग राँच।
नृपति रुक्म सौं कह्यौ बनाइ। कुँवरि जोग बर श्री जदुराइ।

रुक्म रिसाइ पिता सौं कह्यौ। जदुपति ब्रज जो चोरत मह्यौ।
रुक्मनि कौं सिसुपालहिं दीजै। करि विवाह जग मैं जस लीजै।
यह सुनि नृप नारी सौं कह्यौ। सुनि ताकौं अंतरगत दह्यौ।
रुक्म चँदेरी बिप्र पठायौ। ब्याह काज सिसुपाल बुलायौ।
सो बारात जोरि तहँ आयौ। श्री रुकमिनि के मन नहिं भायौ।
कह्यौ मेरे पति श्री भगवान। उनहिं बरौं कै तजौं परान।
यह निहचै करि पत्री लिखी। बोल्यौ विप्र सहज इक सखी।
पाती दै कह्यौ बचन सुनाइ। हरि को दै कहियौ या भाइ।
भीषम सुता रुकमिनी बाम। सूर जपति निसि दिन तुव नाम ॥२॥

अर्थ—हरि का स्मरण करो (तथा) हरि के चरणरूपी कमल को हृदय मे धारण करो। जब रुक्मिणी ने हरि का स्मरण किया (तब) हरि ने कृपा करके उसका वरण किया। उसी कथा को कहता हूँ, मन लगाकर सुनो; जो (इस कथा को) कहता-सुनता है वह सुख पाता है। कुंडिनपुर के भीष्म राजा के मन मे विष्णु-भक्ति का चाव था। रुक्म आदि उसके पाँच पुत्र थे। हरि के रंग में रंगी रुक्मिणी (उसकी) एक पुत्री थी। नृपति ने रुक्म से भली-भाँति कहा (कि) कुमारी (रुक्मिणी) के योग्य पर यदुराय (कृष्ण) हैं। रुक्म ने क्रोधित होकर पिता से कहा कि ब्रज मे दही चुराता था (यह) यदुपति! रुक्मिणी को शिशुपाल को दीजिए (तथा) विवाह करके जग मे यश लीजिए। यह सुनकर राजा ने स्त्री (पत्नी) से कहा, सुनकर उसका हृदय जल गया। रुक्म ने विप्र को चँदेरी भेजा (तथा) विवाह के लिए शिशुपाल को बुलाया। वह बारात जोड़कर वहाँ आया, (लेकिन) श्री रुक्मिणी के मन को (यह) अच्छा नही लगा। उसने कहा कि मेरे पति श्री भगवान् (है); उनको वरूँगी या प्राण छोड़ दूँगी। यह निश्चय करके (उसने) पत्र लिखा (तथा) सहज ही एक सखी से ब्राह्मण को बुलाया। पत्रिका देकर (यह) वचन सुनाकर कहा (कि) (पत्रिका) हरि को देकर इस प्रकार कहना (कि) भीष्म की पुत्री रुक्मिणी रात-दिन तुम्हारा नाम भजती है ॥२॥

द्विज पाती दै कहियौ स्यामहिं।
कुंडिनपुर की कुँवरि रुकमिनी, जपति तिहारे नामहिं।
पालागौं तुम जाहु द्वारिका, नंद-नँदन के धामहिं।
कंचन, चीर-पटंबर दैहौं, कर कंचन जु इनामहिं।
यह सिसुपाल असुचि अज्ञानी, हरत पराई बामहिं।
सूर स्याम प्रभु तुम्हरौ भरोसौ, लाज करौ किन नामहिं ॥३॥

अर्थ—हे द्विज! पत्रिका देकर स्याम से कहना कि कुंडिनपुर की कुमारी रुक्मिणी तुम्हारे नाम को जपती है। (मैं) पाँव लगती हूँ तुम कृष्ण के धाम द्वारिका जाओ। मैं तुम्हे सोना, चीर-पटंबर (रेशमी वस्त्र) दूँगी (तथा) हाथ का कंगन इनाम

में दूँगी। यह शिशुपाल अपवित्र तथा अज्ञानी है, पराई स्त्रियों को हरता है। सूर के प्रभु हे स्याम ! आप (अपने) नाम की लाज क्यों नही करते ॥३॥

द्विज कहियौ जदुपति सौं बात।
बेद बिरुद्ध होत कुंडिनपुर, हंस के अंस काग नियरात।
जनि हमरे अपराध बिचारहु, कन्या लिख्यौ मेटि गुरु तात।
तन आतमा समरप्यौ तुमकौं, उपजि परी तातैं यह बात।
कृपा करहु उठि बेगि चढ़हु रथ, लगन समै आवहु परभात।
कृष्न सिंह बलि धरी तुम्हारी, लैबे कौं जंबुक अकुलात।
तातैं मैं द्विज बेगि पठायौ, नेम धरम मरजादा जात।
सूरदास सिसुपाल पानि गहै, पावक रचौं करौं अपघात ॥४॥

अर्थ—हे ब्राह्मण ! कृष्ण से (यह) बात कहना कि कुडिनपुर में वेद के विरुद्ध (आचरण) हो रहा है; हस के भाग को (लेने के लिए) कौआ नजदीक आ रहा है। हमारे अपराध पर ध्यान न दो (कि) कन्या ने गुरु तथा पिता की (आज्ञा की) अवहेलना करके पत्र लिखा है। (मैंने) तन तथा आत्मा तुम्हे सौप दी है, इसलिए यह बात (स्थिति) उत्पन्न हो गयी है। कृपा करो (और) उठकर शीघ्र रथ पर चढ़ो, (तथा) लग्न के समय प्रातः आओ। हे कृष्ण ! सिंह की बलि तुम्हारे लिए रखी (सुरक्षित) है; (उसे) लेने के लिए शृङ्गाल अकुला रहा है। इसी से मैंने ब्राह्मण को शीघ्र ही भेजा, क्योकि (मेरी) नियम, धर्म तथा मर्यादा जा रही है। सूरदास कहते हैं (रुक्मिणी कहती है) (कि) (यदि) शिशुपाल मेरा हाथ ग्रहण करता है (पाणिग्रहण करता है) (तो) अग्नि रचूंगी (तथा) आत्म हत्या कर लूंगी ॥४॥

सुनत हरि रुकमिनि कौ संदेश।
चढ़ि रथ चले बिप्र कौं सँग लै, कियौ न गेह प्रवेस।
बारंबार बिप्र कौं पूछत, कुँवरि बचन सो सुनावत।
दीनबंधु करुना निधान सुनि, नैन नीर भरि आवत।
कह्यौ हलधर सौं आवहु दल लै, मैं पहुँचत हौं धाइ।
सूरज प्रभु, कुंडिनपुर आए, बिप्र सो जाइ सुनाइ ॥५॥

अर्थ—रुक्मिणी का संदेश सुनते ही हरि रथ पर चढ़कर (तथा) ब्राह्मण को साथ लेकर चले, (सुनने के बाद) (अपने) घर मे प्रवेश नही किया। बार-बार ब्राह्मण से पूछते है, (वह) कुंवरि रुक्मिणी की बात सुनाता है। सुनकर दीनबन्धु करुणानिधान (कृष्ण की) आँखो मे आंसू भर आते हैं ! (उन्होने) बलराम से कहा (कि) सेना लेकर आओ मैं दौडकर पहुँचता हूँ। सूरज के प्रभु कुंडिनपुर आ गये, ब्राह्मण ने जाकर यह (समाचार) सुनाया ॥५॥

रुकमिनि देवी-मंदिर आई।
धूप दीप पूजा-सामग्री, अली संग सब ल्याई।

रखवारी कौं बहुत महाभट, दीन्हे रुक्म पठाई।
ते सब सावधान भए चहुँ दिसि, पंछी तहाँ न जाई।
कुँवरि पूजि गौरी बिनती करी, वर देउ जादवराई।
मैं पूजा कीन्ही इहिँ कारन, गौरी सुनि मुसकाई।
पाइ प्रसाद अंबिका-मंदिर, रुक्मिनि बाहर आई।
सुभट देखि सुन्दरता मोहे, धरनि गिरे मुरझाई।
इहिँ अंतर जादौपति आए, रुक्मिनि रथ बैठाई।
सूरज प्रभु पहुँचे दल अपनैं, तब सुभटनि सुधि पाई।।६।।

अर्थ—रुक्मिणी देवी मन्दिर में आई। धूप, दीप तथा पूजा की समस्त सामग्री सखियाँ साथ मे लाईं। रुक्म ने रखवाली के लिए बहुत से बड़े वीरो को भेज दिया। वे सभी वहाँ सावधान हो गये, वहाँ पक्षी भी नही जा पाता था। कुँवरि ने पूजा करके पार्वती से (यह) विनती की कि (मुझे) कृष्ण को वर के रूप में दे। मैंने इसीलिए पूजा की (है)। (यह) सुनकर गौरी मुस्करायी! अंबिका के मन्दिर में प्रसाद (वरदान) पाकर रुक्मिणी बाहर आई। (वहाँ के) सुभट (उसकी) सुन्दरता देखकर मोहित हो गए (और) पृथ्वी पर मूर्छित होकर गिर पड़े। इसी बीच कृष्ण (वहाँ) गए तथा (उन्होंने) रुक्मिणी को रथ पर बिठा लिया। सूरज के प्रभु (कृष्ण) अपनी सेना मे (जब) पहुँच गये तब (रुक्म द्वारा तैनात) सुभटों ने खबर पायी (कि रुक्मिणी हरण हो गया)।।६।।

आवहु री मिलि मंगल गावहु।
हरि रुक्मिनी लिए आवत हैं, यह आनँद जदुकुलहिँ सुनावहु।
बाँधहु बन्दनवार मनोहर, कनक कलस भरि नीर धरावहु।
दधि अच्छत फल फूल परम रुचि, आँगन चंदन चौक पुरावहु।
कदली जूथ अनूप किसल दल, सुरँग सुमन लै मंडल छावहु।
हरद दूब केसर मग छिरकहु, भेरी मृदंग निसान बजावहु।
जरासंध सिसुपाल नृपति तैं, जीते हैं उठि अरघ चढ़ावहु।
बल समेत तन कुसल सूर प्रभु, आए हैं आरती बनावहु।।७।।

अर्थ—(हे सखियो!) आओ, (सब) मिलकर मंगल (गीत) गाओ। हरि रुक्मिणी को लेकर आ रहे हैं। यह आनंद यदुकुल को सुनाओ। मनोहर बंदनवार बाँधो (तथा) सोने के कलश (घड़े) मे जल भर कर रखवाओ। दही, अक्षत, परम रुचिकर फल, फूलों के द्वारा आँगन मे चौक पुरवाओ। केले के समूहो, अनुपम किशलय दलो (तथा) सुन्दर रंग के फूलो मे मंडप छवाओ। रास्ते मे हल्दी दूब (तथा) केसर छिड़को; नगाड़ो (भेरी), मृदंग तथा ढोल (निशान) बजाओ। जरासंध शिशुपाल नृप से (कृष्ण) जीत गये हैं। उठकर अर्घ्य (पूजन सामग्री) चढ़ाओ। बलराम सहित सूर के प्रभु (कृष्ण) शरीर से कुशलता-पूर्वक आये है। (उनकी) आरती सजाओ।।७।।

बलभद्र ब्रज यात्रा

स्याम राम के गुन नित गाऊँ। स्याम राम ही सौं चित लाऊँ।
एक बार हरि निज पुर छए। हलधर जी बृन्दावन गए।
रथ देखत लोगनि सुख पाए। जान्यौ स्याम राम दोउ आए।
नन्द जसोमति जब सुधि पाई। देह गेह की सुरति भुलाई।
आगैं ह्वै लैबे कौं धाए। हलधर दौरि चरन लपटाए।
बल कौं हित करि गरैं लगाए। दै असीस बोले या भाए।
तुम तौ भली करी बलराम। कहाँ रहे मन मोहन स्याम।
देखौ कान्हर की निठुराई। कबहूँ पाती हू न पठाई।
आपु जाइ ह्वाँ राजा भए। हमकौं बिछुरि बहुत दुख दए।
कहौ कबहुँ हमरी सुधि करत। हम तौ उन बिनु बहु दुख भरत।
कहा करैं ह्वाँ कोउ न जात। उन बिनु पल पल जुग सम जात।
इहिँ अन्तर आए सब ग्वार। भेंटे सबनि जथा ब्यौहार।
नमस्कार काहूँ कौ कियौ। काहू कौं अंकम भरि लियौ।
पुनि गोपी जुरि मिलि सब आईं। तिन हित साथ असीस सुनाईं।
हरि सुधि करि सुधि बुधि बिसराई। तिनकौ प्रेम कह्यौ नहिं जाई।
कोउ कहै हरि ब्याही बहु नार। तिनकौ बढ़्यौ बहुत परिवार।
उनकौं यह हम देतिं असीस। सुख सौं जीवैं कोटि बरीस।
कोउ कहै हरि नाही हम चीन्हौ। बिनु चीन्हैं उनकौं मन दीन्हौ।
निसि दिन रोवत हमैं बिहाइ। कहौ करैं अब कहा उपाइ।
कोउ कहै इहाँ चरावत गाइ। राजा भए द्वारिका जाइ।
काहे कौं वै आवैं इहाँ। भोग बिलास करत नित उहाँ।
कोउ कहै हरि रिपु छै किए। अरु मित्रनि कौ बहु सुख दिए।
बिरह हमारौ कहँ रहि गयौ। जिन हमकौं अति ही दुख दयौ।
कोउ कहै जे हरि की रानी। कौन भाँति हरि कौं पतियानी।
कोऊ चतुर नारि जो होइ। करै नहीं पतिआरौ सोइ।
कोउ कहै हम तुम कत पतियाईं। उनकैं हित कुल लाज गवाईं।
हरि कछु ऐसौ टोना जानत। सबकौं मन अपनैं बस आनत।
कोउ कहै हरि हम सब बिसराईं। कहा कहैं कछु कह्यौ न जाई।
हरिकौं सुमिरि नयन जल ढारैं। नैंकु नहीं मन धीरज धारैं।
यह सुनि हलधर धीरज धारि। कह्यौ आइहैं हरि निरधारि।
जब बल यह सदेस सुनायौ। तब कछु इक मन धीरज आयौ।
बल तहँ बहुरि रहे द्वै मास। ब्रज बासिनि सौं करत बिलास।
सब सौं मिलि पुनि निजपुर आए। सूरदास हरि के गुन गाए॥८॥

अर्थ—श्याम (और) बलराम के गुणों को नित्य गाता हूँ (तथा) श्याम और बलराम में ही चित्त लगाता हूँ। एक बार (जब) हरि अपने पुर (मथुरा) में छाये थे (विद्यमान थे) हलधर जी वृन्दावन गये (आए) रथ देखते ही (वृन्दावन) के लोगों ने सुख पाया, समझा (कि) श्याम और बलराम दोनों आये हैं। नद (तथा) यशोदा ने जब खबर पायी तो उन्होने (प्रसन्नता से) (अपने) शरीर तथा घर की स्मृति भुला दी। दोनो आगे होकर लेने को दौडे। हलधर दौड़कर (उनके) चरणों से लिपट गये (नंद यशोदा ने) बलराम को स्नेह-पूर्वक गले से लगाया, (और) आशीर्वाद देकर इस प्रकार बोले। बलराम! तुमने तो अच्छा किया (आ गए), लेकिन मनमोहन श्याम कहाँ रह गये! कृष्ण की निष्ठुरता (तो) देखो, कभी पत्र भी नही भेजा। स्वयं तो वहाँ जाकर राजा हो गए, (लेकिन) बिछुडकर हमको बहुत दुख दिया। कहो, (श्याम) कभी हमारा स्मरण करते हैं। हम तो उनके बिना बहुत दुख भोगते हैं। क्या करे, (यहाँ से) वहाँ कोई जाता नहीं, उनके बिना पल-पल युग के समान बीतता है। इसी बीच सभी ग्वाल आये (तथा) सबों ने यथाविधि भेट की (बलराम ने) किसी को नमस्कार किया, किसी को गले लगाया। फिर सब गोपियाँ मिलकर आईं, उन्होने प्रेमपूर्वक मंगल कामनाएँ की। हरि का स्मरण करके (गोपियो की) सुध-बुध भूल गयी। उनके प्रेम को कहा नही जाता। कोई कहती है (कि) हरि ने बहुत-सी स्त्रियों से विवाह कर लिया है, (तथा) उनका परिवार बहुत बढ़ गया है! उनको हम यह आशीर्वाद देती है (कि) (वे) सुखपूर्वक करोड़ो वर्ष जिये। कोई कहती हैं (कि) हरि ने हमें पहचाना नही; बिना पहचाने (हमने) (उन्हे) मन दे दिया। हमारा (समय) रात-दिन रोते ही व्यतीत होता है। कहो अब क्या उपाय करे। कोई कहती है (कि) गाय चराते थे द्वारिका जाकर राजा हो गये! वे यहाँ क्यो आये, वहाँ नित्य भोग विलास करते हैं। कोई कहती है कि हरि ने शत्रुओ का नाश किया (तथा) मित्रो को बहुत सुख दिया। हमारा विरह कहाँ रह गया, जिन्होने हमे बहुत दुख दिया। कोई कहती है (कि) जो हरि की रानी हैं (उन्होंने) हरि पर कैसे विश्वास किया? यदि कोई चतुर स्त्री होती तो उन पर विश्वास न करती। कोई (आपस मे) कहती है (कि) हमने-तुमने (उन पर) कैसे विश्वास किया; उनके लिए (अपने) कुल की लाज गँवा दी। हरि कुछ ऐसा टोना जानते हैं (जिससे) सबके मन को अपने वश मे कर लेते हैं। कोई कहती हैं (कि) हरि ने हम सब को भुला दिया, क्या कहे, कुछ कहा नही जाता! हरि का स्मरण करके नयनो मे जल ढालती है। मन, तनिक भी, धीरज नही मानता। यह सुनकर हलधर ने धीरज धरकर कहा कि हरि निश्चित आयेगे। जब बलराम ने यह संदेश सुनाया तब मन मे थोड़ा-सा धीरज आया! बलराम वहाँ दो महीने रहे (तथा) व्रजवासियो से विलास करते रहे। सब से मिलकर फिर अपने पुर (मथुरा) आये, सूरदास ने (इस प्रकार) हरि का गुणगान किया ॥८॥

सुदामा चरित

कंत सिधारौ मधुसूदन पै, सुनियत हैं वे मीत तुम्हारे।
बाल-सखा अरु बिपति बिभंजन, संकट हरन मुकुंद मुरारे।
और जु अतिसय प्रीति देखियै, निज तन मन की प्रीति बिसारे।
सरबस रीझि देत भक्तनि कौं, रंक नृपति काहूँ न बिचारे।
जद्यपि तुम संतोष भजत हौ, दरसन सुख तैं होत जु न्यारे।
सूरदास प्रभु मिले सुदामा, सब सुख दै पुनि अटल न टारे ॥९॥

अर्थ—(सुदामा की स्त्री कहती है) हे पति! मधुसूदन (कृष्ण) के पास जाओ, सुनती हूँ वे तुम्हारे मित्र हैं! (वे तुम्हारे) बाल मित्र हैं; मुकुंद मुरारी विपत्तियो के भंजक (तथा) संकट हरने वाले है। और जो (जहां) अतिशय प्रेम देखते हैं तो (वहां) अपने तन-मन की प्रीति (भी) भुला देते है। रीझ कर भक्तो को सर्वस्व देते हैं, (वे) दरिद्र (और) नृपति किसी का विचार नही करते। यद्यपि तुम संतोष धारण करते हो, (और) (वहां न जाकर) दर्शन सुख से वंचित होते हो (फिर भी) सूरदास (कहते है) (कि) प्रभु (कृष्ण) से सुदामा मिलने पर सब सुख देकर (उससे) मिले, फिर वह सुख अटल (होगा), नही टाला (सदैव प्राप्त हुआ) ॥९॥

सुदामा सोचत पंथ चले।
कैसैं करि मिलिहैं मोहिं श्रीपति, भए तब सगुन भले।
पहुँच्यौ जाइ राजद्वारे पर, काहूँ नहिं अटकायौ।
इत उत चितै धँस्यौ मंदिर मैं, हरि कौ दरसन पायौ।
मन मैं अति आनंद कियौ हरि, बाल-मीत पहिचान।
धाए मिलन नगन पग आतुर, सूरज प्रभु भगवान ॥१०॥

अर्थ—सुदामा रास्ते मे सोचते हुए चले (कि) श्रीपति (कृष्ण) हमसे कैसे मिलेगे, तब (उस समय) अच्छे सगुन हुये। (सुदामा) राजद्वार पर जा पहुँचा, कही भी रोक नही हुई। इधर-उधर देखकर मन्दिर (महल) मे प्रविष्ट हुआ। (और) हरि (कृष्ण) का दर्शन पाया। बचपन के साथी को पहचान कर हरि ने मन मे अत्यधिक आनंद माना (प्रसन्न हुए)। आतुर होकर नगे पांव (ही) मिलने के लिए सूरज के प्रभु भगवान् दौड़े ॥१०॥

दूरहिं तैं देख्यौ बलबीर।
अपने बालसखा जु सुदामा, मलिन बसन अरु छीन सरीर।
पौढ़े हे परजक परम रुचि, रुकमिनि चौंर डुलावति तीर।
उठि अकुलाइ अगमने लीन्हे, मिलत नैन भरि आए नीर।
निज आसन बैठारि स्याम-घन, पूछी कुसल कह्यौ मति धीर।
ल्याए हौ सु देहु किन हमकौं, कहा दुरावन लागे चीर।

दरस परस हम भए सभागे, रही न मन मैं एकहु पीर ।
सूर सुमति तंदुल चाबत हौं, कर पकरयौ कमला भई धीर ॥११॥

अर्थ—बलराम के भाई (कृष्ण) ने दूर से ही मलिन वस्त्र तथा क्षीण शरीर वाले अपने बाल मित्र सुदामा को देखा। परम रुचिकर पलंग पर लेटे थे, पास में (बैठी) रुक्मिणी चमर डुला रही थीं। (कृष्ण ने) आकुल होकर (तथा) उठकर (सुदामा की) अगवानी की, मिलते ही (उनके) नेत्र जल से भर आये। (उसे) अपने आसन पर बिठा कर कृष्ण ने कुशल पूछी; धीर मति (सुदामा ने) बताया। (कृष्ण ने कहा) (कि) जो कुछ लाये हो उसे हमको क्यों नही देते, वस्त्र में क्या छिपाने लगे ? हम दर्शन (तथा) स्पर्श से सौभाग्यशाली हो गये, मन में एक भी पीड़ा नही रही। सूरदास (कहते हैं) (कि) सुमति (कृष्ण) को चावल चबाते देख कमला ने धीर (अधीर) होकर हाथ पकड़ लिया ॥११॥

ऐसी प्रीति की बलि जाउँ ।
सिंहासन तजि चले मिलन कौं, सुनत सुदामा नाउँ ।
कर जोरे हरि विप्र जानि कै, हित करि चरन पखारे ।
अंकमाल दै मिले सुदामा, अर्धासन बैठारे ।
अर्धंगी पूछति मोहन सौं, कैसे हितू तुम्हारे ।
तन अति छीन मलीन देखियत, पाउँ कहाँ तैं धारे ।
संदीपन कैं हमऽरु सुदामा, पढ़े एक चटसार ।
सूर स्याम की कौन चलावै, भक्तनि कृपा अपार ॥१२॥

अर्थ—ऐसी प्रीति की (मैं) बलि जाता हूँ। सुदामा का नाम सुनकर (कृष्ण) सिंहासन छोड़कर मिलने चले। हरि ने (सुदामा को) ब्राह्मण जानकर हाथ जोड़े (उसे प्रणाम किया), (तथा) स्नेहपूर्वक चरण धोये। गले लगाकर सुदामा से मिले तथा अर्धासन (आधे आसन) पर (उसे) बिठाया। अर्धांगिनी ने कृष्ण से पूछा (कि) ये कैसे तुम्हारे मित्र हुए ? (इनका) शरीर अत्यन्त क्षीण है, मलिन दिखाई देते हैं, ये कहाँ से पधारे हैं ? (कृष्ण ने उत्तर दिया) हम और सुदामा संदीपन (ऋषि) के शिष्य हैं। एक ही पाठशाला में पढ़ते थे। सूरदास (कहते है) (कि) कृष्ण की (बात) कौन चलाये भक्तो पर (इनकी) अपार कृपा (रहती है) ॥१२॥

गुरु-गृह हम जब बन कौं जात ।
जोरत हमरे बदलैं लकरी, सहि सब दुख निज गात ।
एक दिवस बरषा भई बन मैं, रहि गए ताहीं ठौर ।
इनकी कृपा भयौ नहिँ मोहिँ श्रम, गुरु आए भऐं भोर ।
सो दिन मोहिँ विसरत न सुदामा, जौ कीन्हौ उपकार ।
प्रति उपकार कहा करौं सूरज, भाषत आप मुरार ॥१३॥

अर्थ—गुरु के घर (से) जब हम वन जाते थे, (तब) हमारे बदले (ये) सब दुख सहकर लकड़ी जोड़ते (एकत्र करते) थे। एक दिन वन में वर्षा हुई, (हम लोग) उसी स्थान पर रह गये। इनकी कृपा से मुझे श्रम नहीं हुआ, प्रातः होने पर गुरु (के घर) आये। उस दिन सुदामा ने जो उपकार किया वह मुझे भूलता नहीं! मुरारि (कृष्ण) स्वयं कहते हैं कि प्रत्युपकार (बदले) (के रूप) मे क्या करूँ? ॥१३॥

सुदामा गृह कौं गमन कियौ।
प्रगट बिप्र कौं कछु न जनायौ, मन मैं बहुत दियौ।
वेई चीर कुचील वहै विधि, मोकौं कहा भयौ।
धरिहौं कहा जाय तिय आगैं, भरि भरि लेत हियौ।
सो संतोष मानि मन हीं मन, आदर बहुत लियौ।
सूरदास कीन्हे करनी बिनु, को पतियाइ बियौ ॥१४॥

अर्थ—सुदामा ने घर के लिए प्रस्थान किया। प्रकट रूप मे विप्र को कुछ नही बताया, (लेकिन) मन मे बहुत दिया। (सुदामा सोचते है) वही मैले वस्त्र, वही विधि मुझे हुआ ही क्या (क्या मिला)? पत्नी के आगे जाकर क्या रखूंगा; (सुदामा का) हृदय (दुख) से भर-भर आता था। (सुदामा ने) मन-ही-मन इस (बात पर) संतोष किया (कि) (कृष्ण ने) बहुत आदर से (मुझे) लिया (मेरा बहुत आदरपूर्वक स्वागत किया)। सूरदास (कहते है) (कि) करणी किये बिना दूसरा कौन विश्वास करेगा। (सुदामा सोचते है कि कृष्ण के अतिरिक्त दूसरा ऐसा कौन है जो मुझे जैसे अकर्मण्य का विश्वास कर इतना आदर देगा) ॥१४॥

सुदामा मंदिर देखि डरचौ।
इहाँ हुती मेरी तनक मड़ैया, को नृप आनि छरचौ।
सीस धुनै दोऊ कर मींड़ै, अंतर सोच परचौ।
ठाढ़ी तिया जु मारग जोवै, ऊँचै चरन धरयौ।
तोहिं आदरचौ त्रिभुवन कौ नायक, अब क्यौं जात फिरचौ।
सूरदास प्रभु की यह लीला, दारिद दु.ख हरचौ ॥१५॥

अर्थ—(घर लौटने पर) सुदामा मंदिर (अपना घर) देखकर डर गया! यहाँ मेरी छोटी सी मड़इया थी, किस नृप ने आकर छल किया (छीन लिया)। (वे) सिर घुमाते हैं, दोनो हाथ मलते है, मन के भीतर सोचने लगे। चरणो को ऊँचा करके (ऊँचे स्थान पर खड़ी होकर) स्त्री खडी हुई मार्ग जोह रही है। (उसने कहा) त्रिभुवन के नायक ने आदर दिया अब (घर से) क्यो वापस जाते हो! सूरदास (कहते हैं) (कि) यह प्रभु (कृष्ण) की लीला है कि (उन्होंने) (समस्त) दुख-दरिद्रता को हर लिया ॥१५॥

हौं फिरि बहुरि द्वारिका आयौ।
समुझि न परी मोहिं मारग की, कोउ बूझौ न बतायौ।

कहिहैं स्याम सत्त इन छाँड्यौ, उतौ राँक ललचायौ।
तृन की छाहँ मिटी निधि माँगत,कौन दुखनि सौं छायौ।
सागर नहीं समीप कुमति कैं, विधि कह अंत भ्रमायौ।
चितवत चित्त बिचारत मेरौ, मन सपनैं डर छायौ।
सुरतरु, दासी, दास, अस्व, गज, बिभौ बिनोद बनायौ।
सूरज प्रभु नँद-सुवन मित्र ह्वै, भक्तनि लाड़ लड़ायौ ।।१६।।

अर्थ—(अपनी मड़ैया के स्थान पर सोने का आवास बना देखकर भौचक्का सुदामा सोचता है।) क्या मैं लौटकर फिर द्वारिका आ गया! (लगता है) मार्ग की (स्थिति) मुझे समझ नहीं पड़ी। न किसी से (मैंने) पूछा, न किसी ने (स्वयमेव) बताया। (मुझे पुनः आया देख) कृष्ण कहेंगे (कि) इन्होंने सत्य छोड दिया, वहाँ (यह) दरिद्री था, (तभी तो) ललचा गया, (लौट आया)। ऐश्वर्य माँगने पर तृण की छाया भी मिट गयी (कृष्ण के पास समृद्धि के लालच से गया, लौटा तो फूस का छप्पर भी गायब) उसे कितनी कठिनाई से मैंने छाया था। (मुझ) कुमति के लिये समीप मे सागर (भी) नही (कि जाकर डूब मरूँ), अन्त मे विधाता ने मुझे क्यो भरमाया? (कहाँ पहुँचा दिया)। (सोने का आवास) देखते हुए चित्त मे सोचता है; मन में स्वप्न का (सा) डर छा गया (मैं डरा, कही सपना तो नही देख रहा हूँ!) (यहाँ तो) वैभव का कौतुक बना है—(जहाँ मड़ैया थी वहाँ अब) कल्पवृक्ष, दासी, घोडे, हाथी (हैं) सूरज (कहते हैं) (कि) नन्द के प्रभु (कृष्ण) मित्र होकर (अनुकूल होने पर), (इसी प्रकार) भक्तों का लाड़ लड़ाया करते है (उन पर प्रेम का प्रदर्शन किया करते है) ।।१६।।

कहा भयौ मेरौ गृह माटी कौ।
हौं तौ गयौ गुपालहिं भेंटन, और खरच तंदुल गाँठी कौ।
बिनु ग्रीवा कल सुभग न आन्यौ, हुतौ कमंडल दृढ़ काठी कौ।
घुनौ बाँस जुत बुनो खटोला, काहु कौ पलँग कनक पाटी कौ।
नूतन छीरोदक जुवती पै, भूषन हुतौ न लोह माटी कौ।
सूरदास प्रभु कहा निहोरौ, मानत रंक त्रास टाटी कौ ।।१७।।

अर्थ—मेरे मिट्टी के घर का क्या हुआ? (वह कहाँ चला गया!) मैं तो गोपाल से भेंट करने गया था और (मैंने) गाँठ के (अपने पास के) (चावल) भी खर्च किए (गवाँ दिए)। बिना गले का टूटा घडा (कलसु भगन?) (मैं) लाया (था) कड़ी लकड़ी (काठी) का कमंडल (मेरे पास) था (तथा) घुने हुए बाँस का बिना हुआ खटोला (जहाँ) था (उसी घर मे अब) सोने की पाटी वाला किसी का पलंग (पड़ा) है। (जिस) युवती (पत्नी) के पास लोहे (अथवा) मिट्टी के आभूषण न थे (उसी के पास अब) नयी रेशमी वस्त्र है। सूरदास के प्रभु से क्या प्रार्थना करूँ? (जिस) दरिद्री

को झोपडी (टाटी) का कष्ट है (जिसके पास झोपड़ी भी नही है) उसे भी (प्रभु) अगीकार करते हैं (उसकी चिन्ता भी उन्हे रहती है) ।।१७।।

भूलौ द्विज देखत अपनौ घर।
औरहिँ भाँति रची रचना रुचि, देखतही उपज्यौ हिरदै डर।
कै वह ठौर छुड़ाइ लियौ किहुँ, कोऊ आइ बस्यौ समरथ नर।
कै हौं भूलि अनतहीं आयौ, यह कैलास जहाँ सुनियत हर।
बुध-जन कहत द्रुबल घातक बिधि, सो हम आज लही या पटतर।
ज्यौं नलिनी बन छाँड़ि बसै जल, दाहै हेम जहाँ पानी-सर।
पाछै तैं तिय उतरि कह्यौ पति, चलिए द्वार गह्यौ कर सौं कर।
सूरदास यह सब हित हरि कौ, द्वारैं आइ भयौ जु कलपतर ।।१८।।

अर्थ—ब्राह्मण (सुदामा) अपना घर देखकर भ्रमित हो गया (वहां तो) और ही तरह की रुचिकर रचना रची थी, जिसे देखते ही (सुदामा के) हृदय मे डर उत्पन्न हुआ। या तो किसी ने वह स्थान (उसका पुराना घर) छीन लिया (और) (वहां पर) आकर कोई समर्थ व्यक्ति बस गया (किसी बलवान् ने कब्जा कर लिया) या तो मैं भूल कर अन्यत्र (ही) आ गया (हूँ), यह (कही) कैलाश तो नही है जहाँ शिव (का निवास) सुना जाता है। बुद्धिमान लोग कहते हैं कि विधाता दुर्बलो का घातक है उसका नमूना आज पा लिया (देखा)। जैसे कमलिनी वन छोड़कर जल मे बसती है, (लेकिन) जहाँ (वहाँ) पानी के तालाव मे (भी) उसे हिम दग्ध करता है ! पीछे से (सुदामा की) पत्नी उतरकर आयी (और) हाथ-से-हाथ पकडकर पति से बोली (कि) दरवाजे (घर) के (भीतर) चलिए। सूरदास (कहते है) (कि) यह सब हरि का स्नेह है (जिसके फलस्वरूप द्वार पर आकर कल्पवृक्ष लग गया है !) ।।१८।।

कैसैं मिले पिय स्याम सँघाती।
कहियै कत कौन बिधि परसे, बसन कुचील छीन अति गाती।
उठिकै दौरि अंक भरि लीन्हौ, मिलि पूछी इत-उत कुसलाती।
पटतैं छोरि लिए कर तंदुल, हरि समीप रुकमिनी जहाँ ती।
देखि सकल तिय स्याम-सुँदर गुन, पट दै ओट सबै मुसक्यातीं।
सूरदास प्रभु नवनिधि दीन्ही, देते और जो तिय न रिसातीं ।।१९।।

अर्थ—हे प्रिय ! मित्र साथी श्याम कैसे मिले। हे पति ! कहिये, (कृष्ण ने) मैले वस्त्रो वाले तुम्हारे अत्यन्त क्षीण शरीर को कैसे स्पर्श किया ? सुदामा ने कहा (कृष्ण ने) उठकर-दौडकर (मुझे) गले लगाया, (तथा) मिलकर यहाँ-वहाँ की (सबकी) कुशलता पूछी। वस्त्र से खोलकर हाथ मे चावल ले लिया, जहां (वहाँ) हरि के पास (ही) रुक्मिनि भी थी। (उस समय) सभी स्त्रियां श्याम सुन्दर (कृष्ण) के गुणो को देखकर वस्त्र की ओट मे मुसकराती थी। सूरदास (कहते है) (कि) प्रभु (कृष्ण) ने

नव-निधियाँ दी, (वे) और भी देते यदि (उनकी) पत्नी (रुक्मिणी) नाराज न होती ।।१६।।

हरि बिनु कौन दरिद्र हरै ।
कहत सुदामा सुनि सुन्दरि, हरि मिलन न मन बिसरै ।
और मित्र ऐसी गति देखत, को पहिचान करै ।
बिपति परैं कुसलात न बूझै, बात नहीं बिचरै ।
उठि भेटें हरि तंदुल लीन्हे, मोहिं न बचन फुरै ।
सूरदास लछि दई कृपा करि, टारी निधि न टरै ।।२०।।

अर्थ—हरि के बिना दरिद्रता कौन दूर करे ? सुदामा कहते हैं (कि) हे सुन्दरी, सुनो ! हरि का मिलना मन से भूलता नही । (मेरी) जैसी गति देखकर दूसरे मित्र क्या मुझे पहचानते ? विपत्ति पडने पर (कोई) कुशलता (भी) नही पूँछते (तथा) बातचीत (भी) नही करते । हरि (कृष्ण) ने उठकर भेंट (और) चावल ले लिया मुझसे (तो) वचन तक स्फुरित नही हुआ (मैं तो बोल भी न पाया) । सूरदास (कहते हैं) (कि) (कृष्ण ने) कृपा करके (इतनी) लक्ष्मी (सम्पत्ति) दी, कि (वह) निधि टाले नही टलती (खर्च करने पर भी समाप्त नही होती) ।।२०।।

ब्रजनारी पथिक संवाद

तब तैं बहुरि न कोऊ आयौ ।
वहै जु एक बेर ऊधौ सौं, कछु संदेसौ पायौ ।
छिन-छिन सुरति करत जदुपति की, परत न मन समुझायौ ।
गोकुलनाथ हमारैं हित लगि, लिखि हूँ क्यौं न पठायौ ।
यहै विचार करौं धौं सजनी, इतौ गहरु क्यौं लायौ ।
सूर स्याम अब बेगि न मिलहु, मेघनि अम्बर छायौ ।।२१।।

अर्थ—(जब से कृष्ण गए) तब से (वहाँ से) लौटकर कोई नही आया । वहीं एक बार ऊधो से (हमने) कुछ सदेश पाया था । हर क्षण यदुपति (कृष्ण) की स्मृति करती हूँ; मन समझाते नही बनता । गोकुलपति (कृष्ण) ने हमारे हित के लिए लिखकर भी (पत्र) नही भेजा । हे सखी ! यही विचार करती (रहती) हूँ (कि) इतना विलंब क्यों किया । सूर के स्याम (कृष्ण) अब शीघ्र (ही) (क्यों) नही मिलते, (अब तो) आकाश मे बादल छा गये हैं ।।२१।।

बहुरौ हो ब्रज बात न चाली ।
वहै सु एक बेर ऊधौ कर, कमल नयन पाती दै घाली ।
पथिक तिहारे पा लागति हौं, मथुरा जाहु जहाँ बनमाली ।
कहियौ प्रगट पुकारि द्वार ह्वै, कालिंदी फिरि आयौ काली ।
तब वह कृपा हुती नँदनंदन, रुचि रुचि रसिक प्रीति प्रतिपाली ।
माँगत कुसुम देखि ऊँचे द्रुम, लेत उछंग गोद करि आली ।

जव वह सुरति होति उर अंतर, लागत काम वान की भाली।
सूरदास प्रभु प्रीति पुरातन, सुमिरत दुसह सूर उर साली ।।२२।।

अर्थ—हे (पथिक) ! फिर (कृष्ण) व्रज की वात नही चलायी । वही एक वार कमल नेत्र (कृष्ण) ने उद्धव के हाथ पत्रिका देकर भेजी थी । हे पथिक ! तुम्हारे पैर लगती हूँ; मथुरा जाओ जहाँ वनमाली (कृष्ण) हैं । द्वार पर से प्रत्यक्ष पुकार कर कहना (कि) यमुना में (कालीदह मे) पुनः काली (नाग) आ गया ! उस समय (कृष्ण की) वैसी (गहरी) कृपा थी, (उन) रसिक (कृष्ण ने) रुचि लेकर प्रेम का निर्वाह किया था। (हे सखी !) ऊँचे वृक्ष मे लगे पुष्प को माँगने पर गोद मे उठाकर अपने उत्संग (ऊपरी भाग, कंधो पर) विठा लेते हैं (ताकि हम स्वयं अपने हाथ से तोड़ ले) ! जव हृदय मे वह स्मृति होती है (वह घटना याद आती है) तो काम के वाण की नोक (भाली) चुभती हैं। सूरदास (कहते हैं) (कि) प्रभु (कृष्ण) की प्रीति पुरानी (है) स्मरण करते ही असह्य पीड़ा (शूल) हृदय मे सालती (चुभती) है ।।२२।।

तुम्हरे देस कागद मसि खूटी ।
भूख प्यास अरु नींद गई सब, विरह लरी तन लूटी ।
दादुर मोर पपीहा वोले, अवधि भई सब झूठी ।
पाछैं आइ तुम कहा करौगे, जव तन जैहै छूटी ।
राधा कहति सँदेश स्याम सौं, भई प्रीति की टूटी ।
सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन विनु, सखी करति है कूटी ।।२३।।

अर्थ—(जान पडता है) तुम्हारे देश में कागज (और) स्याही समाप्त हो गयी । (हमारी) भूख, प्यास, नीद, सब चली गई, विरह ने शरीर को लूट लिया । दादुर, मोर (तथा) पपीहा वोलने लगे; आने की अवधि सब झूठी हो गयी । वाद में आकर तुम क्या करोगे, जव शरीर छूट जायेगा । राधा श्याम से संदेश कहती है (कि) प्रेम खंडित हो रहा है । सूरदास के प्रभु ! तुम्हारे मिलन के विना सखियाँ (तुम्हारे विषय मे) कूट करती हैं (उपहास करती हैं) ।।२३।।

पथिक कह्यौ व्रज जाइ, सुने हरि जात सिंधु तट ।
सुनि सव अँग भए सिथिल, गयौ नहिँ वज्र हियौ फट ।
नर नारी घर-घरनि सबै, यह करति विचारा ।
मिलिहैं कैसी भाँति हमैं, अब नन्द कुमारा ।
निकट वसत हुती आस, कियौ अव दूरि पयाना ।
विना कृपा भगवान, उपाइ न सूरज आना ।।२४।।

अर्थ—(किसी) पथिक ने व्रज जाकर कहा (कि), (उसने) सुना है (कि) हरि सिंधु के तट (द्वारिका) जा रहे है । (यह) सुनकर (गोपियो के) सब अंग शिथिल हो गये, (किन्तु) (उनका) वज्र (सा) (कठोर) हृदय फट नही गया । सभी घरों मे नर (तथा) नारियाँ यही विचार करती है (कि) अव नन्द-कुमार (कृष्ण) किस तरह

मिलेंगे। (जब वे) निकट बसते थे तो मिलने की (कुछ) आशा थी, (किन्तु) अब तो (उन्होंने) दूर प्रस्थान कर दिया। कृष्ण की कृपा के बिना सूर अब कोई दूसरा उपाय नही ॥२४॥

नैना भए अनाथ हमारे।
मदनगुपाल उहाँ तैं सजनी, सुनियत दूरि सिधारे।
वै समुद्र हम मीन बापुरी, कैसैं जीवैं न्यारे।
हम चातक वै जलद-स्याम-घन, पियतिँ सुधा-रस प्यारे।
मथुरा बसत आस दरसन की, जोइ नैन मग हारे।
सूरदास हमकौं उलटी बिधि, मृतकहूँ, तैं पुनि मारे ॥२५॥

अर्थ—गोपियाँ सोचती हैं कि हमारे नेत्र अनाथ हो गये। सुनती हूँ (कि) मदन गोपाल वहाँ से (भी) (कही) दूर चले गये। वे (कृष्ण) समुद्र हैं, हम बेचारी मछलियाँ हैं, (उनसे) अलग (होकर) कैसे जीवित रहे। हम चातक हैं, वे श्याम बादल हैं, (हम) प्रिय का अमृत-रस पीती रहती हैं। मथुरा में बसते हुए दर्शन की आशा थी, (किन्तु) रास्ता देखते नेत्र (अब) हार गये। सूरदास (कहते हैं) (कि) विधाता ने हमारे लिए उल्टी (स्थिति) (पैदा कर दी). मरे हुए को पुनः मारा (कृष्ण विरह) में हम मरी सी थी ही, विधाता को इससे संतोष न हुआ, उसने हमें मार ही डाला ॥२५॥

उती दूर तैं को आवै री।
जासौं कहि संदेस पठाऊँ, सो कहि कहन कहा पावै री।
सिंधु कूल इक देस बसत है, देख्यौ सुन्यौ न मन धावै री।
तहँ नव-नगर जु रच्यौ नंद-सुत, द्वारावति पुरी कहावै री।
कंचन के बहु भवन मनोहर, रंक तहाँ नहिँ त्रन छावै री।
ह्वाँ के बासी लोगनि कौं क्यौं, ब्रज कौ बसिबौ मन भावै री।
बहु बिधि करतिँ बिलाप बिरहिनी, बहुत उपायनि चित लावैं री।
कहा करौं कहँ जाउँ सूर प्रभु, को हरि पिय पै पहुँचावै री ॥२६॥

अर्थ – हे सखी! उतनी दूर से (द्वारिका से) (भला) कौन आता है; जिससे कह कर (हम) (कृष्ण के पास) संदेश भेजे, वह (विधि) कहो, (हम) (अपना संदेश) कैसे कह पाये। समुद्र के किनारे एक देश बसता है। (उसे) न तो देखा है न सुना है (और) न मन (वहाँ तक) दौड़ पाता है (मन द्वारिका की कल्पना ही नही कर पाता) वहाँ नन्द के पुत्र (कृष्ण ने) नवीन नगर बसाया है जो द्वारिका पुरी कहलाता है। वहाँ सोने के बहुत से मनोहर भवन हैं, (वहाँ) (कोई व्यक्ति) दरिद्र (ही) नही है (जो) तृण से घर छाये। वहाँ के निवासी लोगो को ब्रज मे बसना क्यों अच्छा लगे। विरहिणियाँ बहुत प्रकार से विलाप करती हैं तथा बहुत (से) उपायों को (सोचने मे) चित्त लगाती हैं। सूर के प्रभु (को पाने के लिए) क्या करें, कहाँ जाये; हरि प्रिय (कृष्ण) के पास कौन पहुँचाये ॥२६॥

हौं कैसैं कै दरसन पाऊँ।
सुनहु पथिक उहिँ देस द्वारिका, जौ तुम्हरैं सँग जाऊँ।
वाहर भीर वहुत भूपनि की, वूझत वदन दुराऊँ।
भीतर भीर भोग भामिनि की, तिहिँ ठाँ काहि पठाऊँ।
बुधि बल जुक्ति जतन करि उहिँ पुर, हरि पिय पै पहुँचाऊँ।
अव वन वसि निसि कुंज रसिक विनु, कौनैं दसा सुनाऊँ।
श्रम कै सूर जाउँ प्रभु पासहिँ, मन मैं भलैं मनाऊँ।
नव-किसोर मुख मुरलि बिना, इन नैननि कहा दिखाऊँ ।।२७।।

अर्थ—मैं कैसे कृष्ण का दर्शन पाऊँ। हे पथिक ! सुनो, यदि तुम्हारे साथ उस द्वारिका देश को चलूं (तो) (वहाँ) वाहर (कृष्ण के प्रासाद के वाहर) वहुत से राजाओ की भीड (होगी); (उनके) पूछने पर (लज्जा से) मुख छिपा लूंगी (महल के) भीतर स्त्री (पत्नी-रुक्मिणी) के सुख-विलास ("भोग") की प्रचुरता (है), उस स्थान पर किसे भेजूं। वुद्धि-वल (तथा) युक्तिपूर्ण यत्न करके उस नगर मे हरि प्रिय (कृष्ण) के पास अपना (संदेश) (कैसे) भेजूं। (राधिका !) अव रसिक (कृष्ण) के विना वन मे रहते हुए कुज मे रात (के समय) अपनी दशा किसे सुनाऊँ। मुरली संयुक्त नव किशोर (कृष्ण) के मुख के विना इन नेत्रो को क्या दिखाऊँ ? ।।२७।।

तातैं अति मरियत अपसोसनि।
मथुराहू तैं गए सखी री, अव हरि कारे कोसनि।
यह अचरज सु वड़ौ मेरैं जिय, यह छाँड़नि, वह पोषनि।
निपट निकाम जानि हम छाँड़ी, ज्यौं कमान बिन गोसनि।
इक हरि के दरसन बिनु मरियत, अरु कुविजा के ठोसनि।
सूर सु जरनि कहा उपजी जो, दूरि होति करि ओसनि ।।२८।।

अर्थ—हे सखी ! अव मथुरा से भी काले कोसो (वहुत दूर) चले गये हैं, इसीलिए अफसोस (दुःख) से वहुत मर (वहुत कष्ट सह) रही हूँ। मेरे जी मे यह बड़ा आश्चर्य है कि (कहाँ तो) (कृष्ण का) वह पालन-पोषण (करना), (और कहाँ) अव इस प्रकार छोड़ देना ! विना धनुपकोटि (दोनो नोको) के विना जैसे धनुष कमान की भाँति उन्होंने हमे विल्कुल निकम्मी समझकर छोड दिया है, एक तो हरि के दर्शन विना (मैं) मरती हूँ दूसरे कुब्जा के डाह (कुढन से)। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ कह रही हैं कि जो जलन उत्पन्न हो गई क्या वह ओस से दूर हो सकती ? ।।२८।।

माई री कैसैं वनै हरि कौ ब्रज आवन।
कहियत है मधुबन तैं सजनी, कियौ स्याम कहुँ अनत गवन।
अगम जु पंथ दूरि दच्छिन दिसि, तहँ सुनियत सखि सिंधु लवन।
अब हरि ह्वाँ परिवार सहित गए, मग मैं मारयौ कालजवन।

निकट बसत मतिहीन भई॔ हम, मिलिहुँ न आईं सुत्यागि भवन ।
सूरदास तरसत मन निसि दिन, जदुपति लौं लै जाइ कवन ।।२९।।

अर्थ—हे सखी ! हरि का ब्रज लौटना कैसे संभव हो ? सखी, (लोग) कहते हैं (कि) मधुबन से स्याम ने कहीं अन्यत्र गमन किया है । जो (जहाँ का) रास्ता अगम (है), (जो) दूर दक्षिण दिशा मे (स्थित है), सखी ! सुनते हैं वहाँ लवण का समुद्र है। अब हरि वहाँ परिवार सहित चले गये, (और) (वहाँ जाते समय) मार्ग मे (उन्होंने) काल यवन (राक्षस) को मारा । पास बसते समय (जब कृष्ण मथुरा मे ही थे), (उस समय) हमारी अकल मारी गई (थी), (नही तो) भवन त्याग कर (उनसे) मिल न आती । सूरदास (कहते हैं) (कि) रात-दिन मन तरसता है, यदुपति (कृष्ण) के पास तक (अब) कौन ले जाय ।।२९।।

सुनियत कहुँ द्वारिका बसाई ।
दच्छिन दिशा तीर सागर कैं, कचन कोट गोमती खाई ।
पंथ न चलै सँदेस न आवै, इती दूर नर कोऊ न जाई ।
सत जोजन मथुरा तैं कहियत, यह सुधि एक पथिक पै पाई ।
सब ब्रज दुखी नंद जसुदा हू, इक टक स्याम राम लव लाई ।
सूरदास प्रभु के दरसन बिनु, भई बिदित ब्रज काम दुहाई ।।३०।।

अर्थ—सुनती हूँ (कृष्ण ने) कही द्वारिका बसायी है । दक्षिण दिशा में सागर के किनारे (वहाँ) सोने के किले (तथा), (किलों की सुरक्षा के लिए) गोमती की नहर (बनी है), वह रास्ता नही चलता (उस तरफ पथिक नही जाते), (वहाँ से) संदेश (भी) नही आता (तथा) इतनी दूर कोई मनुष्य नही जाता । मथुरा से (वह नगरी) एक सौ योजन कही जाती है, यह खबर एक पथिक से (हमे) मिली । सब ब्रज (वासी) (तथा) नंद-यशोदा (भी) दुखी हैं; (वे) एकटक श्याम और बलराम मे ध्यान लगाये है । सूरदास कहते हैं (कि) प्रभु (कृष्ण) के दर्शन के बिना ब्रज मे कामदेव की दुहाई विदित हुई (कामदेव के प्रताप का डंका बज गया) ।।३०।।

बीर बटाऊ पाती लीजौ ।
जब तुम जाहु द्वारिका नगरी, हमरे रसाल गुपालहिं दीजौ ।
रंगभूमि रमनीक मधुपुरी, रजधानी ब्रज को सुधि कीजौ ।
छार समुद्र छाँड़ि किन आवत, निर्मल जल जमुना कौ पीजौ ।
या गोकुल की सकल ग्वालिनी, देतिं असीस बहुत जुग जीजौ ।
सूरदास प्रभु हमरे कौतैं, नंद नँदन के पाइँ परीजौ ।।३१।।

अर्थ—भाई पथिक ! (यह) पत्रिका लीजिए । जब तुम द्वारिका नगरी जाना तो (इसे) हमारे रसिक गोपाल को देना । (कहना कि) ब्रज की राजधानी रमणीक रंगभूमि मथुरा, की खबर (तो) लो । खारे समुद्र को छोडकर क्यो नही आते; (यहाँ आकर) यमुना के स्वच्छ जल को पिएँ ! इस गोकुल की सभी ग्वालिनियाँ (तुम्हे)

आशीर्वाद देती हैं (कि) बहुत युगों तक जियो। सूरदास कहते हैं (गोपियाँ कहती हैं) (कि) (हे पथिक!) हमारी तरफ से नंद के पुत्र (कृष्ण) के पैर पड़ना (प्रणाम करना) ।।३१।।

रुक्मिणी कृष्ण संवाद

रुकमिनि बूझति हैं गोपालहिं।
कही बात अपने गोकुल की, कितिक प्रीति व्रजबालहिं।
तब तुम गाइ चरावन जाते, उर धरते बनमालहिं।
कहा देखि रीझे राधा सौं, सुंदर नैन बिसालहिं।
इतनी सुनत नैन भरि आए, प्रेम बिवस नँदलालहिं।
सूरदास प्रभु रहे मौन ह्वै, घोष बात जनि चालहिं ।।३२।।

अर्थ—रुक्मिणी कृष्ण से पूछती हैं (कि) (जरा) अपने गोकुल की बात (तो) कहो (और बताओ) व्रज-बालाओं से (तुम्हारा) कितना प्रेम था। तब तुम गाय चराने जाते थे, हृदय पर वनमाल धारण करते थे। क्या देखकर (तुम) सुन्दर विशाल नेत्रो वाली राधा पर रीझे थे (उसकी विशेषताएँ तो बताओ)। इतना सुनकर प्रेम से विवश कृष्ण के नेत्र भर आये। सूरदास (कहते है कि) प्रभु (कृष्ण) मौन ही रहे। (सिर्फ यही कहा) अहीरो की बस्ती (व्रज) की बात (चर्चा) मत चलाओ! ।।३२।।

रुकमिनि मोहिं निमेष न बिसरत, वे व्रजबासी लोग।
हम उनसौं कछु भली न कीन्हीं, निसि-दिन मरत बियोग।
जदपि कनक मनि रची द्वारिका, विषय सकल संभोग।
तद्यपि मन जु हरत बंसी-बट, ललिता कै संजोग।
मैं ऊधौ पठयौ गोपिनि पै, दैन सँदेसौ जोग।
सूरदास देखत उनकी गति, किहिं उपदेसै सोग ।।३३।।

अर्थ—(कृष्ण कहते हैं) हे रुक्मिणी! मुझे क्षण भर भी व्रजवासी-जन नही भूलते। हमने उनके साथ (अर्थात् उनकी) कुछ (भी) भलाई नही की; (वे) रात-दिन (मेरे) वियोग मे मरते हैं (दुख सहते हैं)। यद्यपि कनक तथा मणियों से द्वारिका बनी है, सुख के सभी विषय (उपकरण) (वहाँ उपलब्ध हैं), तब भी वंशी-वट (के नीचे) ललिता का संयोग (सुख) मन को हर लेता है। मैंने ऊधो को गोपियो के पास योग का संदेश देने को भेजा था। सूरदास (कहते हैं कि) उन (गोपियों के प्रेम) की गति देखते हुए कौन शोक (युक्त) (योग का) उपदेश दे? ।।३३।।

रुकमिनि मोहिं व्रज बिसरत नाहीं।
वह क्रीड़ा वह केलि जमुन तट, सघन कदम की छाहीं।
गोप बधुनि की भुजा कंध धरि, बिहरत कुंजनि माहीं।
और बिनोद कहाँ लगि बरनौं, बरनत बरनि न जाहीं।

जद्यपि सुख निधान द्वारावति, गोकुल कैं सम नाहीं।
सूरदास घनस्याम मनोहर, सुमिरि-सुमिरि पछिताहीं ॥३४॥

अर्थ—हे रुक्मिणी ! मुझे ब्रज भूलता नही। वह क्रीडा, यमुना तट की वह केलि, (तथा) सघन कदव (के नोचे) की (वह) छाया (हम कैसे भूल जायें)। गोप-बन्धुओं की भुजाएँ कधो पर रखकर कुंजों (के बीच) विहार करना—और विनोद कहाँ तक वणित करूँ, वर्णन करने पर (भो) वर्णित नही हो पाते। यद्यपि द्वारिका सुख का निधान (है), (फिर भी) गोकुल के समान नही (है)। सूरदास (कहते हैं कि) मनोहर घनश्याम (उन्हे) स्मरण कर करके पछताते है ॥३४॥

रुकमिनि चलौ जन्म भूमि जाहिं।
जद्यपि तुम्हरौ विभव द्वारिका, मथुरा कैं सम नाहिं।
जमुना कैं तट गाइ चरावत, अमृत जल अँचवाहिं।
कुंज केलि अरु भुजा कंध धरि, सीतल द्रुम की छाँहिं।
सरस सुगंध मंद मलयानिल, बिहरत कुंजन माहिं।
जो क्रीड़ा श्री वृन्दावन मैं, तिहूँ लोक मैं नाहिं।
सुरभी ग्वाल नंद अरु जसुमति, मम चित तैं न टराहिं।
सूरदास प्रभु चतुर सिरोमनि, तिनकी सेव कराहिं ॥३५॥

अर्थ—हे रुक्मिणी ! चलो, (हम) जन्म-भूमि चलें। यद्यपि द्वारिका में तुम्हारा वैभव (है), (फिर भी) (वह) मथुरा की समता का नही (है)। (मथुरा में तो हम) यमुना के तट पर गाय चराते थे (तथा) (यमुना के) अमृत (जैसे) जल का आचमन (पान) करते थे। (वहाँ हम) कुंजो मे केलि (करते थे), (अपनी) भुजाओ को (गोपियो के) कंधो पर रखकर वृक्षों की शीतल छाया मे (विहार करते थे)। उत्तम सुगन्ध-युक्त मंद मलयानिल मे कुजो मे घूमते थे। जो क्रीड़ाएँ वृन्दावन मे (की), (वे) तीनो लोक मे (प्राप्त) नही (है)। गाये, ग्वाल, नद और यशोदा मेरे चित्त से नही टलते; सूरदास के प्रभु चतुर शिरोमणि (हैं) उन (सब) की सेवा किया करते है ॥३५॥

कुरुक्षेत्र में कृष्ण-ब्रजवासी भेंट

ब्रज बासिनि कौ हेतु, हृदय मैं राखि मुरारी।
सब जादव सौं कह्यौ, बैठि कै सभा मझारी।
बड़ौ परब रवि-ग्रहन, कहा कहौं तासु बड़ाई।
चलौ सकल कुरुखेत, तहाँ मिलि न्हैयै जाई।
तात, मात, निज नारि लिए, हरि जू सब सगा।
चले नगर के लोग, साजि रथ तरल तुरंगा।
कुरुच्छेत्र मैं आइ, दियौ इक दूत पठाई।
नद जसोमति गोपि ग्वाल, सब सूर बुलाई ॥३६॥

अर्थ—व्रजवासियो के स्नेह को हृदय मे रखकर मुरारी ने सभा के मध्य बैठकर सभी यादवों से कहा (कि) सूर्य-ग्रहण का बड़ा पर्व (है), उसकी बड़ाई मैं कहाँ तक करूँ। सब लोग कुरुक्षेत्र चलो, वहाँ मिलकर नहाया जाय। हरि जी, पिता-माता, अपनी पत्नी (तथा) सब (लोगो) के साथ (चले), घोडे सजाकर नगर के लोग (भी) चल पडे। कुरुक्षेत्र आकर (कृष्ण ने) एक दूत भेज दिया। (सूरदास कहते हैं उन्होने) नंद-यशोदा, गोपी, ग्वालो (तथा) सभी को बुला भेजा ॥३६॥

हौं इहाँ तेरेहि कारन आयौ।
तेरी सौं सुनि जननि जसोदा, मोहिँ गोपाल पठायौ।
कहा भयौ जो लोग कहत हैं, देवकि माता जायौ।
खान-पान परिधान सबै सुख, तैं ही लाड़ लड़ायौ।
इतौ हमारौ राज द्वारिका, मो जी कछू न भायौ।
जब-जब सुरति होति उहिँ हितकी, बिछुरि बच्छ ज्यौं धायौ।
अब हरि कुरुच्छेत्र मैं आए, सो मैं तुम्हैं सुनायौ।
सब कुल सहित नंद सूरज प्रभु, हित करि उहाँ बुलायौ ॥३७॥

अर्थ—(पथिक ने कहा कि) मैं यहाँ तेरे ही कारण आया हूँ; हे माता यशोदा सुनो! तुम्हारी सौगन्ध, मुझे गोपाल ने (ही) भेजा है। (हरि ने यह कहा है) क्या हुआ, जो लोग कहते हैं (कि) देवकी माता ने (मुझे) पैदा किया? खान, पान, वस्त्र (आदि) सभी सुखो को देकर तूने ही (मेरा) लालन-पालन किया। यहाँ द्वारिका मे हमारा राज (है), (लेकिन) (वह) मेरे जी (को) कुछ भी अच्छा नही लगता। जब-जब (तुम्हारे) उस स्नेह की याद आती है, (गाय से) बिछुड़े हुए बछड़े की तरह (मैं) (तुम्हारे पास) दौड़ पडता हूँ। (पथिक ने यह भी कहा) अब हरि कुरुक्षेत्र आ गये हैं वह (समाचार) मैंने तुम्हें सुनाया। सूरज के प्रभु ने स्नेहपूर्वक समस्त कुल सहित नन्द को वहाँ बुलाया है ॥३७॥

वायस गहगहात सुनि सुंदरि, बानी बिमल पूर्व दिस बोली।
आजु मिलावा होइ स्याम कौ, तू सुनि सखी राधिका भोली।
कुच भुज नैन अधर फरकत हैं, बिनहिँ बात अंचल ध्वज डोली।
सोच निवारि करौ मन आनँद, मानौ भाग दसा बिधि खोली।
सुनत बात सजनी के मुख की, पुलकित प्रेम तरकि गई चोली।
सूरदास अभिलाष नंदसुत, हरषी सुभग नारि अनमोली ॥३८॥

अर्थ—हे सुन्दरी! सुनो, कौआ प्रफुल्लित हो रहा है; (उसकी) विमल वाणी पूर्व दिशा मे सुनाई पड़ी। हे भोली राधिका! तू सुन, आज श्याम से तेरा मिलन होगा। कुच, भुजा, नेत्र, ओंठ फड़क रहे है; (तथा) हवा के (ही) ध्वज (के समान) अंचल हिल रहा है। (अब) चिन्ता छोडकर मन मे आनंद करो, मानो ब्रह्मा ने (तेरी) भाग्य-दशा खोल दी (तेरा भाग्योदय हो गया)। सखी के मुख की बात सुनते ही (राधा) प्रेम

से पुलकित (हुई) (तथा) उसकी चोली के बंद टूट गये। सूरदास (कहते हैं कि) नंद के पुत्र (से मिलने की) अभिलाषा से सुन्दर अनमोल स्त्री (राधा) हर्षित हो गयी ॥३८॥

राधा नैन नीर भरि आए।
कब धौं मिलैं स्याम सुंदर सखि, जदपि निकट हैं आए।
कहा करौं किहिं भाँति जाहुँ अब, पंख नहीं तन पाए।
सूर स्याम सुन्दर घन दरसैं, तन के ताप नसाए ॥३९॥

अर्थ—राधा के नेत्रों मे पानी भर आया। यद्यपि कृष्ण निकट आ गये हैं, (किन्तु) हे सखि ! श्यामसुन्दर न जाने कब मिलें। क्या करूँ किस तरह जाऊँ, शरीर में पंख (भी) (तो) नहीं हैं (कि उड़कर चली जाऊँ)। सूरदास (कहते है कि) श्याम सुंदर घन (कृष्ण) के देखने से (ही) (राधा के) शरीर का ताप नष्ट होगा ॥३९॥

अब हरि आइहैं जनि सोचै।
सुनु बिधुमुखी बारि नैननि तैं, अब तू काहैं मोचै।
लै लेखनि मसि लिखि अपने, संदेसहिं छाँड़ि सँकोचै।
सूर सु बिरह जनाउ करत कत, प्रबल मदन रिपु पोचै ॥४०॥

अर्थ—अब हरि आयेंगे (तू) चिन्ता मत कर। हे चन्द्रमुखी सुनो, अब तू नेत्रो से जल (आंसू) क्यो गिराती है ? लेखनी (तथा) स्याही लेकर अपने संदेश को संकोच छोड़कर लिख। सूरदास (कहते हैं कि) (अब) विरह शरीर मे क्यो प्रभाव जमा रहा है, (तथा) शत्रु, नीच कामदेव (क्यो) प्रबल (होता जा रहा है) ॥४०॥

पथिक, कहियौ हरि सौं यह बात।
भक्त बछल है बिरद तुम्हारौ, हम सब किए सनाथ।
प्रान हमारे संग तिहारैं, हमहूँ हैं अब आवत।
सूर स्याम सौं कहत सँदेसौ, नैनन नीर बहावत ॥४१॥

अर्थ—हे पथिक ! हरि से यह बात कहना कि आपका यश भक्तवत्सलता का है, (आपने) हम सबों को सनाथ कर दिया है। हमारे प्राण तुम्हारे साथ (हैं), अब हम भी आती है। सूरदास (कहते है कि) श्याम से संदेश कहती हुई (गोपियाँ) नेत्रो से नीर बहाती हैं ॥४१॥

नंद जसोदा सब ब्रजवासी।
अपने-अपने सकट साजिकै, मिलन चले अबिनासी।
कोउ गावत कोउ बेनु बजावत, कोउ उतावल धावत।
हरि दरसन की आसा कारन, बिबिध मुदित सब आवत।
दरसन कियौ आइ हरि जू कौं, कहत स्वप्न कै साँचौ।
प्रेम मगन कछु सुधि न रही अँग, रहे स्याम रँग राँचौ।

जासों जैसी भाँति चाहियै, ताहि मिले त्यों धाइ।
देस-देस के नृपति देखि यह, प्रीति रहे अरगाइ।
उमँग्यौ प्रेम समुद्र दुहूँ दिसि, परिमिति कही न जाइ।
सूरदास यह सुख सो जानै, जाकैं हृदय समाइ ।।४२।।

अर्थ—नंद, यशोदा और सब ब्रजवासी अपनी-अपनी गाड़ियां सजाकर अविनाशी (कृष्ण) से मिलने चल पडे। कोई गाता है, कोई वंशी बजाता है (तथा) कोई उतावला (मस्त) होकर दौडता है। हरि दर्शन की आशा के लिए सभी प्रसन्न (होकर) आते हैं। (जब उन्होने) आकर हरि जी के दर्शन किये (तब वे) कहते हैं (कि) (यह) स्वप्न (है) या वास्तविकता (है)। प्रेम मे मग्न (होने के कारण) अंग की कुछ स्मृति (शेप) न रही; (वे सब) श्याम के रंग मे रग गये। जिससे जिस तरह उचित था उससे उसी तरह (कृष्ण) दौड़कर मिले। देश-देश के राजा यह प्रेम देखकर चुप हो गये (किंकर्तव्य हो गये)। दोनो दिशाओ से प्रेम का (ऐसा) समुद्र उमडा (कि) उसकी सीमा अकथनीय है। सूरदास कहते है (कि) इस सुख को वही जान सकता है जिसके हृदय मे (यह प्रेम) समा जाय (जो इसे मनोगत या समझ सके) ।।४२।।

तेरी जीवन मूरि मिलहि किन माई।
महाराज जदुनाथ कहावत, तबहिं हुते सिसु कुँवर कन्हाई।
पानि परे भुज धरे कमल मुख, पेखत पूरब कथा चलाई।
परम उदार पानि अवलोकत, हीन जानि कछु कहत न जाई।
फिर-फिर अब सनमुखही चितवति, प्रीतिसकुच जानी जदुराई।
अब हँसि भेंटहु कहि मोहिं निज-जन, बाल तिहारो नंद दुहाई।
रोम पुलक गदगद तन तीछन, जलधारा नैननि वरषाई।
मिले सु तात, मात, बांधव सब, कुसल-कुसल करि प्रस्न चलाई।
आसन देइ बहुत करी बिनती, सुत धोखै तव बुद्धि हिराई।
सूरदास प्रभु कृपा करी अब, चितहिं धरे पुनि करी वड़ाई ।।४३।।

अर्थ—(हे सखी !) तेरी जीवन बूटी (जिलाने वाली जडी : कृष्ण) क्यो नही मिलती ? (कारण यह है कि) तब (गोकुल मे जब थे) तो (वे) शिशु (रूप मे) "कन्हाई" (ही) थे, (किन्तु) (अब) (वे) महाराज यदुनाथ कहे जाते है ! (कृष्ण के) हाथ पडने (मिलने) पर (सभी ब्रजवासियों ने) (उनकी) भुजाओं (तथा) कमल मुख का स्पर्श किया; (उन्हे) देखते (ही) पूर्व-लीलाओं की चर्चा चलाई। (वे कृष्ण के) अत्यन्त श्रेष्ठ हाथों को देखते है, (अपने को) हीन (छोटा) जानकर (उनसे) (संकोच वश) कुछ कहते नही बनता। अब (वे) बार-बार (कृष्ण के) सम्मुख ही देखते हैं; (तब) यदुराय (कृष्ण) ने (उनका) प्रेम (पूर्ण) संकोच जान लिया। (कृष्ण ने कहा) अब हँसकर मुझे अपना जन कहकर भेंटो; नंद की दुहाई देकर (तुम से) कहता हूँ (कि) मैं तुम्हारा बालक (ही)

हूँ। (कृष्ण के) रोम पुलकित (हो गये), शरीर गद्गद् (हो गया) तथा नेत्रों से जल की तेज (तीक्ष्ण) धारा बरस पडी। (वे) पिता-माता, तथा सभी बंधुओं से मिले (तथा) (सब से) कुशल प्रश्न की (चर्चा) की (सब से अलग अलग कुशलता की बात पूछी)। (उन्हे) आसन देकर (बिठाकर) (कृष्ण ने) बहुत विनती की (और कहा) उस समय—जब हम (ब्रज में थे) तब पुत्र के भ्रम मे (अर्थात् मुझे पुत्र मान लेने के कारण) (तुम्हारी) बुद्धि खो गई थी। सूरदास के प्रभु (कृष्ण) ने अब कृपा की, (नंद-यशोदा को) चित्त मे धारण किया; पुनः (उनकी) प्रशंसा की ॥४३॥

माधव या लगि है जग जीजत।
जातैं हरि सौं प्रेम पुरातन, बहुरि नयौ करि लीजत।
कहँ ह्वाँ तुम जदुनाथ सिंधु तट, कहँ हम गोकुल बासी।
वह बियोग, यह मिलन कहाँ अब, काल चाल औरासी।
कहँ रबि राहु कहाँ यह अवसर, बिधि संयोग बनायौ।
उहिँ उपकार आजु इन नैननि, हरि दरसन सचुपायौ।
तब अरु अब यह कठिन परम अति, निमिषहुँ पीर न जानी।
सूरदास प्रभु जानि आपने, सबहिनि सौं रुचि मानी ॥४४॥

अर्थ—हे माधव ! इसीलिए संसार जीता है (संसार अभी तक स्थित है)। चूंकि हरि से (हमारा) प्रेम पुराना है (जन्म-जन्मान्तर का है), (इसलिए) (हम) (उसे) फिर नया कर लेते हैं। कहाँ तुम सिंधु के किनारे (रहने वाले) (महाराजा) यदुनाथ; (और) कहाँ हम गोकुल (गांव) के निवासी ! कहाँ वह (महान्) (दुखदायी) वियोग, (और) कहाँ अब यह (अत्यन्त सुखदायक) मिलन ! (सचमुच) काल की गति विलक्षण है। कहाँ सूर्य (और) राहु (दोनों) मे कोई सम्बन्ध नही (तथा) कहाँ (आज) यह अवसर (जब सूर्य राहु द्वारा ग्रसित हो रहा है); ब्रह्मा ने (यह) संयोग (सूर्यग्रहण) बनाया है। उसी (ब्रह्मा) की कृपा से आज (हमारे) इन नेत्रो ने कृष्ण के दर्शन पाकर सुख पाया। तब और अब (दोनो अवसरो पर) यह अत्यधिक कठिन है (आसानी से समझ में नही आता), (किन्तु अब तो) क्षण मात्र के लिए भी पीडा नही जान पड़ी। सूरदास के प्रभु ने (उन्हे) अपना जन (भक्त) जानकर सभी से रुचिकर व्यवहार किया (प्रेम प्रदर्शित किया) ॥४४॥

राधा कृष्ण मिलन

हरि सौं बूझति रुक्मिनि इनमैं, को वृषभानु किसोरी।
बारक हमैं दिखावहु अपने, बालापन की जोरी।
जाकौ हेत निरंतर लीन्हे, डोलत ब्रज की खोरी।
अति आतुर ह्वै गाइ दुहावन, जाते पर-घर चोरी।
रचते सेज स्वकर सुमननि की, नव-पल्लव पुट तोरी।
बिन देखैं ताके मन तरसैं, छिन बीतै जुग कोरी।

सूर सोच सुख करि भरि लोचन, अंतर प्रीति न थोरी।
सिथिल गात मुख बचन फुरत नहिँ, ह्वै जु गई मति भोरी ।।४५।।

अर्थ—हरि से रुक्मिणी पूछती हैं (कि) इनमें वृषभानु की पुत्री (राधा) कौन है ? एक बार (तो) जरा हमे अपने बचपन की जोडी (संगिनी) दिखाओ; जिस (राधा) के प्रेम को लिए (प्रेम में मग्न) (तुम) निरन्तर व्रज की गलियो मे डोला करते थे। दूसरों के घर चोरी (करने) (तथा) बहुत आतुर होकर (ग्वालों की) गाय दुहाने जाते थे। नवीन पल्लव तोड़कर, (उनका) पुट (देकर) अपने हाथो से फूलो की सेज रचते थे। बिना देखे (तुम्हारा) मन तरसता था तथा एक क्षण युग के समान बीतता था। सूरदास (कहते हैं) (कृष्ण ने) उस सुख को सोचकर नेत्रो मे आँसू भर लिए; उनके हृदय मे (राधा के प्रति) कम प्रेम न था। उनका शरीर शिथिल (हो गया) मुख से बात नही फूटती (निकलती) थी, उनकी बुद्धि भ्रमित हो गयी ।।४५।।

बूझति है रुकमिनि पिय इनमैं, को वृषभानु किसोरी।
नैंकु हमैं दिखरावहु अपनी, बालापन की जोरी।
परम चतुर जिन कीन्हे मोहन, अल्प वैस ही थोरी।
बारे तैं जिहिं यहै पढ़ायौ, बुधि बल कल बिधि चोरी।
जाके गुन गनि ग्रंथित माला, कबहुँ न उत तैं छोरी।
मनसा सुमिरन, रूप ध्यान उर, दृष्टि न इत उत मोरी।
वह लखि जुवति वृन्द मैं ठाढ़ी, नील वसन तन गोरी।
सूरदास मेरौ मन वाकी, चितवनि बंक हरयौ री ।।४६।।

अर्थ—रुक्मिणी (कृष्ण से) पूछती हैं (कि) हे प्रिय ! इनमे वृषभानु की बेटी (राधा) कौन है ? हमे थोड़ा अपने बचपन की जोड़ी (तो) दिखाओ ! जिसने अल्प-आयु ही मे कृष्ण को परम चतुर बना दिया। बचपन से ही जिसने यही पढाया कि बुद्धि के बल से (तथा) कल (कौतुक) के बल से चोरी (कैसे की जाय) जिसके गुणो के समूह से ग्रन्थित माला (तुमने) कभी भी हृदय से नही हटायी (जिसके गुण तुम कभी नहीं भूले) एकाग्रचित्त होकर (तुमने) स्मरण किया तथा हृदय मे जिसके रूप का ध्यान किया। (कृष्ण ने उत्तर दिया :) वह देखो, नीले बस्त्रो (से युक्त) गोरे शरीर वाली (राधा) युवतियों के समूह मे खडी है। सूरदास (कृष्ण) (कहते हैं) उसी की तिरछी नजर ने मेरे चित्त को हर लिया ।।४६।।

हरि जू इते दिन कहाँ लगाए।
तबहिं अवधि मैं कहत न समुझी, गनत अचानक आए।
भली करी जु बहुरि इन नैननि, सुदर दरस दिखाए।
जानी कृपा राज काजहु हम, निमिष नहीं बिसराए।
बिरहिनि बिकल बिलोकि सूर प्रभु, धाइ हृदै करि लाए।
कछु इक सारथि सौं कहि पठयौ, रथ के तुरँग छुड़ाए ।।४७।।

अर्थ—हरि जी ने इतना समय कहाँ लगा दिया ! उस समय (जब कृष्ण मथुरा गए थे कि) अवधि बताने पर मैं समझी नही; गिनते-गिनते (अब अवधि का हिसाब लगा रही थी कि) अचानक (हरि) आ गये । अच्छा ही किया जो (हरि ने) इन नेत्रों को (अपने) सुन्दर दर्शन दिये । (हमने आपकी) कृपा जान ली, राज-काज में (राज-काज करते हुए) भी क्षण-मात्र के लिए (भी) हमे (आपने) नही भुलाया । विरहिणी को विकल देखकर सूर के प्रभु (कृष्ण ने) दौड़कर (उसे) हृदय से लगा लिया । कुछ कहकर सारथी (रथ चलाने वाले) को भेज दिया (तथा) घोड़ों को छुड़ा दिया (पाँव-पैदल ही जाने का निश्चय किया) ॥४७॥

हरि जू वै सुख बहुरि कहाँ ।
जदपि नैन निरखत वह मूरति, फिरि मन जात तहाँ ।
मुख मुरली सिर मोर पखौवा, गर घुँघचिनि कौ हार ।
आगैं धेनु रेनु तन मंडित, तिरछी चितवनि चार ।
राति दिवस सब सखा लिए सँग, हँसि मिलि खेलत खात ।
सूरदास प्रभु इत उत चितवत, कहि न सकत कछु बात ॥४८॥

अर्थ—(किसी ने कहा;) हे हरि जी वे सुख फिर कहाँ (नसीब होगे) । यद्यपि नयनो से (तुम्हारी) वही मूर्ति देखते है, (किन्तु) मन फिर वही चला जाता है (व्रज की लीलाओ की ओर खिंच जाता है) । (जब आपके) मुख में मुरली, सिर पर मोर के पंख (मोर मुकुट), (तथा) गले घुंघुचियों का हार (हम देखा करते थे) । आगे गाये (चलती थी) (पीछे) धूल से शोभित (आपका) शरीर (और) सुन्दर तिरछी चितवन से आपका देखना रात-दिन (आप) सब मित्रों को साथ लिए हँस-मिलकर खेला-खाया करते थे । सूरदास के प्रभु (इन बातों को टालने या भूल जाने के लिए) इधर-उधर देखने लगे; कुछ बात कह नही पाते (कोई जवाब न दे पाये !) ॥४८॥

रुकमिनि राधा ऐसैं भेंटी ।
जैसैं बहुत दिननि की बिछुरी, एक बाप की बेटी ।
एक सुभाव एक वय दोऊ, दोऊ हरि कौं प्यारी ।
एक प्रान मन एक दुहुनि कौ, तन करि दीसति न्यारी ।
निज मंदिर लै गई रुकमिनी, पहुनाई बिधि ठानी ।
सूरदास प्रभु तहँ पग धारे, जहँ दोऊ ठकुरानी ॥४९॥

अर्थ—रुक्मिणी तथा राधा इस प्रकार मिली (मानो) बहुत दिनों के बिछुड़ने के बाद एक बाप की दो बेटियाँ (हों) । दोनों का एक ही स्वभाव, एक ही आयु तथा दोनों कृष्ण को प्यारी हैं । दोनों एक ही प्राण (तथा) एक ही मन है; (केवल) शरीर से (ही) भिन्न दिखाई देती हैं । रुक्मिणी (राधा को) अपने भवन ले गयी (तथा) विधिपूर्वक (राधा का) आतिथ्य किया । सूरदास (कहते हैं कि) प्रभु (कृष्ण) वहाँ गए जहाँ दोनो ठकुराइने (रानियाँ) थी ॥४९॥

राधा माधव, भेंट भई।

राधा माधव, माधव राधा, कीट भृङ्ग गति ह्वै जु गई।
माधव राधा के रँग रांचे, राधा माधव रंग रई।
माधव राधा प्रीति निरन्तर, रसना करि सो कहि न गई।
बिहँसि कह्यौ हम तुम नहिँ अन्तर, यह कहिकै उन व्रज पठई।
सूरदास प्रभु राधा माधव, ब्रज-बिहार नित नई नई ॥५०॥

अर्थ—राधा और माधव से भेंट हुई। राधा-माधव और माधव-राधा हो गये; भृङ्ग (नामक) कीडे (के समान उन) की दशा हो गई (अर्थात् दोनो एक ही हो गये)। माधव-राधा के रग मे रंग गये, राधा-माधव के रग मे रग गयी। माधव और राधा का प्रेम स्थायी (है), वाणी से (उसे) कहा नही जा सकता (वह अवर्णनीय है)। (कृष्ण ने) (राधा से) हँसकर कहा कि हममे तुममें अन्तर नही है यह कहकर उन्हे (राधा को) व्रज भेज दिया। सूरदास के प्रभु राधा-माधव का व्रज मे नित्य नया विहार (हुआ करता है) ॥५०॥

ब्रजबासिनि सौं कह्यो, सबनि तैं ब्रज-हित मेरैं।
तुमसौं नाहीं दूरि रहत हौं, निपटहिँ नेरैं।
भजै मोहिँ जो कोइ, भजौं मैं तेहिं ता भाई।
मुकुर माहिँ, ज्यौं रूप, आपनैं सम दरसाई।
यह कहि कै समदे सकल, नैंन रहे जल छाइ।
सूर स्याम कौ प्रेम कछु, मो पै कह्यौ न जाइ ॥५१॥

अर्थ—(कृष्ण ने) सभी ब्रजवासियो से कहा (कि) ब्रज से मेरा प्रेम है। तुम लोगो से (हम) कभी दूर नही रहते हैं, (मै) विलकुल निकट (ही) हूँ। मुझे जो (जिस भाव से) भजता है मैं उसे उसी भाव से भजता हूँ। जैसे शीशे मे (व्यक्ति का) रूप अपने समान (ही) (अर्थात् जैसा वह रूप होता है) (वैसा ही) सब को दिखाई देता है (वैसे ही घट-घट मे मैं अपना ही रूप देखता हूँ)। यह कहकर सब से (वे) मिले, (उनके) नेत्रो मे जल छा गया। सूरदास (कहते हैं) (कि) श्याम का प्रेम मुझसे कुछ (भी) नही कहा जाता ॥५१॥

सबहिनि तैं हित है जन मेरौ।

जनम जनम सुनि सुबल सुदामा, निबहौं यह प्रन बेरौ।
ब्रह्मादिक इन्द्रादिक तेऊ, जानत बल सब केरौ।
एकहि साँस उसास त्रास उड़ि, चलते तजि निज खेरौ।
कहा भयौ जो देस द्वारिका, कीन्हौ दूर बसेरौ।
आपुन ही या ब्रज के कारन, करिहौं फिरि-फिरि फेरौ।
इहाँ-उहाँ हम फिरत साधु हित, करत असाधु अहेरौ।
सूर हृदय तैं टरत न गोकुल, अंग छुअत हौं तेरौ ॥५२॥

अर्थ—सभी लोगो से मेरा स्नेह है । हे सुवल, सुदामा ! सुनो जन्म-जन्म तक इस प्रण के बेडे (मर्यादा) का निर्वाह करता हूँ । (वे) ब्रह्मादि (तथा) इन्द्रादि (भी है), मैं (उन) सभी का बल जानता हूँ । (वे) (मेरी) एक ही सांस या उच्छ्वास के भय से अपने गांव को छोड़कर भाग जाते है, जो (मैंने) दूर देश द्वारिका मे निवास किया (तो) (इससे) क्या हुआ ? इस ब्रज के (हित के) लिए स्वयं ही (मैं) बार-बार इसका फेरा करूँगा (अवतार लूंगा) । यहाँ वहाँ मैं साधुओ के हित (भलाई) के लिए फिरता हूँ, (तथा) दुर्जनो का शिकार (नाश) करता हूँ । सूरदास कहते हैं (कृष्ण कहते हैं) (कि) तुम्हारा अंग छूकर (तुम्हारी सौगन्ध खाकर) कहता हूँ (कि) (मेरे) हृदय से गोकुल टलता नही (उसे मैं कभी नही भूलता) ॥५२॥

हम तौ इतनै ही सचु पायौ ।
सुंदर स्याम कमल दल-लोचन, बहुरौ दरस दिखायौ ।
कहा भयौ जो लोग कहत हैं, कान्ह द्वारिका छायौ ।
सुनिकै बिरह दसा गोकुल की, अति आतुर ह्वै धायौ ।
रजक धेनु गज कंस मारि कै, कीन्हौ जन कौ भायौ ।
महाराज ह्वै मातु पिता मिलि, तऊ न ब्रज बिसरायौ ।
गोपि गोपऽरु नंद चले मिलि, प्रेम समुद्र बढ़ायौ ।
अपने बाल गुपाल निरखि मुख, नैननि नीर बहायौ ।
जद्यपि हम सकुचे जिय अपनैं, हरि हित अधिक जनायौ ।
वैसेइ सूर बहुरि नँद-नंदन, घर-घर माखन खायौ ॥५३॥

अर्थ—हमने तो इतने (से) ही सुख पाया (कि) कमल-दल के समान नेत्र वाले श्याम सुन्दर ने फिर से दर्शन दिये । (इससे) क्या हुआ जो लोग कहते हैं (कि) कृष्ण द्वारिका चले गये । (लेकिन वे) गोकुल की विरह-दशा सुनकर अत्यधिक आतुर होकर दौड पड़े (और) रजक, धेनु, हाथी तथा कंस को मारकर भक्तों को भाने वाले (काम) किये । माता-पिता से मिलकर, महाराज होकर भी ब्रज को नही भुलाया । गोपी, गोप, नन्द (जब) मिलकर चले (लौटे) (तब) प्रेम-समुद्र उमड़ आया । (उन्होंने) अपने बाल गोपालो के मुख को देखकर आंखों से आंसू बहाये । यद्यपि हम (ब्रजवासियो) ने अपने मन मे संकोच किया, लेकिन हरि ने अत्यधिक स्नेह दिखाया । वैसे ही (पहले के समान) कृष्ण ने पुनः घर-घर मक्खन खाया ॥५३॥

परिशिष्ट (क)

रामचरित

रघुकुल प्रगटे हैं रघुबीर ।
देस-देस तैं टीको आयौ, रतन कनक-मनि-हीर ।
घर-घर मंगल होत बधाई, अति पुरवासिनि भीर ।
आनँद-मगन भए सब डोलत, कछू न सोध सरीर ।
मागध-बंदी-सूत लुटाए, गो-गयन्द-हय-चीर ।
देत असीस सूर चिरजीवी, रामचन्द्र रनधीर ॥१॥

अर्थ—रघुकुल मे राम प्रकट हुए हैं । देश-देश से उपहार आये (जिनमे) रत्न, सोना, मणि तथा हीरे (आदि थे) । घर-घर मे मागलिक बधाइयाँ हो रही (गाई जा रही) है; पुरवासियो की अत्यधिक भीड (है) । सभी (लोग) आनन्द से मग्न होकर घूमते है, (किसी को) (अपने) शरीर का (कुछ भी) ख्याल नही । मागध, वन्दी तथा सूतो को गाये, हाथी, घोड़े (तथा) वस्त्र लुटाये (जा रहे हैं) । सूरदास आशीर्वाद देते है कि रणधीर राम (तुम) चिरकाल तक जीवित रहो ॥१॥

करतल-सोभित बान धनुहियाँ ।
खेलत फिरत कनकमय आँगन, पहिरे लाल पनहियाँ ।
दसरथ-कौसिल्या के आगैं, लसत सुमन की छहियाँ ।
मानौ चारि हंस सरवर तैं, बैठे आइ सदेहियाँ ।
रघुकुल-कुमुद-चंद चिंतामनि, प्रगटे भूतल महियाँ ।
आए ओप देन रघुकुल कौं, आनँद-निधि सब कहियाँ ।
यह सुख तीनि लोक मैं नाहीं, जो पाए प्रभु पहियाँ ।
सूरदास हरि बोल भक्त कौ, निरबाहत गहि बहियाँ ॥२॥

अर्थ—(राम के) हाथ मे बाण तथा नन्हा सा धनुष शोभित है । (छोटे-छोटे) लाल जूते पहने (हुए) स्वर्णमय आँगन मे (राम) खेलते फिरते है । दशरथ तथा कौशल्या के आगे फूलो की छाया में (वे) शोभित हो रहे है । (चारो बालक ऐसे जान पड़ते है) मानो सरोवर से सदेह चार हंस अभी-अभी आ बैठे (हों) । रघुकुल रूपी कुमुदनी के चन्द्र (की तरह) (तथा) चिंतामणि (रूप मे) (राम) पृथ्वी पर प्रकट हुए । वे रघुकुल को प्रकाश (तथा) सबको आनंद की निधि देने आये हैं । यह सुख

तीनों लोक मे नही है जो प्रभु के पास है। सूरदास (कहते हैं कि) हरि भक्तों को बुलाकर बाँह पकडकर (उनका) निर्वाह करते हैं ॥२॥

कर कपै, कपन नहिँ छूटै।
राम सिया-कर परस मगन भए, कौतुक निरखि सखी सुख लूटै।
गावत नारि गारि सब दै दै, तात-भ्रात का कौन चलावै।
तव कर-डोरि छुटै रघुपति जू, जब कौसिल्या माता आवै।
पूँगीफल-जुत जल निरमल धरि, आनी भरि कुँडि जो कनक की।
खेलत जूप सकल जुवतिनि मैँ, हारे रघुपति, जिती जनक की।
धरे निसान अजिर गृह मंगल, बिप्र-वेद-अभिषेक करायौ।
सूर अमित आनंद जनकपुर, सोइ सुकदेव पुराननि गायौ ॥३॥

अर्थ—हाथ कँपता है (और) कंपन नही छूटता। राम सीता के हाथ को स्पर्श करके आनंदित (पुलकित) हो गये! इस कौतुक को देखकर सखियाँ सुख को लूट रही है। नारियाँ सभी (को) गालियाँ दे-देकर गाती हैं, पिता (तथा) भाई (की) कौन चलाए! (स्त्रियाँ व्यग्य करती हैं) हे रघुनंदन! ककन के हाथ की डोरी तभी छूटेगी जब माता कौशल्या (स्वयं) आएँ। सुपारी से युक्त निर्मल जल भर कर सोने का छोटा कलश (कुडो) लाया गया। समस्त युवतियो के बीच जुआ खेलते हुए राम हार गये, जनकपुत्री सीताजी जीत गयी! (स्वस्तिक आदि) मगल चिह्न (निशान) आँगन में धरे (बनाये) गये। वेद विहित विधियो से विप्रो (ब्राह्मणों) ने अभिषेक कराया। सूरदास (कहते है कि) जनकपुर मे अत्यधिक आनन्द है। उसे ही शुकदेव (मुनि) ने पुराणो मे गाया है ॥३॥

परसुराम तेहिँ औसर आए।
कठिन पिनाक कहौ किन तोर्‌यौ, क्रोधित बचन सुनाए।
विप्र जानि रघुबीर धीर दोउ, हाथ जोरि, सिर नायौ।
बहुत दिननि कौ हुतौ पुरातन, हाथ छुअत उठि आयौ।
तुम तौ द्विज, कुल-पूज्य हमारे, हम-तुम कौन लराई?
क्रोधवंत कछु सुन्यौ नहीँ, लियौ सायक धनुप चढ़ाई।
तवहूँ रघुपति क्रोध न कीन्हौ, धनुष न बान सँभार्‌यौ।
सूरदास प्रभु रूप समुझि, बन परसुराम पग धार्‌यौ ॥४॥

अर्थ—उसी समय परशुराम आ गये। (बोले) मुझे "बताओ! कठिन धनुष को किसने तोड़ा?" इस (प्रकार के) क्रोधित वचन (उन्होने) सुनाये। (परशुराम को) ब्राह्मण जानकर धैर्यवान् राम ने दोनो हाथ जोड़कर सिर झुकाया (प्रणाम किया)। (राम ने कहा) धनुष बहुत दिन का पुराना था, हाथ से छूते ही उठ आया। आप तो ब्राह्मण (है), हमारे कुल के पूज्य; हमारे और तुम्हारे बीच लडाई कैसी? क्रोध युक्त (परशुराम ने) कुछ सुना नही, (उन्होने) बाण को धनुप पर चढा लिया। तब भी राम

ने क्रोध नही किया, धनुष बाण नही सँभाला। सूरदास (कहते है कि) परशुराम प्रभु के रूप को समझ कर वन को चले गए ।।४।।

कहि धौं सखी बटाऊ को हैं ?
अद्भुत बधू लिये सँग डोलत, देखत त्रिभुवन मोहैं।
परम सुसील सुलच्छन जोरी, विधि की रची न होइ।
काकी तिनकौं उपमा दीजै, देह धरे धौं कोइ।
इनमैं को पति आहिं तिहारे, पुरजनि पूछैं धाइ।
राजिव नैन मैन की मूरति, सैननि दियौ बताइ।
गईं सकल मिलि संग दूरि लौं, मन न फिरत पुर-बास।
सूरदास स्वामी के बिछुरत, भरि-भरि लेति उसास ।।५।।

अर्थ—(वन जाते हुए रामादि को देखकर ग्रामीण स्त्रियाँ आपस मे पूछती हैं) हे सखी ! बताओ ये राही कौन हैं ? साथ मे अद्भुत वधू लेकर घूमते हैं, (जिसे) देखते ही तीनो लोक मोहित हो जाते हैं। (यह) जोडी परम सुशील (तथा) सुलक्षण है, ब्रह्मा की बनाई हुई नही जान पडती। इनकी उपमा किससे दी जाय ! (लगता है) कोई देहधारी (देवता) हैं, ग्रामवासिनी दौड़कर (सीता से) पूछती हैं इनमे तुम्हारा पति कौन है ? (सीता ने) इशारे से बता दिया कि कमलवत् नेत्र कामदेव की मूर्ति (के समान) (व्यक्ति) (हमारे पति है)। (सभी स्त्रियाँ) साथ मिलकर दूर तक गयी, (उनका) मन ग्राम मे निवास की ओर नही फिरता था। सूरदास के स्वामी (राम) से बिछुडने (के कारण) ग्राम वधुएँ गम्भीर साँसें (लम्बी आहे) भरकर दौड़ती हैं ।।५।।

राम धनुष अरु सायक साँधे।
सिय हित मृग पाछैं उठि धाए, बलकल बसन, फेट दृढ़ बाँधे।
नव-घन, नील-सरोज बरन बपु, बिपुल, बाहु, केहरि-फल काँधे।
इंदु बदन, राजीव नैन वर, सीस जटा सिव सम सिर बाँधे।
पालत, सृजत, सँहारत, सैंतत, अड अनेक अवधि पल आधे।
सूर भजन-महिमा दिखरावत, इमि अति सुगम चरन आराधे ।।६।।

अर्थ—राम धनुष और बाण को साधे, वल्कल वस्त्र (पहने) तथा कमरकस को दृढता से बाँधे सीता के स्नेह-वश मृग के पीछे उठकर दौड पड़े। नवीन बादल (तथा) नीले कमल (जैसे) (वर्ण) शरीर वाले, विशाल भुजाओं वाले (राम के) कंधे "केहरि-फल"* (वृषभ ?) (जैसे हैं)। चन्द्रवत् मुख, कमलवत् श्रेष्ठ आँखो, (वाले राम) शिव के समान सिर पर जटा बाँधे है। आधे पल के समय में (ही) (वे) अनेक ब्रह्मांडो का पालन

---

* अनेक हस्तलिखित प्रतियों मे "फल" के स्थान पर "गुन" शब्द मिलता है, जिसका अर्थ होगा जिन राम के स्कंधो के गुण जिनका सीना सिंह के सीने के समान प्रशस्थ (चौडा) है। 'गुन' शब्द से युक्त एक अन्य पाठ भी पाडुलिपियो मे प्राप्त है— बिपुल बाहु छत्री गुन काधे।

सृजन, विनाश (तथा उन्हें समेट लेते) (मिटा देते) हैं। सूरदास (कहते हैं) (कि) (वे) भजन की महिमा दिखाते हैं; इस प्रकार (उनके) चरणो की आराधना करने पर (संसार से छुटकारा पाना) अत्यन्त सरल है ॥६॥

सुनहु अनुज, इहिँ बन इतननि मिलि, जानकी प्रिया हरी।
कछु इक अंगनि की सहिदानी, मेरी दृष्टि परी।
कटि केहरि, कोकिल कल बानी, ससि मुख प्रभा-धरी।
मृग मूसी नैननि की सोभा, जाति न गुप्त करी।
चपक-बरन, चरन-कर कमलनि, दाड़िम दसन लरी।
गति मराल अरु बिब अधर-छबि, अहि अनूप कवरी।
अति करुना रघुनाथ गुसाईँ, जुग ज्यौँ जाति घरी।
सूरदास प्रभु प्रिया प्रेम-बस, निज महिमा बिसरी ॥७॥

अर्थ—हे अनुज (लक्ष्मण)! सुनो इस वन में इतने लोगो ने मिलकर प्रिया (सीता) का हरण किया (है)। (सीता के) कुछ अंगो की निशानी मेरी नजरों मे पडी (है)। सिंह ने कमर, कोयल ने मधुर वाणी (तथा) चन्द्रमा ने मुख की कान्ति धारण कर ली। मृग ने नेत्रो की शोभा चुरा ली, जिसे छिपाना (उससे) बन नही पा रहा है। चंपा ने (शरीर का) रंग, कमल ने चरण (तथा) हाथ, (और) दांतो की लड़ियो की दाड़िम (आकार) ने (हर लिया)। हंस ने (चरणो की) गति और बिम्बाफल (कुदरू) ने ओठो की छवि (लालिमा) तथा सांप ने अनुपम कवरी वेणी, चोटी (की छवि) (चुरा ली)। अत्यधिक करुणा युक्त राम का (एक) घडी समय (एक) युग के समान बीतता है। सूरदास (कहते हैं) (कि) प्रभु (राम) प्रिया (सीता) के प्रेम के कारण अपनी महिमा (भी) भूल गये ॥७॥

बिछुरी मनौ संग तैँ हिरनी।
चितवति रहत चकित चारोँ दिसि, उपजि बिरह तन जरनी।
तरुवर-मूल अकेली ठाढ़ी, दुखित राम की घरनी।
बसन कुचील, चिहुर लपिटाने, बिपति जाति नहिँ बरनी।
लेति उसास नयन जल भरि-भरि, धुकि सो परै धरि धरनी।
सूर सोच जिय पोच निसाचर, राम नाम की सरनी ॥८॥

अर्थ—मानो साथ से हरिणी बिछुड गयी। चकित होकर (सीता) चारो दिशाओं में देखती रहती है, (तथा) शरीर मे विरह की जलन उत्पन्न हो गयी। वृक्ष के नीचे राम की दुखी पत्नी (सीता) अकेली खड़ी है। (उनके) वस्त्र मैले है, बाल उलझे हैं, (उनकी) विपत्ति का वर्णन नही किया जाता। नेत्रो मे जल भर-भर कर गहरी उसांसे लेती हैं, (कभी तो) पृथ्वी पर गिर पड़ती हैं। सूरदास (कहते हैं कि) (उनके) मन मे नीच राक्षसो की चिन्ता है, (अब) केवल एक मात्र रामनाम की शरण (ही उनके लिए) (बाकी) (है) ॥८॥

सो दिन त्रिजटी, कहु कब ऐहै ?
जा दिन चरनकमल रघुपति के, हरषि जानकी हृदय लगैहै ।
कबहुँक लछिमन पाइ सुमित्रा, माइ माइ कहि मोहिँ सुनैहै ।
कबहुँक कृपावंत कौशिल्या, वधू-बधू कहि मोहिँ बुलैहै ।
जा दिन कंचनपुर प्रभु ऐहैँ, विमल ध्वजा रथ पर फहरैहै ।
ता दिन जनम सफल करि मानौँ, मेरी हृदय-कालिमा जैहै ।
जा दिन राम रावनहिँ मारैँ, ईसहिँ लै दससीस चढ़ैहैँ ।
ता दिन सूर राम पै सीता, सरबस वारि वधाई दैहैँ ।।६।।

अर्थ—हे त्रिजटी ! कहो वह दिन कब आयेगा ? जिस दिन राम के चरण-कमलो को हर्षित होकर सीता हृदय से लगायेंगी । कभी लक्ष्मण सुमित्रा को पाकर 'माँ-माँ' कहकर मुझे सुनायेगे । कभी कृपालु कौशल्या "वधू-वधू" कहकर मुझे बुलायेगी । जिस दिन प्रभु (राम) रथ पर विमल ध्वजा फहराते हुए कचनपुरी (लंका) आयेगे; उसी दिन (मैं सीता) जीवन को, सफल करके मानूंगी, (और) मेरी हृदय-कालिमा (मेरा दुःख) चली जायेगी, (तथा) जिस दिन राम रावण को मारेंगे, (और) (उसके) दस सिर लेकर ईश पर चढ़ायेगे । सूरदास (कहते हैं) उसी दिन राम पर सीता सर्वस्व निछावर कर बधाई देगी ।।६।।

जननी, हौँ अनुचर रघुपति कौ ।
मति माता करि कोप सरापै, नहिँ दानव ठग मति कौ ।
आज्ञा होइ देउँ कर मुँदरी, कहौँ सँदेसौ पति कौ ।
मति हिय बिलख करौ सिय, रघुबर हतिहैँ कुल दैयत कौ ।
कहौ तो लक उखारि डारि देउँ, जहौँ पिता संपति कौ ।
कहौ तो मारि-सँहारि निसाचर, रावन करौँ अगति कौ ।
सागर-तीर भीर बनचर की, देखि कटक रघुपति कौ ।
अबहिँ मिलाऊँ तुम्हैँ सूर प्रभु, राम-रोष डर अति कौ ।।१०।।

अर्थ – हे माता ! मैं रघुपति का सेवक हूँ । माता, क्रोधित होकर (तुम) मुझे शाप न दे देना; मैं ठग बुद्धि वाला राक्षस नही हूँ । आज्ञा हो, तो (राम के) हाथ की मुँदरी (अँगूठी) दूँ, (और) पति का (राम का) संदेशा कहूँ । सीता ! हृदय मे दुख मत करो, राम दैत्यो के कुल को मार डालेगे । कहो (आज्ञा हो) तो लका को उखाड कर (वहाँ) डाल (फेक) दूँ जहाँ (कैलाश पर्वत पर) सपत्ति के पिता (कुबेर) हैं । कहो तो निशाचरो को मार सहार कर रावण की दुर्गति कर दूँ । सागर के किनारे बदरो की भीड़ (है), रघुपति की (बन्दरो की) सेना को देखो । सूरदास (हनुमान् जी) (कहते हैं कि) तुमसे प्रभु (राम) को अभी मिला दूँ (मिलाने की सामर्थ्य रखता हूँ), (किन्तु) (मुझे) राम के क्रोध का बडा डर (है) (राम की आज्ञा के विना यदि) मैं तुम्हे राम से मिला दूँ तो मुझे यह डर लगता है कि कही राम नाराज न हो जायँ ।।१०।।

सुनु कपि, वै रघुनाथ नहीं ?
जिन रघुनाथ पिनाक पिता-गृह तोरयौ निमिष महीं ।
जिन रघुनाथ फेरि भृगुपति-गति डारी काटि तहीं ।
जिन रघुनाथ-हाथ खर-दूषन-प्रान हरे सरहीं ।
कै रघुनाथ तज्यौ प्रन अपनौ, जोगिन दसा गहीं ?
कै रघुनाथ दुखित कानन, कै नृप भए रघुकुलहीं ।
कै रघुनाथ अतुल बल राच्छस दसकंधर डरहीं ?
छाँड़ी नारि बिचारि पवन-सुत लंक बाग बसहीं ।
कै हौं कुटिल, कुचील, कुलच्छनि, तजी कंत तबहीं ।
सूरदास स्वामी सौं कहियौ अब बिरमाहिं नहीं ।।११।।

अर्थ—सुनो कपि ! (क्या) वे रघुनाथ (अब) नही हैं ? जिन रघुनाथ ने (मेरे) पिता (जनक) के घर मे क्षण भर मे (ही) धनुष तोड दिया था । जिन रघुनाथ ने भृगु-पति की गति को वही काट कर (उन्हे) वापस भेज दिया । जिन रघुनाथ के हाथ के बाणों ने खर-दूषण के प्राण हरे (थे) । या तो राम ने अपना प्रण (भक्तो की रक्षा) छोड दिया, (या फिर) योगियों की दशा प्राप्त की (विरक्त हो गये) । या तो दुखी होकर राम कही जंगल मे (घूम रहे हैं) (या फिर) (अयोध्या मे) रघुकुल के राजा हो गये । या तो रघुनाथ राक्षस रावण के अतुल बल से डरते हैं तथा विचार करके उन्होने अपनी स्त्री को त्याग दिया और कही लका के बगीचे मे रहते है । या तो मै कुटिल, गंदी कुलक्षिणी हूँ, तभी कंत (राम) ने (मुझे) त्याग दिया । सूरदास के स्वामी से कहना (कि) अब (कही) रुके नही (जल्द आ जायँ) ।।११।।

मैं परदेसिन नारि अकेली ।
बिनु रघुनाथ और नहिं कोऊ, मातु-पिता न सहेली ।
रावन भेष धरयौ तपसी कौ, कत मैं भिच्छा मेली ।
अति अज्ञान मूढ़ि-मति मेरी, राम-रेख पग पेली ।
बिरह-ताप तन अधिक जरावत, जैसें दव द्रुम बेली ।
सूरदास प्रभु वेगि मिलावौ प्रान जात हैं खेली ।।१२।।

अर्थ – मैं परदेशी स्त्री अकेली हूँ । रघुनाथ के बिना (मेरी सहायता करने वाला) और कोई नही (है); न माता-पिता, (और) न (कोई) सखियाँ (है) । रावण ने तपस्वी का वेप धारणा किया; मैंने उसे भिक्षा क्यो दी ! (मैं) बहुत अज्ञानी (हूँ) मेरी मति मंद (है), (तभी तो) राम की (बनाई हुई) रेखा (का) (मैंने) उल्लघन किया (मैं उसके बाहर गयी) । विरह का ताप शरीर को अत्यधिक जलाता है; जैसे दावाग्नि पेडो (और) लताओ को (जलाती है) । सूरदास (कहते हैं) (सीता कहती हैं) (कि) प्रभु से जल्द मिलाओ, नही तो प्राण खेल-खेल (मे ही) (व्यर्थ ही) जा रहे हैं ।।१२।।

तव हौं नगर अयोध्या जैहौं ।
एक वात सुनि निश्चय मेरी, राज्य विभीषन दैहौं ।
कपि-दल जोरि और सव सेना, सागर सेतु वँधैहौं ।
काटि दसौ सिर, वीस भुजा तव दसरथ सुत जु कहैहौं ।
छिन इक माहिं लंक गढ़ तोरौं, कंचन-कोट ढहैहौं ।
सूरदास प्रभु कहत विभीषन, रिपु हति सीता लैहौं ।।१३।।

अर्थ—(राम कहते हैं) तभी मैं अयोध्या जाऊँगा । मेरे निश्चय (संकल्प) की एक वात सुनो (कि) (मैं) (लंका का राज्य) विभीषण को दूँगा । कपियो का दल तथा अन्य सभी (प्रकार की) सेना जोड़कर समुद्र पर पुल वनाऊँगा । (रावण के) दसों सिरो तथा वीसो भुजाओ को काटकर (ही) दशरथ का पुत्र कहाऊँगा । एक क्षण-मात्र मे (ही) लंका के किले को तोडकर कंचन के कँगूरों को ढाह (गिरा) दूँगा । सूरदास के (राम) कहते है (कि) हे विभीषण ! मैं शत्रु को मार कर सीता को ले लूँगा (प्राप्त करूँगा) ।।१३।।

दूसरैं कर वान न लैहौं ।
सुनु सुग्रीव, प्रतिज्ञा मेरी, एकहिं वान असुर सव हैहौं ।
सिव-पूजा जिहिं भाँति करी है, सोइ पद्धति परतच्छ दिखैहौं ।
दैत्य प्रहार पाप-फल-प्रेरित, सिर माला सिव सीस चढ़ैहौं ।
मनौ तूल-गन परत अगिनि-मुख, जारि जड़न जम-पंथ पठैहौं ।
करिहौं नाहिं विलंव कछू अव, उठि रावन सम्मुख ह्वै धैहौं ।
इमि दमि दुष्ट देव द्विज मोचन, लंक विभीषन, तुमकौं दैहौं ।
लछिमन, सिया समेत सूर कपि, सव सुख सहित अयोध्या जैहौं ।।१४।।

अर्थ—हाथ मे दूसरा वाण नही लूँगा । सुग्रीव मेरी प्रतिज्ञा सुनो, एक ही वाण मे सभी असुरो को मार डालूँगा । जिस तरह रावण ने शिव की पूजा की है उस पद्धति को प्रत्यक्ष ही दिखा दूँगा । पाप-फल से प्रेरित दैत्यो का विनाश करके (उनके) सिर की माला शिव के सिर पर चढाऊँगा । जिस प्रकार रुई का समूह आग पर पड़ रहा हो, (उसी तरह इन) मूर्खों को (राक्षसो को) जलाकर यमराज (मृत्यु) के रास्ते पर भेज दूँगा । अव कुछ भी देर नही करूँगा, उठकर रावण के सम्मुख दौड़ पड़ूँगा (टूट पड़ूँगा) । इस तरह दुष्टो का दमन करके ब्राह्मण तथा देवताओ को मुक्त करके, हे विभीषण ! लंका तुम्हे दूँगा । सूरदास (कहते हैं) (राम कहते हैं) (कि) लक्ष्मण, सीता (तथा) वानरो (आदि) सव के साथ सुख-पूर्वक अयोध्या जाऊँगा ।।१४।।

आजु अति कोपे हैं रन राम ।
व्रह्मादिक आरूढ़ विमाननि, देखत हैं संग्राम ।
घन तन दिव्य कवच सजि करि, अरु कर धारयौ सारंग ।
सुचि करि सकल वान सूधे करि, कटि-तट कस्यौ निषग ।

सुरपुर तैं आयौ रथ सजि कैं रघुपति भए सवार।
कॉपी भूमि कहा अब ह्वै है, सुमिरत नाम मुरारि।
छोभित सिंधु, सेप-सिर कंपित, पवन भयौ गति पंग।
इंद्र हँस्यौ, हर हिय विलखान्यौ, जानि वचन कौ भंग।
धर-अंवर, दिसि-विदिस, वढ़े अति सायक किरन-समान।
मानौ महा-प्रलय के कारन, उदित उभय पट भान।
टूटत धुजा-पताक-छत्र-रथ, चाप-चक्र-सिरत्रान।
जूझत सुभट जरत ज्यौं नवद्रुम, विनु साखा विनु पान।
स्रोनित छिछ उछरि आकासहिं, गज-बाजिनि-सिर लागि।
मानौ निकरि तरनि रंध्रनि तैं, उपजी है अति आगि।
परि कवंध भहराइ रथनि तैं, उठत मनौ झर जागि।
फिरत सृगाल सज्यौ सव काटत, चलत सो सिर लै भागि।
रघुपति रिस पावक प्रचंड अति, सीता स्वास समीर।
रावन-कुल अरु कुंभकरन वन, सकल सुभट रनधीर।
भए भस्म कछु वार न लागी, ज्यौं ज्वाला पट चीर।
सूरदास प्रभु आपु वाहुवल, कियौ निमिष मैं कीर ।।१५।।

अर्थ—आज युद्ध मे राम अत्यधिक क्रुद्ध है। ब्रह्मादि विमान पर आरूढ़ होकर (राम-रावण के) संग्राम को देखते हैं। (राम ने अपने) वादल (के समान) (सांवले) शरीर पर कवच सजाकर हाथ मे धनुष धारण किया। समस्त वाणो को पवित्र करके (तथा) सीधा करके, कटि (कमर) में तरकस कसा। देवपुरी से सजकर रथ आया; (उस पर) राम सवार हुए। पृथ्वी कांप गयी, अब (न जाने) क्या होगा ! (सभी लोग घवड़ाकर) मुरारी के नाम का स्मरण करने लगे। सागर क्षुब्ध हो गया, शेपनाग का सिर काँपने लगा। (तथा) हवा की गति पंगु हो गयी (हवा चलना वंद हो गया)। इन्द्र हँस पड़े; शंकर जी वचन भंग होता जान हृदय मे दुःखी हुए। पृथ्वी (और) आकाश (तथा) देश-विदेश मे किरण के समान (तेज) वाण वहुत अधिक फैल गये; मानो महा प्रलय के कारण (समुपस्थित जानकर) दोनों पट्‌भानु (छः सूर्य) अर्थात् २×६=१२, द्वादश आदित्य उदित हो गये है ! ध्वाजा, पताका, छत्र, रथ, धनुष, चक्र (पहिये) तथा सिरस्त्राण (सिर पर पहनने का टोप) टूटते हैं। जूझने वाले वीर (वैसे ही) जलते हैं जैसे दावाग्नि से विना शाखा तथा पत्तों वाले (होकर) वृक्ष। खून के छींटे आकाश की ओर उछलकर (तथा) हाथियों (और) घोडो के सिर पर लग कर (ऐसा दृश्य उपस्थित करते हैं) मानों सूर्य के छिद्रों से निकलकर आग, वहुत धधक रही हो। रथो से धड़ भहराकर गिरते हैं, मानो वडी ज्वाला उत्पन्न हुई हो। शृगाल घूमते है, (योद्धाओ के) सुसज्जित शव को काटते और सिर को लेकर भागते है। राम की अति प्रचंड क्रोध रूपी आग तथा सीता की सांस रूपी समीर से रावण का कुल, कुंभकर्ण (तथा) समस्त रणधीर

वीर रूपी वन (जलकर) भस्म हो गये, कुछ (भी) देर नही लगी जैसे ज्वाला से किवाडे (तथा) वस्त्र (आदि) (जल जाते हैं) सूरदास के प्रभु (राम) ने अपने बाहुवल से पलभर मे (ही) (सवको) कीडा बना दिया ॥१५॥

वैठी जननि करति सगुनौती ।
लछिमन-राम मिलैं अव मोकौं, दोऊ अमोलक मोती ।
इतनी कहत सुकाग उहाँ तैं हरी डार उड़ि वैठ्यौ ।
अचल गाँठि दई, दुख भाज्यौं, सुख जु आनि उर पैठ्यौ ।
जव लौं हौं जीवौं जीवन भर, सदा नाम तव जपिहौं ।
दधि-ओदन दोना भरि दैहौं, अरु भाइनि मैं थपिहौं ।
अव कैं जौ परचौ करि पावौं, अरु देखौं भरि आँखि ।
सूरदास सोनें कैं पानी, मढ़ौं चोंच अरु पाँखि ॥१६॥

अर्थ—माता वैठकर सगुन मनाती है, दोनो अमोल मोती राम (और) लक्ष्मण अब मुझे मिले । इतना कहते ही वहाँ से कौआ उडकर हरी डाल पर वैठा (माता ने) अंचल मे गाँठ दे दी, (उनका) दुख भाग गया, सुख आकर हृदय मे वैठ गया । (माता कौए से कहती हैं) जब तक हम जियेगी जीवन भर सदैव तुम्हारा नाम जपूँगी । दोना भरकर दही तथा चावल दूँगी (और) भाइयो मे, (अन्य पक्षियों में तुझे ही) स्थापित करूँगी (श्रेष्ठ मानूँगी) । अवकी बार यदि (इस शकुन की सत्यता का) परिचय कर पाऊँ, (इसका परीक्षण कर सकूँ) (और) (पुत्रो को) भर आंख देख पाऊँ तो सूरदास (कहते है) (माता कहती है) (कि हे कौए !) तुम्हारी चोच और पंखों को सोने के पानी से मढाऊँगी ॥१६॥

हमारी जन्मभूमि यह गाउँ ।
सुनहु सखा सुग्रीव-विभीषन, अवनि अयोध्या नाउँ ।
देखत वन-उपवन-सरिता-सर, परम मनोहर ठाउँ ।
अपनी प्रकृति लिए वोलत हौं, सुरपुर मैं न रहाउँ ।
ह्याँ के वासी अवलोकत हौं, आनँद उर न समाउँ ।
सूरदास जौ बिधि न सँकोचै, तौ वैकुंठ न जाउँ ॥१७॥

अर्थ—यह गाँव हमारी जन्म भूमि (है) । मित्र सुग्रीव तथा विभीषण, सुनो ! यह पृथ्वी पर अयोध्या नाम (से प्रसिद्ध है) । वन, उपवन, नदी तथा सरोवर (से युक्त) यह स्थान बहुत मनोहर (है) । अपनी प्रवृत्ति के अनुरूप कहता हूँ (कि) (मैं) सुरपुर मे (कभी न) रहूँ (ऐसी मेरी इच्छा है) । यहां के निवासियो को देखते ही मेरे हृदय मे आनन्द नही समाता । सूरदास (राम) (कहते हैं) (कि) यदि ब्रह्म का संकोच न हो तो (मैं) वैकुंठ न जाऊँ ॥१७॥

विनती किहिँ बिधि प्रभुहिँ सुनाऊँ ?
महाराज रघुवीर धीर कौं, समय न कबहूँ पाऊँ ।

जाम रहत जामिनि के वीतै, तिहिँ अवसर उठि धाऊँ।
सकुच होत सुकुमार नींद मैं, कैसैं प्रभुहिँ जगाऊँ।
दिनकर-किरनि-उदति, ब्रह्मादिक-रुद्रादिक इक ठाऊँ।
अगनित भीर अमर-मुनि गन की, तिहिँ तैंह ठौर न पाऊँ।
उठत सभा दिन मधि, सैनापति भीर देखि फिरि आऊँ।
न्हात खात सुख करत साहिबी, कैसैं करि अनखाऊँ।
रजनी-मुख आवत गुन-गावत, नारद तुंबुर नाऊँ।
तुमहीं कहौ कृपानिधि रघुपति किहिँ गिनती मैं आऊँ।
एक उपाय करौ कमलापति, कहौ तौ कहि समुझाऊँ।
पतित उधारन नाम सूर प्रभु, यह रुक्का पहुँचाऊँ ॥१८॥

अर्थ—प्रभु (राम) को किस प्रकार विनती सुनाऊँ ! (विनती सुनाने के लिए) महाराज धीर रघुवीर का (खाली) समय कभी नहीं पाता हूँ। रात बीतने मे एक याम (३ घंटे का समय) रह जाने पर उस समय उठकर दौड़कर (उनके पास) जाता हूँ। लेकिन संकोच होता है कि प्रभु सुकुमार नींद मे है, (उन्हे) कैसे जगाऊँ। सूर्य की किरण उदित होते (ही) ब्रह्मादि, रूद्रादि अगणित देवता तथा मुनि गण एक जगह एकत्र हो जाते हैं, जिससे (वहाँ धँसने का) स्थान नही मिलता। दिन के मध्य मे सभा से उठते ही सेनापतियो की भीड़ देखकर वापस चला आता हूँ। नहाते, खाते (तथा) सुख करते (समय) साहब को कैसे नाराज करूँ। सन्ध्या आते ही नारद (तथा) तुंबुरु गुण गाते हुए आते हैं। कृपा निधि ! तुम्ही कहो, (मैं) जिस गिनती मे आऊँ। कमला-पति ! एक उपाय करो। (यदि) कहो तो कहकर समझाऊँ। सूर के प्रभु (राम) का नाम "पतितो का उद्धार करने वाला" (है), यही रुक्के (कागज) पर (लिखकर) पहुँचा दूँ ॥१८॥

परिशिष्ट (ख)

अंतर्कथाएँ

संकेत सूचना—द्र० = द्रष्टव्य । भा० = भागवत । स्कं० = स्कंध । पू० = पूर्वार्द्ध । उ० = उत्तरार्द्ध । अ० = अध्याय । सू० = सूरसागार (सभा) । प० = पद ।

अंबरीष—अयोध्या के एक प्रसिद्ध वैष्णव राजा । एकादशी व्रत के पारण का समय निकलते देख व्रत खंडित होने के डर से इन्होने दुर्वासा ऋषि को भोजन कराने के पहले ही भोजन कर लिया, जिससे क्रुद्ध होकर दुर्वासा ने इन्हें मारने के लिए कृत्या राक्षसी उत्पन्न की । परन्तु विष्णु के सुदर्शन चक्र ने उसे मारकर दुर्वासा का पीछा किया । दुर्वासा रक्षा के लिए विष्णु के पास गए, परन्तु विष्णु ने उन्हें अंबरीष के ही पास क्षमा माँगने के लिए भेज दिया । नारद ने भी उन्हे एक बार भ्रमवश क्रुद्ध होकर अंधकारावृत होने का शाप दिया था । परन्तु सुदर्शन चक्र ने अंधकार का नाश करके नारद का पीछा किया । नारद को विष्णु की शरण मे पहुँचकर ही रक्षा प्राप्त हुई । देखो दुरवासा । द्र० भा०, स्क० ६, अ० ४-५, सू०, प० ४४६ ।

अक्रूर—कंस की राज-सभा मे अनिच्छा से रहने वाले एक कृष्ण-भक्त यादव जो वसुदेव के भाई भी कहे जाते हैं । जब कंस ने इन्हे धनुष-यज्ञ के अवसर पर कृष्ण-बलराम को मथुरा लाने के लिए भेजा तो इन्हे कृष्ण-दर्शन की लालसा पूर्ण होने का अवसर जान बहुत प्रसन्नता हुई । उसके बाद ये निरतर कृष्ण के ही निकट रहे । द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० ३८-३९, ४८-४९; सू०, प० ३५५७-३५७१, ३६३०-३६३३, ४७७८ ।

अघासुर—बकासुर और पूतना का छोटा भाई एक असुर जिसे कंस ने कृष्ण को मारने से लिए व्रज भेजा था । इसने इतने विशालकाय अजगर का रूप धारण किया कि उसका मुख पर्वत की गुफा के समान लगता था । कृष्ण के गोपसखाओं ने उसे गोचारण के समय देखा और उसके मुख की अजगर के मुख से तुलना करते हुए भी वे उसमे बछडों के साथ प्रविष्ट हो गए । पीछे से स्वयं श्रीकृष्ण ने जाकर अपना शरीर विस्तृत करके अघासुर का ब्राह्मांड विदीर्ण कर दिया और मृत गोपों और बछडो को अमृत से जिला लिया । द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० १२; सू०, प० १०४९ ।

अजामिल (अजामील)—कन्नौज निवासी एक कुकर्मी, दासीपति ब्राह्मण जिसने दासी से उत्पन्न अपने सबसे छोटे और सबसे प्रिय पुत्र 'नारायण' का नाम लेने मात्र से यम-दूतों से छुटकारा पाया। नाम की महिमा से उसका जीवन पवित्र हो गया और उसका उद्धार हो गया। द्र० भा०, स्कं० ६, अ० १; सू०, प० ४१५।

अर्जुन—पांडवों में तृतीय, श्रीकृष्ण के सबसे अधिक कृपा-पात्र जिन्हे श्रीकृष्ण ने अपना प्रिय सखा करके माना। अर्जुन ने महाभारत युद्ध में श्रीकृष्ण की विशाल सेना न लेकर केवल श्रीकृष्ण की व्यक्तिगत सहायता मांगी थी। श्रीकृष्ण ने स्वयं अर्जुन के सारथी बनकर उनकी सहायता की थी तथा अर्जुन के मोह को दूर करने के लिए उन्हें गीता का उपदेश दिया था।

अहि—सर्प, परन्तु यहाँ कालियानाग के लिए प्रयुक्त। देखो 'कालियनाग'।

इन्द्र—प्रधान वैदिक देवता जिन्हे अपदस्थ करके पुराणों ने विष्णु की महत्ता स्थापित की। कृष्ण-लीला मे इस विषय का मुख्य प्रसंग गोवर्द्धन लीला है। ब्रज में इन्द्र की पूजा मिटाकर गोवर्द्धन पूजा कराने पर कुपित होकर जब इन्द्र ने घोर जल-वृष्टि की, तब श्रीकृष्ण ने गोवर्द्धन पर्वत को हाथ पर धारण करके ब्रजवासियों की रक्षा की तथा इन्द्र का गर्व-प्रहार किया। इन्द्र कृष्ण की शरण में आया और उसने उनसे क्षमायाचना की। द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० २४-२५; सू०, प० १४२८-१५०१, १५८१-१६००।

उग्रसेन—मथुरा के यदुवंशी राजा जिन्हें उनके ज्येष्ठ पुत्र कंस ने अपने श्वसुर जरासंध की सहायता से कारागार में डाल दिया था और स्वयं राजा बन बैठा था। श्रीकृष्ण ने कंस को मारकर उन्हें फिर राज्याधिकार दिलाया।

उपंग सुत (उपंग सुत)—उद्धव, उपंग नामक एक यादव के पुत्र, जो श्रीकृष्ण के सखा थे और मथुरा से उनका संदेश गोपियो के पास ले गए थे। देखो उद्धव।

ऋषि पत्नी—गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या, भूल से अपराध हो जाने के कारण जिसे गौतम ने पत्थर हो जाने का शाप दिया था। श्रीराम की चरण-रज के स्पर्श से उसे पुनः मनुष्य शरीर मिला तथा उसका उद्धार हो गया। द्र० सू०, प० ४१८।

ऐरावत—इन्द्र का श्वेत रंग का हाथी जो चौदह रत्नों मे एक था।

कंस—मथुरा के राजा उग्रसेन का क्षेत्रज ज्येष्ठ पुत्र जिसने अपने श्वसुर जरासंध की सहायता से पिता को कारागार मे डालकर राज्य हस्तगत कर लिया था। कृष्ण को मारने के उसने अनेक असफल उपाय किए और अन्त मे जब उसने धनुष-यज्ञ के बहाने कृष्ण-बलराम को मारने के लिए मथुरा बुलाया तब वह स्वयं कृष्ण के द्वारा मारा गया। द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० १-४, ४२-४४; सू०, प० ६२२, ३६५२-३७०६।

काल जवन (कालयवन)—एक निःसंतान यवन द्वारा पाला हुआ, महर्षि गार्ग्य और गोपाली अप्सरा का पुत्र, जो इतना पराक्रमी राजा हुआ कि उसने जरासंध के साथ मथुरा पर आक्रमण करके यादवो को वहाँ से भगा दिया। श्रीकृष्ण उसके डर से हिमालय की एक गुफा मे भाग गए, जहाँ मांधाता-पुत्र मुचकुन्द सो रहा था। कालयवन कृष्ण का पीछा करते हुए वहाँ पहुँचा तो उसने सोते हुए मुचकुन्द को ही कृष्ण समझकर उसे लात मारकर जगाया। मुचकुन्द ने ज्यों ही उसे नेत्र खोलकर देखा त्यो ही कालयवन भस्म हो गया। देखो मुचकुन्द द्र० भा०, स्कं० १० उ०, अ० ५२; सू०, प० ४७८१।

काली (कालिय नाग)—कद्रू-पुत्र, नागो का राजा, जो गरुड के भय से अपना निवास स्थान रमणक द्वीप छोड़कर व्रज के निकट यमुना के एक दह मे रहता था, जहाँ सौभरि ऋषि के शाप के कारण गरुड की गति नही थी। इससे काली दह (कालिय दह) का जल अत्यन्त विषैला हो गया था। श्रीकृष्ण ने उस दह में, 'सूरसागर' के अनुसार गेद खेलने के प्रसंग मे, प्रविष्ट करके कालिय को नाथ लिया। श्रीकृष्ण का प्रभुत्व जान कालिय ने उनकी स्तुति की। अन्त मे उसे रमणक द्वीप मे निर्भय रहने का वरदान मिल गया। देखो खगराइ तथा रिषिसाप। द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० १६; सू०, प० ११३८-१२०७।

कालीदह—व्रज के निकट यमुना का एक दह जिसमे कालिय नाग रहता था। देखो काली तथा रिषिसाप।

कालीनाग (कालिया नाग)—नागों का राजा। देखो काली।

कुवलया पीर (कुवलया पीड)—हाथी के रूप में कंस का सहायक असुर, जिसे श्रीकृष्ण ने मथुरा मे मल्लयुद्ध देखने जाते समय रास्ते में ही मार दिया था। द्र० भा०, स्क० १० पू०, अ० ४३; सू०, प० ३६७०-३६७८।

कुबिजा—देखो कुब्जा।

कुब्जा—कंस की एक (त्रिवक्रा) तीन जगह से टेढ़ी, किन्तु रूपवती दासी जो श्रीकृष्ण को मथुरा-प्रवेश के समय मिली और जिसने वह अगराज जो वह कंस के लिए ले जा रही थी श्रीकृष्ण के माँगने पर उन्हे प्रेमपूर्वक भेट किया। श्रीकृष्ण ने उसका कूबर नष्ट करके उसे परम सुन्दरी बनाया। श्रीकृष्ण से वह प्रेम करने लगी तथा श्रीकृष्ण ने उसके आग्रह पर मथुरा में अपना कार्य-सिद्ध कर लेने के बाद उसके घर आने का वचन देकर उसे विदा किया। 'सूरसागर' मे वर्णन है कि श्रीकृष्ण उसके प्रेम को स्वीकार करके उसके यहाँ गए। उसने भी उद्धव के हाथ राधा और गोपियो के लिए पाती दी थी। भ्रमर-गीत मे गोपियो ने उसके प्रेम पर व्यंग्य किए हैं। द्र० भा०, स्क० १० पू०, अ० ४२; सू०, प० ३६६८-३६६९, ४२५६-४२६८।

केसी (केशी)—श्रीकृष्ण को मारने के लिए कंस द्वारा भेजा हुआ एक अश्वरूपधारी

असुर जो कृष्ण द्वारा मारा गया। द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० ३७; सू०, प० २०१४।

खगराज—गरुड पक्षी, जो विष्णु का वाहन माना जाता है और जो कश्यप की पत्नी विनता से उत्पन्न है। उनकी दूसरी पत्नी कद्रू से उत्पन्न सर्पों से इसकी जन्मजात शत्रुता है। एक बार सर्पों ने अपना भारी संहार देखकर प्रति मास बारी से एक सर्प देने का निश्चय किया, परन्तु कालीय नाग ने गर्ववश अपना हिस्सा नही दिया तथा गरुड़ से युद्ध किया। परन्तु अन्त में घायल होकर रमणक द्वीप छोड़ व्रज मे यमुना के एक गम्भीर दह में जाकर रहने लगा, जहाँ ऋषि शाप के कारण गरुड नही जा सकता था। देखो रिषिसाप तथा काली।

गज—हाथी (१) त्रिकूट पर्वत का एक प्रसिद्ध हाथी जो पूर्व जन्म में राजा इन्द्रद्युम्न था और अगस्त मुनि के शाप से पशु योनि को प्राप्त हुआ था। जलाशय मे स्नान करते समय एक बार एक ग्राह द्वारा पकडे जाने पर इसने भगवान् को सहायतार्थ पुकारा। भगवान् ने उसे ग्राहपाश से ही नही, पशु योनि से भी मुक्त कर दिया। द्र० भा०, स्कं० ८, अ० २-४; सू०, प० ४२९-४३३। (२) कुवलया पीड। देखो कुवलया पीर।

गजराज—देखो गज।

गणिका—जीवन्ती नाम की एक वेश्या जो विना समझे हुए भी तोते को राम नाम पढ़ाने के कारण मोक्ष पा गई।

गर्ग—यादवो के पुरोहित; जिन्हे वसुदेव ने कृष्ण का नामकरण करने के लिए गोकुल भेजा था। कृष्ण-बलराम के अन्य संस्कारो में भी गर्ग मुनि के पौरोहित्य का उल्लेख हुआ है। गर्ग ने नामकरण के ही अवसर पर कृष्ण-बलराम के अलौकिक व्यक्तित्व की सूचना दी थी।

गुरु-सुत—कृष्ण-बलराम के गुरु सांदीपिनि का पुत्र, जो प्रभास क्षेत्र के सागर में डूब गया था और जिसे श्रीकृष्ण ने यमपुरी से लाकर गुरु-दक्षिणा मे गुरु को भेंट किया था।

ग्राह—मगर, घड़ियाल, यहाँ पर इस ग्राह के लिए प्रयुक्त जिसने त्रिकूट पर्वत पर रहने वाले गजेन्द्र को सरोवर मे स्नान करते समय पकडा था। भगवान् विष्णु ने गज की पुकार पर उसे तो संकट-मुक्त किया ही, ग्राह का सर काट कर उसे भी पशुयोनि से मुक्त कर दिया। ग्राह पूर्व जन्म मे हू हू नामक गंधर्व था जो देवल ऋषि के शाप से ग्राह हो गया था। देखो गज।

चानूर—(चाणूर)—कंस का एक असुर मल्ल, जिसे श्रीकृष्ण ने धनुष यज्ञ के अवसर पर आयोजित मल्ल-युद्ध में मारा था। पूर्व जन्म मे यह मय दानव था। द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० ४४; सू०, प० ३६८३-३६८५।

चौरासी--चौरासी लाख योनियाँ, जन्म-जन्मान्तर मे आवागमन का चक्र।

जमलार्जुन—(यमलार्जुन)—यमल और अर्जुन नामक दो वृक्ष, जो पूर्व जन्म मे नलकूवर और मणिग्रीव नामक कुवेर के दो पुत्र थे और नारद के शाप से वृक्ष हो गये थे। श्रीकृष्ण ने उलूखल-बंधन लीला मे उन्हें गिराकर शाप-मुक्त किया था। द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० ९; सू०, प० १०००-१००९।

तृनावर्त—(तृणावर्त)—एक असुर जो भयंकर वात-चक्र के साथ-तिनके के शिशु रूप में कृष्ण को मारने आया और उन्हें ऊपर आकाश में उड़ा ले गया। कृष्ण ने उसका संहार कर महाकाय राक्षस के रूप मे एक शिला पर पटक दिया। द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० ७; सू०, प० ६९४-६९९।

दावाग्नि—(दावाग्नि)—वह अग्नि जो वन में अपने आप प्रकट हो जाती है। यहाँ कृष्ण-लीला मे वर्णित वह दवानल जिसे ब्रजवासियो के रक्षार्थ श्रीकृष्ण पी गए थे। 'भागवत' मे दावानल-पान की लीला दो बार वर्णित है—एक, जब कालिय-दमन के बाद सब व्रजवासी रात मे यमुना के तट पर ही सो रहे थे, तब आधी रात को दावानल के प्रकट होने पर कृष्ण ने उसका पान करके भयातुर व्रजवासियो को आश्वस्त किया था तथा दूसरी बार गोचारण के समय उसी प्रकार उन्होने गोपसखाओं की रक्षा की थी। द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० १७, १९; सू०, प० १२०८-१२१६, १२१२-१२३३।

दावानल—देखो दावाग्नि।

दुरवासा—(दुर्वासा) - एक क्रोधी स्वभाव के ऋषि, जिन्हे राजा अम्बरीष ने एकादशी-पारण पर भोजन करने के लिए निमंत्रित किया था, परन्तु पारण का समय निकल जाने के डर से ऋषि को भोजन कराने के पहले ही भोजन करके उन्हे कुपित कर दिया था। देखो अंबरीष।

दुस्सासन=(दु:शासन) - दुर्योधन का छोटा भाई, जिसने पांडवो के जुए मे हार जाने पर सभा मे द्रौपदी के वस्त्र खीचे थे। देखो द्रुपद-सुता।

द्रुपदसुता—(द्रौपदी)—पंजाब के राजा द्रुपद की पुत्री कृष्णा जो पाँचों पाडवों की पत्नी थी और जिसे पांडव कौरवो के साथ जुए में हार गए थे। दु:शासन ने सबके सामने उसको बलात् नग्न करने का प्रयत्न किया। परन्तु संकट में द्रौपदी ने श्रीकृष्ण को स्मरण किया। श्रीकृष्ण योगमाया से उसका वस्त्र इतना बढ़ाते गये कि दु:शासन उसे खीचते-खीचते हार गया।

द्रौपदी—देखो द्रुपद-सुता।

धेनुक—तालाब मे रहने वाला एक गर्दभ रूपी असुर, जिसे बलभद्र ने पिछली टाँगें पकड़, पटककर मार डाला था। उसके साथी अन्य गर्दभ रूपी राक्षसों ने जब आक्रमण किया तो उन्हे भी कृष्ण-बलराम ने पटक-पटककर मार डाला। द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० १५; सू०, प० १११७।

ध्रुव—राजा उत्तानपाद और सुनीति के विष्णु-भक्त पुत्र, जो अत्यन्त बाल्यावस्था में विमाता-पुत्र उत्तम के कारण पिता द्वारा अपमानित होने पर विरक्त होकर निर्जन वन में घोर तपस्या करने चले गए। इन्द्रादि देवो के प्रयत्न करने पर भी जब इनकी तपस्या खण्डित नही हुई, तब भगवान् ने इन्हे ध्रुवलोक का वरदान दिया जो अटल है और समस्त लोकों, ग्रहो और नक्षत्रो का आधार है।

नामदेव—तेरहवी-चौदहवी शती मे हुए दक्षिण भारत के एक प्रसिद्ध सन्त जिन्होने घर में आग लग जाने पर उसे बुझाया नही, बल्कि बची-खुची वस्तुएँ भी उस अग्निदेव को अर्पित कर दी। कहते है, भगवान् ने प्रसन्न होकर रातों-रात उनका छप्पर अपने हाथों छा दिया था।

नारद—ब्रह्मा के मानस-पुत्र, वीणा लेकर हरि कीर्तन करते हुए निरन्तर भ्रमण करने वाले श्रेष्ठ वैष्णव भक्त, जो पूर्व जन्म मे किसी दासी के पुत्र थे और वेदान्ती मुनियो की सेवा करने तथा उनका जूठा भोजन करने से जिनके हृदय मे पाँच वर्ष की अवस्था से ही वैराग्य पैदा हो गया था। सौभाग्य से इनकी माता भी मर गई जिससे ये निर्जन वन मे जाकर भगवान् का ध्यान करने में सफल हुए। भगवान् ने इन्हे हृदय में तो दर्शन दिए, परन्तु इस जन्म में प्रत्यक्ष दर्शन होना असम्भव बताया। फिर भी भक्ति का परम वरदान पाकर ये कालांतर मे परम धाम के अधिकारी हुए। नारद भक्तों मे ही नही, विमुखो के बीच भी विचरते हैं। कंस को उसके अन्तिम परिणाम तक पहुँचाने के लिए नारद ही बराबर उसको सलाह देते रहे।

नृग—इक्ष्वाकु वंश का एक दानी राजा, जो ब्राह्मण को दान मे दी हुई गाय भूल से पुनः दूसरे ब्राह्मण को दे देने के कारण गिरगिट हो गया था और जिसे श्री कृष्ण के स्पर्श मात्र से पुनः मनुष्य रूप मिला और जो भगवत्कृपा से श्रेष्ठ विमान पर चढ़कर दिव्य लोक चला गया।

पूतना—कंस की भेजी हुई एक राक्षसी, जो शिशु कृष्ण के प्रति वात्सल्य दिखाकर विष लगे स्तन का दूध पिलाकर उन्हे मार डालना चाहती थी, परन्तु जिसे उलटे कृष्ण ने दूध पीते-पीते मार डाला और इस तरह उसका उद्धार कर दिया। द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० ६; सू०, प० ६६७-६७३।

प्रलब—एक असुर, जो कृष्ण-बलराम को हर ले जाने के लिए गोप रूप धारण करके वृन्दावन मे गोचारण के समय गोपों के साथ मिल गया और उनके साथ खेलने लगा। खेल मे हारने पर जब वह बलराम को पीठ पर लादकर ले चला तो उसका असली उद्देश्य और रूप प्रकट हुआ। बलराम ने भयंकर असुर को एक ही मुष्टि-प्रहार से मार डाला। द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० १८; सू०, प० १२२२।

प्रह्लाद—एक आदर्श वैष्णव भक्त जो अपने पिता दैत्यराज हिरण्यकशिपु द्वारा सर्प से कटवाए जाने, हाथी से कुचलवाए जाने, पहाड़ से गिराए जाने तथा अग्नि मे जलाए जाने, पर भी विष्णु की भक्ति से विचलित नही हुआ। सर्वव्यापक भगवान् ने उसकी निरन्तर रक्षा की और इसी हेतु खम्भे से नृसिंह रूप मे प्रकट होकर पापी हिरण्यकशिपु का वध कर दिया।

बक, बका (बकासुर)—बगले के रूप मे कृष्ण को निगलकर मारने के लिए आया एक असुर, जिसने गोचारण के समय (अपनी तीक्ष्ण चोच से पकडकर) कृष्ण को निगल लिया, परन्तु तालू जलने के कारण उन्हे उगलना पडा। कृष्ण ने उसकी चोच को विदीर्ण कर उसे मार डाला। द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० ११; सू०, प० १२४५।

बकासुर—देखो बक, बका!

बकी—बकासुर और अघासुर की बहन, पूतना। देखो पूतना।

वरुन-फाँस—(वरुण-पाश)—एकादशी व्रत के बाद एक बार नन्द आसुरी वेला मे ही यमुना-स्नान करने चले गए। इस पर जल-देवता वरुण का किंकर उन्हे वरुण के पास ले गया। श्रीकृष्ण को जब यह मालूम हुआ तो वे स्वयं वरुणालय जाकर पिता को पाश से छुड़ा लाए। द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० २८; सू०, प० १६०२।

बलि—एक दानशील, तपस्वी और पुण्यात्मा दैत्यराज जो प्रह्लाद के पौत्र और विरोचन के पुत्र थे। अपने पुण्यबल से ये इन्द्र का पद लेने ही वाले थे कि इन्द्र की प्रार्थना पर भगवान् विष्णु ने वटुक वामन का रूप धारणकर दैत्यराज से तीन पद पृथ्वी माँग ली और फिर वृहदाकार धारण करके समस्त भूमण्डल और स्वर्ग को दो पदो से तथा स्वय बलि के शरीर को तीसरे पद से नाप लिया। अन्त में भगवान् ने प्रह्लाद की अनुनय-विनय तथा बलि के पुण्यकृत्यो से प्रसन्न होकर उन्हें रोग-जरा-मृत्युहीन सुतल मे रहने का तथा इन्द्र पद प्राप्ति का वरदान दिया।

बसुद्यौ—(वसुदेव)—श्रीकृष्ण-बलराम के पिता।

बासुदेव—(वासुदेव)—भागवत (पांचरात्र या वैष्णव) धर्म के आदि देव जो प्रारम्भ में वृष्णिवशीय सत्वतो के पूज्य थे। 'हरिवश' तथा पुराणो के अनुसार श्रीकृष्ण ही असली और द्वितीय वासुदेव हुए। स्वय श्रीकृष्ण ने अन्य राजाओं (शृंगाल, पौड्रक) के मिथ्या वासुदेवत्व को सिद्ध करके इसे प्रमाणित किया था। वसुदेव के पुत्र होने के कारण भी श्रीकृष्ण वासुदेव कहलाते हैं।

बिदुर—(विदुर)—दासी के गर्भ से उत्पन्न व्यास के औरस पुत्र तथा धृतराष्ट्र और पांडु के भाई, जो अत्यन्त न्यायशील, विवेकशील और भक्त-हृदय थे। महाभारत युद्ध के पहले समझौता कराने के लिए जब कृष्ण दुर्योधन के यहाँ गये

थे तब विदुर के घर ही ठहरे थे। दुर्योधन के अभिमान भरे राजसी आतिथ्य के स्थान पर उन्हे विदुर का प्रेमभरा साग-पात का भोजन अधिक रुचा था।

विभीषण—(विभीषण)—रावण का भाई, जो राक्षस कुल का होते हुए भी अत्यन्त न्यायशील, धर्मात्मा और राम-भक्त था। राम ने उसके योग-क्षेम के लिए तथा उसे लंकापति बनाने के लिए सीता को लौटाने या शक्ति बाण से आहत मरणासन्न लक्ष्मण को जिलाने से भी अधिक चिंता प्रकट की थी।

व्याध—(व्याध)—आदिकवि बाल्मीकि जो प्रारम्भ मे अनाथ ब्राह्मण बालक होने के कारण भीलो द्वारा पाले गए थे। जीव हत्या और डकैती ही इनका व्यवसाय था। इनकी स्त्री भी एक भीलनी थी। एक बार सप्तर्षियों पर डाका डालने के बाद ये 'मरा' 'मरा' जपने लगे, जो 'राम' 'राम' का मन्त्र हो गया। इसी से इन्हे सद्‌बुद्धि मिली और इन्होने घोर तपस्या करके उद्धार पाया।

व्योम—(व्योमासुर)—मयासुर का पुत्र एक असुर, जो एक बार पर्वत शिखरो पर 'निलायन' नामक खेल खेलते हुए गोपो मे गोप बनकर मिल गया और खेल मे पशु बने हुए बालको को एक-एक करके ले जाने लगा। श्रीकृष्ण उसकी माया ताड़ गए और उन्होने उसे दबोचकर तथा पटककर मार डाला। द्र० भा०, स्कं० १०, अ० ३७; सू०, प० २०१५।

ब्रह्मा—त्रिदेव में से एक, परन्तु पुराणो मे विष्णु की अपेक्षा उन्हे सदैव नीचा चित्रित किया गया है। विष्णु ने इन्हे नाभि-कमल से उत्पन्न करके सृष्टि रचना का भार इन्ही को सौंपा तथा सर्वप्रथम इन्हीं को वेद का ज्ञान दिया। 'भागवत' के अनुसार सर्वप्रथम ब्रह्मा ने ही चतुश्लोकी 'भागवत' विष्णु भगवान् के मुख से सुनी थी, वही उन्होने अपने मानस पुत्र नारद को सुनाई तथा नारद ने उसे व्यास को सुनाया। 'भागवत' मे ब्रह्मा की अपेक्षा कृष्ण की महिमा अधिक सिद्ध करने के लिए ब्रह्मा द्वारा अज्ञानवश गोचारण के अवसर पर गौ-वत्स हरण का प्रसंग वर्णित है। श्रीकृष्ण ने ब्रह्मा का मोह और गर्व मिटाने के लिए हरण किए गए गो-वत्स की ही तरह नवीन गो-वत्स की सृष्टि कर ली। तब ब्रह्मा ने शरण मे जाकर कृष्ण की स्तुति की। द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० १३-१४; सू०, प० १०५४-१०५६, ११०१-११०८, १११०।

भृगु—एक ऋषि, जो शिव के पुत्र कहे गये हैं। एक बार यह जानने के लिए कि त्रिदेव मे सबसे बड़ा कौन है, इन्होने तीनो का अपमान किया। ब्रह्मा और महेश तो क्रुद्ध हो गए; परन्तु जब उन्होने विष्णु को लात मारकर सोते से जगाया, तब उन्होने क्रोध करने के बजाय इनसे पूछा कि आपके पैर मे चोट तो नही लगी तथा उनके पद-चिन्ह को सदैव अपने वक्ष पर धारण किया। द्र० भा०, स्कं० १० उ, अ० ८९; सू०, प० ४९२६।

भृगु-पद—विष्णु भगवान् के वक्ष-स्थल पर स्थायी रूप से स्थापित भृगु-ऋषि का पद-चिन्ह। देखो भृगु।

मुचकुन्द—अयोध्या का एक प्राचीन राजा, मांधाता का पुत्र, जो देवासुर संग्राम मे देवो की ओर से लडते-लड़ते थककर हिमालय की एक गुफा में सो गया था। कालयवन द्वारा खदेड़े जाकर श्रीकृष्ण जब उस गुफा में पहुँचे तो उन्होने अपना पीतांबर उसे ओढा दिया। पीछे से कालयवन ने आकर उसी को कृष्ण समझा और उस पर आक्रमण किया। मुचकुन्द के नेत्र खोलते ही कालयवन भस्म हो गया। देखो कालयवन।

मुष्टिक—कंस का एक असुर मल्ल जिसे धनुष-यज्ञ पर आयोजित मल्लक्रीड़ा मे बलराम ने मारा था। दूसरे मल्ल, चाणूर को कृष्ण ने मारा था। देखो चाणूर।

रंभा—एक अति रूपवती अप्सरा, चौदह रत्नो मे से एक, जो इन्द्र-सभा की शोभा बढ़ाती है।

रजक—धोबी, यहाँ कंस का विशिष्ट धोबी, जिसे मथुरा में प्रवेश करते समय, कृष्ण ने धुले कपडे ले जाते देखा और माँगने पर कपडे देना अस्वीकार करने के कारण एक तमाचे के प्रहार से मार डाला। द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० ४१; सू०, प० ३६५५-३६६०।

राजसूय—चक्रवर्ती सम्राट् द्वारा किया जाने वाला यज्ञ, जिसमे अन्य राजागण सेवक बनते है। यहाँ युधिष्ठिर द्वारा किया गया राजसूय यज्ञ जिसमे श्रीकृष्ण ने अभ्यागत जनो के पैर धोने का सेवक-कार्य स्वेच्छा से ग्रहण किया था। इसी यज्ञ मे सबसे पहले श्रीकृष्ण के पूजे जाने पर कुपित होकर शिशुपाल ने श्रीकृष्ण को गालियाँ दी तथा श्रीकृष्ण ने सुदर्शनचक्र से उसका वध किया। इसी यज्ञ के अवसर पर अभिमानी और ईर्ष्यालु दुर्योधन ने जब भाइयो सहित प्रवेश किया तो सूखे मे जल का तथा जल मे सूखे का भ्रम होने से वह हास्यास्पद आचरण करने लगा। जिससे पांडव, उनकी स्त्रियाँ आदि सभी हँसने लगे तथा दुर्योधन अत्यन्त लज्जित हुआ। द्र० भा०, स्कं० १० उ०, अ० ७५-७६; सू०, प० ४८३७-४८३८।

राहु—सिंहि का पुत्र, एक असुर। समुद्र-मथन के बाद देवताओं मे सम्मिलित होकर अमृत-पान करने के अपराध मे विष्णु ने इसका सर काट डाला था। परन्तु अमृत के प्रभाव से वह राहु (सर) तथा केतु (धड) के रूप में अमर रहा। सूर्य और चन्द्रमा ने ही पहचानकर उसकी शिकायत कर दी थी, अत: वह उनसे शत्रुता मानकर उन्हे 'ग्रहण' के रूप मे ग्रसता रहता है।

रिषि-साप (ऋषि-शाप)—सौभरि ऋषि का गरुड को शाप। एक बार ब्रज मे यमुना के एक गम्भीर दह मे—जो बाद में कालियदह नाम से प्रसिद्ध हुआ—सौभरि ऋषि के रोकने पर भी गरुड ने एक भारी मच्छ खा डाला। उसके वियोग मे

तड़पती मछलियों के दुःख से द्रवित होकर ऋषि ने शाप दिया कि यदि गरुड यहाँ किसी मछली को खाएगा तो तुरन्त उसकी मृत्यु हो जायगी। कालियनाग इस रहस्य को जानता था। अतः वह गरुड से बचने के लिए वहीं जाकर रहता था। देखो काली तथा खगराइ। द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० १७।

लाखा-गृह (लाक्षा-गृह)—पांडवो के जलाने के लिए दुर्योधन ने लाख का एक घर बनवाया था परन्तु भगवत्कृपा से पांडव उससे जीवित निकल आए थे।

श्रीदामा—श्रीकृष्ण के सबसे प्रिय और प्रधान गोप-सखा जो बाल-केलि और गोचारण की लीला मे सदैव उनके साथ रहे। 'सूरसागर' के अनुसार कालियदमन लीला का तत्काल कारण उस कंदुक-क्रीड़ा मे आ उपस्थित होता है जिसमे श्रीकृष्ण ने श्रीदामा की गेंद कालियदह मे फेंक दी थी और श्रीदामा ने वापस देने का आग्रह किया था। तभी श्रीकृष्ण गें॰ लेने के लिए कालियदह में कूद पड़े थे। ब्रह्मवैवर्त पुराण (श्रीकृष्ण जन्म खण्ड) के अनुसार श्रीदामा के शाप के कारण ही राधा और कृष्ण को अवतार लेना पड़ा था।

संकर्षन (संकर्षण)—बलराम, वसुदेव के ज्येष्ठ पुत्र, जो पहले देवकी के गर्भ में आए थे, परन्तु विष्णु की माया से देवकी का गर्भ संकर्षित होकर रोहिणी में स्थापित हो गया था! इसलिए जब ये नन्द के यहाँ रोहिणी के गर्भ से उत्पन्न हुए, तब गर्ग ने इनका नाम संकर्षण रखा। ये चार व्यूहो—वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—मे से एक हैं जो दुष्टो का संहार करते है। बलराम उद्धत-स्वभाव और मद्यप्रिय कहे गये हैं। हल और मूसल इनके अस्त्र है। इसी कारण ये हलधर भी कहे जाते है।

सकट (शकट)—छकड़ा या गाड़ी, परन्तु यहाँ वह छकड़ा जिसे पालने मे लेटे शिशु कृष्ण ने पैर से उछालकर गिरा दिया था जिससे वह चूर-चूर हो गया था और उसमें रखे दूध-दही आदि के अनेक बर्तन टूट-फूट गए थे। इस विस्मय-जनक कार्य पर किसी को विश्वास हुआ, किसी को नही। यशोदा ने उसे ग्रहो का उत्पात समझा और स्वस्तिवाचन कराया। 'सूरसागर' मे इसे भी कस का भेजा एक असुर (शकटासुर) कहा गया है। द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० ७; सू०, प० ६७८-६८०।

सनक—सनक, सनंदन, सनातन, सनत्कुमार मे से एक। ये ब्रह्मा के मानस पुत्र तथा विष्णु के परम भक्त विख्यात हैं। इन लोगो के भक्ति में निरत हो जाने के कारण ब्रह्मा को अन्य पुत्रों की उत्पत्ति करनी पड़ी थी। ये विष्णु के सभासद भी कहे जाते हैं! विष्णु के द्वारपाल जय-विजय द्वारा रोके जाने पर इन्होने ही उन्हें असुर होने तथा तीसरे जन्म मे उद्धार पाने का शाप और वरदान दिया था। इन चारों में सनत्कुमार सबसे अधिक प्रसिद्ध है। चारो को प्रायः सनकादि कहकर अभिहित किया जाता है।

सनकादि—देखो सनक।

सिंधु-सुता—लक्ष्मी जो समुद्रमंथन के समय निकले हुए १४ रत्नो मे से एक थी।

सुक (शुक, शुकदेव)—व्यास के पुत्र, महान् पौराणिक कथाकार, जिन्होने परीक्षित को 'भागवत' की कथा सुनाई थी। जिस समय शिव जी एकांत मे उमा को विष्णुसहस्रनाम सुना रहे थे, एक शुक भी उसे सुन रहा था। शिव जी ने जब यह जाना तो वे शुक को मारने दौडे। शुक आत्म-रक्षार्थ व्यास पत्नी के मुँह मे चला गया और १२ वर्ष तक उनके गर्भ मे रहा। इस बीच वेदव्यास ने भागवतादि की समस्त कथाएँ अपनी पत्नी को सुनाई। शुक भी सुनता रहा। भगवान् ने इसे गर्भ मे ही तत्वज्ञानी और मायारहित होने का वरदान दिया था। जो कथा व्यास ने शुकदेव को सुनाई, वही शुकदेव से परीक्षित ने सुनी।

सुदामा—गुरु सांदीपिनि के यहाँ श्रीकृष्ण के सहपाठी, उनके एक प्रसिद्ध बालसखा, जो एक अत्यन्त दरिद्र ब्राह्मण थे। पत्नी के बार-बार कहने पर वे अपनी दारुण दरिद्रता दूर करने की आशा मे श्रीकृष्ण के यहाँ द्वारकापुरी मे गए। मित्र को भेट देने के लिए वे केवल थोड़े से चावल ले जा सके थे, परन्तु वे उसे छिपा रहे थे। श्रीकृष्ण ने चावलो की पोटली उनसे आग्रहपूर्वक छीन ली और उसमे से दो मुट्ठी चावल फांक लिए। तीसरी मुट्ठी भरते समय रुक्मिणी जी ने उन्हे रोक दिया। सुदामा जब लौटे तो सोचने लगे कि किसी भलाई के लिए ही श्रीकृष्ण ने मुझे यथेष्ट धन नही दिया। परन्तु जब घर पहुँचे तो वे चकित हो गए। उनके यहाँ अपार वैभव हो गया था। दो मुट्ठी चावल फांककर ही भगवान् ने उन्हे लोक-परलोक की सम्पत्ति दे डाली। द्र० भा०, स्कं० १० उ०, अ० ८०, ८१; सू०, प० ४८४२-४८६३।

सुफलकसुत—अक्रूर। देखो अक्रूर।

हरिश्चन्द्र—सूर्यवश के एक प्रसिद्ध सत्यप्रतिज्ञ राजा, जिनसे राजसूय-यज्ञ की दक्षिणा के बहाने विश्वामित्र ने सर्वस्व हर लिया था। उनकी दृढ़ प्रतिज्ञा की सबसे कठोर परीक्षा तब हुई जब वे एक चाडाल के क्रीतदास के रूप मे श्मशान पर पहरा दे रहे थे। उसी समय उनकी पत्नी शैव्या, जो एक ब्राह्मण को बेच दी गई थी, अपने मृत पुत्र रोहिताश्व का अन्तिम संस्कार करने आई। हरिश्चन्द्र के श्मशान-कर मांगने पर जब शैव्या ने अपनी असमर्थता प्रकट की, तो इन्होने उस कर के बदले मे अपनी आधी साड़ी फाड़कर देने के लिए विवश किया। इसी समय भगवान् प्रकट हो गए।

———

पदानुक्रमणी

अंक पृष्ठ-संख्या के द्योतक हैं।

अँखियन तब तैं बैर धरचौ। १४५
अँखियाँ हरि कैं हाथ बिकानीं। १४५
अँखियाँ हरि दरसन की प्यासी। २८५
अंतरजामी कुँवर कन्हाई। २६०
अंतर तैं हरि प्रगट भए। ११७
अचंभौ इन लोगनि कौ आवै। ४२
अति कोमल तनु धरचौ कन्हाई। ८१
अति मलीन वृषभानु-कुमारी। ३२४
अद्भुत एक अनूपम बाग। १८६
अधर-रस मुरली लूटन लागी। ८६
अनत सुत गोरस कौं कत जात ? ७२
अपने सगुन गोपालहिं माई, ३०७
अपने स्वारथ के सब कोऊ। ३१४
अपनौ गाउँ लेउ नँदरानी। ७१
अपुनपौ आपुन ही बिसरयौ। ४४
अपुनपौ आपुन ही मैं पायौ। ४५
अब अति चकितवंत मन मेरौ। ३२५
अब कैं राखि लेहु गोपाल। ८३
अब कैं राखि लेहु भगवान। २६
अब घर काहू कैं जनि जाहु। ७७
अब जुवतिनि सौं प्रगटे स्याम। १८७
अब तौ प्रगट भई जग जानी। १३४
अब नंद गाइ लेहु सँभारि। २१४
अब बरषा कौ आगम आयौ। २४८
अब मैं जानी, देह बुढानी। ३६
अब मैं तोसौं कहा दुराऊँ। १८५
अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल। २८
अब यह बरषौ बीति गई। २५३
अब या तनहिं राखि कह कीजे। २५५
अब ये झूठहु बोलत लोग। ६८
(अलि हौं) कैसैं कहौं हरि के रूप रसहिं। २८२
अब वै बातैं उलटि गईं। २३८
अब हरि आइहैं जनि सोचै। ३५७
अबहीं तैं हम सबनि बिसारी। ८७
अविगत-गति कछु कहत न आवै। १७
आँखिनि मैं बसै, जिय मैं बसै, १७१
आए जोग सिखावन पाँडे। २८७
आछौ गात अकार गारचौ। २६
आजु अति कोपे हैं रन राम। ३७०
आजु कन्हैया बहुत बच्यौ री। ८३
आजु कोउ नीकी बात सुनावै। २७०
आजु घनस्याम की अनुहारि। २५१
आजु जसोदा जाइ कन्हैया, ८२
आजु नंद के द्वारैं भीर। ४८
आजु मैं गाइ चरावन जैहौं। ८०
आजु रैनि नहिं नींद परी। २१५
आजु सखी अरुनोदय मेरे, १८१
आजु हरि अद्भुत रास उपायौ। ११८
आजु हौं एक-एक करि टरिहौं। २७
आनँदै आनंद बढ़्यौ अति। ४७
आपु गए हारुएँ सूनैं घर। ६७
आपुन भईं सबै अब भोरी। १२४
आयौ घोष बड़ौ ब्योपारी। ३१४

आवत उरग नाथे स्याम । ८३
आवत मोहन धेनु चराए । १३८
आवहु री मिलि मंगल गावहु । ३४१
इक दिन नंद चलाई बात । २३३
इत-उत देखत जनम गयौ । ३४
इततैं राधा जाति जमुन-तट, १७२
इतनी बात अलि कहियो हरि सौं, ३२१
इन अखियन आगैं तैं मोहन, ६८
इनकौं ब्रजहीं क्यौं न बुलावहु । १८१
इन नैननि मोहिं बहुत सतायौ । १४२
इहिं अंतर मधुकर इक आयौ । २७८
इहिं उर माखन चोर गडे । २८८
इहिं डर बहुरि न गोकुल आए । ३१८
इहिं दुख तन तरफत मरि जैहैं । २५७
इहिं बिधि पावस सदा हमारैं । ३१२
इहिं बिधि वेद-मारग सुनौ । १११
उग्रसेन कौं दियौ हरि राज । २२३
उठे कहि माधौ इतनी बात । २२७
उत नंदहिं सपनौ भयौ, २११
उती दूर तैं को आवै री । ३५१
उनकौं ब्रज बसिबौ नहिं भावै । २५८
उपमा नैन न एक रही । २८६
उपमा हरि तनु देख लजानी । १३८
उमगीं ब्रजनारि सुभग, ५४
उरग लियौ हरि कौ लपटाइ । ८१
उलटि पग कैसैं दीन्हौ नद । २२८
उलटी रीति तिहारी ऊधौ, २८४
ऊधौ अँखियां अति अनुरागी । २८६
ऊधौ इक पतिया हमरौ लीजे । ३२२
ऊधौ इतनी कहियो जाइ । २६८
ऊधौ इतनी कहियौ जाइ । ३२४
ऊधौ इतनी कहियौ बात । ३२३
ऊधौ कहा करैं लै पाती । २७७
ऊधौ कही सु फेरि न कहिऐ । २८८
ऊधौ कहौ सांची बात । २७४
ऊधौ कहौ हरि कुसलात । २७५
ऊधौ काहे कौं भक्त कहावत । ३०४
ऊधौ कोउ नाहिंन अधिकारी । ३०८
ऊधौ कोकिल कूजत कानन । ३१३
ऊधौ क्यौं बिसरत वह नेह । ३१७
ऊधौ जब ब्रज पहुँचे जाइ । ३२७
ऊधौ जात ब्रजहिं सुने । २६६
ऊधौ जू, कहियौ तुम हरि सौं, ३२१
ऊधौ जोग कहा है कीजतु । ३१४
ऊधौ जोग जोग हम नाहीं । ३११
ऊधौ जोग बिसरि जनि जाहु । ३०४
ऊधौ जो हरि हितू तुम्हारे । ३०६
ऊधौ तिहारे पा लागति हौं, ३२५
ऊधौ तुम ब्रज की दसा बिचारौ । २८१
ऊधौ तुम यह निश्चय जानौ । २६३
ऊधौ तुम हौ निकट के बासी । २८४
(ऊधौ) ना हम बिरहिनि ना तुम दास । ३०४
ऊधौ पा लागति हौं कहियौ, ३२५
ऊधौ बानी कौन ढरैगौ, २८०
ऊधौ भली भई ब्रज आए । ३०२
ऊधौ भलौ ज्ञान समुझायौ । ३३१
ऊधौ मन अभिमान बढायौ । २६३
ऊधौ मन न भए दस बीस । २८८
ऊधौ मन नहिं हाथ हमारैं । २८८
ऊधौ मन माने की बात । ३१८
ऊधौ मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं । ३३६
ऊधौ मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं । ३३६
ऊधौ मौन साधि रहे । ३०८
ऊधौ लै चल लै चल । ३०५
ऊधौ सुधि नाहीं या तन की । ३१८
ऊधौ सुनहु नैकु जो बात । ३१०
ऊधौ हम आजु भईं बड़ भागी । २८२

ऊधौ हमरी सौं तुम जाहु । ३०८
ऊधौ हमहिं न जोग सिखैयै । २८७
ऊधौ हरि काहे के अंतरजामी । २८१
ऊधौ हरि गुन हम चकडोर । २८४
एक गाउँ के वास वसी हौं, १३५
एक द्योस कुंजनि मैं माई । २५६
एई सुत नंद अहीर के । २२०
ऐसी कुँवरि कहाँ तुम पाई । १८२
ऐसी प्रीति की वलि जाउँ । ३४५
ऐसी वात कहौ जनि ऊधौ । २८६
ऐसी रिस मैं जौ धरि पाऊँ । ७४
ऐसे आपु स्वारथी नैन । १४२
ऐसैं जनि वोलहु नँद लाला । १२४
ऐसौ जोग न हम पै होइ । ३०३
ऐसौ दान माँगियै नहिं जौ, १२३
ऐसौं सुनियत द्वै वैसाख । ३१२
और सकल अंगनि तैं ऊधौ, २८५
कंत सिधारौ मधुसूदन पै, ३४४
कंस नृपति अक्रूर बुलाये । २११
कंस वध्यौ कुविजा कैं काज । २३२
कंस वुलाइ दूत इक लीन्हौ । ८७
कन्हैया तू नहिं मोहिं डरात । ७३
कपट करि व्रजहिं पूतना आई । ५०
कपटी नैननि तैं कोउ नाहीं । १४४
कव देखौं इहिं भाँति कन्हाई । २४०
कव री मिले स्याम नहिं जानौं । १६७
कवहुँ सुधि करत गुपाल हमारी । २७३
कमल-नैनि हरि करौ कलेवा । ६१
कर कंपै, कंपन नहिं छूटै । ३६५
करत अचगरी नंद महर कौ । १२३
करत कान्ह व्रज-घरनि अचगरी । ७१
करतल-सोभित वान धनुहियाँ । ३६४
करति अवसेर वृषभानु-नारी । १८०
करन दे लोगनि कौं उपहास । १३५
कर पग गहि, अँगुठा मुख मेलत । ५१
करि गए थोरे दिन की प्रीति । २३७
करिहौ मोहन कहूँ सँभारि, २५८
करौ गोपाल की सव होइ । ३१
कहत नंद जसुमति सौं वात । ६४
कहत स्याम श्रीमुख यह वानी । ११२
कहन लागे मोहन मैया-मैया । ५७
कहाँ रह्यौ मेरौ मनमोहन । २३०
कहा कहति तू मोहिं री माई । १३३
कहा तुम इतनैंहि कौं गरवानी । २०१
कहा भई धनि वावरी, १८३
कहा भयौ जौ घर कैं लरिका, ७५
कहा भयौ मेरौ गृह माटी कौ । ३४७
कहा होत जो हरि हित चित धरि, ३१६
कहा हौं ऐसे ही मरि जैहौं । २१६
कहि धौं री वन वेलि कहूँ तैं, ११४
कहि धौं सखी वटाऊ को हैं ? ३६६
कहिवे मैं न कछू सक राखी । ३३२
कह्यौ कान्ह सुनि जसुदा मैया । २७३
कहियौ जसुमति की आसीस । ३२७
कहियौ ठकुराइति हम जानी । २८२
कहि राधा हरि कैसे हैं । १६३
कहि राधा ये को है री । १६०
कहि राधिका वात अव साँची । १६६
कहै भामिनी कंत सौं, ११५
(कहौं कहा) अंगनि की सुधि विसरि गईं । ८५
काकौ काकौ मुख माई वातनि कौं गहियै । १५८
काग-रूप इक दनुज धर्यौ । ५१
कान्ह कहत दधि-दान न दैहौ ? १२५
कान्ह कह्यौ वन रैनि न कीजै, १७८
कान्ह कुँवर की करहु पासनी, ५३
कान्हहिं वरजति किन नँदरानी । ६८

काहू के कुल तनन विचारत। २०
काहे कौं कहि गए आइहैं, १९६
काहे कौं गोपीनाथ कहावत। २९३
काहे कौं पर घर छिनु-छिनु जाति। १६०
काहे कौं पिय पियहिं रटति हौ, २५५
काहे कौं रोकत मारग सूधो। ३०९
काहैं न मुरली सौं हरि जोरैं। ९७
काहैं पीठि दई हरि मोसौं। २४२
किते दिन हरि-सुमिरन विनु खोए। ३३
किधौं घन गरजत नहिं उन देसनि। २५१
कियौ जिहिं काज तप घोप-नारी। ११३
कियौ सुर-काज गृह चले ताकैं। २२४
किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत। ५५
कुवरी पूरव तप करि राख्यौ। २२४
कुविजा नहिं तुम देखी है। २३१
कुल की कानि कहाँ लगि करिहौं। १७४
कुल की लाज अकाज कियौ। १७३
केहिं मारग मैं जाउँ सखी री, ११६
कैसे हैं नँद-सुवन कन्हाई। १५८
कैसैं मिले पिय स्याम सँघाती। ३४८
कैसैं री यह हरि करिहैं। २३१
कोउ व्रज वाँचत नाहिंन पाती। २७७
कोउ माई आवत है तनु स्याम। २७१
कोउ माई बरजै री या चंदहिं। २५४
कोउ माई लैहै री गोपालहिं। १३२
कोऊ सुनत न वात हमारी। ३३२
कोकिल हरि कौ वोल सुनाउ। २५२
कोटि करौ तनु प्रकृति न जाइ। २३२
को माता को पिता हमारैं। १२७
कृपा सिंधु हरि कृपा करौ हो। ११७
खंजन नैन सुरँग रस माते। २०३
खेलत मैं को काको गुसैयाँ। ६२
खेलत स्याम, सखा लिए संग। ८८
खेलत हरि निकसे व्रज खोरी। १४६
खेलन कैं मिस कुँवरि राधिका, १४८
खेलन कौं मैं जाउँ नहीं ? १६०
खेलन दूरि जात कत कान्हा। ६२
गई वृषभानु-सुता अपने घर। १४७
गए स्याम ग्वालिन घर सूनैं। ७०
गए स्याम तिहिं ग्वालिन कैं घर। ६५
गन गंधर्व देखि सिहात। १३०
गरब भयौ व्रजनारि कौं, ११४
गरुड़-त्रास तैं जौ ह्याँ आयौ। ९३
गहरु जनि लावहु गोकुल जाइ। २६९
गह्यौ कर स्याम भुज मल्ल अपने धाइ, २२१
गिरि जनि गिरै स्याम के कर तैं। १०८
गिरि पर बरपन लागे बादर। १०६
गिरिवर स्याम की अनुहारि। १०५
गुप्त मते की वात कहौं, ३०५
गुरु-गृह हम जव वन कौं जात। ३४५
गुरु विनु ऐसी कौन करै ? २३
गोकुलनाथ विराजत डोल। २१०
गोकुल प्रकट भए हरि आइ। ४८
गोपालराइ दधि माँगत अरु रोटी। ५७
गोपालराइ निरतत फन-प्रति ऐसे। ९३
गोपालराइ हौं न चरन तजि जैहौं। २२६
गोपालहिं पावौं धौं किहिं देस। २४१
गोपालहिं माखन खान दे। ६६
गोपी कहति धन्य हम नारी। १२९
गोपी सुनहु हरि संदेस। २७५
गोपी सुनहु हरि संदेस। २९६
ग्वारनि कही ऐसी जाइ। २३०
ग्वारिनि जब देखे नँद-नंदन। १२५
घट भरि दियौ स्याम उठाइ। १२१
घर घर इहै सब्द पर्‌यौ। २७१
घरनि-घरनि व्रज होति वधाई। १०९
घरहिं जाति मन हरष वढ़ायौ। १५६

घर ही के बाढ़े रावरे। २८८
चकई री, चलि चरन-सरोवर, ४१
चरन-कमल बंदौं हरि-राइ। १७
चलत गुपाल के सब चले। २३६
चलत जानि चितवहिं ब्रज-जुवती, २१२
चलत देखि जसुमति सुख पावै। ५६
चलन चलन स्याम कहत, २१२
चली बन बेनु सुनत जब धाइ। १११
चलौ किन मानिनि कुंज-कुटीर। १८४
चितवनि रोकै हूँ न रही। १६२
चूक परी हरि की सेवकाई। २३३
चोरी करत कान्ह धरि पाए। ६८
चौंकि परी तन की सुध आई। ८०
जदुपति जानि उद्धव रीति। २६०
जदुपति लख्यौ तिहिं मुसुकात। २६२
जननि, हौं अनुचर रघुपति कौ। ३६८
जनि कोउ काहू कै बस होहि। २४८
जब ऊधौ यह बात कही। २६३
जब तैं प्रीति स्याम सौं कीन्हीं। १६८
जब तैं सुंदर बदन निहार्‌यौ। २८५
जब मैं इहाँ तैं जु गयौ। ३२८
जब हरि मुरली अधर धरत। ८४
जबहिं कह्यौ ये स्याम नहीं। २७१
जबहिं चले ऊधौ मधुबन तैं, २६८
जबहिं बन मुरली स्रवन परी। ११०
जबहिं स्याम तन, अति बिस्तार्‌यौ। ८२
जबहीं रथ अक्रूर चढ़े। २१४
जमुना-जल बिहरति ब्रज-नारी। १६२
जमुना तट देखे नँद-नंदन। १०१
जसुदा कहँ लौं कीजै कानि। ६६
जसुदा कान्ह-कान्ह कै बूझै। २२८
जसुमति अति हीं भई बिहाल। २१३
जसुमति करति मोकौं हेत। २६५
जसुमति कहति कान्ह मेरे प्यारे, ७८
जसुमति जबहि कह्यौ अन्हवावन, ५८
जसुमति टेरति कुँवर कन्हैया। ८०
जसुमति तेरौ बारौ कान्ह, ७४
जसुमति मन अभिलाष करै। ५२
जसुमति राधा कुँवरि सँवारति। १४८
जसोदा हरि पालनै झुलावै। ५०
जाइ सबै कंसहि गुहरावहु। १२६
जागि उठे तब कुँवर कन्हाई। ८६
जागौ, जागौ हो गोपाल। ६१
जा दिन तैं गोपाल चले। २८५
जा दिन तैं हरि दृष्टि परे री। १६७
जा दिन मन पंछी उडि जैहैं। ३७
जा दिन संत पाहुने आवत। ४३
जान जु पाए हौं हरि नीकैं। ६७
जानि करि बावरी जनि होहु। २८३
जापर दीनानाथ ढरै। २१
जीवन मुख देखे कौ नीकौ। ३०६
जुवति इक आवति देखी स्याम। १२१
जेंवत कान्ह नंद इकठौरे। ६३
जैसैं तुम गज कौ पाउँ छुडायौ। २१
जैहै कहाँ मोतिसरि मोरी। १७७
जो जन ऊधौ मोहिं न बिसारत, ३३७
जोग ठगौरी ब्रज न बिकैहै। २८३
जो पै हिरदै माँझ हरी। ३०२
जो सुख होत गुपालहिं गाऐं। २४
जौ कोउ बिरहिनि कौ दुख जानै। ३१८
जो तुमहीं हौ सबके राजा। १२८
जो देखै द्रुम के तरैं, ११६
जौ बिधना अपबस करि पाऊँ। १६६
जो लौं मन-कामना न छूटै। ४४
झिरकि कै नारि, दै गारि गिरि-
घारि तब, ८१
झूँमक सारी तन गोरैं हो। २०६
झूलत स्याम स्यामा संग। २०७

ठाढ़ी अजिर जसोदा अपनैं, ६०
ढोटा नद को यह री। २१८
तजो मन, हरि विमुखनि को संग। ४०
तव ऊधो हरि निकट बुलायो। २६७
तव तुम मेरैं काहे कों आए। ३२६
तब तैं इन सवहिनि सचु पायो। ३३४
तव तैं छीन सरीर सुवाहु। ३२७
तव तैं नैन रहे इकटकहीं। १४३
तव तैं वहुरि न कोऊ आयो। ३४८
तव तैं मिटे सव आनन्द। २३३
तव नागरि जिय गर्व वढायो। ११५
तव नागरि मन हरष भई। १५५
तव वसुदेव हरषित गात। २२३
तव रिस कियो महावत मारि। २२०
तव हरि कों टेरत नँदरानी। १५१
तवहिं उपँग-सुत आइ गए। २६१
तवहिं स्याम इक वुद्धि उपाई। ७७
तवहीं तैं हरि हाथ विकानी। १६७
तव हों नगर अयोध्या जैहों। ३७०
तरुनी स्याम-रस मतवारि। १३२
तातैं अति मरियत अपसोसनि। ३५२
तातैं सेइयै श्री जदुराइ। ३२
तिहारो कृष्ण कहत कह जात। ३७
तुम कहुँ देखे स्याम बिसासी। ११४
तुम कुल वधू निलज जनि ह्वैहो। १७१
तुम जानति राधा है छोटी। १७०
तुम पठवत गोकुल कौं जैहों। २६४
तुम पावत हम घोष न जाहिं। ११२
तुम बिनु भूलोइ भूलो डोलत। २६
तुम सों कहा कहौं सुदर घन। १५३
तुमहिं विना मन धिक अरु धिक घरु। १३१
तुम्हरे देस कागद मसि खूटी। ३५०
तुरत व्रज जाहु उपँग-सुत आज। २६४
तेरी जीवन भूरि मिलहि किन माई। ३५८
तेरैं आवैंगे आज सखी हरि, २०८
(तेरैं) भुजनि बहुत वल होइ कन्हैया। १०८
तैं कत तोर्‌यो हार नौ सरि को। १२४
तैं ही स्याम भले पहिचाने। १६५
तोहि किन रूठन सिखई प्यारी। २०४
तोहिं स्याम हम कहाँ दिखावैं। १८२
तौ तू उडि न जाइ रे काग। २७०
तौ हम मानैं वात तुम्हारी। ३०३
दिन दस घोष चलहु गोपाल। ३३०
दीजे कान्ह काँधे को कंवर। १७८
दूरि करहि बीना कर धरिवौ। २५४
दूरहिं तैं देख्यो वलवीर। ३४४
दूसरैं कर वान न लैहौं। ३७०
देखत नंद कान्ह अति सोवत। ८६
देखियत कालिंदी अति कारी। २३८
देखि सखी उत है वह गाउँ। २४५
देखो माई सुंदरता को सागर। १३६
देन आए ऊधो मत नीको। २८०
देवकी मन मन चकित भई। ४७
देह धरे को कारन सोई। १५५
दोउ ढोटा गोकुल-नायक मेरे। २२८
द्विज कहियो जदुपति सों वात। ३४०
द्विज पाती दै कहियो स्यामहिं। ३३८
द्वै मैं एको तौ न भई। ३५
धनि-धनि यह कामरी मोहन स्याम की। १००
धनि वृषभानु-सुता वड़ भागिनि। १८५
धनि यह वृन्दावन की रेनु। ८५
धनुष साला चले नँदलाला। २१८
धन्य धन्य वृषभानु-कुमारी। १८२
धन्य धन्य वृषभानु-कुमारी, २०३

धीर धरहु फल पावहुगे। १६६
धोखैं ही धोखैं डहकायौ। ३८
नँद-नंदन तिय-छवि तनु काछे। १६८
नँद-नंदन हँसे नागरी-मुख चितै, १६२
नंद करत पूजा, हरि देखत। ६४
नंद कहौ हो कहँ छाँडे हरि। २२६
नंद गये खरिकहिं हरि लीन्हे। १४७
नंद जसोदा सब ब्रजवासी। ३५७
नंद जु के बारे कान्ह, ५७
नंद-नँदन वृषभानु-किसोरी, २१०
नंद-नँदन सुखदायक है। १६७
नंद-नँदन सौं इतनी कहियौ। ३२३
नंद बबा की बात सुनौ हरि। १४८
नद बिदा होइ घोष सिधारौ। २२६
नद-महर-घर के पिछवारैं, १७७
नंदलाल सौं मेरौ मन मान्यौ, १३४
नंद-सुवन गारुडी बुलावहु। १५१
नंद हरि तुमसौं कहा कह्यौ। २३०
नटवर वेष धरे ब्रज आवत। १३८
नर तैं जनम पाइ कह कीनौ ? ३३
नवल नंदनंदन रंगभूमि राजैं। २२२
ना जानौं तबहीं तैं मोकौं। १६८
नाथ अनाथनि की सुधि लीजै। २३७
नाथत व्याल बिलम्ब न कीन्हौ। ६२
नाना रँग उपजावत स्याम। १६७
नाम कहा तेरौ री प्यारी। १४६
नारद ऋषि नृप सौं यौं भाषत। ८७
नित्य धाम वृन्दावन स्याम। २०७
निरखत ऊधौ कौं सुख पायौ। २७२
निरखतिं अंक स्याम सुंदर के, २७६
निरखि पिय-रूप तिय चकित भारी। १८६
निरगुन कौन देस कौ बासी ? २६२
निसि दिन बरषत नैन हमारे। २४३
नीकैं तप कियौ तनु गारि। १०२
नीकैं देहु न मेरी गिँडुरी। १२२
नीकैं रहियौ जसुमति मैया। २६५
नैंकु निकुंज कृपा करि आइयै। १६६
नैन करैं सुख, हम दुख पावैं। १४२
नैन चपलता कहाँ गँवाई। १६६
नैन न मेरे हाथ रहे। १४१
नैननि सौं झगरौ करिहौं री। १४३
नैन भए बस मोहन तैं। १४३
नैन सलोने स्याम, २४७
नैना घूँघट मैं न समात। १४४
नैना भए अनाथ हमारे। ३५१
पंथी इतनी कहियौ बात। २३५
पथिक, कहियौ हरि सौं यह बात। ३५७
पथिक कह्यौ ब्रज जाइ, ३५०
पनघट रोके रहत कन्हाई। १२०
परम चतुर वृषभानु दुलारी। १८०
परसुराम तेहिं औसर आए। ३६५
परी पुकार द्वार गृह गृह तैं, २८०
परेखौ कौन बोल कौ कीजे। २३८
पहिलैं प्रनाम नँदराइ सौं। २६७
पाती बाँचत नंद डराने। ८८
पाती मधुबन तैं आई। २७६
पाती मधुबन ही तैं आई। २७५
पिय तेरैं बस यौं री माई। १८३
पिय प्यारी खेलैं जमुन-तीर। २०८
पिय बिनु नागिनि कारी रात। २४६
पियहिं निरखि प्यारी हँसि दीन्हौ। १६३
पुनि-पुनि कहति हैं ब्रज नारि। १६४
पूछौ जाइ तात सौं बात। ८८
प्रकृति जो जाकैं अंग परी। २८१
प्रथम करी हरि माखन-चोरी। ६६
प्रथम सनेह दुहुँनि मन जान्यौ। १४७
प्रभु कौ देखौ एक सुभाइ। १८

प्रभु, हौं सब पतितन को टीको। २८
प्राननाथ हो मेरी सुरति किन करौ। १७५
प्रीति करि काहू सुख न लह्यौ। २४७
प्रीति करि दीन्ही गरैं छुरी। २३७
प्रीति के वस्य ये हैं मुरारी। १८१
प्रीति तौ मरिबौऊ न बिचारै। २४८
प्रेम न रुकत हमारे बूतैं। ३१०
फिरि फिरि कहा बनावत बात। २९७
फिरि फिरि कहा सिखावत मौन। २९७
फिरि व्रज बसौ गोकुलनाथ। २४१
फिरि व्रज बसौ नंदकुमार। ३३०
फेँट छाँडि मेरी देहु श्रीदामा। ८९
बंदौ चरन-सरोज तिहारे। २५
बडी है राम नाम की ओट। २४
बडौ मंत्र कियौ कुँवर कन्हाई। १५३
बनत नहिँ जमुना कौ ऐबौ। १०२
बन तैं आवत धेनु चराए। ८४
बनावत रास-मंडल प्यारौ। ११८
बरनौं बाल-बेष मुरारि। ५८
बसन हरे सब कदम चढाए। १०३
बसुद्यौ कुल ब्योहार बिचारि। २२३
बहुरि पपीहा बोल्यौ माई। २५२
बहुरि हरि आवहिंगे किहि काम। २५०
बहुरौ देखिबौ इहिँ भाँति। २४०
बहुरौ हो व्रज बात न चालौ। ३४९
बातैं सुनहु तौ स्याम सुनाऊँ। ३३२
बाँधौं आजु कौन तोहिँ छोरे। ७५
बाँसुरी बजाइ आछे, रंग सौं मुरारी। ९५
बाजति नंद-अवास बधाई। १०४
बारक जाइयौ मिलि माधौ। २४२
बार-बार मग जोवति माता। २२८
बार सत्तरह जरासंध, ३३८
बासुदेव की बड़ी बड़ाई। १८
बिछुरत श्री व्रजराज आजु, २१५
बिछुरी मनौ सग तैं हिरनी। ३६७
बिछुरे री मेरे बाल सँघाती। २५६
बिनती किहिँ बिधि प्रभुहिँ सुनाऊँ? ३७२
बिनु गुपाल बैरिन भईं कुंजैं। ३२३
बिप्र बुलाइ लिए नँदराइ। १०५
बिलग जनि मानौ ऊधौ कारे। ३०१
बिलग हम मानैं ऊधौ काको। ३०६
बिहँसि राधा कृष्ण अंक लीन्ही। १७५
बिहारी लाल आवहु, आई छाक। ८१
बीर बटाऊ पाती लीजौ। ३५३
बूझत जननि कहाँ हुती प्यारी। १५०
बूझत स्याम कौन तू गोरी। १४६
बूझति हैं अक्रूरहिँ स्याम। २१६
बूझति है रुकमिनि पिय इनमैं, ३६०
बृन्दावन देख्यौ नँद-नंदन, ८१
बेगि व्रज कौं फिरिए नँदराइ। २२५
बेरस कीजे नाहिँ भामिनी, २०५
बैठि मानिनी गहि मौन। २००
बैठी जननि करति सगुनौती। ३७२
व्रज के बिरही लोग दुखारे। ३२९
व्रज के लोग फिरत बितताने। १०७
व्रज घर-घर यह बात चलावत। १२२
व्रज घर-घर सब होति बधाई। २७४
व्रज-जुवती रस-रास पगीं। १२०
व्रज तैं द्वै रितु पै न गई। ३३०
व्रज पर बदरा आए गाजन। २५०
व्रज बसि काके बोल सहौं। १५४
व्रज बसि काके बोल सहौं। २४४
व्रज बासिनी को हेत, ३५५
व्रज बासिनि मोकौं बिसरायौ। १०६
व्रज बासिनि-सौं कह्यौ, ३६२

ब्रजवासी सब सोवत पाये । ११९
ब्रज मैं एक अचंभो देख्यो । ३३५
ब्रज मैं एकै धरम रह्यो । ३३३
ब्रज मैं को उपज्यो यह भैया । ८२
ब्रज मैं संभ्रम मोहिं भयो । ३३५
ब्रजहिं बसे आपुहिं बिसरायो । १५५
ब्रत पूरन कियो नंद-कुमार । १०४
ब्रह्म जिनहिं यह आयसु दीन्हो । १३०
ब्रह्मा बालक-बच्छ हरे । ८२
भए सखि नैन सनाथ हमारे । २१८
भक्त हेत अवतार धरौं । १२७
भक्ति कब करिहो, जनम सिरानो । ३९
भजन बिनु कूकर-सूकर जैसौ । ४२
भली भई हरि सुरति करी । २७२
भवन रवन सबही बिसरायौ । १०१
भावी काहू सौं न टरै । ३२
भुज भरि लई हिरदय लाइ । १८७
भुजा पकरि ठाढ़े हरि कीन्हे । १७३
भूखो भयो आजु मेरो बारो । ७८
भूलि नहीं अब मान करौं री । १८६
भूलौ द्विज देखत अपनो घर । ३४८
मथुरा जाति हौं बेचन दहियौ । ७०
मथुरा तैं ये आई है । १९१
मथुरा दिन-दिन अधिक बिराजै । २२५
मथुरा पुर मैं सोर परयो । २१७
मथुरा मैं बस बास तुम्हारो ? १९१
मथुरा हर्षित आजु भई । २१७
मधुकर आपुन होहिं बिराने । ३१६
मधुकर कहिऐ काहि सुनाइ । २८३
मधुकर प्रीति किये पछितानी । ३१५
मधुकर भली करी तुम आए । ३०८
मधुकर स्याम हमारे ईस । २९८
मधुकर स्याम हमारे चोर । ३००
मधुकर हम न होहिं वै वेलि । २७९
(मधुप तुम) कहौ कहाँ तैं आए हौ । २७८
मधुवन तुम क्यौं रहत हरे । २४०
मधुवन लोगनि को पतियाइ । २८७
मन तोसों किती कही समुझाइ । ३८
मन मैं रह्यौ नाहिंन ठौर । ३००
मनहीं मन रीझति महतारी । १६०
महर-महरि कैं मन यह आई । ८०
महरि, गारुडी कुँवर कन्हाई । १५१
महरि तैं बड़ी कृपन है माई । ७२
महरि मुदित उलटाइ कै, ५२
महा बिरह-बन माँझ परी । १८४
माई कृष्ण-नाम जब तैं स्रवन सुन्यो है री । १९९
माई मेरो मन पिय सौं यौं लाग्यो, १८६
माई मोकौं चद लग्यो दुख दैन । २५५
माई री कैसें बनै हरि कौ ब्रज आवन । ३५२
मातु-पिता अति त्रास दिखावति । १७४
मातु-पिता इनके नहिं कोइ । १०९
मातु-पिता तुम्हरे धौं नाहीं । १११
माधव या लगि है जग जीजत । ३५८
माधौ जू कहा कहौं उनकी गति । ३३३
माधौ जू मैं अतिही सचु पायो । ३३४
मान करो तुम और सवाई । १९४
मानौ माई घन घन अंतर दामिनि । ११३
मिलि बिछुरन की वेद न न्यारी । २३९
मीठी बातनि मैं कहा लीजे । २९४
मुख पर चद डारौं वारि । १४१
मुरलिया कपट चतुराई ठानी । ९८
मुरलिया मोकौं लागति प्यारी । १००
मुरली कहै सु स्याम करैं री । ९८
मुरली की सरि कौन करै । ९७
मुरली तऊ गुपालहिं भावति । ९६
मुरली-धुनि स्रवन सुनत, ९५

मुरली स्याम बजावन दे री । १००
मेघनि जाए कही पुकारि । १०८
(मेरे) कमल नैन प्राननि तैं प्यारे । २१३
मेरे कहे मैं कोऊ नाहिं । १३३
मेरे कुँवर कान्ह बिनु सब कुछ, २३६
मेरे दधि कौ हरि स्वाद न पायौ । १२८
मेरे दुख कौ ओर नहीं । ८८
(मेरे) नैना बिरह की बेलि बई । २४४
मेरे मन इतनी सूल रही । २५६
(मेरे) मोहन तुमहिं बिना नहिं जैहौं । २२७
मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै । २८
मेरौ कह्यौ सत्य करि जानौ । १०५
मैं अपनी सी बहुत करी री । १८५
मैं अपनैं जिय गर्व कियौ । १८४
मैं अपनौ मन हरत न जान्यौ । १६८
मैं दुहिहौं मोहिं दुहन सिखावहु । ८०
मैं परदेसिन नारि अकेली । ३६८
मैं ब्रजबासिन की बलिहारी । ३१८
मैं बलि जाउँ कन्हैया की । १७८
मैं बलि जाउँ स्याम मुख छबि पर । १३७
मैं बरज्यौ जमुना तट जात । ८६
मैं समुझाई अति अपनौ सो । ३३१
मैं हरि सौं हो मान कियौ री । १८६
मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी ? ५८
मैया बहुत बुरो बलदाऊ । ८४
मैया मैं नहिं माखन खायो । ७३
मैया मोहिं दाउ बहुत खिझायौ । ६१
मैया री, मोहिं माखन भावै । ६५
मैया हौं न चरैहौं गाइ । ८५
मोकौं माई जमुना जम ह्वै रही । २४६
मोसौं कहा दुरावति राधा । १५६
मोसौं बात सुनहु ब्रज-नारी । १२६
(मोहन) अपनी गैयाँ घेरि लै । ३२६
मोहन काहे न उगिलौ माटी । ६३
मोहिं कहतिं जुवती सब चोर । ७८
मोहिं छुवौ जनि दूर रहौ जू । १८३
यह ऋतु रूसिबे की नाहीं । २०४
यह कमरी कमरी करि जानति । १०१
यह कहि कै तिय धाम गई । १८८
यह गोकुल गोपाल उपासी । ३१२
यह जानति तुम नद-महर-सुत । १२७
यह बल केतिक जादौराइ । १७३
यह महिमा येई पै जानैं । १३०
यह वृषभानु-सुता वह को है । १८०
यह सुनि कै हँसि मान रहीं री । १७२
यह सुनिकै हलधर तहँ धाए । ७६
ये दिन रुसिबे के नाहीं । २४८
ये नैन मेरे ढीठ भए री । १४४
रघुकुल प्रगटे हैं रघुबीर । ३६४
रहिरी मानिनी मान न कीजे । २०२
रहीं जहाँ सो तहाँ सब ठाढीं । २१५
रहु रे मधुकर मधु मतवारे । २७८
राखि लेहु अब नंदकिसोर । १०७
राखौ पति गिरिवर गिरिधारी । ३०
राधा अतिहिं चतुर प्रवीन । १७८
राधा चलहु भवनहिं जाहिं । १६३
राधा जल बिहरति सखियनि सँग । १६१
राधा डर डराति घर आई । १८०
राधा तैं हरि कैं रँग रांची । १७०
राधा नँद-नदन अनुरागी । १७१
राधा नैन नीर भरि आए । ३५७
राधा परम निर्मल नारि । १६५
राधा बिनय करति मनहीं मन, १६१
राधा-भवन सखी मिलि आईं । १८४
राधा माधव, भेंट भई । ३६२
राधा सखी देखि हरषानी । २०२
राधा सौं माखन हरि माँगत । १२८
राधा स्याम की प्यारी । १६५

राधहिं मिलेहुँ प्रतीति न आवति। १८८
राधिका गेह हरि-देह-बासी। १६८
राधिका बस्य करि स्याम पाए। २०६
राधिका हृदय तै धोख टारो। १८२
राधे तेरो वदन बिराजत नीको। १५७
राधे हरि तेरो नाम विचारैं। २०१
राधेहिं स्याम देखी आइ। २०३
राम धनुष अरु सायक सांधे। ३६६
राम भक्त वत्सल निज बानौं। १६
रास रस लीला गाइ सुनाऊँ। १२०
रास रस स्त्रमित भईं ब्रजबाल। ११८
रिस करि लीन्ही फेंट छुडाइ। ८६
रीती मटुकी सीस धरैं। १३२
री मोहिं भवन भयानक लागै, २१६
रुकमिनि चलौ जन्मभूमि जाहिं। ३५५
रुकमिनि देवी-मदिर आई। ३४०
रुकमिनि बूझति हैं गोपालहिं। ३५४
रुकमिनि मोहिं निमेष न बिसरत, ३५४
रुकमिनि मोहिं ब्रज बिसरत नाही, ३५४
रुकमिनि राधा ऐसैं भेंटी। ३६१
रे मन मूरख जनम गँवायौ। ४०
रोवति महरि फिरति बितत्तानी। १५२
लरिकाई कौ प्रेम कहौ अलि कैसैं छूटत। ३१६
ललकत स्याम मन ललचात। ११६
ललिता प्रेम-विवस भई भारी। १८७
लाज ओट यह दूरि करौ। १०३
लाल हौं वारी तेरे मुख पर। ५४
लिखि आई ब्रजनाथ की छाप। २७७
लिखि नहिं पठवत हैं द्वै बोल। २४५
लै आवहु गोकुल गोपालहिं। २३४
लोक-सकुच कुल-कानि तजी। १३३
लोचन दए कुँवर उघारि। १५२
बायस गहगहात सुनि सुंदरि, ३५६
विनती सुनौ दीन की चित दै, २२
वे हरि सकल ठौर के बासी। ३०७
वै कह जानैं पीर पराई। ३३२
वै बातैं जमुना-तीर की। ३१०
संग मिलि कहौं कासौं बात। २६१
सँग राजति वृषभानु कुमारी। १६५
सँदेसनि मधुबन कूप भरे। २४८
सँदेसौ देवकी सौं कहियो। २३५
सखा सुनि एक मेरी बात। २६२
सखि मोहिं हरिदास रस प्याइ। १३४
सखियनि मिलि राधा घर लाईं। १५०
सखी इन नैननि तैं घन हारे। २४३
सखी री चातक मोहिं जियावत। ३५२
सखी री स्याम सबै इक सार। ३०१
सतगुरु-चरन भजे बिनु विद्या, २८८
सब खोटे मधुबन के लोग। २८७
सब तजि भजिये नंद कुमार। ३६
सब दिन एकहिं से नहिं होतैं। ३००
सबहिनि तैं हित है जन मेरौ। ३६२
सबै दिन गए विषय के हेतु। ३४
सबै सुख लै जु गए ब्रजनाथ। २५८
समुझि न परति तिहारी ऊधौ। २८१
सरद समै हू स्याम न आए। २५३
सरन गए को को न उबार्‍यौ। २०
सहस सकट भरि कमल चलाए। ६४
सांवरौ सांवरी रैनि कौ जायौ। २६३
सिखवति चलन जसोदा मैया। ५६
सुन्दर स्याम कमल-दल-लोचन। १७४
सुत मुख देखि जसोदा फूली। ५३
सुता लए जननी समुझावति। १६१
सुदामा गृह कौं गमन कियौ। ३४६
सुदामा मंदिर देखि डर्‍यौ। ३४६
सुदामा सोचत पंथ चले। ३४४
सुनत हरि रुकमिनि कौ सदेश। ३४०

सुनहु अनुज, इहिं वन इतननि मिलि, ३६७
सुनहु बात जुवती इक मेरी। १३१
सुनहु महरि तेरौ लाडिलौ, १२२
सुनहु सखी राधा की बातैं। १५७
सुनहु सखी राधा की बानी। १५६
सुनहु सखी राधा सरि को है। १७०
सुनहु स्याम वै सब व्रज बनिता, ३२६
सुनि ऊधौ मोहिं नैकु न विसरत, ३३६
सुनियत ऊधौ लए सँदेसौ। २६६
सुनियत कहुँ द्वारिका बसाई। ३५३
सुनियै व्रज की दसा गुसाईं। ३२८
सुनि राधा अब तोहिं न पत्यैहौं। १७६
सुनि राधा यह कहा विचारै। १८३
सुनि राधे तोहिं स्याम दिखैहैं। १५६
सुनि री मैया काल्हि ही, १७६
सुनि री सयानी तिय; २०५
सुनि सुत, एक कथा कहौं प्यारी। ६०
सुनि सुनि ऊधौ आवति हांसी। २६२
सुनिहि महावत बात हमारी। २२०
सुनु कपि, वै रघुनाथ नहीं? ३६६
सुने हैं स्याम मधुपुरी जात। २१३
सुनौ गोपी हरि कौ सदेस। २७६
सुनौ हो वीर मुष्टिक, चानूर सबै, २२१
सुपनैं हरि आए हौं किलकी। २४६
सुफलक सुत हरि दरसन पायौ। २११
सुरगन सहित इंद्र व्रज आवत। ११०
सुवा चलि तो वन कौ रस पीजै। ४१
सैन दै नागरी गई बन कौं। १७७
सो दिन त्रिजटी, कहु कब ऐहै? ३६८
सोभा-सिंधु न अत रही री। ४६
सोभित कर नवनीत लिए। ५५
सोवत नींद आइ गई स्यामहिं। ८५
स्याम अंग जुवती निरखि भुलानी। १३७
स्याम कमल पद-नख की सोभा। १४०
स्याम करत हैं मन की चोरी। १६६
स्याम कर पत्री लिखी बनाइ। २६५
स्याम कौन कारे की गोरे। १५७
स्याम गरीवनि हूँ के ग्राहक। २०
स्याम नारि कैं विरह भरे। १६५
स्याम पिया सन्मुख नहिं जोवत। १६८
स्याम भए राधा बस ऐसैं। १८८
स्याम भुजनि की सुंदरताई। १३७
स्याम मिले मोहिं ऐसैं माई। १६७
स्याम यह तुमसौं क्यौं न कहौं। १५४
स्याम राम के गुन नित गाऊँ। ३४२
स्याम लियौ गिरिराज उठाइ। १०७
स्याम सखा कौं गेंद चलाई। ८६
स्याम सखि नीकैं देखें नाहिं। १६४
स्याम सबनि कौं देखही, ११५
स्याम सुख-रासि, रस रासि भारी। १३६
स्यामहिं दोष कहा कहि दीजै। ६८
स्याम-हृदय जल-सुत की माला, १४०
स्याम स्यामा कुंज बन आवत। १६०
स्यामा तू अति स्यामहिं भावे। २००
स्रम करिहौ जब मेरी सी। ६६
स्वामो पहिलौं प्रेम सँभारौ। ३२१
हँसत सखनि यह कहत कन्हाई। १२५
हँसि बोले गिरिधर रस-बानी। १५४
हमकौं हरि की कथा सुनाउ। २८६
हमतैं कछु सेवा न भई। २७३
हमतैं हरि कबहूँ न उदास। ३१३
हम तौ इतने ही सचु पायौ। ३६३
हम तौ कान्ह केलि की भूखी। २६५
हम तौ नंद-घोष के वासी। ३११
हम तौ सब बातनि सचु पायौ। २८२
हम पर काहैं झुकतिं व्रजनारी। २६६
हम पर हेत किये रहिबौ। ३२०

हम मति हीन कहा कछु जानैं, ३२२
हमरी सुरति बिसारी बनवारी, १८५
हमसों उनसों कौन सगाई। ३०३
हमहिं और सो रोकै कौन। १२८
हमहिं कह्यो हौं स्याम दिखावहु। १६३
हमारी जन्मभूमि यह गाउँ। ३७२
हमारे अंबर देहु मुरारी। १०३
हमारे निर्धन के धन राम। २४
हमारे प्रभु, औगुन चित न धरौ। २६
हमारे माई मोरवा बैर परे। २५१
हमारैं हरि हारिल की लकरी। ३१५
हमैं नँद नंदन मोल लिये। ३०
हरषि स्याम तिय बाँह गही। २०२
हरि अपनैं आँगन कछु गावत। ५६
हरि किलकत जसुमति की कनियाँ। ५३
हरि कौं टेरति है नँदरानी। ६३
हरि कौ मारग दिन प्रति जोवति। २५७
हरि गारुड़ी तहाँ तब आए। १५२
हरि गोकुल की प्रीति चलाई। २६२
हरि जू इते दिन कहाँ लगाए। ३६०
हरि जू वै सुख बहुरि कहाँ। ३६१
हरि तेरौ भजन कियौ न जाइ। २३
हरि तैं भलौ सुपति सीता कौ। ३१७
हरि दरसन कौं तरसति अँखियाँ। २४४
हरि परदेस बहुत दिन लाए। २४८
हरि बिनु कौन दरिद्र हरै। ३४९
हरि मुख राधा-राधा बानी, २०४
हरि-रस तौऽब जाइ कहुँ लहियै। ४३
हरि सँग खेलति हैं सब फाग। २०९
हरि सब भाजन फोरि पराने। ७३
हरि सौं बूझति रुकमिनि इनमैं, ३५९
हरि हरि हरि सुमिरन करौ। ३३८
हलधर कहत प्रीति जसुमति की। २६५
हलधर सौं कहि ग्वालि सुनायौ। ७६
है कोउ वैसी ही अनुहारि। २७०
होत सो जो रघुनाथ ठटै। ३१
हो, ता दिन कजरा मैं दैहौं। २४५
हौं इक नई बात सुनि आई। ४८
हौं इन मोरनि की बलिहारी। ३२०
हौं इहाँ तेरेहि कारन आयौ। ३५६
हौं कैसौं कै दरसन पाऊँ। ३५२
हौं तौ माई मथुरा ही पै जैहौं। २३४
हौं फिरि बहुरि द्वारिका आयौ। ३४६
हौं या माया ही लागी तुम कत तोरत। १७५
हौं संग सांवरे के जैहौं। १३६
ज्ञान बिना कहुँवै सुख नाहीं। २८८